आराधना ब्रदर्स
प्रकाशक एवं वितरक
124/152-सी ब्लाक, गोविन्द नगर, कानपुर-208 006 (उ.प्र.)
दूरभाष : 09935007102, 07985242564, 0512-2651490
Email : aradhanabooks@rediffmail.com

कृतिका वर्ष : 12 अंक : 23 जनवरी-जून 2019 कृतिका

ISSN : 0974-0002 RNI : UPHIN/2008/30136

वर्ष : 12 अंक : 23

कृतिका

जनवरी-जून 2019

साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय रेफ्रीड शोध पत्रिका

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वर्ष : 12, अंक : 23, जनवरी–जून 2019

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

प्रधान सम्पादक

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

अध्यक्ष – हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग

डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, लखनऊ, 226 017 (उ.प्र.)

सम्पर्क – 09415924888, 08052755512

Email : dr.virendrayadav@gmail.com

Email : virendra_kritika@rediffmail.com

Email : kritika_orai@rediffmail.com

Webside : www.kritika.org.in

सम्पादक

प्रो. हितेन्द्र मिश्र

हिन्दी विभाग

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय,

शिलांग, मेघालय–793 022

दूरभाष – 09436594338

Email : hiten.hindi@gmail.com

प्रबन्धन एवं पत्राचार

अरविन्द शुक्ल

आराधना ब्रदर्स

(प्रकाशक एवं वितरक)

124 / 152–सी ब्लाक, गोविन्दनगर, कानपुर–208 006, उ.प्र.

दूरभाष – 09935007102

Email : aradhanabooks@rediffmail.com

Webside :www.kritika.org.in

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वर्ष : 12, अंक : 23, जनवरी–जून 2019

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 12 अंक : 23 जनवरी–जून 2019

सामान्य अंक	:	60.00 रुपये	
इस अंक की सहयोग राशि	:	400.00 रुपये	
यू. एस. 25 $		यूरो 40 $	
व्यक्तिगत सदस्यों के लिये			
वार्षिक सदस्यता	:	300 रुपये	(डाक व्यय सहित)
पाँच वर्ष के लिये	:	3000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
आजीवन	:	6500 रुपये	(डाक व्यय सहित)
संस्थाओं के लिये			
प्रति अंक	:	500 रुपये	(डाक व्यय सहित)
वार्षिक सदस्यता	:	1000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
पाँच वर्ष के लिये	:	5000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
आजीवन	:	10000 रुपये	(डाक व्यय सहित)

विषेष : सभी भुगतान नकद/आर.टी.जी.एस./बैंक ड्राफ्ट/चेक 'सम्पादक कृतिका' के नाम Payable at Lucknow भेजें। नकद जमा (R.T.G.S.) हेतु भारतीय स्टेट बैंक – मुख्य शाखा लखनऊ के A/C 30358537228 IFSC No. - SBIN0000125 में जमा कर सकते हैं। (नकद जमा हेतु बैंक कमीशन 50 रु. अतिरिक्त जमा करें।)

☞ विधिक वादों के लिये क्षेत्र, उरई न्यायालय के अधीन होंगे।

☞ कृतिका में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से सम्पादक मण्डल (कृतिका परिवार) की सहमति अनिवार्य नहीं है।

☞ शोध पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिये सम्पादक मंडल की लिखित अनुमति अनिवार्य है। कृतिका के सम्पादन, प्रकाशन व प्रबंधन से जुड़े समस्त पद अवैतनिक हैं।

प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा महक कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिण्टर्स, 15, आजाद नगर, उरई (जालौन) से मुद्रित करवाकर 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) से प्रकाशित।

सम्पादक–डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वर्ष : 12, अंक : 23, जनवरी–जून 2019

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 12 अंक : 23 जनवरी–जून 2019

सह–सम्पादक

डॉ. रूपेश कुमार सिंह
हिन्दी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग एवं
सहायक निदेशक, हिन्दी शिक्षण अधिगम केन्द्र
महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय,
वर्धा (महाराष्ट्र) – 442001
Email : dr.roopeshsingh@gmail.com
Mob. : 0940454085, 9335866691

डॉ. मलखान सिंह
असि. प्रो., भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन केन्द्र
जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली–67
Email : malkhan1979@gmail.com

प्रधान सम्पादकीय कार्यालय

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
303 तीसरा तल, टाईप फाइव, विश्वविद्यालय आवासीय परिसर
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ.प्र.–226017
सम्पर्क – 08052755512, 09415924888
Email : dr.virendrayadav@gmail.com • Email : virendra_kritika@rediffmail.com
Email : kritika_orai@rediffmail.com • http://kritika-shodh.blogspot.com
www.kritika.org.in

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975–0002 वर्ष : 12, अंक : 23, जनवरी–जून 2019

कृतिका : एक परिचय

शोध एवं अनुसंधान गतिविधियों के एकीकृत अध्ययन के लिये युवा शोधार्थियों, अध्येताओं को शोध के नवीन अवसरों को उपलब्ध कराने हेतु कृतिका शोध पत्रिका की परिकल्पना की गई। यह एक अन्तर्राष्ट्रीय अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका है। कृतिका का सम्पादक मण्डल देश एवं विदेश के विभिन्न राज्यों के विषय विशेषज्ञों की सहभागिता के आधार पर कार्य कर रहा है। मानविकी एवं समाज विज्ञान में शोध के नवीन अवसरों की भागीरथी प्रवाहित करने के उद्देश्य से सहकारिता के आधार पर इस शोध पत्रिका का प्रचार सम्पूर्ण भारत के साथ–साथ सात समुन्दर पार यू. एस. ए., लंदन, आस्ट्रेलिया, जापान, जर्मनी, मॉरीशस आदि के शोध निर्देशक एवं शोधार्थियों का कृतिका में रचनात्मक सहयोग प्राप्त है।

कृतिका शोध पत्रिका का एक दूसरा उद्देश्य मानविकी एवं समाज विज्ञान के अलावा विषयों की सीमाओं से हटकर स्वतंत्र रूप से गहन एवं मौलिक शोध की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना है ताकि शोध पत्र न केवल गम्भीर अध्येताओं के लिये उपयोगी हो; बल्कि यह जनसामान्य में नवीन जानकारी, शोध के प्रति उत्सुकता एवं जागरूकता का परिचायक भी सिद्ध हो। साथ ही यह व्यावहारिक धरातल पर उपयोगी भी हो। कृतिका में इन्हीं विचारों को दृष्टिगत रखते हुये साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान के विषयों के अलावा हम विज्ञान एवं अन्य विषयों के शोध पत्र भी आमंत्रित करते हैं। उत्तर आधुनिकता एवं भूमण्डलीकरण के इस दौर में वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं से सम्बन्धित विषयों पर समय–समय पर कृतिका परिवार विषय–विशेष पर विशेषांक केन्द्रित अंक भी निकालता है जिसकी सूचना कृतिका शोध पत्रिका में एवं अलग से पत्रों के माध्यम से शोध अध्येताओं एवं जिज्ञासु युवा रचनाकर्मियों को समय–समय पर दी जायेगी।

सामान्य निर्देश

रचनाकारों/शोध अध्येताओं से विनम्र अनुरोध :

- ☞ कृतिका साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान का एक अर्द्धवार्षिक शोधपरक अनुष्ठान है जो युवा अध्येताओं, शोधार्थियों एवं खोजकर्ताओं का अपना मंच है। अपने मौलिक एवं नवीन अन्वेषणात्मक रचनाओं के सहयोग से इसे सम्बल प्रदान करें।
- ☞ मानविकी एवं समाज विज्ञान से सम्बन्धित सभी विषयों की मौलिक रचनायें विषय विशेषज्ञों की सहमति से ही इसमें प्रकाशित की जाती हैं।
- ☞ कृतिका में प्रकाशित शोध पत्र देश एवं विदेश के विषय विशेषज्ञों के पास चयन के लिए प्रेषित किये जाते हैं। इसलिये शोध पत्र/आलेख लिखते समय संदर्भों का स्पष्ट उल्लेख करें, पुस्तक का संदर्भ, पत्र–पत्रिका का संदर्भ, प्रकाशन, वर्ष एवं संस्करण का उल्लेख आवश्यक है। शोध पत्र/आलेख की शब्द सीमा दो हजार शब्दों से अधिक नहीं होनी चाहिये। यदि शब्द सीमा अधिक है तो सम्पादक मण्डल को उसमें संशोधन, संक्षिप्तीकरण का अधिकार सुरक्षित रहेगा।
- ☞ कृपया अपनी शोध रचनाएं एवं आलेख प्रेषित करते समय अपना संक्षिप्त आत्मवृत्त, छायाचित्र प्रेषित करें। रचना के शोध संक्षेप सार का उद्देश्य, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता एवम् उपयोगिता को अवश्य दर्शायें।
- ☞ कृतिका में पुस्तक समीक्षा के लिये चर्चित एवं महत्वपूर्ण पुस्तकों/पत्रिकाओं पर समीक्षात्मक आलेख आमंत्रित हैं। समीक्षात्मक आलेख के साथ पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां रजिस्टर्ड डाक से प्रेषित करें।
- ☞ स्तरीय पुस्तक की समीक्षा के लिये समीक्ष्य पुस्तक की दो प्रतियों के साथ लेखक अपना संक्षिप्त आत्मवृत्त एवं छायाचित्र तथा पुस्तक का संक्षेपण पंजीयन डाक से सम्पादक के पते से प्रेषित करें। समीक्षा की स्थिति में शोध पत्रिका का अंक सम्बन्धित लेखक के पते पर भेजा जायेगा।
- ☞ किसी भी दशा में शोध पत्र/आलेख की प्रति वापस (स्वीकृति/अस्वीकृति की स्थिति में) नहीं प्रेषित की जा सकती है। इसलिये कृपया एक प्रति अपने पास सुरक्षित अवश्य रखें।
- ☞ कृतिका एक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका है। कृपया रचना प्रेषित करते समय यह भली–भाँति तय कर लें कि यह शोध पत्र/आलेख/रचना आपकी अपनी मौलिक कृति है। और कृतिका के मापदण्डों के अनुकूल है कि नहीं। कृतिका परिवार आपके नये अकादमिक सुझावों एवं प्रतिक्रियाओं का सदैव स्वागत करेगा।
- ☞ रचनायें कम्प्यूटर से मुद्रित अथवा कृति देव 10 में 14 फान्ट साइज में MS-Word Software में टाइप करके ई–मेल करें या साथ में सीडी एवं रचना का प्रिन्ट अवश्य भेजें।

— संपादक कृतिका

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वर्ष : 12, अंक : 23, जनवरी–जून 2019

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 12 अंक : 23 जनवरी–जून 2019

अनुक्रमणिका

शीर्षक	लेखक	पृ.सं.
सम्पादकीय......		i-iii
ज्वलंत प्रश्न		
1. स्वतंत्रता के 72 वर्ष : स्वराज्य से सुशासन की ओर	डॉ0 प्रतिमा गंगवार	1
2. सामाजिक सुरक्षा तंत्र में सुधार की आवश्यकता	डॉ0 बृजेन्द्र सिंह बौद्ध	4
3. भारत की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था–दिशा एवं दशा	डॉ0 अनीता यादव	9
4. लोक जीवन में भ्रष्टाचार का विवेचनात्मक अनुशीलन	डॉ0 नम्रता चौकोटिया	12
भारत में हाशिए का विमर्श		
5. आदिवासी जनजातियों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक आन्दोलन का मूल्यांकन	श्रीमती अंजना दुबे	15
6. श्रवण बाधितों हेतु सम्प्रेषण के विकल्पों के चयन की कसौटियाँ	डॉ० अर्जुन प्रसाद	20
साहित्य के समकालीन सरोकार		
7. सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य में कल्पना तत्व	डॉ0 आशा वर्मा	24
8. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के काव्य में मानव मूल्य	डॉ0 ममता गंगवार	29
9. उदात्त समाज दृष्टा – कहानीकार कौशिक	डॉ0 गीता अस्थाना	33
10. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के वैचारिक दृष्टि	डॉ0 शिवशंकर यादव	36
11. जयशंकर प्रसाद के नाटकों में गुप्तकालीन राजनीतिक जीवन	डॉ0 संदीप कुमार श्रीवास्तव	38
12. अन्त्योदय योजना और आधुनिक हिन्दी कविता	डॉ0 सुमन सिंह	42
13. गीत से प्रबन्ध तक	डॉ. गायत्री शर्मा	45

14.	अज्ञेय के साहित्य में पुरातनता में नवीन संदर्भों की पड़ताल	डॉ0 सियाराम	48
15.	प्रेमचंद के उपन्यास रंगभूमि में वर्णित नारी जीवन	डॉ० संगीता परेशान्ति संगा	54
16.	दामोदरदत्त दीक्षित की कहानियों में अभिव्यक्त बदलते संबंधों की रूपरेखा	डॉ0 श्रीकला	57
17.	स्वानुभूति से सहानुभूति का आन्तरिक द्वन्द्व	आरती	60
18.	ऐतिहासिक उपन्यास 'शिवराज विजय' में राष्ट्रीय चेतना के स्वर	डॉ. पूजा श्रीवास्तव	64
19.	मृच्छकटिक (प्रकरण) में प्रतिपादित रसाभिव्यंजना शैली	डॉ. पुष्पा यादव विद्यालंकार	69
20.	डॉ. रांगेय राघव के उपन्यासों में नारी की सामाजिक विषमताओं का यथार्थ चित्रण	डॉ. गरिमा जैन	75
21.	ओजस्वी कवि दिनकर	डॉ0 अलका द्विवेदी, प्रज्ञा	78
22.	उत्तरशती की काव्य प्रवृत्तियों में भक्ति का वैशिष्ट्य	डॉ0 कविता यादव	82
23.	भिण्ड जिले के कवियों के काव्य में राष्ट्रीय चेतना	कृष्णकांत गोयल	85

आधी दुनिया का स्याह यथार्थ

24.	भारतीय चिन्तन परम्परा : स्मृति ग्रन्थों एवं नीति ग्रन्थों में महिला सशक्तिकरण की अवधारणा	डॉ0 यशमाया राजोरा	90
25.	हाशिये को तोड़ते हुए स्त्रियाँ	डॉ0 जय सिंह	94
26.	महिला उत्पीड़न के सामाजिक–सांस्कृतिक कारक	मनोज कुमार सरोज	97
27.	बेरोजगार शिक्षित महिलाओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन	सद्मा सिदद्की	103
28.	भारतीय समाज के विकास में महिलाओं की भागीदारी	डॉ0 अंजली साहू	106
29.	नई सदी में स्त्री चिन्तन के सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक आयाम	डॉ0 निर्मल सिंह यादव	109

धर्म एवं संस्कृति

30.	उपनिषत्सु आत्मविज्ञानम्	डॉ0 प्रत्यूष वत्सला द्विवेदी	112
31.	राष्ट्रवाद, प्रसाद और स्पृहणीय अवज्ञा की अवधारणा	डॉ0 ललिता यादव	116
32.	बौद्ध धर्म एवं संस्कृति	डॉ0 उत्तरा यादव	121
33.	नवधा भक्ति एवं मोक्ष	डॉ0 ज्योति वर्मा	125
34.	डॉ0 अम्बेडकर के धम्म की अवधारणा	डॉ0 रिपुसूदन सिंह	129

भारत में समावेशन की चुनौतियाँ एवं समाधान

35.	समावेशी भारत, समावेशी शिक्षा और सांकेतिक भाषा	डॉ0 हेमांशु सेन	133
36.	ब्रेल का भविष्य एवम् आधुनिक युग में इसकी उपयोगिता	श्रीमती पूजा	137
37.	भारत में दिव्यांगजन रोजगार–मुद्दे एवं चुनौतियाँ	श्रीमती हेमा सिंह	144

38. संवेदनशीलता के आधार पर समावेशन — डॉ0 सुनीता शर्मा — 148

39. समावेशी शिक्षा की उपादेयता एवं प्रासंगिकता — डॉ0 महेश सिंह यादव — 151

40. समावेशी ग्रामीण विकास में विज्ञान और तकनीक का योगदान — डॉ0 संजय कुमार सिंह — 157

41. समावेशी शिक्षा के स्थायित्वपूर्ण विकास के उपागम — भावना धोनी, महेश कुमार चौधरी — 162

42. भारत में दिव्यांगजनों के लिए बाधारहित परिवेश : आवश्यकता, पहल एवं चुनौतियाँ — राघवेन्द्र सिंह — 167

43. दलित जीवन की जिजीविषा का सहित्य : शब्द झूठ नहीं बोलते — सुश्री प्रतिमा प्रसाद — 173

44. गरीबी, बेरोजगारी और असमानताएँ — भानु प्रकाश पाण्डेय — 180

समकालीन भारत : चिन्तन–चिन्ता के विविध आयाम

45. डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का लोकतंत्र व संविधानवाद पर विचार — डॉ0 गीता यादव, सुरेश कुमार — 184

46. लोकतंत्र का प्रहरी मीडिया को आत्मलोकन की जरूरत — सुरेश कुमार — 189

47. डॉ0 राम मनोहर लोहिया के विचारों की प्रासंगिकता — डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव — 192

48. लघु व कुटीर उद्यमों में महिला सशक्तीकरण एवं रोजगार — डॉ0 रमेश चन्द्र — 199

49. भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र की भूमिका — डॉ0 नरेन्द्र प्रताप सिंह — 201

50. बदलते विश्व की बदलती कूटनीति — मनोज कुमार — 205

51. सामाजिक विभेद का प्रतिषेध और गांधी : एक चिन्तन — डॉ0 विजय कुमार वर्मा — 209

52. युवाओं के लिये सरकारी योजनायें — डॉ. क्षमा त्रिपाठी — 214

53. सूचना संचार के साधन और ग्रामीण समाज — अवधेश सिंह निरंजन — 217

54. भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन की पृष्ठभूमि का मूल्यांकन — डॉ0 किशन यादव — 219

पुस्तक समीक्षा

1. सूरज आज चाँद से हारा — डॉ. कविता यादव — 228

2. आतंकवाद : इतिहास और वर्तमान — डॉ. विजय कुमार वर्मा — 229

3. आतंकवाद और भारतीय अर्थव्यवस्था — डॉ. सियाराम — 230

4. आतंकवाद, मानवाधिकार एवं साम्प्रदायिकता — डॉ0 अनीता यादव — 231

5. आतंकवाद और नक्सलवाद — डॉ. अलका द्विवेदी — 232

6. आतंकवाद और धर्म — डॉ. उत्तरा यादव — 233

7. भारत में आतंकवाद : चुनौतियाँ और समाधान — डॉ. सुरेश एफ कानडे — 234

सम्पादकीय....

वर्तमान समय जनतांत्रिक व्यवस्था का है और इस तन्त्र में प्रत्येक नागरिक को संवैधानिक अधिकार प्राप्त करने का हक है–भारतीय संविधान में जाति, लिंग, धर्म व जन समस्या के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाता है। इसीलिए भारत की स्वतंत्रता के बाद जब भारत में लोकतांत्रिक शासन पद्धति की स्थापना की गई, तो यहाँ के सभी नागरिकों को समान अधिकार प्रदान किये गए। भारत के संविधान निर्माता इस बात से परिचित थे कि उनकी लम्बी दासता का कारण केवल कायरता ही नहीं थी वरन ''अशिक्षा'' भी थी। अतः वे जानते थे कि स्वतन्त्र भारत के उज्जवल भविष्य का निर्माण, शिक्षा के विकास व उत्थान के बिना सम्भव नहीं हो सकता हैं क्योंकि प्रत्येक समाज के विकास का सबसे महत्वपूर्ण आधार 'शिक्षा' ही होती है, इस सत्य का अतीत व वर्तमान दोनों गवाह हैं।

भारत में यद्यपि 1935 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के द्वारा ही स्वतन्त्रता से पूर्व शिक्षा प्रणाली का जन्म हुआ, परन्तु ब्रिटिश द्वारा पोषित इस शिक्षा प्रणाली का स्वरुप मूलतः विदेशी था। जिसका उद्देश्य भारत में मध्य वर्गीय कर्मचारी तैयार करना था जिससे ब्रिटिश शासन को चलाया जा सके। ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली भारतीयों के हित में कदापि नहीं थी। ब्रिटिश शिक्षा अंग्रेजी भाषा एवं अंग्रेजी संस्कृति की पोषक थी। स्वतन्त्रता के दौरान ही राष्ट्रीय नेताओं ने राष्ट्रीय शिक्षा के परिपेक्ष्य में अपने विचार व्यक्त करते हुए अनेक प्रयास किए। राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन के परिणाम स्वरुप अनेक शिक्षण संस्थानों का निर्माण किया गया लेकिन ये आन्दोलन सफलता पूर्वक आगे न बढ़ सके।

शिक्षा मनुष्य की एक ऐसी जिज्ञासा–प्रक्रिया को अपने आपमें समेटे है जो मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन में क्रियाशील रहते हुए उसके सामाजिक क्रिया–कलापों को विशिष्ट अर्थ देकर अपनी उच्च अवस्था की साधना के शिखर पर ले जाती है। शिक्षा जन्म से लेकर मृत्यु तक चलने वाली प्रक्रिया है जो मानव को पशु से एक बुद्धिमान इंसान बनाती है परन्तु आधुनिक युग में शिक्षा का स्वरूप बदल गया है। अब शिक्षा की व्यवस्था राज्य सरकारें एवं केन्द्र सरकार सम्मिलित रूप से कर रही हैं और शिक्षक वेतनभोगी होकर सरकारी आदेशों का पालन करते हुए अपने कर्तव्यों का पालन कहाँ तक कर पाता है? यह शिक्षक स्वयं महसूस कर रहा है।

वर्तमान भारत की बात की जाए तो अनेकोनेक कठिनाई के होते हुए भी भारतीय लोकतन्त्र अपनी क्षमताओं का अच्छा परिचय दे रहा है। भारतीय लोकतन्त्र तब तक जीवित नहीं रह सकता जब तक उसके पास शिक्षित व जागरुक मतदाता और आदर्श नेतृत्व न हो, और यह कार्य केवल शिक्षा के माध्यम से ही सम्भव हैं। हमें सदैव ऐसी शिक्षा व्यवस्था को बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील रहना है, जो हमें डाक्टर, इन्जीनियर, प्रशासक, वैज्ञानिक, प्रोफेसर, शिक्षक आदि प्रदान करने के साथ–साथ चरित्रवान आदर्श नागरिक एवं शासक प्रदान कर सकें। शिक्षा के द्वारा 'व्यक्ति के सर्वांगीण विकास' के उद्देश्य को संविधान के आदर्शों को व्यवहारिक बनाकर ही प्राप्त किया जा सकता है। अतः सभी भारतीयों का कर्तव्य है कि इस कार्य में अपना यथा योग्य सहयोग प्रदान कर राष्ट्रीय कर्तव्य का पालन करें।

जहाँ एक ओर इक्कीसवीं सदी का दूसरा दशक समाप्त होने की ओर अग्रसर है। तो वहीं दूसरी ओर शिक्षा का प्रकाश हर किसी को अपने आगोश में लेने को तत्पर है मगर अज्ञान का अंधकार अपनी जिद्द पर अभी भी अड़ा पड़ा है। सच जो यह है कि सरकार पूरी तरह से जनता को साक्षर बनाने में जुटी है। इसके बावजूद यक्ष प्रश्न यह है कि उच्च शिक्षा के मामले में लड़कियां पढ़ाई छोड़ देती हैं, क्यों?शायद इसलिए कि आज भी लड़कियों की शिक्षा को विवाह से जोड़ा जाता है। आज भी माना जाता है कि लड़के पढ़ी–लिखी लड़कियाँ चाहते हैं। वर्तमान

में लड़कियों एवं महिलाओं के प्रति आज इसी मानसिकता में बदलाव की आवश्यकता है। कहीं भी सरकार की ओर से इस तरह के प्रयास नहीं किए जा रहे जो यह बतलाएँ कि शिक्षा अनिवार्य है क्योंकि इससे व्यक्तित्व निखरता है, आत्मनिर्भरता आती है, सोच बदलती है और एक नई दृष्टि मिलती है। वस्तुतः शिक्षा के महत्व को जानते सब हैं लेकिन शिक्षा प्राप्त करना सबके नसीब में भी नहीं हो पा रहा है। शिक्षा प्राप्ति किसी तपस्या से कम नहीं। विद्या चाहने वाले को सुख त्याग देना चाहिए और सुख चाहने वाले को विद्या नहीं मिलती। अनेक दबावों के चलते सभी बच्चे शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाते। अक्सर पटरियों में बच्चों को प्लास्टिक की बोतलें, कबाड़ आदि चुनते देखा है और उनके कोमल कंधों पर बस्तों की बजाय बोरे रुपी बोझ होता है। फिर शाम को रेलवे पुल के नीचे कमाए रुपयों से इन्हें अज्ञानता के कारण मेहनत से कमाए गए रुपयों से नशा करते देखा जा सकता है। स्कूल के समय बच्चों को सिगरेट पीते, ताश खेलते, गाली–गलौच करते आम तौर पर देखा जा सकता है और यह देख मन में एक विचार उमड़ता है–कि क्या इनके मां–बाप जानते हैं कि इस वक्त उनके बच्चे कहाँ हैं?दरअसल ये बच्चे नहीं जानते कि ये क्या खो रहे हैं। शिक्षा का अर्थ इनकी दृष्टि में अत्यन्त शंकुचित है।

दुर्भाय यह है कि आजादी के बाद विश्वविद्यालय, महाविद्यालय एवं विद्यार्थियों की संख्या तेजी से तो बढ़ी लेकिन यहाँ गुणात्मक शिक्षा में कमी आयी। जहाँ तक उच्च शिक्षा की गुणवत्ता का प्रश्न है तो इसके लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना की गयी। इस संस्था के अनेक प्रयासों के बावजूद ये संस्थाएँ डिग्रियां प्रदान करने के केन्द्र बन गये। छात्रों को यह ज्ञात नहीं होता है कि उन्हें किस क्षेत्र में जाना है। गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए जो अधिकार इसको सौंपा जाना चाहिए वो दिया ही नहीं गया। इसके अतिरिक्त एक दर्जन से अधिक व्यावसायिक परिषद स्थापित किये गये लेकिन इसमें भी समन्वय न होने से कई प्रकार की समस्या उत्पन्न हो जाती है। शिक्षा की गुणवत्ता के सम्बन्ध में हमारे सभ्य नागरिक भी बहुत कम रुचि लेते हैं। एक ओर सरकार ने निजी संस्थाओं को शिक्षा को व्यावसायिक बनाने की खुली छूट दे दी। हमारी संस्थाओं में जो भी शिक्षा दी जाती है वह केवल सैद्धान्तिक है, व्यावहारिक नहीं। आवश्यकता इस बात की है कि आज व्यावहारिक शिक्षा पर बल दिया जाना बेहद जरुरी है।

वर्तमान में शिक्षा संस्थानों के परिसरों में शैक्षिक संस्कृति का विकास करना चाहिए, जो शिक्षकों तथा छात्रों के लिए उपयोगी भी हो। ज्ञान के प्रति रूचि, आलोचनात्मक चिन्तन तथा गहन अध्ययन की प्रवृत्ति का विकास, विशिश्ट क्षेत्रों में ज्ञान प्राप्ति की लालसा, शास्त्रार्थ, सहनशक्ति, ईमानदारी तथा विद्वानों के विचारों का सम्मान करने की परम्परा विकसित की जानी चाहिए। बेहतर हो कि परम्परा और नयी दृष्टि का विशेष ध्यान रखा जाए। आधुनिकता की दौड़ में शाश्वत विचारों व साहित्य से वंचित होना उचित नहीं है, उसी प्रकार घोर पारंपरिकता से समकाल को नहीं पहचाना जा सकता। परंपरा का औचित्यपूर्ण प्रयोग तथा वर्तमान की चेतना का औचित्यपूर्ण स्वीकार्य उच्च शिक्षा को नया संबल दे सकते हैं। ज्ञान के नवीनतम क्षेत्रों के प्रति उत्सुकता तथा आजीविका पक्ष की मजबूती ही उच्च शिक्षा को प्रासंगिक बनाए रख सकते हैं।

वर्तमान शिक्षा की उपयोगिता एवं प्रासंगिकता की बात की जाए तो पाठ्यक्रम में पढ़ाई जाने वाली शिक्षा के ज्ञान का व्यावहारिक उपयोग नगण्य है। वास्तव में ज्ञान अलग होता है और शिक्षा अलग। समाज को जिस प्रकार के योग्य व्यक्ति की आवश्यकता है। वे केवल शिक्षा के द्वारा ही उत्पन्न नहीं किये जा सकते। इसके लिए हमें शोध को वरीयता देनी पड़ेगी, लेकिन भारत में इसकी स्थिति बहुत बुरी है। भारत अपनी राष्ट्रीय आय का बहुत कम प्रतिशत (दस प्रतिशत से भी कम) ही शोध पर खर्च करता है जबकि अमेरिका और जापान भारत का तीन गुना अधिक खर्च करता है। शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के नाम पर पाठ्यक्रम का स्तर बढ़ा दिया जाता है और तमाम ऐसी शिक्षा दी जाती है जिन्हें उस स्तर के शिक्षार्थी समझ नहीं पाते। ऐसी स्थिति में रटने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं होता, यह बात स्कूल से लेकर उच्च शिक्षा तक विद्यमान है। इसलिए छात्र डिग्री पाने के साथ उसमें अच्छे

अंक प्राप्त करने के लिए पुस्तक के बजाय गाइड एवं नकल का सहारा लेते हैं। शिक्षकों के ऊपर दबाव बनाकर भी शिक्षा को नहीं सुधारा जा सकता। शिक्षक कोई कारखाना का मजदूर नहीं है। यदि शिक्षक अंतःप्रेरणा से पढ़ाने के लिए तैयार नहीं है तो शिक्षा में प्रगति संभव नहीं हो सकती। भले ही उसे कक्षा में हाजिर होने के लिए बाध्य किया जा सकता है लेकिन शिक्षा छात्रों तक पहुँचेगी। इसकी कोई गारंटी नहीं दी जा सकती है।

भारत के वैदिक ज्ञान को विश्व ने सदैव स्वीकारा है। ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण शैक्षणिक व्यवस्था का पुनरावलोकन कर उसे 21वीं सदी की आवश्यकता के अनुरूप बनाना होगा ताकि हमारे ये शैक्षणिक संस्थान महज डिग्री बांटने एवं राजनीति का अखाड़ा एवं सांस्कृतिक प्रदूषण के केन्द्र न बन सकें अपितु भारतीय सांस्कृतिक व सामाजिक मूल्यों के अनुरूप उत्कृष्ट व श्रेष्ठ स्तर की मानवीय सम्पदा के निर्माण के मंदिर बन सकें। वेद, ज्ञान विज्ञान के आदि स्रोत हैं और उनकी विश्वसनीयता को नकारा नहीं जा सकता है।

एक अच्छे शोध्कर्ता को सबसे पहले अपने आस–पास एवं वातावरण में हो रहे परिवर्तन को देखना चाहिए, फिर विचार करना चाहिए कि प्रस्तुत समस्या जनसामान्य के लिये कितनी उपयोगी और हानिकारक हो सकती है, व्यापकता एवं उपयोग की दृष्टि से। तभी उसे कलम उठानी चाहिए क्योंकि समस्या पैदा करना एक शोधकर्ता /सृजनशील व्यक्ति का काम नहीं बल्कि समस्या से रूबरू कराना और उसका कैसे समाधन किया जाये जो सम्पूर्ण मानवता के लिये उपयोगी हो। यह सब विषय उसके लेखन में/शोध में उजागर होने चाहिये तभी उस लेखन की उपादेयता एवं उस लेखक को समाज का पथ प्रदर्शक कहा जायेगा।

कृतिका के नियमों के अनुरूप वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं से सम्बन्धित विषयों पर विषय–विशेष पर विशेषांक केन्द्रित अंक निकालना सुनिश्चित है। विषय–विशेष पर केन्द्रित अंक को ध्यान में रखते हुये हम कृतिका का अगला 2019–20 अंक इक्कीसवीं सदी की शिक्षा : दशा एवं दिशा विशेषांक के रूप में केन्द्रित करने जा रहे हैं।

इस विषय पर विस्तृत सूचना पत्रिका के अन्दर के अन्त के कवर पृष्ठ पर अंकित है। कृपया प्रमुख बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुये अपने गम्भीर अध्ययन से सम्बन्धित शोधपरक एवं मौलिक रचना सामग्री भेजकर सहयोग प्रदान करने की कृपा करें।

– सम्पादक मण्डल

धन्यवाद ज्ञापन

कृतिका परिवार की स्थापनाकाल से जुड़े विद्वान सहयोगियों डॉ. भारतेन्दु श्रीवास्तव (कनाडा), डॉ. आनन्द कुमार खरे (डी.वी. कालेज उरई), डॉ. रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी (रामस्वरूप ग्रामोद्योग महाविद्यालय, पुखरायाँ, कानपुर), आदित्य कुमार (डी.वी. कालेज, उरई), डॉ. हेमा देवरानी (बाबू शोभाराम कला महाविद्यालय, अलवर), डॉ. सविता मसीह (शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय सिवनी), डॉ. फतेह बहादुर सिंह (चौधरी चरण सिंह पी. जी. कालेज हेवरा, इटावा), डॉ. शशी त्रिपाठी (ठाकुर रणमत सिंह स्वशासी महाविद्यालय, रीवा), डॉ. शारदा दुबे (शासकीय माता शबरी नवीन कन्या महाविद्यालय, विलासपुर), डॉ. अंजू दुआ जैमिनी (फरीदाबाद), डॉ. हरिनिवास पाण्डेय (जवाहरलाल नेहरू कालेज पासीघाट), डॉ. भावना यादव (शासकीय स्वशासी कन्या महाविद्यालय, सागर), डॉ. अजय सिंह (हंडिया कालेज, हंडिया), डॉ. निर्मल सिंह यादव (ग्वालियर), को हृदय तल की गहराइयों से धन्यवाद एवं आभार व्यक्त करता हूँ कि आप सभी ने एक दशक से भी अधिक समय देकर कृतिका की निरन्तरता में अमूल्य सहयोग दिया। वहीं दूसरी ओर कृतिका परिवार से जुड़ने वाले विद्वान सहयोगियों से आशा है कि वे इसकी गुणवत्ता को बनाये रखने में निरन्तर अपना सहयोग देते रहेंगे।

– प्रधान सम्पादक

स्वतंत्रता के 72 वर्ष : स्वराज्य से सुशासन की ओर

डॉ0 प्रतिमा गंगवार
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष–राजनीति विज्ञान विभाग
ज्वाला देवी विद्या मन्दिर पी.जी. कॉलेज, कानपुर

'आजादी एक जन्म के समान है। जब तक हम पूर्ण स्वतंत्र नहीं हैं, तब तक हम दास हैं' राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के इसी संकल्प के साथ विभिन्न स्वतंत्रता सेनानियों के बलिदान से 15 अगस्त, 1947 को भारत आजाद हुआ। जिस समय हम स्वतंत्र हुए, हमने कुछ सपने बुने थे, आज यह विचारणीय विषय है कि वे कहाँ तक पूरे हुए?वस्तुतः स्वतंत्रता गहरे विवेक और आत्मनिर्भरता की मांग करती है। उम्मीद और आत्मविश्वास से भरा भारत ही निरन्तर प्रगति पथ पर बढ़ सकता है। कोई व्यक्ति समाज एवं देश तभी स्वतंत्र रह सकता है, जब वह निरन्तर सत्य के पथ पर चले और उस पर अमल करते हुए वह स्वयं का स्वामी होता है। विवेकवान होना स्वतंत्रता की पहली प्राथकिता है। इतिहास और वर्तमान का संवाद विवेक देता है। 15 अगस्त, 1947 से 2019 तक भारत ने 72 वर्ष की यात्रा पूरी की है। क्या हम वर्षो की स्वतंत्रता का मूल्यांकन इस आधार पर कर सकते है? जहाँ तक विकास की बात है, 1947 से 2019 के मध्य देश में अभूतपूर्व परिवर्तन आया है। समूचा परिदृश्य ही बदल चुका है। क्या यह वही देश है, जिसमें 1947 में आधी जनसंख्या को गरीबी के कारण एक वक्त की रोटी ही नसीब होती थी?आज ऐसा नहीं है। हमारी जनसंख्या का आंकड़ा 125 करोड़ पार कर चुका है फिर भी हमारे पास खाद्यान्न की कमी नहीं है। 1947 में देश की जी0डी0पी0 महज 2.7 लाख करोड़ रूपये थी। अब यह बढ़कर 2.134 अरब डालर हो गई है। जी0डी0पी0 के आधार पर हम विश्व की छठी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। 1947 में देश में साक्षरता दर महज 16.1 प्रतिशत थी जो 2011 में बढ़कर 74.40 प्रतिशत हो गई है। 1950–51 में प्राथमिक स्कूलों की संख्या 2.10 से तीन गुना बढ़कर 6.40 लाख हो गई है। 14 वर्ष तक के बच्चों की प्राथमिक शिक्षा मुफ्त की गई, मिड–डे मील को अनिवार्य बनाया गया। उस समय देश में मात्र 27 विश्वविद्यालय थे। अब हमारे देश में कुल 789 विश्वविद्यालय हैं। आजादी के समय देश की 80 प्रतिशज जनसंख्या आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर थी। 1961 में हमारे कृषि वैज्ञानिकों ने हरित क्रान्ति लाकर देश में अन्न उत्पादन को बढ़ावा दिया। देश की जी0डी0पी0 में भले ही इस क्षेत्र की हिस्सेदारी घटकर महज 18 प्रतिशत रह गई है लेकिन 58 प्रतिशत जनता कृषि आधारित रोजगारों से आजीविका कमाती है। कृषि उत्पादों के निर्यात से हम 15 शीर्ष देशों में हैं। दुग्ध उत्पादन में भारत दुनिया का शीर्ष देश है। 1947 में स्वतंत्रता मिलने के बाद अंतरिक्ष के क्षेत्र में भी निरन्तर विकास करते हुए 'आर्यभट्ट' जैसे स्वदेशी उपग्रहों, पोलर सेटेलाइट, लॉन्च व्हीकल आदि राकेट तैयार किये, जिनके द्वारा कई संचार उपग्रहों को लॉन्च किया जा चुका है। 5 नवम्बर 2013 को 'मार्स आर्बिटर' मिशन यानि मंगलयान भेजा जो पहली बार में ही सफलतापूर्वक मंगल की कक्षा में प्रवेश कर गया। फरवरी, 2017 में इसरो ने एक बार में 104 उपग्रह भेजकर विश्व में अपना कीर्तिमान स्थापित किया। आज अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर हमारी महत्वपूर्ण स्थिति है। परमाणु शक्ति सम्पन्न शीर्ष 10 देशों में भारत 7वें स्थान पर है। महाशक्तियाँ आज एशिया में शक्ति सन्तुलन के लिए निरन्तर हमें अपने पक्ष में करने को उत्साहित रहती हैं।

इस प्रकार विगत सात दशकों में हमने पर्याप्त प्रगति की है परन्तु ध्यान देने की बात यह है कि देश की विकास यात्रा असीम संकटों का सामना करते हुए यहाँ तक पहुँची है और सुशासन के साथ नव भारत निर्माण के लक्ष्य को प्राप्त करने में विभिन्न चुनौतियां भी हमारे सम्मुख खड़ी है। भावी 15 से 20 वर्षो के दौरान जब भारत विश्व की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था में से एक के रूप में परिवर्तित होने को तैयार है, तब हम गरीबी, निरक्षरता,

शहरी–ग्रामीण खाई, लैंगिक भेदभाव, कृषि संकट और विकास के मोर्चे पर असमानता जैसी चुनौतियों के चलते अपने देश के विकास में अवरोध सहन नहीं कर सकते। आवश्यक है कि हम अपने सार्वजनिक एवं सामाजिक विमर्श की दिशा को नये सिरे से तय करें ताकि भारत द्रुत गति से सुशासन की ओर अग्रसर हो, जिसमें जाति, धर्म या क्षेत्र जैसे मुद्दे गौण हो जायें और प्रत्येक व्यक्ति देश हित को सर्वोपरि रखे। आखिर हम राष्ट्र के निर्धन वर्ग, किसानों, महिलाओं, दस्तकारों और युवाओं के सशक्तीकरण के बिना विकास की गति को कैसे तेज कर सकते हैं?

वस्तुतः सभी वर्गों के आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक उत्थान में शिक्षा सबसे अहं कुंजी है। हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि हमारे बच्चे स्कूली शिक्षा से वंचित न रह जाएं। इसी प्रकार यह भी सुनिश्चित करना होगा कि महिलाएं अशिक्षित न रहें। योग्यता एवं प्रवीणता के विषय में कोई समझौता नहीं होना चाहिए, ताकि भ्रष्टाचार, नियन्त्रित हो। सभी क्षेत्रों के मानकों और नैतिक मूल्यों में आ रही गिरावट को भी हमें रोकना होगा। सामाजिक चेतना का भाव जाग्रत कर सहअस्तित्व और एकजटता के भाव को बढ़ाना होगा। बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ, मुद्रा बैंक, स्किल इंडिया, स्टार्ट अप इंडिया, खेलो इंडियन, जन–धन एवं आधार मोबाइल जैसे सरकारी कार्यक्रमों एवं योजनाओं का उद्देश्य ही वंचित वर्ग के लोगों को सशक्त बनाना है, जिसकी सफलता शासन, प्रशासन और आम जनता की कर्मनिष्ठा तथा दायित्व बोध पर निर्भर है।

निःसन्देह स्वराज्य असाधारण अभिलाषा है। डॉ0 राधाकृष्णन ने 14 अगस्त, 1947 वाले भाषण में कहा था ''सबमें अपना आत्म देखना ओर स्वयं में सबको देखने वाला ही स्वराज्य पाता है'' सहिष्णु प्रवृत्ति का विकास ही स्वराज्य है। सहिष्णुता सामाजिक प्रेम की उपलब्धि है। परस्पर प्रीतिपूर्ण जनसमूह समाज होते है। भूमि और जन मिलकर देश है व भूमि, जन व संस्कृति की परस्पर प्रीति से राष्ट्र बनते है लेकिन आज राजनीतिक दलतंत्र का बड़ा भाग भारत का एकात्म मानव दर्शन नहीं मानता। संसद और विधान मण्डल की शोर–शराबे वाली कार्यवाही दलतंत्र के परस्पर शत्रु भाव की अभिव्यक्ति है। लोकतंत्र की सफलता एवं सुशासन हेतु एक सशक्त विपक्ष होना आवश्यक है जो एक दूसरे के प्रति स्वस्थ मानसिकता एवं लोकतांत्रिक मूल्यों के साथ शासन को संचालित करें। अतः आज एक व्यापक राष्ट्रीय पुनर्जागरण की आवश्यकता है जो हमारे स्वराज्य को सुशासन में बदले। इसमें सुनिश्चित हो कि शासन, प्रशासन एवं प्रत्येक भारतीय मौलिक संस्कृति के साथ समावेशी विकास यात्रा के सहभागी बने जिसका सपना हमारे स्वतंत्रता सेनानियों एवं संविधान निर्माताओं ने देखा था।

संविधान की प्रस्तावना के अनुसार 'हम एक सम्प्रभु, समाजवादी, पंथ निरपेक्ष एवं लोकतांत्रिक गणतंत्र हैं, जो सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, आर्थिक मान्यता एवं उपासना की स्वतंत्रता के साथ ही अवसरों की समानता प्रदान करता है।' ऐसे संविधान के लागू होने के 69 वर्ष बाद भी हम दैनिक जीवन के इन आदर्शों को आत्मसात करने में काफी पीछे है। यद्यपि हम देश को औपनिवेशिक शक्तियों से आजाद कराने में सफल रहे किन्तु अब हमें अपने को उन बुराइयों से मुक्त करना होगा जिनका विकृत चेहरा समय–समय पर विभिन्न क्षेत्रों में सिर उठाता रहता है। जातिवाद, साम्प्रदायिकता, भ्रष्टाचार, धर्मान्धता और असहिष्णुता के विरूद्ध हमें समवेत स्वर में आवाज उठाने की आवश्यकता है। जिससे ऐसे सुशासित नये भारत की ओर अग्रसर हों, जो आर्थिक रूप से सशक्त, सामाजिक समरसता से पूरिपूर्ण और सांस्कृतिक रूप से गतिशील बने।

वास्तव में हमें सार्वजनिक विमर्श को उस दिशा में मोड़ना चाहिये जो हमारे समृद्ध मानव एवं प्राकृतिक संसाधनों के समुचित उपयोग से सतत् विकास की प्रक्रिया को गतिशील करें। विरासत में मिली ज्ञान की अमूल्य धरोहर पर ध्यान देते हुए हमें अपने धर्मग्रन्थों तथा संविधान में वर्णित मूल्यों को अपने जीवन में अपनाना चाहिए। हमारे जीवन को बेहतर बनाने के लिए भारत में क्षमताएँ विद्यमान हैं। बस हमें उन संसाधनों को उचित तरीके से

उपयोग करने का संकल्प लेना होगा। जैसा कि एक तेलगू कवि 'गुरजादा अप्पा राव' ने अपनी कविता में कहा है– 'मेरे मित्र! बहुत बातें हो चुकी हैं, अब कुछ ठोस काम किया जाए।' समय आ गया है कि हम सभी भारतीय सभी बाधाओं को पार कर बुराइयों के पीछे पड़कर उनके विरूद्ध 'भारत छोड़ो आन्दोलन' का आवाहन करें और सुशासन की ओर अग्रसर हों।

हमारे पूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय अटल बिहारी बाजपेई ने उचित ही कहा था–

''बाधाएँ आती हैं, आएँ
घिरें प्रलय की घोर घटाएँ
पॉवों के नीचे अंगारे
सिर पर बरसें यदि ज्वालाएँ
निज हाथों में हँसते–हँसते
आग लगाकर जलना होगा
कदम मिलाकर चलना होगा।''

संदर्भ

1. श्रीनिवासन– "Democratic Government in India"
2. मन्मथनाथ गुप्त– 'क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास'
3. 2011 Census Data
4. अटल बिहारी बाजपेयी – कविता कोश।

❑❑

सामाजिक सुरक्षा तंत्र में सुधार की आवश्यकता

डॉ. बृजेन्द्र सिंह बौद्ध
वरिष्ठ प्रवक्ता – अर्थशास्त्र विभाग
बुन्देखण्ड महाविद्यालय, झाँसी

असमान वितरण प्रणाली के कारण भारतीय किसानों में जो प्रतिरोध पैदा हो रहा है। उसकी जड़ें हमारे लम्बें, दर्दनाक और बार– बार पड़ने वाले अकाल के इतिहास में हैं, स्वतन्त्रता पूर्व, बंगाल का अकाल निर्यात के उस कगार पर पहुंच गया था जहॉ भुखमरी, कुपोषण और बीमारी के कारण लगभग 1.5 से 40 लाख लोग मौत के मुँह में समा गये थे। फसलों की सिंचाई के लिए पूरी तरह मानसून वर्षा ऋतु पर निर्भरता, और पूर्व नीतियों की विफलताओं ने अनाज की कमी को बद से बदतर बना दिया था, स्वतन्त्र भारत ने संकल्प लिया कि एक शक्तिशाली राष्ट्र के निर्माण के लिए, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा में सुधार लाना उसकी प्राथमिकता है। देश की कृषि उत्पादकता को बढ़ावा देना, इस लक्ष्य को हासिल करने का एक तरीका था। कृषि के लिए एक मजबूत वैज्ञानिक बुनियादी ढॉचे का निर्माण करने के उद्देश्य से, देश भर में कृषि अनुसंधान संस्थानों की स्थापना की गई। विदेशी खाद्य आयात पर भारत की निर्भरता को समाप्त करने के एक और प्रयास में, प्रख्यात वैज्ञानिकों, जैसे नोबेल पुरस्कार विजेता डॉ. नॉर्मन बोरलॉग और डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन, राजनेता सी. सुब्रमण्यम और ऐसी ही कई और बड़ी हस्तियों ने मिलकर पौधा प्रजनन कार्यक्रमों और सिंचाई विकास योजनाओं के निर्माण में सहयोग दिया, जिससे भारत में हरित क्रान्ति की शुरूआत हुई, खाद्यान्न के मामले में आखिरकार भारत को आत्मनिर्भरता प्राप्त करने की सम्भावना बनी।[1]

भारत में जैसे ही खाद्य उत्पादन का स्तर बढ़ने लगा, राष्ट्र को एक स्थिर खाद्य आपूर्ति का आश्वासन देते हुए, सरकार ने कृषि की उच्च्य उत्पादकता बनाये रखने के लिए एक के बाद नीतिगत फैसले लिए, कृषि संरक्षण और प्रोत्साहन के उद्देश्य से लिए गये वे फैसले आज तक विद्यमान हैं। बीजों की आपूर्ति रियायतीं दामों पर होती है। बड़ी सिंचाई परियोजनाओं में सरकार ने दिल खोलकर निवेश किया ताकि रियाती दरों पर, पर्याप्त मात्रा में पानी दिया जा सके। सिंचाई का पानी जमीन से खींचने के लिए रियायती दर पर बिजली इस्तेमाल की जाती है। उर्वरकों के निर्माण और उनकी बिक्री पर भारी रियायत भी इस संरक्षणवादी विरासत के ही अंतर्गत आता है, इन खाद्यान्नों के सबसे बड़े खरीदारों में से एक, खुद सरकार ही है और वही इनका खरीद मूल्य निर्धारित करती है, जिससे किसान को यह आश्वासन मिलता है कि उसकी फसलों के लिए एक खरीदार हमेशा तैयार है। कुछ हद तक, यह उपाय प्रभावी सिद्ध हुए अभी हाल ही में, भारत में खराब वर्षा और कम फसल पैदावार की मार के बावजूद, यहॉ की जनता को भुखमरी की खाई में धकेलने की नौबत नही आयी हैं।

अगर हम सरकारी अनुवृत्तियों का लाभ पाने वालों में केवल किसान ही नही है। दुनिया भर में, खाद्य और ईधन जैसी उपयोगी वस्तुओं के लिए सरकारें अनुवृत्तियॉ प्रदान करती है। भारत में राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून पारित किया था, जो देश की कुल आबादी का लगभग दो–तिहाई करीब 82 करोड़ लोगों को सस्ता अनाज उपलब्ध कराने के लिए बनाया गया है।[2] सामाजिक विषमताओं के उन्मूलन और सभी को आवश्यक वस्तुओं की एक सी सुविधा प्रदान करने के प्रयास के तौर पर, इस तरह की व्यवस्था में निहित निष्पक्ष उदारता से इन्कार नही किया जा सकता। लेकिन, जैसा कि नन्दन ने 'इमेजिनिंग इंडिया' में विवचन किया था कि अनुवृत्तियों की वितरण व्यवस्था बुरी तरह खंडित हो चुकी है।

सरकार पैसा पानी की तरह बहाती है, जबकि देश भर में लाखों लोगों को उसमें से लाभ की मात्र कुछ बूंदे

ही मिल पाती है। जबकि गोदामों में पड़ा अनाज सड़ता है, गरीब भूखा रहता है।[3] इसी क्रम में आपको बताना जरूरी समझता हूँ कि भारतीय मूल के नोबेल पुरस्कार विजेता प्रोफेसर अमर्त्य सेन की पुस्तक ''पावर्टी एंड फेमिंसः'' ऐन एस्से ऑन एनटाइटेलमेंट एंड डीप्राइवेशन प्रकाशित हुई। इस पुस्तक के माध्यम से उन्होंने बताया कि अकाल सिर्फ भोजन की कमी से नही बल्कि खाद्यान्नों के वितरण में असमानता के कारण भी होता है। उन्होंने यह तर्क भी दिया कि सन 1943 का 'बंगाल अकाल' अप्रत्याशित शहरी विकास जिसने वस्तुओं की कीमतें बढ़ा दी के कारण हुआ। इसके कारण लाखों ग्रामीण मजदूर भुखमरी का शिकार हुए क्योंकि उनकी मजदूरी और वस्तुओं के कीमतों में भीषण असमानता थी।[4] 2015 आर्थिक सर्वेक्षण के हिस्से के पर किये गये विश्लेषण से पता चला कि कई अनुवृत्तियों के माध्यम से अमीर परिवार अधिकतम लाभान्वित होते है।, जबकि सही मायनों मे जिन गरीबों के लिए वे अनुवृत्तियॉ दी जाती है, उनका संघर्ष जारी रहता है। जिन इरादों ने सामाजिक सुरक्षा जाल के रूप में अनुवृत्तियॉ प्रदान करने के विचार को जन्म दिया था, वे बहुत पहले ही प्रभावहीनता की खाई में खो चुके हैं, भृष्टाचार और ऑखों पर पटटी बांधे दुनिया, का नजरिया पुराने ढर्रे की उन प्रणालियों से जकड़ा हुआ है जिनकी उपयुक्तता पहले ही खत्म हो चुकी है। वर्तमान में सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों की पहुँच और सीमा बढ़ाने की आवश्यकता है क्योकि भारत आर्थिक विषमता बहुत अधिक तीव्र गति से बढ़ रही है। ऐसे में अनुवृत्ति और लाभ को सरकार द्वारा कम करना या पूरी तरह वापिस समेट लेना एक कठोर कदम है। खंडित वितरण प्रणाली, जो इतने सारे कल्याणकारी कार्यक्रमों की दुखती रग बन गयी है, उसे ठीक करने का प्रयास करने की जरूरत है। अनुवृत्तियों अर्थव्यवस्था का संचालन, भ्रष्ट नियमों के एक समूह के तहत होता है जिसका सम्बन्ध खुले बाजार की कठोर और अस्थाई दुनिया से बहुत कम है। खुले बाजार में, किसी विशेष वस्तु की कमी, उसके मूल्य में वृद्धि का संकेत है, और आमतौर पर बाजार उसी के अनुरूप प्रतिक्रिया करता है। प्याज की कीमतों में वृद्धि का सामना कर रही एक गृहिणी, जब तक कीमतें स्थिर नहीं हो जाती तब तक सम्भवतः कम प्याज खरीदना पसन्द करेगी या फिर प्याज खरीदना ही नही। यदि उर्वरक महंगा होगा, तो किसान उसके उपयोग में किफायत बरतेंगे। यहां पर हम सब लोगों को भारतीय सामाजिक व्यवस्था का भी ध्यान रखना होगा। भारत में सबसे ज्यादा आय में असमानता है। जब आम आदमी की आय कम है तो मांग अपने आप कम हो जायेगी। ऐसी स्थिति में सरकार को यह प्रयास करना जरूरी हो जाता है कि कल्याणकारी योजनाओं का संचालन करे, जिससे आम आदमी की आय में वृद्धि हो सकें। भारत में मानव उपभोग के लिए सुरक्षित और स्वस्थ भोजन की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न खाद्य उत्पादों के मानकों को निर्धारित करने के लिए भारतीय खाद्य सुरक्षा और मानक प्राधिकरण की स्थापना की गई है। एफ0एस0एस0ए0 आई, खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम 2006 के तहत स्थापित किया गया था।[5]

भारत करीब सवा दो दशकों से उन्हीं प्रतिमानों को स्थापित करने की कोशिश में है जो पूंजीवादी दुनिया की देन है। इस दौर में भारत ने अधिक विकास दर और आयतन (Growth and volume) के क्षेत्र में खासी प्रगति की है लेकिन वह सामाजिक पूंजी के मामलें में दुनिया के 142 देशों की सूची में 138 वें स्थान (Prosperity Index 2012) पर पहुँच गया, जहां बुडी, जॉर्जिया, बेनिन और टोगो जैसे देश खड़े है। अब पश्चिम के विचारक ही यह आरोप लगा रहे है। कि (Market Fundamentalism) ने सामाजिक पूंजी को ग्रहण लगाया। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि बाजार नियामक की हैसियत मे आ गया। अध्ययन बताते है कि वर्ष 2008 के इकोनॉमिक मेल्टडान से पहले तक बाजार ने उस स्थिति को प्राप्त कर लिया था जहां सामान्य नियम और आस्था के बीच की विभाजक रेखा समाप्त हो जाती है क्योंकि Market Economy us Social market का स्थान ले लिया थां परिणाम यह हुआ कि 'समृद्धता की कुँजी आर्थिक पूंजी में निवेश नहीं, सामाजिक पूँजी में निवेश करने में है' के सिद्धान्त को दरकिनार कर दिया गया है। बजारवाद के छतरी के नीचे लाभ के सिद्धान्त ने इस तथ्य को भी अनदेखा किया कि सामाजिक पूंजी सामाजिक ताकत और एकता का प्रतिबिम्ब होती है और जिसके टूटते ही बाजारवाद का सपना भी समाप्त

हो सकता है। यही कारण है कि पूरी दुनिया सामाजिक सांस्कृतिक हलचलों से गुजरती रही जिसका प्रभाव भारत में दिखा। रिपोर्ट के मुताबिक भारत में अमीरों की संख्या अगले पाँच वर्ष में 53 प्रतिशत बढ़कर 2 लाख 42 हजार हो जाएगी।[6] यह एक भारत होगा लेकिन वहीं एक तरफ दूसरा भारत भी है जहां गरीबी, भुखमरी, अकाल, अशिक्षा बेरोजगारी आदि है। अमीर भारत लगातार सामाजिक पूंजी के निर्माण से विमुख हो रहा है। समृद्धि सूचकांक 2012 के एक उप–सूचकांक के अनुसार सामाजिक दायित्व का निर्वहन करने वाले लोगों को गुजरात में 51 प्रतिशत है जबकि उत्तराखण्ड में 71 प्रतिशत है। पंजाब और मध्य प्रदेश टोगों और बेनिन के बाद Social Capital Sub Index में सबसे नीचे है। कमोवेश यही स्थिति राष्ट्रीय स्तर पर भी है। तो क्या अब यह उम्मीद करनी चाहिए कि भारत सरकार Market Fundamentalism के दुष्परिणामों को देखते हुए आर्थिक पूंजी की बजाय सामाजिक पूंजी में निवेश को वरीयता देगी? वर्तमान में ऐसा होता नजर नही आ रहा है। इसके भारत में गम्भीर परिणाम आयेगें। जबकि दूसरी ओर देखें तो आज भारत वैश्विक शक्ति बनने की दावेदारी को दुनिया गम्भीरता से ले रही है। मानव संसाधन, प्राकृतिक संसाधन, बाजार का आयतन, अर्थव्यवस्था का आकार और पोटैंशियल भारत के पक्ष को सबल बनाते है लेकिन लैंगिक अंतराल यह व्यक्त करता है कि भारत में लैंगिकता सामाजिक हैसियत आर्थिक भागीदारी एवं सहकारिता के लिहाज से असंतुलन में है। इससे एक तरफ भारत की आधी आबादी अपने कौशल विकास ही नही बल्कि आत्मविश्वास की दृष्टि से भी काफी पीछे है। स्वाभाविक है कि भारतीय समाज का यह नाभिकीय भाग यदि अपनी क्षमता, कुशलता और योग्यता के प्रदर्शन का अवसर ही नही प्राप्त कर पा रहा है तो वह न केवल अवसाद की ओर बढ़ेगा बल्कि इससे पारिवारिक व सामाजिक संयोजन प्रभावित होगा और नए प्रकार के टकरावों का उदय होगा, जिससे भारत में सामाजिक व मानवीय पूंजी पतन की ओर जा सकती है। इसलिए इस अंतराल को पाटना सरकार की जिम्मेदारी बनती है।

भारत में वैश्विक भुखमरी सूचकांक 2016 के अध्ययन से पता चलता है कि भारत 97 वां स्थान पर है, जबकि गत वर्ष 2015 में 80 वां स्थान था। गत वर्ष की तरह इस वर्ष भी भारत की स्थिति पाकिस्तान के 197 वां स्थान से बेहतर है। जबकि नेपाल 72 वां, श्रीलंका 84 वां बांग्लादेश 90 वां स्थान से खराब है। बच्चे किसी भी देश का भविश्य होते, भूख की खोह से निकलकर किसी तरह से बड़ा और परिपक्व होगा तो उस स्थिति में वह देश को अपेक्षित प्रतिफल देने में असमर्थ साबित होगा। स्वाभाविक है कि उस स्थिति में देश क्षमतावान नही बन पाएगा। भारत सरकार को इस दिशा में ठोस कदम उठाने की जरूरत है। भारत की यह भयावह स्थिति को देखते हुए सरकार को रणनीतिक ढंग से प्रयास करने या मरम्मत करने की आवश्यकता है।

इसी क्रम में ट्रांपेरेंसी इण्टरनेशनल द्वारा जारी भ्रष्टाचार बोध सूचकांक 2014 में भारत का स्कोर 38 रहा जबकि वर्ष 2013 मे यह 36 था। यह स्थिति दर्शाती है कि भारत में भृष्टाचार और रिश्वतखोरी में कमी आई है। ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल 2015 की भ्रष्टाचार बोध सूचकांक के अनुसार 168 देशों में भारत 76 वें पायदान पर है। पिछले साल भारत इस सूची में 85 वें स्थान पर था। इस दृष्टि से भारत की स्थिति सुधरी है। लेकिन उसके प्वाइंट में कोई बदलाव नही आया हैं और यह 2014 की ही तरह 38 है। इसलिए भारत को अभी गम्भीर और रणनीतिक प्रयास करने की जरूरत है जिससे भ्रष्टाचार को रोका जा सकें।

वर्तमान में अजीब सा दौर चल रहा है, अफवाहें उड़ती है, भीड़ उन पर सवार हो जाती है और कुछ अनर्थ करके गायब हो जाती है। किसी का घर परिवार हमेशा के लिए उजड़ जाता है और छोड़ जाता है एक अनुत्तरित प्रश्न हमेशा के लिए, एक घाव, एक गांठ जो सौ वर्षो तक रिसती रहती है नासूर की तरह एक कड़वा जहर सा फैल जाता है दो समुदायों के बीच। अफवाह (Rumors) एक माध्यम है जो व्यक्तियों के एक समूह को प्रभावित करता है और लोग उस पर अलग–अलग तरीके से प्रतिक्रिया व्यक्त करते है। ''डब्लू0पी0 स्कॉट में डिक्शनरी आफ सोशियोलॉजी में अफवाह को परिभाषित करते हुए लिखा है– गलत और झूठी सूचनाऐं जो मौखिक रूप से एक

व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुॅंचती है और लोग उस पर तीव्र रूचि या प्रतिक्रिया व्यक्त करते है भावनात्मक आवेश में बहकर झूठी सूचनाओं के प्रभाव में लोग अक्सर गलत निर्णय ले लेते है।[7] भीड़ व्यवहार के कारण पूरे देश में अनेक ऐसी घटनाऐं हुई है जो अतार्किकतापूर्ण भीड़ व्यवहार की श्रेणी में आती है। हमारे दैनिक जीवन में भी ऐसी छोटी–मोटी घटनाऐं घटती है। जिससे आम–आदमी को सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता एवं मरम्मत की एहसास करा देती है। वर्तमान में सामाजिक सुरक्षा की मरम्मत की अति आवश्यकता है। वर्तमान में आम –आदमी के दिमाग में यह अंदेशा रहता है कहाँ, कैसी कब घटना घटित हो जाय। जबकि हम अपने इतिहास की बात करें, तो पाते हैं कि हमारे भारतीय सामाजिक संस्थाओं में सहिष्णुता की भावना निरन्तर बनी रही है। सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में तो भारतीयों को अनेक विपत्तियों और अत्याचारों का सामना करना पड़ रहा है। ऐसे संघर्ष में उन्होंने धैर्य और साहस का परिचय दिया। वस्तुतः भारतीय सामाजिक आदर्श का आधार था धर्म, जो न दूसरे को आघात पहुँचाता था और न किसी का विरोध करता था। इसी विचार के अनुसार मनुष्य अपने जीवन में व्यवहार करता था। वर्तमान में लोगों ने धर्म को अपने हिसाब से परिभाषित करने लगे, अपने हित में, अपने स्वार्थ में, इसी कारण यह वर्तमान में, हमें देखने को मिल रहा है जबकि सद्भावना और सहिष्णुता प्रत्येक व्यक्ति का आदर्श था। मन, वचन और कर्म से किसी प्रकार से किसी को कष्ट न देना तथा सभी के साथ यथार्थ और प्रिय संभाषण करना, अपना अपकार करने वाले पर भी क्रोध न करना, कर्म में कर्तव्य पालन के अभिमान का त्याग करना। अतःकरण की उपरिमता अर्थात चित्त की चंचलता का अभाव, किसी की निंदा न करना, सब भूत प्राणियों पर दया करना, इंद्रियों का विषयों के साथ संयोग होने पर आसक्ति न करना आदि गुणात्मक व्यवहार थे। गुणात्मक व्यवहार पर संत महात्माओं एवं गुरूओं व तथागत भगवान बुद्ध, भगवान महावीर स्वामी, श्रमण परम्परा, आदि से भिन्न यहॉ तो शासकों ने भी ऐसे संदेश प्रसारित किए उदाहरण के तौर पर सम्राट अशोक को लिया जा सकता है जिसने अपने धम्म की व्याख्या कुछ इस प्रकार की थी। ''अपासिनवे बहुकयोन दया दाने सचे सोचये मादवे सादवे च् अर्थात पापहीनता, बहुकल्याण, दया, दान, सुचिता और शुता, मृदुता और साधुता।''[8]

वर्तमान मे महान सम्राट अशोक के विचारों के आधार मान कर चलने का प्रयास करे तो शायद सामाजिक सुरक्षा की मरम्मत में मदद मिलेगी।

सामाजिक सुरक्षा की द्रष्टि से हम आपको डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर का भाषण दिनांक 25 नवम्बर 1949 को संविधान सभा में दिया था। जो आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ– संविधान सफल होगा या संविधान फेल हो जाएगा– इस सवाल पर बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर जी कहते है कि ''यह इस बात पर निर्भर करेगा कि यह कैसे लोगों के हाथ में रहेगा। संविधान कोई भी अच्छा या बुरा नहीं होता। बुरे से बुरे लोग होगें, लेकिन यदि अच्छे से अच्छा संविधान होगा, तो उसको भी वे असफल कर देंगें। इसलिए संसद, कार्यपालिका और न्यायपालिका तीनों मिलकर अच्छे लोगों का सहारा लेकर, संविधान को सफल करेंगे, यह उन्हीं पर निर्भर करेगा। व्यक्ति अच्छे होने चाहिए।''[9] आज अच्छे लोगों की जरूरत है शासन–प्रशासन में। तभी सामाजिक सुरक्षा तंत्र की मरम्मत हो सकती है।

निष्कर्ष – आज भारत के पास पर्याप्त मानव संसाधन, प्राकृतिक संसाधन और आर्थिक ताकत हैं साथ ही भारत की गिनती विश्व गुरू के रूप में है। सामाजिक सुरक्षा की मरम्मत हेतु हमें सिर्फ नागरिको की सुविधा, पारदर्शिता, भ्रष्टाचार मुक्त शासन एक प्रशासन आदि पर वर्तमान सरकारो को जोर देने की जरूरत है। जबकि भारत में सामाजिक सुरक्षा की कई योजनाऐं संचालित जैसे पी.डी.एस., नरेगा, जननी सुरक्षा योजना, सर्व शिक्षा अभियान, आदि। नागरिको को सुविधा हेतु अनुवृत्ति दी गई जैसे– खाद, रसोई गैस, जल, मिटटी का तेल, खाद्यान्न बिजली आदि। इसके अतिरिक्त अन्य जनहित में योजनाऐं भी संचालित है। सिर्फ सरकार का ध्यान भ्रष्टाचार मुक्त, पारदर्शिता के साथ हो, तो आने वाला भारत का समय अन्धकार से उज्जवल की ओर हो सकता है। जिसमें आम

आदमी से लेकर मध्यम वर्ग, पूँजीपति वर्ग को मिलजुलकर, भाईचारा बनाकर कार्य करने की आवश्यकता है तभी सामाजिक सुरक्षा तंत्र की मरम्मत हो सकती है अन्यथा भारत की स्थिति भयावह हो सकती है।

संदर्भ

1. Green Revolution. Wikipedia http://en.wikipedia.org/wiki/greenrevolution
2. रीबूटिंग इंडिया लेखक नन्दन निलेकणी और विरल शाह, राजपाल एण्ड सन्स कश्मीरी गेट, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 80
3. Ministry of law and justice http//indiacode.nic.in/ acts.in pdf/202013.pdf
4. Amartya Sen Biography in hindi (www.theguardian.com)
5. अर्थशास्त्र – Cengage learning India Pvt. Ltd. Patparganj Delhi Page No (243)
6. भारत कल, आज और कल लेखक रहीस सिंह, Mc Graw Hill Education (India) Private Limited, Chennai,Tamil Nadu India. Page No 1.9
7. दलित दस्तक पत्रिका (ISSN : 2347–835) सितंबर 2017, पृष्ठ संख्या 15
8. भारतीय कला एवं संस्कृति लेखक रहीस सिंह, Mc Graw Hill Education Private Limited New Delhi भाग–02 संस्कृति एवं समाज पृष्ठ संख्या 2.3
9. पांचजन्य पत्रिका अप्रैल – 2015, पृष्ठ संख्या – 13

❑❑

3

भारत की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था–दिशा एवं दशा

डॉ0 अनीता यादव
सहा0 प्रोफेसर–शिक्षा शास्त्र
महराज सिंह स्मृति महाविद्यालय इटैली, औरैया

वर्तमान दौर में परीक्षा प्रणाली को एक ऐसी प्रतियोगिता में बदल दिया गया है जिसका एकमात्र लक्ष्य केवल सफलता हासिल करना है और उस सफलता के लिए बच्चों को अंक–केंद्रित बना दिया गया है। परिणामस्वरूप 'मैट्रिक सोसाइटी' (आंकड़ों का समाज) की अवधारणा उभर कर आई है। मैट्रिक सोसाइटी वह सामाजिक व्यवस्था है जिसमें सामाजिक इकाइयों का जीवन एवं समाज का समूचा तंत्र मापन की व्यवस्थाओं का भाग बन गया है। विभिन्न समूहों मे ग्रेड के आधार पर तुलना एक सामान्य घटना हो गई है। उदाहरण के लिए विद्यार्थियों की उपलब्धियों के मूल्यांकन, विश्वविद्यालयों की स्टर रेटिंग इत्यादि। यह कहा जा सकता है कि आधुनिक विश्व की कार्य प्रणाली का एक बड़ा भाग आंकड़ों (अंकों) पर केंद्रित है। ऐसा लगता है जैसे मनुश्य की सभी क्रियाओं को डिजिटल क्रांति ने अपने अधीनस्थ कर लिया है। आंकड़ों के इस विश्व में न तो कोई भावना रह गई है, न कोई सामूहिकता, न एक दूसरे की सहायता करने की भावना, क्योंकि प्रतियोगिता में सहायता करने की भावना समाप्त हो जाती है और ईर्श्या शुरू हो जाती है। परीक्षा प्रणाली में ज्यादा अंक लाने की प्रतियोगिता विद्यार्थियों में मित्रता की भावना को समाप्त कर बदले की भावना उत्पन्न कर देती है। इस कारण वे अन्य सहपाठियों के साथ अपना ज्ञान साझा नहीं करते, क्योंकि ऐसा करने से उन्हें दूसरे के ज्यादा अंक आने का भय सताता है। यह प्रवृत्ति शैक्षणिक चेतना को अनेक अवसरों पर न केवल प्रतिबंधित करती है, बल्कि उसे खत्म भी कर देती है। साथ ही, परीक्षा में अधिक अंक लाने की प्रवृत्ति ने कोचिंग केंद्रों को भी बढ़ावा दिया है। पहले स्कूल–कॉलेज, फिर कोंचिग और फिर अपनी पढ़ाई (सेल्फ स्टडी)। विद्यार्थी सारा दिन इतना व्यस्त हो गया हैं कि शिक्षा जो उसे समाज से बांधने का काम करती थी, आज उसे समाज से काट दिया है।

बाजार के प्रभाव से प्रतियोगिता के इस दौर में सबको न केवल सौ फीसद अंक चाहिए बल्कि यह भी कि मेरे ही सर्वाधिक अंक आने चाहिए किसी और के नहीं। अंकों के आधार पर बच्चों की योग्यता, क्षमता और कौशल को आंका जाने लगा है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि कला, साहित्य, संस्कृति, संगीत में रंगने वाला विद्यार्थी इन सबसे दूर हो जाएगा और उसका जीवन वस्तु अथवा उत्पाद (कमोडिटी) में बदल जाएगा और उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य होगा बाजार में नौकरी हासिल करना। इसमें कोई दो राय नहीं कि पूरी की पूरी पीढ़ी तबाही के गर्त में जा रही है। इसलिए बहुत जरूरी है कि हमारी शिक्षा के उद्देश्य क्या हैं और क्या होने चाहिए, इस पर व्यापक बहस होनी चाहिए। आज अंको की होड़ में बच्चों की सृजनशीलता खत्म हो रही है। बच्चा सिर्फ पाठ्यपुस्तक की सामग्री तक सीमित कर दिया गया है। वह वही उत्तर देता है जो शिक्षक चाहते है। बच्चा क्या बनना चाहता है, इस पर परिवार ध्यान नहीं दे रहे है। वे अपने बच्चों को सिर्फ ऐसे पेशें में डालना चाहते है जिससे अधिक से अधिक आय हो। आज जिस तरह से रोजगार के अवसर और संभावनाएं कम होती जा रही हैं, ऐसे में परीक्षा प्रणाली बड़ा खतरा बनकर उभरेगी।

हाल में प्राथमिक शिक्षा पर जारी एक रिपोर्ट में कुछ चौंकाने वाले तथ्य सामने आए। पता चला कि सत्तावन फीसद बच्चे साधारण भाग नहीं कर पाते, चालीस फीसद बच्चे अंग्रेजी के वाक्य नहीं पढ़ पाते, पच्चीस फीसद बच्चे बिना रूके अपनी भाषा नहीं पढ़ सकते, छिहत्तर फीसद छात्र पैसों की गिनती नहीं कर सकते, अट्ठावन फीसद अपने राज्य का नक्शा नहीं जानते, चौदह फीसद को देश के नक्शे की जानकारी नही है । ऐसे में सवाल उठता है कि आखिर शिक्षक स्कूलों में कर क्या रहे है ? अगर छात्र पढ़ नहीं पा रहे तो भाषा कैसे सीख सकते है? गणित

नहीं जानते तो उनमें तार्किक क्षमता कैसे विकसित होगी? अगर प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा का यह हाल है तो फिर उच्च शिक्षा के अंदर जो घटित हो रहा है तो उसे अप्रत्याशित नहीं कहा जा सकता। हिंदी भाशी क्षेत्र से जो बच्चे आ रहें हैं न उनके पास भाषा है न तर्कसंगतता है। 'चूँकि और इसलिए' के बीच का संबंध गणित सिखाती है और जब इन्हें गणित ही नहीं आता तो तर्कसंगतता कैसे सीखेंगे? इसलिए संभवतः बच्चे धार्मिक अथवा सांप्रदायिक ज्यादा बनते जा रहे हैं।

केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय की ओर से राज्यों की स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए जारी पहली परफॉरमेंस ग्रेडिंग इंडेक्स 2017–18 रेखांकित करती है कि शिक्षा की पहुंच के मामले मे देश लक्ष्य से कोसों दूर है। रिपोर्ट में देश के सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश की परफॉरमेंस ग्रेडिंग इंडेक्स देश के अन्य राज्यों मसलन, हिमाचल प्रदेश, चंडीगढ़, पंजाब हरियाणा और दिल्ली से नीचे हैं। इण्डेक्स में , गुजरात, चंडीगढ़ और केरल के स्कूलों का प्रदर्शन सबसे अच्छा है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने सत्तर बिंदुओं के पैमाने पर आधारित परफॉरमेंस ग्रेडिंग इंडेक्स यानी पीजीआई रिपोर्ट को 2018 से तैयार करने की शुरूआत की है। मंत्रालय ने इन बिंदुओं के आधार पर सभी राज्यों से ऑनलाइन जानकारी मांगी थी और उनकी सूचना पर रिपोर्ट तैयार की गई। गौरतलब है कि राज्यों की शिक्षा व्यवस्था के प्रदर्शन को छह अंकों में विभाजित किया गया था, जो कि 1000 से 851 मूल्यांकन पर आधारित था। इसमें कोई राज्य शामिल नहीं हो सका है, क्योंकि उनकी परफारमेंस 1000–851 वेटेज के मानकों को पूरा नहीं करती। चंडीगढ़, गुजरात और केरल को 801–851 के वेटेज या ग्रेड एक की श्रेणी मिली है। हरियाणा और पंजाब को 751–800 वेटेज के साथ ग्रेड दो, हिमाचल और उत्तराखंड को ग्रेड तीन संग 701–750 वेटेज और जम्मू–कश्मीर तथा उत्तर प्रदेश को ग्रेड पांच के साथ 601–650 को वेटेज मिला है। ऐसे में इन आंकड़ों से समझना कठिन नहीं है कि देश में शिक्षा की हालत कितनी बदतर है।

संयुक्त राष्ट्र की एजुकेशनल फॉर ऑल ग्लोबल मॉनिटरिंग 2013–14 की एक रिपोर्ट में कहा गया था कि भारत में निरक्षर युवाओं की तादाद तकरीबन अठाईस करोड़ सत्तर लाख है। यह आंकड़ा दुनिया भर के निरक्षर युवाओं की कुल तादाद का तकरीबन सैंतीस फीसद है। हालांकि रिपोर्ट में शिक्षा की बदहाली के कई कारण गिनाए गए, लेकिन शिक्षा पर होने वाले खर्च में भारी असमानता को सर्वाधिक जिम्मेदार माना गया। मसलन, केरल में प्रति व्यक्ति शिक्षा पर खर्च लगभग बयालीस हजार रूपए है, वहीं बिहार समेत देश के अन्य राज्यों में छह हजार या इससे भी कम है। रिपोर्ट में कहा गया कि देश के सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश में गरीबी के कारण सत्तर फीसद और मध्यप्रदेश में पचासी फीसद गरीब बच्चे पांचवी तक ही शिक्षा ग्रहण कर पाते हैं। चिंताजनक तथ्य यह भी है कि देश में शिक्षा का अधिकार कानून तथा सर्व शिक्षा अभियान जैसी योजनाओं के बावजूद लाखों बच्चे स्कूली शिक्षा की परिधि से बाहर हैं। 2014 में कराए गए एक स्वतंत्र सर्वेक्षण के अनुसार छह से चौदह साल के आयु वर्ग में स्कूल न जाने वाले बच्चों की संख्या 60ण्64 लाख थी। गत वर्श संयुक्त राश्ट्र की एक रिपोर्ट से भी उद्घाटित हुआ कि भारत 2030 तक सबको शिक्षा देने के लक्ष्य को हासिल नहीं कर पाएगा।

आज देश में छह करोड़ ऐसे बच्चे है, जिन्हें शिक्षा सुविधाएं हासिल नहीं है। प्राथमिक स्तर पर शिक्षा से वंचित बच्चों की संख्या 1ण्11 करोड़ है, जो दुनिया में सर्वाधिक है। इसी तरह उच्चतर माध्यमिक शिक्षा से वंचित विद्यार्थियों की तादाद 4ण्68 करोड़ है यह स्थिति तब है, जब देश में शिक्षा का अधिकार कानून लागू है और सर्व शिक्षा अभियान पर अरबों रूपया खर्च किया जा रहा है। गत वर्श पहले प्रकाशित मानव संसाधन मंत्रालय की एक रिपोर्ट के मुताबिक सोलह फीसद बच्चे बीच में ही प्राथमिक शिक्षा और बत्तीस फीसद बच्चे जूनियर हाईस्कूल के बाद पढ़ाई छोड़ देते हैं। संयुक्त राश्ट्र की संस्था यूनिसेफ की रिपोर्ट में कहा गया है कि साठ फीसद छात्र तीसरी कक्षा उत्तीर्ण करने से पहले ही स्कूल छोड़ देते हैं।

तकनीकी शिक्षण संस्थानों का हाल भी बेहद चिंताजनक है। हर वर्श साठ हजार भारतीय छात्र इंजीनियरिंग पढ़ने के लिए विदेशी शिक्षण संस्थानों का रूख कर रहे हैं। एक वक्त था, जब इंजीनियर बनने का सपना देखने वाला हर छात्र यह चाहता था कि उसे इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी यानी आइआइटी में दाखिला मिले।

लेकिन मौजूदा परिस्थितियों में युवाओं की सोच में बदलाव आया है और उनकी नजर में अब आइआइटी को लेकर पहले जैसा आकर्शण नहीं है। इसके लिए संस्थानों में शिक्षकों का अभाव और संसाधनों की भारी कमी मुख्य रूप से जिम्मेदार है। पिछले दिनों उद्योग संगठन एसोचैम के एक अध्ययन में कहा गया कि शिक्षा में सुधार की रफ्तार अगर ऐसी ही रही, तो भारत को विकसित देशों की तरह अपनी शिक्षा के स्तर को शीर्श पर ले जाने में एक सौ छब्बीस साल का समय लगेगा। उसने अपने सुझाव में यह भी कहा है कि शिक्षा प्रणाली में बड़े बदलाव की जरूरत है और शिक्षा बजट जीडीपी का छह फीसद किया जाना आवश्यक है। अगर बजट बढ़ता है, तो भारत दुनिया का सबसे बड़ी प्रतिभा का स्रोत वाला देश बनेगा।

यह देखने में आया है कि अधिकांश शिक्षकों में पढ़ने की आदत समाप्त होती जा रही है। दूसरी ओर ग्रामीण या कस्बाई इलाकों में अधिकांश छात्रों के अभिभावक भी पढ़े लिखे नहीं है या केवल साक्षर हैं। ऐसे में वो बच्चों को नहीं पढ़ा सकते इसलिए शिक्षक की भूमिका और भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाती है। सवाल उठता है कि क्या शिक्षक इस लायक है शिक्षक की गुणवत्ता को परखने का कोई आधार है। शिक्षकों को अपने विशय का कितना ज्ञान है?अकादमिक परिशदों या पेशवर निकायों को इस प्रकार से मूल्यांकन करने चाहिए, तभी गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा मूर्त रूप से ले पाएंगी। शिक्षकों के साथ कई बार अनौपचारिक बातचीत के दौरान यह सामने आया कि वे शिक्षक इस लिए बने क्योंकि उनका किसी और प्रतियोगी परीक्षा में चयन नहीं हुआ यानि शिक्षक का पेशा उन्होंने अपनी इच्छा से नहीं, बल्कि मजबूरी में चुना। यह तर्क न केवल शिक्षा विरोधी है, बल्कि विकास विरोधी भी है। इस प्रकार का तर्क तो यथास्थिति वादी भी नहीं देते। ऐसे शिक्षक अपने पेशे के साथ या विद्यार्थियों के साथ कितना न्याय कर पाएगें, यह चिंतन का विशय है। वे अपने वेतन प्रमोशन के आलाव इस पेशें से कोई अपेक्षा नहीं रखते।

सवाल यह उठता है कि परीक्षा के विस्तार लेते बाजार में दोशी कौन है? विद्यार्थी या शिक्षक, या फिर दोनो? शिक्षकों की जो वास्तविक भूमिका है उनको शिक्षकों ने समाप्त कर दिया। उनका एक मात्र लक्ष्य अभी यह रह गया है कि केवल पाठ्यक्रम पूरा किया जाए और उसमें भी केवल उतना ही पढ़ाया जाए कि जो परीक्षा की दृश्टि उपयोगी है? पाठ्यक्रम भी अब उपयोगितावाद से जुड़ गया है। शिक्षक एक उपयोगितावादी सेवा प्रदाता और विद्यार्थी उपयोगितावादी उपभोक्ता में तब्दील हो चुका है। अब विद्यार्थी को केवल वही सामग्री चाहिए जिससे वह अधिकाधिक अंक प्राप्त कर सके। परीक्षा में सफलता का आश्वासन देने वाली पुस्तकें बाजार में उपलब्ध है यह एक किस्म का बाजार है। जहाँ शिक्षक इन पाठ्य पुस्तकों के प्रकाशन के लिए पूंजी संचयन की धुरी है। आज के दौर में ऐसे विशेशज्ञ शिक्षकों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। आज का शिक्षक समाज से कट गया है। वह भूल गया है कि वह एक विद्यार्थी भी है। जिन पुस्तकों को वह पढ़ता है उनसे, जिन विद्यार्थियों को पढ़ाता है उनसे और जब समाज के विभिन्न हिस्सों में सक्रिय भूमिका निभाता है। उनसे सिखता है अर्थात् शिक्षक पुस्तकों, विद्यार्थियों और समाज इन तीन स्रोतो से सिखाता है तब जाकर वह एक मजबूत राश्ट्र और समाज के निर्माता की भूमिका निभाता है। शिक्षक अपने ज्ञान और सूचना का प्रयोग करते हुए ही विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का निर्माण करता है। शिक्षक की यही भूमिका आज घुम हो गयी है आज की पीढ़ी विचारहीन और नकलची पीढ़ी है। उसके पास जुमले है लेकिन विचारा धारात्मक चिंतन नहीं है। चिंतन–प्रधान भाशा का अभाव है। किसी ने क्या खूब कहा है– शकिताब लेकर रोज मैं ढूढता हूँ जवाब, जिन्दगी है कि रोज सेलेब्स से बाहर का ही पूछती है।श समय रहते शिक्षा व्यवस्था पर चिंतन–मनन की जरूरत है।

संदर्भ

1. नवभारत दैनिक समाचार पत्र।
2. जनसत्ता दैनिक समाचार पत्र।
3. योजना मासिक पत्रिका।

❑❑

4

लोक जीवन में भ्रष्टाचार का विवेचनात्मक अनुशीलन

डॉ0 नम्रता चौकोटिया
पी–एच0डी0 अनुभाग(असिस्टेंट ग्रेड–।।।)
जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

सार्वजनिक जीवन में स्वीकृत मूल्यों के विरुद्ध आचरण, भ्रष्ट आचरण समझा जाता है। भ्रष्टाचार विश्वव्यापी समस्या तो है ही, किन्तु भारत में यह बीमारी कुछ ज्यादा ही गम्भीर हो चली है। भ्रश्टाचार शब्द भ्रष्ट व आचार से मिलकर बना है। भ्रष्ट का अर्थ है–दूषित तथा आचार का अर्थ है–आचरण, अर्थात हमारा आचरण जब दूषित हो जाता है तो हम इसे भ्रष्टाचार कह सकते हैं। इस प्रकार आचरण का दूषित होना ही भ्रष्टाचार है। भारतीय धर्म ग्रन्थों में आचरण की शुचिता पर बल दिया गया है।

यद्यपि आचरण की शुचिता के अन्तर्गत नैतिक व अनैतिक आचरण के अन्तर्गत बहुत सी बातें सम्मिलित हैं, परन्तु वर्तमान में भ्रष्टाचार का जो रूप सामने आया है वह व्यक्ति की धन लोलुपता और अपने कर्त्तव्य का सही तरीके से पालन न करने से संबधित है, अतः यहाँ हम कर्त्तव्य पालन के अन्तर्गत ही भ्रश्टाचार को स्पष्ट करना चाहेंगे, क्योंकि आचरण की शुचिता के अन्तर्गत वे सभी बातें आती हैं जो कि हमारे कर्त्तव्य पालन में सहायक हैं। इस प्रकार आचरण की शुचिता से ही सही ढंग से कर्त्तव्य पालन हो सकता है और यदि हमारे आचरण की शुचिता में कोई कमी रह जाती है तो इसका सीधा प्रभाव हमारे कर्त्तव्य पालन पर पड़ता है। कर्त्तव्य पालन के आधार पर हम व्यक्ति की नैतिकता का भी मूल्यांकन कर सकते हैं, क्योंकि कर्त्तव्य पालन से ही व्यक्ति की कथनी और करनी को समझा जा सकता है। यदि हम केवल बड़ी–बड़ी बातें करते हैं तथा व्यवहार में इन्हें प्रयोग में नहीं लाते तो यहीं से हमारे जीवन में भ्रष्ट आचरण की शुरूआत हो जाती है और बाद में यही बातें हमारे कर्त्तव्य पालन में भी सम्मिलित हो जाती हैं और परिणामस्वरूप हम अपने कर्त्तव्य का पालन सही ढंग से नहीं कर पाते हैं। इस प्रकार अपने कर्त्तव्य का पालन न करना भ्रष्टाचार है, क्योंकि जब कोई कर्मचारी अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता है तो निश्चित है कि वह भ्रष्ट है और तब वह उस कार्य को जिसे पूरा करना उसका कर्त्तव्य है दूसरों पर एक अहसान समझता है और इस अहसान को वह रिश्वत लेकर या टालमटोल करके कई दिन लटकाकर जताता है। इस प्रकार कर्त्तव्य का पालन न करना ही जीवन में भ्रष्टाचार का आरम्भ है।

व्यक्ति की सत्यनिष्ठा में किसी प्रकार की कमी भ्रष्टाचार को जन्म देती है। भ्रष्टाचार को नैतिक पतन के रूप में देखा जा सकता है। शाब्दिक अर्थ या रूप में इसे भ्रष्ट आचरण के रूप में देखा जाता है। नीरद सी. चौधरी ने कहा है कि ''छोटे से क्लर्क से लेकर मन्त्री तक शायद ही कोई व्यक्ति हो जिसे किसी न किसी मात्रा में धन द्वारा नियन्त्रित न किया जा सके।'' नैतिक आदर्शों की उपेक्षा एवं सच्चरित्रता का अभाव भ्रष्टाचार संरक्षण (Patronage) (जो साम्प्रदायिकतावाद, जातिवाद, भाई–भतीजावाद एवं पक्षपात पर आधारित होता है।) एवं अनुचित प्रभाव के रूप में अभिव्यक्त होता है। उत्तर प्रदेश के पूर्व मुख्य मन्त्री डॉ0 सम्पूर्णानन्द ने यह ठीक ही कहा था कि ''प्रशासकीय कार्य के सम्पादन में एक के द्वारा दूसरे को धन देना ही सच्चरित्रता के अभाव को अभिव्यक्त करने वाला एकमात्र रूप नहीं है। यह अनेक रूप धारण कर सकता है, जो किसी भी प्रकार कम निन्दनीय नहीं होता। उदाहरण के लिए, संरक्षण द्वारा एक व्यापक क्षेत्र का निर्माण किया जा सकता है, जो दायित्वों एवं त्रुटियों की दृष्टि से घातक बुराई का स्रोत हो सकता है। जिसे हम बुरा समझते हैं उसके प्रति आँखें मूँद लेना, अपराधी को अनैतिक कार्यों की छूट देना और अपने दुष्कृत्यों के लिए उसे अपने दण्ड से बचने देना, पद श्रृंखला में किसी उच्च पदाधिकारी के स्थान पर जो वास्तव में दोषी है, उसके किसी अधीनस्थ को बलि का बकरा बनाना, गलत

सूचना देना या किसी महत्वपूर्ण सूचना या तथ्यों को प्रस्तुत न करके उन्हें पूरी तरह या आंशिक रूप में दबाना, और तथ्यों को जानबूझकर गलत निर्णय हेतु प्रस्तुत करना।'' आदि भ्रष्टाचार के विभिन्न रूप हैं। केवल घूस, भाई–भतीजावाद, सत्ता एवं प्रभाव का दुरूप्रयोग, कालाबाजारी, मुनाफाखोरी और अन्य ऐसे ही दुष्कृत्य जो प्रशासन, राजनीति, व्यापार या उद्योग से सम्बन्धित होते हैं, भ्रष्टाचार नहीं कहलाते। जानबूझकर किसी व्यक्ति के पद, स्थिति या स्रोतों का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से अपने व्यक्तिगत हितार्थ शोशण ही भ्रष्टाचार है, भले ही यह शोषण भौतिक उपलब्धि के रूप में हो या नैतिक आदर्शों के परे अन्य व्यक्तियों या समाज को हानि पहुँचाते हुए अपनी शक्ति, स्थिति एवं प्रभाव की वृद्धि के रूप में हो।

भ्रष्टाचार की परिभाषा भारतीय दण्ड संहिता की धारा 161 में की गयी है। '' जो व्यक्ति शासकीय कर्मचारी होते हुए या होने की आशा में अपने या अन्य किसी व्यक्ति के लिए विविध पारिश्रमिक से अधिक कुछ घूस लेता है या स्वीकार करता है अथवा लेने के लिए तैयार हो जाता है या लेने का प्रयत्न करता है या किसी कार्य को करने या न करने के लिए उपहारस्वरूप या अपने शासकीय कार्य को करने में किसी व्यक्ति के प्रति पक्षपात या उपेक्षा या किसी व्यक्ति की कोई सेवा या कुसेवा का प्रयास, केन्द्रीय या अन्य राज्य सरकार या संसद या विधान मण्डल या किसी लोक सेवक के सन्दर्भ में करता है तो उसे तीन वर्श तक के कारावास का दण्ड या अर्थदण्ड या दोनों दिये जा सकेंगे।''

स्वतन्त्रता के उपरान्त विभिन्न तत्व उत्पन्न हुए जिसने भ्रष्टाचार पनपा। कल्याणकारी राज्य का आदर्श अंगीकार करने के फलस्वरूप राज्य के कार्यों में असाधारण वृद्धि हुई। यही नहीं, अनेक नवीन एवं अपरिचित दायित्वों को भी राज्य को वहन करना पड़ा। आर्थिक क्षेत्र में भी राज्यों के कार्यों में वृद्धि हुई। नियमन, नियन्त्रण, लाइसेन्स, परमिट का युग प्रारम्भ हुआ। जिनसे भ्रष्टाचार के लिए नवीन मार्ग खुल गये। विभिन्न स्तरों पर राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने की होड़ ने इस व्याधि को कैंसर की भाँति असाध्य बना दिया। समय–समय पर केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों द्वारा भ्रष्ट अधिकारियों के विरुद्ध कार्रवाई की गयी, लेकिन उनके यह प्रयत्न न तो प्रभावशाली सिद्ध हुए और न स्थयी ही।

भारत के लिए आज बहुत ही बुरा दौर होने के बावजूद यह बहुत महत्वपूर्ण दौर भी है। भारत भ्रष्टाचार पर गंभीर मंथन करके इस समस्या का स्थायी समाधान निकाल सकता है। वस्तुतः भ्रष्टाचार केवल राजनीतिक या प्रशासनिक मुद्दा नहीं है। जब तक हम इसे राजनीतिक और प्रशासनिक समस्या से ऊपर उठकर सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और यहाँ तक कि वैधानिक समस्या से जोड़कर नहीं देखेंगे, तब तक इसका स्थायी समाधान निकाल पाना संभव नहीं होगा। इसलिए बहुत जरूरी है कि हमारे देश में जो भी व्यक्ति भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन का नेतृत्व कर रहा हो, उसके पास व्यापक दृष्टि और दूरदर्शिता हो। शायद इसीलिए प्लेटो ने 'दार्शनिक राजा' की बात कही थी। यह बात बहुत मायने रखती है कि अत्यधिक आर्थिक असमानता वाले देश में भ्रष्टाचार की उपस्थिति कितनी स्वाभाविक है, कितनी कृत्रिम। जब मैं आर्थिक असमानता की बात हो रही हो तो उसमें 'खा–खाकर मरने वालों से लेकर बिना खाए ही मर जाने वालों' तक की रेंज शामिल है।

किसी भी समाज में पूर्ण आर्थिक समानता संभव नहीं है। लेकिन नया कोई भी सभ्य समाज और विशेषकर लोकतांत्रिक देश स्वयं को इस दायित्व से मुक्त कर सकता है कि उसके किसी भी नागरिक की मौत सिर्फ इसलिए हो जाए, क्योंकि उसके पास पेट में स्वतंत्र भारत में भ्रष्टाचार एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा बन चुका है, इसका कारण यह है कि आज दैनिक जीवन का कोई भी कार्य ऐसा नहीं है जिसमें भ्रष्टाचार न हो। घर गृहस्थी के साधारण सामान से लेकर जीवन की बड़ी जरूरतों की पूर्ति में हमें प्रतिदिन भ्रष्टाचार से दो–चार होना पड़ता है। उदाहरण के लिए राशन की दुकान पर भी अपनी बारी पहले आने के लिए लोग तिकड़मबाजी आजमाते हैं और इस प्रकार भ्रष्टाचार आरम्भ हो जाता है जो कि बड़े स्तर पर सरकारी फाइलों के रूप में सामने आता है तथा तब सरकारी फाइलें ऐसी दब जाती हैं कि उनकी खुलने की बारी ही नहीं आती है। इसका कारण यह है कि हम कहने को तो स्वतंत्र हुए

हैं, परन्तु आज भी हम उसी ब्रिटिश कालीन गुलामी की व्यवस्था से जूझ रहे हैं, जिसमें कि हर भारतीय को एक क्षुद्र व्यक्ति से अधिक कुछ नहीं समझा जाता था तथा गोरे अंग्रेज अधिकारी किसी भारतीय के कार्य को पहले तो करना ही नहीं चाहते थे और यदि करना भी चाहें तो तब, जब उन्हें मनमाफिक घूस मिल जाये और इस पर भी वह इसे अपना अहसान समझते थे।

आज भारत में साधारण से कर्मचारी की भी यही मानसिकता होती है और इस तरह वह मानसिक रूप से आज भी गुलाम है। इसी तरह का विवरण प्रसिद्ध विचारक मार्क टुली इस प्रकार देते हैं– दरअसल स्वतंत्रता मिलने के बाद हमने लोकतांत्रिक व्यवस्था को तो अपना लिया, लेकिन उसका लाभ आम आदमी तक ठीक से नहीं पहुँच सका। इसकी सबसे बड़ी वजह यह है कि औपनिवेशिक प्रणाली में जो खामियाँ थी उन्हें दूर नहीं किया गया। जो संशोधन और सुधार होने चाहिए थे वे नहीं हुए। मसलन भारत में आज भी अंग्रेजों के जमाने के अनेक कानून लागू हैं। देश की तरक्की और भविष्य के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सारी लोकतांत्रिक संस्थाओं को एक दूसरे का सम्मान करना चाहिए, क्योंकि जब तक लोकतंत्र के पाए मजबूत नहीं होंगे, देश मजबूत नहीं होगा। भारत में मुश्किल यह है कि राजनीतिक वर्ग अपने को सर्वोच्च समझने लगता है। इसी सर्वोच्चता के दम्भ में वह अपने को देश के कानूनों से ऊपर समझने लगते हैं तथा नैतिक आचरण तक भूल जाते हैं परिणामस्वरूप किसी भी अनियमितता को वे नहीं समझते तथा इसी कारण तमाम प्रकार की वित्तीय अनियमितताएं सामने आती हैं। इसी तथ्य को रेखांकित करते हुए गरिमा शर्मा लिखती हैं कि– हमारी संवैधानिक संस्थाओं पर व्यक्ति विशेष का प्रभाव है– जिसमें मंत्री, नौकरशाह या अधिकारी शामिल हैं, जिसके परिणामस्वरूप सभी संस्थागत कार्यप्रणाली को आसानी से नजरअंदाज किया जा सकता है। यह प्रवृत्ति हालांकि दुनिया भर में हो सकती है, लेकिन भारत के मामले में यह ज्यादा अतिरंजित है। इसकी वजह यह है कि हमारी प्रणाली में व्याप्त खामियों और विकृतियों ने आजादी के बाद से लेकर अब तक हमारी राजनीति का आकार तय किया है। डालने के लिए रोटी के दो कौर नहीं थे?

भ्रष्टाचार एक सामाजिक बुराई है और किसी भी बुराई का कोई हल नहीं हो ऐसा नहीं है, उसका अच्छाई से खात्मा किया जा सकता है, जो लोगों को अपने सदाचार में देकर सिद्ध करना होगा। अतः मध्यम वर्गों में ऐसी नई चेतना की आवश्यकता है जिसे वे स्वयं ही निर्मित कर सकते हैं जो समाज को एक नई दिशा देगी और एक सदाचारी एवं व्यवस्थित तथा मानवाधिकारों से युक्त समाज बना सके, तभी हमारी प्रशासनिक कार्यप्रणाली पूर्णतः चुस्त–दुरुस्त, जबावदेही और पारदर्शी बन सकेगी। ऐसे आदर्श समाज में मर्यादाओं की पुनःस्थापना होगी तथा हर व्यक्ति को योग्यता अनुसार अपना भाग समाज के साधनों से प्राप्त हो सकेगा।

सन्दर्भ संकेत

1. उपाध्याय, गोविन्द प्रसाद, ईसा पूर्व छठी शताब्दी में धार्मिक आंदोलन का स्वरूप, (संपादक– झा, द्विजेन्द्र नारायण एवं श्रीमाली, कृश्ण मोहन, प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली वि0वि0, दिल्ली, 1995
2. अग्रवाल, जी0के0, भारतीय समाज एवं संस्कृति, साहित्य भवन पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा, 2005
3. काणे, पी0वी0, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, उद्धृत– अग्रवाल, जी0के0, पूर्वोक्त
4. ओमप्रकाश, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001,
5. झा, द्विजेन्द्र नारायण एवं श्रीमाली, कृश्ण मोहन, प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली वि0वि0, दिल्ली, 1995
6. वर्मा, हरिश्चन्द्र, मध्यकालीन भारत भाग–1 (750–1540), हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली वि0वि0, दिल्ली, 2001
7. सम्पूर्णानन्द–इन्टीग्रिटी इन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, बुलेटिन ऑफ दि इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, पटना विश्वविद्यालय, दिसम्बर– 1957
8. रिपोर्ट ऑफ दी बंगाल एडमिनिस्ट्रेशन, इन्क्वायरी कमेटी, अलीपुर गर्वमेन्ट प्रिन्टिंग प्रेस–1945
9. रिपोर्ट ऑफ दी रेलवे करेप्शन कमेटी, गर्वमेन्ट ऑफ इण्डिया, मिनिस्ट्री ऑफ रेलवे–1961
10. दैनिक जागरण, अमर उजाला, नव भारत टाइम्स, टाइम्स ऑफ इण्डिया इत्यादि।

❑❑

5

आदिवासी जनजातियों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक आन्दोलन का मूल्यांकन

श्रीमती अंजना दुबे
शोधार्थी–हिन्दी
रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर, म.प्र.

आदिवासी चार अक्षरों का एक छोटा सा नाम, लेकिन सामाजिक व्यवहार के रूप में अनेक समुदाय, जातियाँ और किस्मों में बँटा एक संसार इस संसार की अपनी समस्याएँ अपना परिवेश, रीति–रिवाज। आदिवासी अस्मिता की धुरी है। स्वसंस्कृति प्रेम, आत्म निर्णय और आत्मसम्मान में विश्वास।

आदिवासियों के सामने वर्तमान में दो तरह की चुनौतियाँ हैं, पहली आदिवासियों के प्रति उपेक्षा और विस्थापन से रक्षा करने की और उसके विकल्प के रूप में परम्परागत संस्थाओं और आदिवासी एकजुटता को बनाए रखने की। दूसरी चुनौती है नई परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल बदलने की और अपनी आदतों और कानूनों के बदलाव लाने की। आदिवासियों पर कोई भी परिवर्तन यदि बाहर से थोपा जायेगा तो वे विरोध करेंगे। आदिवासियों का प्रतिरोध स्वाभाविक है। वे किसी चीज को स्वंय लागू करना चाहते हैं। सामान्यतः शांत और सरल लेकिन विद्रोहका नगाड़ा बजते ही पूरा समूह समपूर्ण प्रगतिशील शहरियों के लिये ऐसी चुनौती, जिसे सह पाना, लगभग असंभव है। एक चिंगारी जो कभी भी आग बनकर सबको लपेटने की क्षमता रखती है।

आदिवासी के उपयुक्त सम्बन्धी रंग–बिरंगी पोशाकों, संगीत, लोकनृत्य और संस्कृति के बारे में हमारी अपनी कल्पनाएँ हैं कि हम उन्हें पिछड़ा, असभ्य, गैर–आधुनिक और न जाने क्या–क्या कहते हैं। अंग्रेजी राज ने भारतीय आदिवासियों को दूसरे दर्जे का नागरिक समझा, जिसके अन्तर्गत उनके जीवन, संस्कृति और सामाजिक संसार को बाकी दुनिया से अलग–अलक रखकर उसे अध्ययन और कौतूहल का विषय बना दिया। लेकिन भारतीय समाज में अंग्रेजों को पहली चुनौती सन् 1824–30 भीलों ने दी और बाद में संभालों। भारत में हुए आन्दोलनों की प्रकृति को मध्यप्रदेश का बस्तर आन्दोलन, राजस्थान भील जनजाति में सामाजिक, सांस्कृतिक आन्दोलन, उत्तरांचल का चिपको आन्दोलन, बिहार के मुंडा तथा संथाल विद्रोह, पूर्वी क्षेत्र में आदिवासी आन्दोलन ने वर्ष 1846 में अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये। पिछले कुछ वर्षों में आदिवासियों के प्रति नई चेतना का विकास हुआ। आदिवासियों की यह स्थिति उनके आर्थिक पिछड़ेपन के साथ–साथ वे सामाजिक सांस्कृतिक रूप से भी अलग है। पूरे देश का आदिवासी समुदाय एक सामाजिक रिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। इसके कारण आदिवासियों में अलगाव और मुख्य धारा से अलग रहने की प्रकृति का विकास हो रहा है। शोषण, असंतोष, गरीबी और सामाजिक बदलाव के कारण स्वंय को उद्वेलित और असंतुष्ट महसूस करता है। आर्थिक और सामाजिक कारण ही आंदोलन का कारण बनते हैं।

मध्यप्रदेश का बस्तर आन्दोलन

मध्यप्रदेश जनजातियों का गढ़ माना जाता है। पूर्वी मध्यप्रदेश के गोण्ड आदिवासी मध्यप्रदेश की जनजाति में प्रमुख है। बस्तर गोंडवाना क्षेत्र का प्रमुख प्रशासनिक केन्द्र है। बस्तर आन्दोलन का प्रारंभ भी हिन्दु, कृषकों, जमींदारों एवं साहूकारों द्वारा गोण्डों की भूमि के अतिक्रमण से हुआ। यद्यपि इनके द्वारा किये जाने वाला आर्थिक शोषण गोण्डों में इनके प्रति घृणा तो विकसित नहीं कर पाया और बाहरी संस्कृति सदैव गोंण्डों के लिए आकर्षण

का केन्द्र बनी रही। तथापित ये आन्दोलन हिन्दू संस्कृति को अपना राजगोंडों द्वारा सुधारवादी आन्दोलन के रूप में प्रारंभ हुआ। परन्तु हिन्दू मान्यताओं एवं आदर्शों से उनका जीवन कठिन हो गया तथा स्त्रियों की स्वतंत्रता पर लगे प्रतिबंधों का विरोध होने लगा। साथ ही खान–पान पर भी प्रतिबंध उन्हें असहय बनने लगे।

1910 ई. में बस्तर में हुई क्रांति की पृष्ठभूमि में राज कर्मचारियों द्वारा अदिवासियों पर तरह–तरह के अत्याचार करता रहा। यह आन्दोलन मुख्य रूप से हिन्दू प्रवासियों के गोण्ड क्षेत्र में बसने तथा जंगलों सम्बन्धी सरकारी नियमों के विरूद्ध था। हिन्दू राजाओं द्वारा अपने आपको हिन्दू अवतारों के समतुल्य घोषित करना तथा बावजूद गोण्ड आदिवासियों की समस्याओं का समाधान न होना भी उनके आक्रोश का कारण रहा है।

राजस्थान में भील जनजाति के सामाजिक–सांस्कृतिक आन्दोलन

भील जनजाति पश्चिम भारत की सबसे बड़ी जनजाति मानी जाती है तथा राजस्थान, मध्यप्रदेश, दक्षिणी गुजरात तथा महाराष्ट्र निकटवर्ती जिलों में काफी संख्या में भील देखे जा सकते हैं। भील जनजाति में सभी लोगों के लिए समान सामाजिक एवं धार्मिक नियम प्रयुक्त होते हैं तथा केवल पुजारी एवं मुखिया की ही विशेष स्थिति होती है। ऐसा माना जाता है कि गैर–भीलों के सम्पर्क के परिणामस्वरूप भीलों में पाई जाने वाली सजातीयता कम होने लगी और राजपूत, मराठा तथा अंग्रेजों ने भी साम्राज्य तथा उसकी जनता के अतीत को चुनौती दी। युद्ध में पराजय के बाद भीलों ने वनों तथा बीहड़ों में शरण ली। इसके परिणामस्वरूप उनमें एक नवीन सांस्कृतिक सजातीयता उभरकर सामने आई। राजपूत जाति के कुछ लोगों ने भील स्त्रियों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए। इसलिए भील राजपूतों को अपना सम्बन्धी मानते हैं तथा हिन्दू जातियों के सामाजिक रीति–रिवाजों एवं सांस्कृतिक तौर–तरीकों को अपनाते हैं। भील स्त्रियाँ भी परदा करती हैं। भीलों में हिन्दू समाज के धार्मिक आदर्शों के परिणामस्वरूप ही भीलों में 'भगत' का अभ्युदय हुआ। भगत वह माना जाता है, जिसने आदिम धार्मिक परम्पराओं में अपना विश्वास खो दिया है और जिसने हिन्दू देवी–देवताओं पर अपनी आस्था स्थापित कर ली है। भगत अन्ध ाविश्वासी न होकर नवीन विश्वासों को अपनाते हैं। इस प्रकार, भगत आन्दोलन को मूल रूप से सामाजिक–धार्मिक पुनर्जागरण की संज्ञा दी जाती है। भीलों पर हिन्दुओं के धार्मिक एवं सामाजिक रीति–रिवाजों का प्रभाव अधिक पड़ा है। भीलों में भगत पन्थ के अतिरिक्त कबीर पन्थ कामदिया/रामदेव पन्थ, नाथजी पन्थ जैसे सम्प्रदाय विकसित हुए, जिन्होंने भीलों में पनपे अन्ध विश्वास को कम किया एवं उनमें व्याप्त कुरीतियों को समाप्त करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

उत्तरांचल का चिपको आन्दोलन

चिपको आन्दोलन उत्तरांचल (पूर्व में उ.प्र.) के गढ़वाल क्षेत्र में होने वाला एक महत्वपूर्ण आन्दोलन माना जाता है तथा कुमाऊँ क्षेत्र हिमालय पर्वत की श्रृंखलाओं के मध्य स्थित है। चिपको आन्दोलन का तात्पर्य है कि काटे जाने के विरोध में उनकी रक्षा हेतु पेड़ों से चिपक जाना ताकि उन्हें कटने से बचाया जा सके। यद्यपि यह आन्दोलन अंग्रेजी शासनकाल में प्रारम्भ हुआ और अंग्रेजी सेना ने इस आंदोलन को कुचल दिया तथापित इससे यह सिद्ध हो गया कि इस क्षेत्र के लोग वनों की रक्षा के प्रति कितने जागरूक हैं। इस क्षेत्र के अधिकांश भू–भाग वनों से अच्छादित है। वनों से बहुमूल्य लड़की के अतिरिक्त अनेक प्रकार के जड़ी–बूटियों भी प्राप्त की जाती हैं।

कुमाऊँ क्षेत्र में भोटिया आदिवासी निवास करते हैं, जो घुमन्तू जनजाति रही है तथा भेड़–बकरियों को पालने का परम्परागत व्यवसाय करती आई हैं। इस जनजाति के लोग वनों का प्रयोग चारागाहों के रूप में करते हैं और वनों को किसी प्रकार की क्षति पहुंचाने का प्रयास नहीं करते हैं। वनों के पतन, सरकार के वनों पर बढ़ते हुए नियंत्रण, वनों की नीलामी, जनसंख्या में तीव्र वृद्धि, वनों के पतन से होने वाला भूमि कटान, जल की कमी की व्यवस्था तथा पर्यावरण पर पड़ने वाले बुरे प्रभाव ने भोटिया आदिवीास की जीवन पद्धति को काफी प्रभावित करना प्रारम्भ कर दियां व्यापक मात्रा में वनों के कटान से होने वाले भूमि के कटान के परिणामस्वरूप 1970 ई. में अलकनन्दा नदी

में बाढ़ से सम्पूर्ण बेलाकूची गाँव पानी में बह गया।

इसके साथ ही, 1962 ई. में भारत–चीन युद्ध के परिणामस्वरूप तिब्बत सीमा को बन्द कर दिया गया और इसमें भोटिया आदिवासियों की अर्थव्यवस्था भी चरमराने लगे। स्थानीय लोगों के जनमानस पर इसका काफी गहरा प्रभाव पड़ा। सर्वोदयी नेता चंडी प्रसाद भट्ट ने स्थानीय लोगों को संगठित कर वनों के कटान रोकने के लिए चिपको आन्दोलन का प्रारंभ किया। धीरे–धीरे यह आन्दोलन भोटिया बहुत गांवों से गैर–आदिवासी गांवों तक भी फैल गयां भोटिया स्त्रियों ने भी चिपको आन्दोलन में बढ़–चढ़कर भागीदारी की। गाँव के स्तर पर प्रारम्भ हुआ चिपको आन्दोलन आज राष्ट्रीय स्तर का आन्दोलन माना जाता है। सुंदरलाल बड़गुणा के नेतृत्व में यह आन्दोलन आज भी सक्रिय है। यह आन्दोन सरकार का पर्यावरण के नकारात्मक प्रभावों की ओर ध्यान आकर्षित करने में सफल रहा तथा सरकार ने आन्दोलनकारियों की अनेक माँगें स्वीकार कर ली हैं।

बिहार का संथाल तथा मुण्डा विद्रोह

बिहार को आदिवासी आन्दोलनों का केन्द्र स्थल माना जाता है। बिहार में रहने वाला अधिकांश आदिवासी खेतों तथा जंगलों से खाद्य पदार्थ एकत्रित करके अपना जीवन–यापन करते हैं। बाहरी लोगों द्वारा आदिवासी क्षेत्रों में आगमन एवं उनके द्वारा किए जाने वाले आर्थिक शोषण के परिणामस्वरूप बिहार में अनेक आदिवासी आन्दोलन हुए है। इनमें मुण्डा तथा सन्थाल विद्रोह प्रमुख हैं।

मुण्डा जनजाति बिहार के छोटा नागपुर क्षेत्र में निवास करती है तथा इसमें भूमि का स्वामित्व परम्परागत रूप से सामुहिम होता था। मण्डा सरदारों तथा हिन्दू राजाओं के प्रभाव के परिणामस्वरूप हिन्दू संस्कृति के तत्व मुण्डा संस्कृति में व्याप्त होने लगे। मुण्डा जनजाति के सरदार हिन्दु पुजारियों और राजकर्मचारियों को गाँव के गाँव दान में देने लगे और सामान्य आदिवासी उनके अधीनस्थ कृषकों के रूप में कार्य करने लगे। उन्हें अपनी भूमि पर कृषि करने हेतु लगान देना पड़ता था। जैसे–जैसे लगान की राशि बढ़ती गई, आदिवासी इसे चुकान हेतु साहूकारों के चंगुलों में फँसते चले गये। इससे उनकी आर्थिक दशा एकदम शोचनीय हो गई तथा उनमें बाहरी लोगों के लिए द्वेष की भावना विकसित हो गई। धीरे–धीरे इस प्रकार का शोषण अपनी चरमसीमा पर पहुँचने लगा तथा घृणा ने विरोध एवं विद्रोह का रूप ले लियां अपने परम्परागत अधिकारों के प्रति जागरूक होकर 1811 से 1832 ई. के मध्य मुण्डा आदिवासियों ने सात स्थानों पर जमींदारों के विरूद्ध संघर्ष किए। जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने इन सघर्षों का क्रूरतापूर्ण ढंग से दमन कि तो आदिवासियों की दशा और भी दयनीय हो गई।

1857 ई. के लगभग बड़ी संख्या में मुण्डा ईसाई बन गए, परन्तु उनकी आर्थिक कठिनाईयाँ कम नहीं हुई। ईसाई मुण्डाओं में हिंसात्मक उपद्रव ईसाई मिशनरियों के विरूद्ध भी होने लगे, क्योंकि उन्होंने जो वायदे किए थे वे भी झूठे साबित होने लगे। हजारों मुण्डाओं ने संगठित होकर अपनी आर्थिक कठिनाईयों से मुक्ति पाने के लिए आन्दोलन किया।

शिक्षा के प्रति जागरूकता के परिणामस्वरूप भी मुण्डा आदिवासी अपने अधिकारों के प्रति अधिक सचेत हो गए। 1895 ई. में हजारों मुण्डा संगठित होकर आन्दोलनरत हो गए तथा ब्रिटिश शासन एवं सभी बाहय तत्वों को अपने क्षेत्र से निष्कासित कर स्वतंत्र मुण्ड राज्य की स्थापना पर बल देने लगे। इन संघर्ष में उन्होंने नियाजित ढंग से जमींदारों, मिशनरियों तथा सभी प्रकार के बाहय तत्वों का सफाया कर दिया। चाल्काद नामक गाँव के बिरसा के निवासी बिरसा नामक मुण्डा ने इस आन्दोलन को नेतृत्व प्रदान किया। इसलिए इस आन्दोलन को बिरसा आन्दोलनप भी कहा जाता है। हिंसात्मक संघर्ष के बावजूद मुण्डा जनजाति को कोई निश्चित सफलता नहीं मिली। छोटा नागपुर क्षेत्र में मुण्डा आदिवासियों की आकांक्षाओं की विद्रोह की भावनाओं को सामने रखते हुए अंग्रेजी सरकार ने 1903 ई. में टेनेन्सी एमेण्डमेंट एक्ट तथा 1908 ई. में छोटा नागपुर टेनेन्सी एक्ट के अन्तर्गत भूमि व्यवस्था की योजना बनाई। हिन्दू एवं ईसाई धर्म के समरूप को अपनाकर मुण्डा लोगों ने अपनी परम्परागत संस्कृति के

मूल्यों में महत्वपूर्ण परिवर्तन किये।

बिहार के संथाल परगना में हुआ संन्थाल आन्दोलन भी बाह्य तत्वों द्वारा आर्थिक शोषण का ही परिणाम है। इनमें भी परम्परा के अनुसार कृषि भूमि तथा जंगलों पर सामुदायिक रूप से पूरे गाँव का स्वामित्व होता था, परन्तु 1793 ई. में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने तत्कालीन बंगाल प्रदेश में स्थायी बन्दोबस्त लागू कर जमींदारों के वर्ग को जन्म दिया, जो संन्थालों का शोषण करने लगे। धीरे–धीरे बाहरी लोग भी जाकर इस सन्थालों में बसने लगे तथा सन्थालों की भूमि को पैसों के बल पर हथियाने लगे, साहूकारों तथा जमींदारों, आर्थिक शोषण, व्यक्तिगत तथा वंशानुगत कड़ी बनकर, पुलिस एवं अन्य सरकारी कर्मचारियों द्वारा अत्याचार एवं साहूकारों व जमींदारों को सहयोग एवं न्यायालय के पक्षपातपूर्ण निर्णय, जो सदैव संथालियों के विरूद्ध होते थे, इस आन्दोलन के प्रमुख सूत्रध ाार माने जाते हैं। इस आन्दोलन के प्रारम्भ में बहुत से साहूकारों एवं पुलिस अफसरों को सन्थाओं ने मार डाला और बाहरी व्यवसायियों की दुकानें लूट लीं। जब इन्हें रोकने का प्रयास किया तो इन्होंने अपने परम्परागत हथियारों का प्रयोग करके इसका विरोध किया। अंग्रेज सरकार ने सन्थालों के विद्रोहों को दबाने हेतु सेना का भी प्रयोग किया और सेना ने बहुत से सन्थाल गाँवों को लूटकर उनमें आग लगा दी। मान ने सन्थाल विद्रोह के चार प्रमुख कारणों का उल्लेख किया है– साहूकारों की जनजातीय लोगों से लेन–देन में लुटने–खसोटने की मनोवृत्ति, ऋण लेन–देन की बंधुआ प्रथा, साहूकारों की पुलिस से साँठ–गाँठ और भ्रष्टाचार तथा सन्थालों को न्यायालयों में न्याय न मिलना। कलशा के अनुसार सन्थाल आन्दोलन को केवल आर्थिक शोषण के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। 'भूख' ने निश्चित रूप से उन्हें हताश किया, लेकिन उनकी अपनी 'भूमि' के प्रति भावात्मक लगाव ने वह सुदृढ़ आधार प्रदान किया, जिसके अभाव में शायद यह आन्दोलन नहीं होता।

यद्यपि इस आन्दोलन को दबा दिया गया और इसके परिणामस्वरूप सन्थाली अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करने में सफल तो नहीं हो पाए, यद्यपि ब्रिटिश सरकार ने उनकी सन्तुष्टि हेतु अनेक प्रशासनिक कदम उठाए, जिससे सन्थालों की उन्नति का मार्ग प्रशस्त हुआ। आज भी इस विद्रोह तथा इसके नायकों की यश गाथाएँ हजारों सन्थालों में नई स्फूर्ति व शक्ति का संचार करती है। 22 दिसम्बर 1985 ई. को XXXVII अधिनियम पारित हुआ और सन्थाल, परगना नामक एक नए जिले का गठन किया गया तथा इसके अतिरिक्त बन्धुआ प्रथा में सुधार किया गया।

पूर्वी क्षेत्र में आदिवासी आन्दोलन

ईसाई मिशनरियों के प्रभाव, शिक्षा, राजनीतिक जागृति आदि कई कारणों के संदर्भ में भारतवर्ष में कई जनजातीय क्षेत्र में आन्दोलनों का सूत्रपात होता रहा है। इस संदर्भ में पूर्वी क्षेत्र की कुछ जनजातियों जैसे– गारों, मिलो, नागा, डफला, बोड़ों आदि का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है। यद्यपि इन समस्त जनजातियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि अलग–अलग है, लेकिन भौगोलिक पृष्ठभूमि समान होने के कारण इस क्षेत्र में पिछले डेढ़ सौ वर्षों से निरन्तर ही धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक आदोलन चलते रहे हैं। उदाहरण के रूप में नेशनल कौन्सिल, नागा यूथ मूवमेन्ट, नागा वूमन सोसायटी, नागा क्लब असम लिट्राइबल यूनियन तथा उल्फा द्वारा अनेक आन्दोलन समय–समय पर चलाए गए, जिनकी मुख्य भाग राजनीतिक स्वायत्ता रही है। नागा राष्ट्रवाद के लिए भी अनेक आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ है। ये आन्दोलन अंग्रेजी शासनकाल में ही आरम्भ हो गए थे और स्वतंत्रता से अब तक इनमें तीव्रता ही आई है। ऐसा माना जाता है कि चीन, पाकिस्तान, म्यामार आदि देश इन आन्दोलनों को भरपूर आर्थिक सहायता देते हैं तथा अस्त्र–शस्त्र भी चोरी छिपे सप्लाई करते हैं। इतना ही नहीं पुलिस व सेना की धरपकड़ करने पर इनके नेता पड़ोसी देशों में जाकर छिप जाते हैं और भूमिगत हो जाते हैं। 2000 ई. में तीन नए राज्यों के बनने के बाद आल पार्टी हिल कौन्सिल, नागा राष्ट्रीय परिषद, ईस्टर्न इण्डियन ट्राइबल यूनियन, असम हिलट्राईव यूनियन, असम गण संग्राम परिषद आदि द्वारा राजनीतिक स्वायत्तता की माँग के लिए किए गए आन्दोलनों ने अत्यधिक तीव्र और हिंसक रूप ले लिया है। आगजनी, तोड़–फोड़, हत्याएँ, अपहरण

राजव्यापी बन्द आदि प्रतिदिन की घटनाएँ होने लगीं। इन आन्दोलनकारियों की समस्याओं को दूर करने के लिए सरकारी, राजनीतिक व सामाजिक तौर पर अनेक प्रयास किए गए, जिनमें पटासकर कमीशन, जयप्रकाश पीस मिशन, अशोक मेहता कमीशन आदि के प्रयास सराहनीय हैं। सरकारी प्रयासों के अधीन फरवरी 1961 ई. में पृथक नागालैण्ड राज्य की स्थापना की गई, त्रिपुरा एवं मणिपुर को पूर्ण राज्य का दज्रा दिया गया और जनवरी 1972 ई. में मेघालय राज्य की स्थापना कर दी गई, लेकिन इसके बाद भी पूर्वी क्षेत्रों में जनजातीय आन्दोलन पूरी तरह समाप्त नहीं हुए। बोड़ो लैण्ड आन्दोलन अभी अपनी पूरी शक्ति के साथ चल रहा है।

इन सबके अतिरिक्त अन्य आदिवासी आन्दोलन हुए जैसे – ताना भगत आन्दोलन, हरिबाबा आन्दोलन, गौण्ड के राजामोहनी आन्दोलन, गोदावरी की पहाड़ियों के आन्दोलन के दौरान कुड़प्पा में सत्याग्रह हुआ। आदिवासी आन्दोलन से सम्बन्धित आर्थिक मुद्दे बहुधा बहुत रूप से वे ही होते हैं, जो आदिवासी को प्रभावित करते हैं, जिसके कारण आदिवासी लोगों की परम्परा, अर्थव्यवस्था और समाज को भारी क्षति होती है।

संदर्भ

1. घनश्याम शाह, 2004, (सेकंड रिप्रिंट, 2005) "सोशल मूवमेन्ट इन इण्डिया : ए रिव्यू ऑफ लिट्रेचर, सेज, नई दिल्ली।
2. एम.एस. ए. राव, सोशल मूवमेन्ट इन इण्डिया।
3. एस.सी. राव (Orana Religion and Customs, 1972)
4. V. Raghviah - Tribal Revolve, 1917
5. Fuchs - Rebellions Prophets : A study of Messianic Movement in India, 1965

❑❑

6

श्रवण बाधितों हेतु सम्प्रेषण के विकल्पों के चयन की कसौटियाँ

डॉ० अर्जुन प्रसाद
विशेष शिक्षक, श्रवण बाधितार्थ विभाग, विशेष शिक्षा संकाय
डॉ० शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

सभी बधिर एवं सुनने में कठिनाई वाले बच्चों को उस भाषा और सम्प्रेषण के माध्यम से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए, जो उनके वैयक्तिक विकास के लिए सर्वाधिक उपयुक्त हो।

—संयुक्त राष्ट्र, (2006)

किसी बच्चे की श्रवण क्षमता का स्तर उसकी वाणी, भाषा एवं सम्प्रेषण के स्तर को निर्धारित करता है। गम्भीर एवं अतिगम्भीर श्रवण दोष की स्थिति में इन तीनों क्षेत्रों में सुधार की सम्भावना बहुत कम होती है । इसलिए श्रवण बाधित बच्चों हेतु मौखिक सम्प्रेषण के अतिरिक्त सम्प्रेषण के अन्य विकल्पों की आवश्यकता होती है। श्रवण बाधित बच्चों हेतु सम्प्रेषण के अनेक विकल्प उपलब्ध हैं। ये विकल्प इन बच्चों के सर्वांगीण विकास में सहायक होते हैं। सम्प्रेषण के इन विकल्पों के चयन की अनेक कसौटियाँ हैं; जोकि श्रवण बाधित बच्चों के सम्प्रेषण की प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं। सभी सम्प्रेषण विकल्पों की अपनी विधियाँ, तकनीकें, सीमायें एवं दर्शन हैं। किसी भी विकल्प से सम्प्रेषण अथवा शिक्षण करने हेतु शिक्षकों को इन विकल्पों में सघन प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। सम्प्रेषण के अनेक विकल्पों में प्रशिक्षित व अनुभव प्राप्त व्यक्ति श्रवण बाधिता के क्षेत्र में एक सफल एवं प्रभावी संप्रेषक अथवा शिक्षक बन सकता है।

सम्प्रेषण के विकल्पों का महत्व — सम्प्रेषण के विकल्प बच्चों के विचारों को दूसरों के सम्मुख प्रकट करने एवं दूसरों के विचारों से स्वयं अवगत होने हेतु, सफल शिक्षा एवं अधिगम हेतु, कार्यात्मक संबंधों के निष्पादन हेतु, परिवार एवं समाज में स्वयं को स्थापित करने के लिए, विचारों एवं भावनाओं को संगठित करने के लिए, जटिल भाषाई दक्षता ग्रहण करने के उद्देश्य से, घर एवं विद्यालय के वातावरण में अर्थपूर्ण सहभागिता एवं समायोजन के उद्देश्य से तथा सफल अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों को स्थापित करने हेतु अत्यन्त आवश्यक एवं महत्वपूर्ण हैं।

सम्प्रेषण के विकल्प — सम्प्रेषण के विकल्पों को मुख्यतः चार भागों में विभाजित कर सकते हैं— मौखिक सम्प्रेषण, हस्तचालित सम्प्रेषण, द्विभाषिक सम्प्रेषण एवं समग्र सम्प्रेषण। सम्प्रेषण के इन चारों विकल्पों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित हैं —

(1) मौखिक सम्प्रेषण — मौखिक सम्प्रेषण में श्रवण बाधित बच्चों की बची हुई श्रवण क्षमता का श्रवण प्रवर्धक उपकरणों द्वारा उपयोग कर एवं वाणी वाचन के द्वारा, उच्चारण कौशल विकसित करने पर जोर दिया जाता है। इसका मानना है कि भाषा का विकास सुनकर व बोलकर होना चाहिए। इसमें संकेत भाषा को बढ़ावा नहीं दिया जाता है; किन्तु प्राकृतिक भाव—भंगिमा का उपयोग किया जा सकता है। सम्प्रेषण के इस विकल्प का प्राथमिक उद्देश्य सुनने वाले समुदाय में समेकन हेतु श्रवण बाधित बच्चों में आवश्यकतानुरूप वाणी एवं सम्प्रेषण कौशल का विकास करना है।

(2) हस्तचालित सम्प्रेषण — इस सम्प्रेषण में मुख्यतः हस्तचालित भाषा का प्रयोग किया जाता है। हस्तचालित भाषा स्वयं की व्याकरणिक व्यवस्था के रूप में एक विकसित भाषा है। संकेत भाषा बधिर समुदाय में व्यापक रूप से प्रयोग की जाती है। यह एक स्वाभाविक दृश्य भाषा है। यह बधिर व्यक्तियों के सम्प्रेषण हेतु एक सुगम्य माध्यम है। इसमें मौखिक भाषा विकसित करने पर जोर नहीं दिया जाता है। इस माध्यम का प्राथमिक उद्देश्य प्रभावशाली

रूप से बोलना नहीं सीख पाने की स्थिति में बच्चों को सम्प्रेषण के योग्य बनाना है।

(3) द्विभाषिक सम्प्रेषण – द्विभाषिक सम्प्रेषण के माध्यम में बच्चों को प्राथमिक भाषा के रूप में संकेत भाषा सिखाई जाती है; और मौखिक भाषा द्वितीय भाषा के रूप में सिखाई जाती है। यह विकल्प बधिर समुदाय व सुनने वाले समुदाय, दोनों का प्रतिनिधित्व करता है। इस विकल्प का प्राथमिक उद्देश्य बच्चों को द्विभाषिक बनाना है। जिससे वे सांकेतिक भाषा एवं मौखिक भाषा, दोनों में सक्षम व निपुण हो सकें; और अपनी वैयक्तिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें।

(4) समग्र सम्प्रेषण – समग्र सम्प्रेषण में सम्प्रेषण के सभी साधनों जैसे– करवर्तनी, संकेत, प्राकृतिक भाव–भंगिमा, वाणी–वाचन, ओष्ठ पठन, शारीरिक भाषा, लिखित एवं मौखिक भाषा आदि का प्रयोग किया जाता है। इस विकल्प का प्राथमिक उद्देश्य श्रवण बाधित बच्चों एवं उनके साथ सम्प्रेषण करने वाले व्यक्तियों के लिए एक सरल सम्प्रेषण विधि उपलब्ध कराना है। इसमें व्यक्ति वाणी और संकेत के साथ ही अन्य दृश्य व प्रासंगिक माध्यमों का उपयोग कर सकता है। इस विकल्प का मुख्य उद्देश्य श्रवण बाधित बच्चों व उनसे सम्पर्क स्थापित करने वाले व्यक्तियों के लिए सम्प्रेषण का एक सरल माध्यम उपलब्ध कराना है।

सम्प्रेषण के विकल्पों के चयन की कसौटियाँ – सम्प्रेषण के विकल्पों के चयन की कसौटियों से तात्पर्य उन कसौटियों से है, जिनकी परिस्थितिवश अथवा परिणाम स्वरूप कोई बच्चा किसी सम्प्रेषण विकल्प को अपनाता है अथवा उसे अपनाना पड़ता है। यह कसौटियाँ उस बच्चे के लिए हितकर भी हो सकती हैं और अहितकर भी। श्रवण बाधित बच्चों की सम्प्रेषण के विकल्पों के चयन की कुछ प्रमुख कसौटियाँ निम्नलिखित हैं दृ

(1) सामुदायिक जागरूकता का आभाव – ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के गरीब व अशिक्षित वर्ग में विकलांगता की स्थिति अधिक देखने को मिलती है। उन्हें शीघ्र पहचान एवं हस्तक्षेप की विधियों एवं तकनीकों की जानकारी नहीं होती है या सीमित रूप में होती है। जागरूकता के आभाव में यह वर्ग श्रवण बाधा की शीघ्र पहचान एवं हस्तक्षेप नहीं कर पाता है। देर से चिन्हित व हस्तक्षेपित बच्चों की मौखिक सम्प्रेषण में सफलता की सम्भावना कम होती है। जिस कारण उन्हें हस्तचालित सम्प्रेषण अथवा सम्प्रेषण के अन्य विकल्पों को चयनित करना पड़ता है।

(2) समुदाय की गलत अवधारणाएँ – ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के गरीब व अशिक्षित वर्ग में अनेक गलत अवधारणाएँ पायी जाती हैं। इन गलत अवधारणाओं के वशीभूत होकर वे अपने बच्चों की श्रवण बाधा की शीघ्र पहचान एवं हस्तक्षेप हेतु औपचारिक तरीका न अपनाकर अनौपचारिक तरीके जैसे– जादू–टोना, तंत्र–मंत्र, झाड़–फूँक आदि से समस्या के समाधान का प्रयास करते हैं। वे अपने बच्चे की श्रवण बाधा की चिकित्सा एवं उपचार के लिये योग्य चिकित्सकों व विशेषज्ञों की सेवाएँ न लेकर नीम–हकीमों के चक्कर में पड़ जाते हैं । वे थक–हार कर बच्चे की श्रवण बाधा को उसके पूर्व जन्मों के कर्म का फल मानकर उसे उसी के हाल पर छोड़ देते हैं। जिससे वे अपने बच्चे की वाणी, भाषा एवं सम्प्रेषण हेतु उपयुक्त समय को निकाल देते हैं और इस स्थिति में बच्चे के लिए सम्प्रेषण का उचित विकल्प नहीं मिल पाता है।

(3) शीघ्र पहचान एवं हस्तक्षेप की आयु – श्रवण बाधित बच्चों की सम्प्रेषण के विकल्पों में सफलता अथवा असफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसकी श्रवण बाधिता की पहचान किस आयु में हुई है और पहचान के बाद कितना शीघ्रातिशीघ्र उचित हस्तक्षेप किया गया है। कम श्रवण दोष वाले एवं शीघ्र चिन्हित व हस्क्षेपित बच्चों की मौखिक सम्प्रेषण में सफलता की सम्भावना अधिक होती है; जबकि गम्भीर श्रवण दोष एवं देर से चिन्हित व हस्क्षेपित बच्चों की हस्तचालित अथवा अन्य विकल्पों में सफलता की सम्भावना बढ़ जाती है।

(4) विशेषज्ञों की उपलब्धता – शहरी क्षेत्र में रहने वाले श्रवण बाधित बच्चों के श्रवण दोष की शीघ्र पहचान एवं हस्तक्षेप हेतु विशेषज्ञों जैसे– कान नाक गला रोग विशेषज्ञ, श्रवण वैज्ञानिक, वाणी चिकित्सक आदि की उपलब्धता सरलता से हो जाती है, किन्तु ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले बच्चों को इन विशेषज्ञों की सेवाएँ सरलता से नहीं मिल पाती है। जिस कारण उनकी शीघ्र पहचान एवं हस्तक्षेप में समस्या आती है और वे मौखिक सम्प्रेषण

से वंचित रह जाते हैं। इसलिए उन्हें अन्य विकल्पों जैसे हस्तचालित सम्प्रेषण आदि में जाना पड़ता है।

(5) यन्त्र–उपकरणों की सफलता – श्रवण बाधित बच्चों के श्रवण हेतु कोक्लिअर इम्प्लांटेशन का सफलता प्रतिशत काफी अच्छा है, किन्तु यह अधिक खर्चीला है, जिस कारण यह सबकी पहुँच में नहीं है। इसलिए इन बच्चों को श्रवण के अन्य यान्त्रिक विकल्पों को अपनाना पड़ता है; जिनकी गम्भीर एवं अतिगम्भीर श्रवण दोष की स्थिति में सफलता का प्रतिशत बहुत अच्छा नहीं होता है। इस कारण उन्हें मौखिक सम्प्रेषण में समस्या आती है और वे सम्प्रेषण के अन्य विकल्पों को अपना लेते हैं ।

(6) अभिभावकों की अपेक्षाएँ – लगभग सभी श्रवण बाधित बच्चों के माता–पिता एवं अभिभावक यही अपेक्षा रखते हैं कि उनका बच्चा मौखिक सम्प्रेषण करे; भले ही उनके बच्चे की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति उसे मौखिक सम्प्रेषण के योग्य न बनाती हो । इस स्थिति में वे अपने बच्चे हेतु उचित सम्प्रेषण विकल्प को चयनित न कर मौखिक सम्प्रेषण से बातचीत करने का भरसक प्रयास करते हैं; किन्तु उन्हें इस प्रक्रिया में आशातीत सफलता प्राप्त नहीं होती है। परिणामतः उनका बच्चा अन्य श्रवण बाधित बच्चों के सम्प्रेषण कौशल की तुलना में पीछे रह जाते हैं। अन्ततः उन्हें अपने बच्चे को किसी अन्य विकल्प में ले जाना पड़ता है। जिससे उनके बच्चे में सम्प्रेषण की यथोचित क्षमता विकसित नहीं हो पाती है।

(7) बच्चों में नीहित भाषा अभिग्रहण यन्त्र की स्थिति – नॉम चोम्स्की ने बताया है कि प्रत्येक बच्चे में भाषा अभिग्रहण यन्त्र होता है; जोकि भाषा के सीखने एवं अभिव्यक्त करने में सहयोग करने वाले मानसिक एवं शारीरिक स्तर के विभिन्न भागों के समन्वय से सम्बन्धित है। यदि इनमें किसी प्रकार की कोई कमी नहीं है; तो भाषा का विकास सही ढंग से होता है। श्रवण बाधित बच्चों में इस स्तर पर कमी होने के कारण उनकी वाणी, भाषा एवं सम्प्रेषण प्रभावित होता है। जिसका प्रभाव उनके सम्प्रेषण के विकल्पों में सफलता अथवा असफलता पर भी पड़ता है।

(8) बच्चों की सम्प्रेषण में अभिरुचि – अधिकांशतः यह देखने को मिलता है कि श्रवण बाधित बच्चे स्वयं ही सम्प्रेषण विकल्प का चयन कर लेते हैं । उनमें उस विकल्प की बहुलता अधिक होती है, जिसमें इन बच्चों को सहजता का अनुभव होता है। चूँकि मौखिक सम्प्रेषण एक जटिल प्रक्रिया है और इसमें इन बच्चों को अधिक परिश्रम करना पड़ता है इसलिए ये बच्चे हस्तचालित सम्प्रेषण की ओर उन्मुख हो जाते हैं। जिसे वे स्वयं से, परिवार से, अपने साथियों से, अपने शिक्षकों, परिवेश आदि से सीख लेते हैं।

(9) विद्यालयों की उपलब्धता – जिन बच्चों का श्रवण दोष गम्भीर व अतिगम्भीर स्तर का नहीं है और उनमे श्रवण प्रवर्धक यन्त्र कार्य कर रहा है तथा जिन्हें कोक्लिअर इम्प्लान्ट हुआ है उन्हें समावेशित विद्यालयों से लाभ मिल सकता है एवं वे मौखिक सम्प्रेषण में प्रतिभाग कर सकते हैं; किन्तु गम्भीर व अतिगम्भीर श्रवण दोष वाले बच्चों को जिनमें श्रवण प्रवर्धक यन्त्र कार्य नहीं कर रहा है तथा जिन्हें कोक्लिअर इम्प्लान्ट नहीं हुआ है; उन्हें विशेष विद्यालयों की आवश्यकता होती है; जिससे उन्हें मौखिक सम्प्रेषण के बजाय सम्प्रेषण के अन्य विकल्पों से पढ़ाने की आवश्यकता होती है; लेकिन श्रवण बाधित बच्चों हेतु विशेष विद्यालयों की उपलब्धता प्रचुर मात्रा में न होने के कारण वे अपने अनुकूल विकल्प को अपनाने से वंचित रह जाते हैं ।

(10) विद्यालयों की प्रकृति – सभी श्रवण बाधित बच्चों में सम्प्रेषण के पृथक विकल्पों में सफलता की अन्तर्निहित क्षमता होती है। यह क्षमता उनके श्रवण दोष की कोटि एवं उनमें श्रवण प्रवर्धक उपकरणों की सफलता–असफलता पर निर्भर करती है। सम्प्रेषण के विकल्पों के मामले में सभी विद्यालय पूर्व से ही निर्धारित किसी एक विकल्प को अपनाये हुए होते हैं और वे सभी बच्चों को एक ही विकल्प से शिक्षित–प्रशिक्षित करते हैं। वे बच्चों की आवश्यकता के अनुरूप अन्य विकल्पों को अपनाने से गुरेज करते हैं, फिर चाहे उनके द्वारा निर्धारित विकल्प से उन बच्चों को लाभ हो रहा हो या नहीं, वे इस बात पर ध्यान नहीं देते हैं।

(11) शिक्षकों की सम्प्रेषण सीमायें – विद्यालय समावेशित हो, विशेष हो या फिर किसी अन्य विधा का हो, उसमें अध्यापन कर रहे शिक्षक सम्प्रेषण के सभी विकल्पों में सघन प्रशिक्षण प्राप्त किये हुए नहीं होते हैं । जबकि किसी भी सम्प्रेषण विकल्प से शिक्षित–प्रशिक्षित करने हेतु शिक्षकों एवं प्रशिक्षकों को सम्प्रेषण के विकल्पों में सघन प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है, क्योंकि सभी सम्प्रेषण विकल्पों की अपनी विधियाँ, तकनीकें, सीमायें एवं दर्शन हैं, उन्हें समझे बिना एक प्रभावी संप्रेषक नहीं बना जा सकता है । प्रभावी संप्रेषक न मिल पाने की स्थिति में श्रवण बाधित बच्चों का सम्प्रेषण कौशल प्रभावित होता है ।

(12) सहपाठियों का प्रभाव – श्रवण बाधित बच्चा जिस प्रकृति के विद्यालय में अध्ययन कर रहा होता है, उसकी कक्षा में विद्यार्थी जिस सम्प्रेषण विकल्प से सम्प्रेषण कर रहे होते हैं, वही विकल्प वह बच्चा भी अपना लेता है; भले ही उस बच्चे के घर में या उसके पूर्व के विद्यालय में उससे किसी अन्य विकल्प से सम्प्रेषण किया जा रहा हो या भले ही उसकी सम्प्रेषण विकल्प की आवश्यकता ही अलग क्यों न हो; किन्तु सहपाठियों के प्रभावस्वरुप वह अपना सम्प्रेषण विकल्प बदल लेता है।

निष्कर्ष – गम्भीर एवं अतिगम्भीर श्रवण दोष की स्थिति में श्रवण बाधित बच्चों हेतु मौखिक सम्प्रेषण के अतिरिक्त सम्प्रेषण के अन्य विकल्पों की आवश्यकता होती है। सम्प्रेषण के चार मुख्य विकल्प हैं– मौखिक, हस्तचालित, द्विभाषिक एवं समग्र सम्प्रेषण। इन विकल्पों का सीधा प्रभाव श्रवण बाधित बच्चों की भाषा क्षमता एवं उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ता है। सम्प्रेषण के विकल्पों के चयन की कुछ कसौटियाँ होती हैं। जैसे– सामुदायिक जागरूकता का आभाव, समुदाय की गलत अवधारणाएँ, शीघ्र पहचान एवं हस्तक्षेप की आयु, विशेषज्ञों की उपलब्धता, यन्त्र–उपकरणों की सफलता, अभिभावकों की अपेक्षाएँ, बच्चों में नीहित भाषा अभिग्रहण यन्त्र की स्थिति, बच्चों की सम्प्रेषण में अभिरुचि, विद्यालयों की उपलब्धता, विद्यालयों की प्रकृति, शिक्षकों की सम्प्रेषण सीमायें, सहपाठियों का प्रभाव आदि।

सन्दर्भ

- Hannah M- Dostal & Kimberly A- Wolbers (2014), Developing Language and Writing Skills of Deaf and Hard of Hearing Students : A Simultaneous Approach (Literacy Research and Instruction, 53 : 245–268, 2014
- Humphries, T-, Kushalnagar, P-, Mathur, G-, Napoli] D-J-, Padden, C-, Rathmann, C- : Smith S- R- (2012) - Language acquisition for deaf children : Reducing the harms of zero tolerance to the use of alternative approaches- Harm Reduction Journal, 9 (16)
- Padden C-, Ramsey C- (1993) American Annals of the Deaf, Volume 138, Number 2, April 1993, pp- 96 – 99 – (Article) - Published by Gallaudet University Press- DOI : For additional information about this article- Access provided by your local institution (27 Jan 2018 05 : 49 GMT)
- Richard C- Pillard, and Ulf Hedberg – (2011) Abstract- What are ethnic groups\Are Deaf people who sign American Sign Language (ASL) an --- Print publication date : 2010, Print ISBN : 13 – 9780199759293 - Published to Oxford Scholarship Online : January 2011] DOI : 10-1093@acprof : oso@9780199759293-001-0001
- Spencer] P-E- & Marschark] M- (2010)- Evidence based practice in educating deaf and hardof- hearing students- New York : Oxford University Press
- Ugwuanyi L- Tochukwu et al (2017), Using Total Communication Technique in Teaching Students with Hearing Impairment in Inclusive Classrooms in Enugu State & Nigeria) Teachers* Perspectives and Difficulties- Australian Journal of Basic and Applied Sciences, 11 (5) April 2017, Pages : 100-107
- United Nations (2006 – 2007)- Convention on the Rights of Persons with Disabilities- United Nations

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

7

सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य में कल्पना तत्व

डॉ0 आशा वर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
डी0बी0एस0 कालेज, कानपुर

साहित्य–शास्त्र में काव्य के चार तत्व स्वीकार किये गये हैं – रागतत्व, बुद्धितत्व, शैलीतत्व तथा कल्पना तत्व। इनमें से 'कल्पना' की महत्ता विशेश रूप से स्वीकार की गई है, क्योंकि कल्पना ही वह विलक्षण शक्ति है जिसके आश्रय से कवि अपने काव्य में प्रत्यक्ष और परोक्ष जगत के मानसिक चित्र उकेरता है। यह कल्पना कल्पवृक्ष तुल्य मनोकूल परिस्थिति प्रस्तुत करके कवि की रचना को सजीव तथा मार्मिक बनाया करती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि ''जिस प्रकार भक्ति के लिये उपासना या ध्यान की आवश्यकता होती है उसी प्रकार भावों के प्रवर्तन के लिये भावना या कल्पना अपेक्षित होती है।''[1] अतः काव्य में भावों का सुष्ठु संगुम्फन एवं सह्रदयों के ह्रदयाल्हादकारी रस–विधान के लिये कल्पना–शक्ति का परिपुश्ट एवं परिपक्व होना नितान्त आवश्यक है।

पन्त जी की सम्पूर्ण कविता का मेरुदण्ड उनकी उर्वरा कल्पना शक्ति है। पन्त कोमल तथा सुकुमार कल्पना के कवि हैं। उनकी यह कल्पना सर्वथा अजेय, अपराजित, अलौकिक एवं अद्भूत है, वह नवनवोमेषशालिनी हैं और नूतन सृश्टि विद्यायिनी हैं। अपनी इसी अनुपम एवं अप्रतिम कल्पना के सहारे पन्त जी ने प्रकृति की अत्यन्त मनोरम झाकियाँ अंकित की हैं। कवि पंत की कल्पना कोमलता का झीना–झीना, सहज–सचिक्कण आवरण पहनकर प्रस्फुटित हुई है। उनकी कल्पना के कोमल होने का सबसे बड़ा कारण यह है कि उसमें सदैव वेदना कसकती रहती है, जिससे कवि के ह्रदय में करुणा का सागर हिलोर लेता रहता है, उसकी कठोरता तथा क्लिष्टता जाती रहती है और वह आँसुओं से परिपूर्ण सिसकते हुए मधुर एवं कोमल गाना गाता रहता है–

''कल्पना में कसकती वेदना
अश्रु में जीता सिसकता गान है।''[2]

पंत जी की –वीणा से लेकर 'लोकायतन' एवं 'चिदम्बरा' तक की समस्त रचनाओं का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि पन्त में अनुभूति की अपेक्षा कल्पना का प्राधान्य है, उसमें रागतत्व की प्रबलता नहीं है, अपितु बौद्धिकता का प्राध्यान्य है और इस बौद्धिकता का संचालन कल्पना शक्ति कर रही है। कविवर बच्चन ने भी 'पल्लव' की भूमिका में कहा है–''पन्त कल्पना के गायक हैं, अनुभूति के नहीं–इच्छा के गायक है–वासना, तीव्रतम इच्छा के नहीं।''[3] किन्तु कवि की इन सभी रचनाओं में यह कल्पना कहीं क्लिष्ट, कहीं दूरागढ़, कहीं मधुर एवं कहीं रंगीन नहीं दिखाई देती, अपितु अधिकांश स्थलों पर उसमें कोमलता एवं सुकुमारता का ही प्राध्यान्य दृश्टिगोचर होता है।

कवि पन्त ने अपनी कल्पना का आश्रय लेकर प्रकृति के रम्य, सुकुमार तथा सजीव चित्र अंकित किये हैं। कवि पंत ने स्वयं ही कहा है कि ''ऊषा, सन्ध्या, फूल, कोयल, कलख, मर्मर, ओसों के वन और नदी–निर्झर मेरे एकाकी किशोर मन को सदैव अपनी ओर आकर्षित करते रहे हैं और सौन्दर्य के अनेक सद्यःस्फुट उपकरणों से प्रकृति की मनोरम मूर्ति रचकर मेरी कल्पना समय–समय पर उसे काव्य में प्रतिष्ठित करती रही है।''[4] कवि पन्त की इन कल्पनाओं के पीछे सघन संवेदना का रस है। उसने नौका विहार करते हुए विभिन्न दृश्यों को जिस रूप में देखा उनको लेकर इस कविता में कल्पना की झड़ी लगा दी है। कवि ने गंगा की रुपहली रेती देखकर यह उद्भावना की है कि जैसे सीपी पर मोती जगमगा रहा है –

''सिकता की सस्मित सीपी पर मोती सी ज्योत्सना रही विचर।''[5]

इसी प्रकार गंगा की प्रवहमान तरंगों में प्रतिबिम्बित चन्द्र और तारकों को लक्ष्य करके कवि एक ऐसी लतिका की कल्पना करता है, जो फेनिल फलों से लदी हुई है –

"लहरों की लतिकाआं में खिल
सौ–सौ शशि सौ–सौ उडु झिलमिल।"[6]

पंत जी ने लहरों की गति, ध्वनि और उसके बाह्य आवर्त पर प्रतिबिम्बित आकृतियों के सम्बन्ध में न जाने कितनी कल्पनायें कर डाली हैं। पन्त जी ने एक स्थल पर शुक्र को ऊषा के स्वर्ण मुकुट पर जड़े हुए हीरे की उपमा दी है। यहाँ कवि को चन्द्र किरणों चाँदी के साँपों–सी डिलमिलाती हुई प्रतीत होती है –

"सामने शुक्र की छवि झलमल, पैरती परी–सी जल में कल"[7]
तथा– *चाँदी के साँपों सी रलमल नाचती रश्मियाँ जल में चल"*[8]

पंत जी की सौन्दर्य चेतना मुख्यतः कल्पना पर आधारित रही है। अपनी एक स्वीकारोक्ति के अनुसार उनका कवि आठों याम कल्पना में मग्न है। वे एक स्थूल दृश्य को देखकर तरह–तरह की सूक्ष्म कल्पनाएँ कर लेते हैं।

हिम शिखरों पर वायु के चलने से वनस्पतियों में परस्पर जो रगड़ होती है, उससे तरह–तरह की ध्वनियाँ निकल पंत जी कल्पना कर रहे हैं, जैसे यह वायु भेदों को चराने वाला चरवाहा है। यह टकराने वाली ध्वनि वंशी की ध्वनि है, झूमते हुए बादल मेंमनों जैसे हैं कवि के शब्दों में –

"शिखर पर विचर मरुत रखववाल वेणु में भरता था जब स्वर
मेमनों में मेघों के बाल कुहकते थे प्रमुदित गिरि पर।"[9]

पंत जी ने बादल को देखकर साठ उत्प्रेक्षायें दी हैं। चाँदनी, छाया आदि के वर्णन में भी उन्होंने कल्पनाओं की झड़ी लगा दी है। 'छाया' का उदाहरण अधोलिखित है जिसमें कवि ने छाया का मानवीकरण करते हुए कितनी सुन्दर, सजीव एवं सुकुमार उपमाओं की योजना की है। प्रकृति का यह मानवीकरण उच्चकोटि का है –

"गूढ़ कल्पना की–सी कवियों की अज्ञाता के विस्मय–सी
ऋषियों के गंभीर हृदय–सी, बच्चे की तुतले भय–सी।"[10]

इसी प्रकार कवि ने हिमालयी प्रकृति के विभिन्न रूपों का साक्षात्कार किया है। पर्वत की चोटी और बादलों के मध्य होने वाली क्रीड़ा को कवि शैल में जलद जलद में शैल कहकर विचित्र करते हैं।

"अवनि अंबर के वे खेल, शेल में जलद जलद में शैल।"[11]

ग्राम्यांचल की प्रकृति पंत जी को बहुत प्रिय रही है। उन्हें हरियाली से भरा गाँव मरकत के डिब्बे सा प्रतीत होता है –

"मरकत डिब्बे सा खुला ग्राम जिस पर नीलम नभ आच्छादित।"[12]

कवि ने नीलाकाश को उसका ढक्कन मान है।

प्रकृति के भिन्न–भिन्न रूपों के माध्यम से पन्त जी ने अपनी सौन्दर्य चेतना को वाणी दी है। गंगा की साँझ का वर्णन करता हुआ कवि अस्त होते हुए सूर्य को ताम्रकलश की उपमा देता है। बिखरे हुए भूरे बादलों को कवि विहग पंख और धेनु त्वचा की उपमा देता है। अस्त होते सूर्य को अरुण गोलक, जलधारा पर पड़ते हुए उसके बिंब, सन्ध्या समीर और उसकी तरंगों द्वारा प्रवाहित कपांयमान घंटा ध्वनि कवि को भाव विह्वल बना देती है। उसके शब्दों में –

"सिमटा पंख शाम की लाली जा बैठी अब तरु शिखरों पर
ताम्र पर्ण पीपल से शतमुख झरते स्वर्णिम चंचल निर्झर।
ज्योति स्तम्भ–सा धौंस सरिता में सूर्य क्षितिज पर होता ओझल
वृहद जिह्व विश्लथ केचुल सा लगता चितकबरा गंगा जल।"[13]

पंत जी ने अस्त होते हुए सूर्य की अन्तिम किरण तक को लक्ष्य किया है, जो कि वृक्षों, शिखरों और पुलिन को पार करती हुई अन्तरिक्ष में खो जाती है–

''अब हुआ सान्ध्य स्वर्णाभ नील
गंगा के चल जल में निर्मल,
कुम्हला किरणों का रक्तोथल
है मूँद चुका अपने मृदु जल।''[14]

यहाँ कुम्हलाए हुए लाल कमल की कल्पना की गयी है और उसे स्वर्ण पक्षी के रूप में चित्रित किया गया है। इसी प्रकार वृक्षों और लताओं पर लहराते हुए पत्तों को देखकर कवि पंत जी कल्पना करते हैं मानो निर्झर बह रहे हैं। 'सोनजुही' कविता में उन्होंने उसे 'पल्लवदेही' कहा है और हिलती हुई डालियों को निर्झर कहा है–

उद्‌भिज जग की सी निर्झरिणी
हरित नीर बहती सी टहनी।''[15]

पंत जी की ये कल्पनाएँ बौद्धिकता की देन नहीं हैं। न इन्हें ऊहा और उक्ति चमत्कार की उपजह कहा जा सकता है। ये कल्पनायें कवि हृदय में संचित अनुभूतियों की देन हैं। पंत जी का भावबोध तथा रसबोध परस्पर पूरक रहा है। वे जैसा जो देखते हैं उस पर चिन्तन करते हुए खो जाते हैं। अपने आँगन में खिली सोनजुही को देखकर कवि के अन्तर्मन में नाना प्रकार की उद्‌भावनायें सुगबुगाने लगती हैं। उसे आँगन के बाड़े पर चढ़कर, कंगूरे पर कुहनी टेके हुए मुस्कराती दिखती है। कभी हरी परी, कभी चौकड़ी भरती चंचल हिरनी तथा कभी मुग्धा जैसी दिखती है –

आँगन के बाड़े पर चढ़कर
दारू खभ को गलबॉही भर
कुहनी टेक कूँगूरे पर
वह मुस्काती अलवेली
दुबली पतली देह लतर, लोनी लम्बाई
प्रेम डोर–सी सहज सुहाई।''[16]

पंत जी की कल्पनायें अत्यन्त हृदयस्पर्शी हैं। इन्होंने प्रकृति के अत्यन्त सजीव तथा सुकुमार चित्र अंकित किये हैं जिनमें प्रकृति की धड़कन, स्पंदन, कंपन एवं सिहरन की मधुर ध्वनि स्पष्ट सुनाई पड़ती है, क्योंकि कवि ने प्रकृति को एक सजीव तथा सचेतन नारी के रूप में देखा है, इसके सभी हृतकंपनों को अत्यन्त समीप जाकर सुना है तथा अपनी कोमल कल्पना के द्वारा उसके सभी रूपों की मधुर झांकियाँ अंकित की हैं।

कविवर पंत जी ने अपनी कोमल कल्पना का आश्रय लेकर भारतीय नारी के सहज एवं स्वाभाविक सौन्दर्य की अत्यन्त मार्मिक झाँकी प्रस्तुत की है। कवि ने नारी को अत्यन्त सुशमा से परिपूर्ण माना है और उसके प्रति उदार तथा उदात्त भावनाएँ प्रस्तुत करते हुए उसे देवि, माँ, सहचरि प्राण आदि रूपों में देखा है साथ ही उसका चित्रण अलौकिक रूप सौन्दर्यमयी रूप में कर अपनी कोमल कल्पना को इस प्रकार व्यक्त किया है –

तुम्हारे छूने में था प्राण, संग में पावन गंगा, स्नान,
तुम्हारी वाणी में कल्याणि, त्रिवेणी में लहरों का ज्ञान।''[17]

भाव–निरूपण में भी पंत जी की कल्पना द्वितीय है इसी कल्पना का आश्रय लेकर कवि ने 'ग्रन्थि काव्य में प्रेम–वेदना का जो भावोन्मादपूर्ण चित्रांकन किया है वह अत्यन्त सजीव तथा सप्राण है। उदाहरण दृश्टव्य है –

''शैवलिनि! आओ मिलो तुम सिंधु से
अनिल! आलिंगन करो तुम गगन का।
चन्द्रिके! चूमों तरंगों के अधर,

उडगणों? गाओ मधुर वीणा बाज।
पर ह्रद! सब भाँति तू कंगाल है।''[18]

इस उपरोक्त पद्य में कवि की निराशा, हताशा, पीड़ा, वेदना प्रकट होती है किन्तु वास्तविकता यह है कि कवि की कल्पना द्वारा पस्तुत एक करुण चित्र है, जिसमें काल्पनिक अनुभूति भी अपनी भावुकता, कोमलता एवं सुकुमारता के कारण अत्यन्त सजीव एवं यथार्थ सी प्रतीत होती है।

पंत जी ने साम्य प्रधान रचनाओं में कहीं–कहीं बहुत ही सुन्दर आध्यात्मिक कल्पना की है, जैसे छाया के प्रति इस कथन में –

हाँ सखि! आओ बॉह खोल हम लगकर गले जुड़ा लें प्राण।
फिर तुम तम में, मैं प्रियतम में हो जावें द्रुत अंतर्धान।।''[19]

अर्थात् कवि कहता है कि छाया रूप जगत्! और मैं तुम्हें प्रेम कर लूँ।

फिर तुम कहीं और मैं कहाँ। मैं अर्थात् मेरी आत्मा तो उस अनंत ज्योति में मिल जायेगी और तुम अव्यक्त प्रकृति या कहा शून्य में विलीन हो जाओगी। आध्यात्मिक भावना जहाँ भी है वह स्वाभाविक है।

सारांश यह है कि कविवर पंत ने अनुभूति की कमी को अपनी कल्पना से परिपूर्ण करके सुन्दर एवं सजीव काव्य का सृजन किया है। उनके काव्य में समस्त शब्द – चित्रों, अलंकारों, छन्दों आदि में कोमल एवं मधुर कल्पना का ही प्राधान्य दृष्टिगोचर होता है। अपनी इसी कल्पना की कोमलता के कारण पन्त जगत के भयंकर एवं भीषण रूप के चित्र अंकित नहीं कर पाये हैं। प्रायः सुकुमार एवं मधुर जीवन के चित्रों में ही पूर्णतया रमें रहे हैं। कल्पनाजीवी होने के कारण पंत जी कल्पना के सत्य को ही सबसे बड़ा सत्य मानते रहे हैं और उसी को ईश्वरीय प्रतिभा का अंश स्वीकार करते रहे हैं।

पंत की कल्पनाशील प्रवृत्ति ही प्रायः उनके विचार–सागर में मन्थन करती हुई उन्हें छायावाद से प्रगतिवाद की ओर, प्रगतिवाद से अन्तश्चेतनावाद की ओर तथा अन्तश्चेतनावाद से मानवतावाद की ओर उन्मुख करती रही है। आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी ने ठीक ही कहा है – ''कल्पना ही पंत जी की कविता का मेरुदण्ड, उसकी काव्य सृष्टि का मापदण्ड है। कोरी कल्पना की बाल्य सुलभ रंगीन उड़ानों से लेकर अत्यन्त तल्लीन और गहन कल्पना, अनुभूतियों के चित्रण में पन्त जी का विकासक्रम देखा जा सकता है।''[20]

अतः यह कहने में संकोच नहीं किया जा सकता कि कवि पंत गहन अनुभूति एवं मधुर भावों के कवि नहीं, अपितु कोमल कल्पना के कवि हैं।

सन्दर्भ

1. चिन्तामणि (भाग–1), आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, इण्डियन प्रेस प्राइवेट लि0, इलाहाबाद, पृ0 219–220
2. पल्लव सुमित्रानन्दन पंत, राजकमल प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 7
3. पल्लव की भूमिका, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पृ0 – 28–29
4. पंत का काव्य सौन्दर्य, डॉ0 रेवती वर्मा, अवलोकन प्रकाशन, कुरुक्षेत्र, पृ0–10
5. सुमित्रानन्दन पंत का साहित्य, डॉ0 राम सजन वर्मा, समता प्रकाशन, हिसार, पृ0–201
6. वही, पृ0–201

7. वही, पृ0–202
8. वही, पृ0–202
9. वही, पृ0–100
10. पल्लव, सुमित्रानन्दन पंत, राजकमल प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0–34
11. सुमित्रानन्दन पंत के काव्य का आलोचनात्मक अध्ययन, डॉ0 रेखा खरे, साहित्य प्रकाशन, ग्वालियर, पृ0–20
12. वही, पृ0–35
13. वही, पृ0–40
14. वही, पृ0–52
15. वही, पृ0–53
16. पल्लव, सुमित्रानन्दन पंत, राजकमल प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0–72
17. सुमित्रानन्दन पंत के काव्य का आलोचनात्मक अध्ययन, डॉ0 रेखा खरे, साहित्य प्रकाशन, ग्वालियर, पृ0–65
18. वही, पृ0–72
19. हिन्दी साहित्य – बीसवीं शताब्दी, डॉ0 रामलाल राही, समता प्रकाशन, जयपुर, पृ0–115

❑❑

8

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के काव्य में मानव मूल्य

डॉ0 ममता गंगवार
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
आ0न0दे0न0नि0म0 महाविद्यालय, हर्ष नगर, कानपुर

आधुनिक युग को विज्ञान का युग कहा जाता है। जीवन के सभी पक्षों पर वैज्ञानिक प्रगति का व्यापक प्रभाव पड़ा है। जीवन के लिए सारी सुख–सुविधाएँ मुहैया कराने का एक मात्र श्रेय विज्ञान को है। विज्ञान की नित नई खोजों के कारण मनुष्य के बौद्धिक पक्ष का अत्यधिक विकास हुआ है। वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरूप ही वैश्विक स्तर पर भी मानवीय दूरियाँ, भौतिक रूप से कम हुई है। विज्ञान ने जहाँ एक ओर मानवीय कल्याण के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया वहीं दूसरी ओर मानव के अन्तः पक्ष को भी बाधित किया है।

''मूल्य का सामाजिक परिवेश से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। समाज में निरन्तर परिवर्तन होते रहते है। समाज सापेक्ष मूल्यों का ही महत्व है। मूल्य का नैतिकता से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है और नैतिकता समाज–निरपेक्ष नहीं होती मूल्य का सीधा सम्बन्ध नैतिकता से है। जहाँ नैतिकता है वहीं मूल्य है और वहीं समाज के परिष्कृत, विकसित और समृद्ध होने की सम्भावनाएँ है।''[1]

सूर्यकान्त त्रिपाठी का मूल्य बोध अपने सम–सामयिक रचनाकारों की अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक गहन तलस्पर्शी था। उनमें एक समृद्ध साहित्य बोध और सम्पन्न जीवन दृष्टि थी। भावपक्ष और कलापक्ष दोनों क्षेत्रों में नवीन मूल्यों का सृजन कर नूतन कवि प्रतिभा का परिचय दिया है, जिसे सम्पूर्ण हिन्दी–जगत विस्फारित नेत्रों से देखता रह गया है। इन्हीं नये मूल्यों के कारण, द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मक और वस्तु परक काव्य के रसास्वादन के अभ्यस्त साहित्यप्रेमियों ने उनके काव्य का उपहास किया, परन्तु निराला जैसा धाकड़ और ओजस्वी रचनाकार भला कहाँ दबने वाला था। अन्ततः उनकी कविता की धाक जम गयी।

निराला जी ने अपने काव्य में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की है। साथ ही उनका सम्बन्ध राष्ट्र के सांस्कृतिक नव जागरण से हो रहा है। अतः सांस्कृतिक मूल्य उनके काव्य में प्रचुर मात्रा में मिलते है। उन्होंने अपने काव्य में नैतिक मूल्यों की स्थापना की है जो मानव जीवन को एक ओर शक्ति, गति प्रदान करते है तो दूसरी ओर मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करते हैं निराला में एक प्रकार का औदात्य है, गम्भीर्य है जो उनकी कविता में कहीं भी हल्कापन नहीं आने देता है। उनके इस औदात्य के कारण गम्भीर दार्शनिक चिन्तन हो सकता है, मानसिक संगठन का नैसर्गिक स्वरूप और इसलिए उनमें कल्पना और भावना की अपेक्षा बुद्धित्व की प्रधानता है।''[2]

निराला का नैतिक बोध अत्यन्त सम्पुष्ट था उनकी सौन्दर्य प्रधान कविताओं की परिसमाप्ति प्रायः दार्शनिक उक्तियों में हुई है, जिससे कविता में कही भी अनैतिकता का लांछन नहीं लगने पाया है यथा –

''पाती अमर प्रेमधाम, आशा की प्यास एक रात में भर जाती है,
सुबह की आली, शेफाली झर जाती है।''[3]

परन्तु ध्यातव्य है कि निराला की नैतिकता द्विवेदी युगीन नैतिकता से भिन्न है। द्विवेदी युगीन नैतिक मूल्य स्थूल और शुद्धतावादी रहे है जबकि निराला के नैतिक मूल्य सूक्ष्म सहज मानवीय स्पन्दन से ओत–प्रोत है।

नैतिक मूल्यों के आग्रह के कारण ही निराला ''स्वार्थ समर हारते रहे'', परन्तु 'क्षीण का अन्न कभी नहीं छीना'। वास्तव में नैतिक मूल्यों के ह्रास से उन्हें गहरा आघात लगा जिसके परिणाम स्वरूप उन्होंने सामाजिक–सांस्कृतिक स्तर पर व्याप्त विसंगति कृत्रिमता और विश्रृंखलता पर करारा प्रहार किया। व्यंग्य की दुधारी तलवार नैतिक मूल्यों

की स्थापना के लिए चलाई है। निराला की कविता न तो अति–शुद्धतावादी और पवित्रतावादी दृष्टि का पोषण करती है और न त्याग एवं विराग का। उन्होंने भोग और योग का समुचित समन्वय किया है। कवि होने के नाते उन्हे जीवन के सौन्दर्य, माधुर्य और आनन्द के प्रति अत्यधिक आकर्षण है और वह प्रकृति तथा जीवन के अत्यधिक आकर्षण है और वह प्रकृति तथा जीवन के कण–कण से परिचित होना चाहते है। परन्तु आत्म संयम वैराग्य, तप और त्याग के प्रति भी वैचारिक दुर्बलताओं को झकझोरा है; परन्तु तप एवं भोग के प्रति समान आकर्षण उनके साहित्य को विलक्षण बना देता है।[4]

'महाराज शिवाजी का पत्र; राम की शक्ति पूजा और तुलसीदास जैसी कविताओं में निराला ने सांस्कृतिक पुनरूत्थान के माध्यम से नैतिक बौध पैदा करने का प्रयास किया है। 'शिवाजी का पत्र' नामक कविता में देश के नैतिक पतन का चित्र बखूबी अंकित किया है, राजा जयसिंह औरंगजेब का साथ देने के लिए देशवासियों का गला काटने को तैयार हैं इससे अधिक शर्मनाक बात और क्या हो सकती है? मनुष्य के नैतिक पतन का मूल्य कारण उसकी यशोलिप्सा है जो मृग–मरीचिका के समान कभी पूरी नहीं होती है यथा –

''हाय री यशोलिप्सा। अन्धे की दिवस तू – अन्धकार रात्रि–सी
लपट में झपट, प्यासे मरने वाले, मृग की मरीचिका है।''[5]

'राम की शक्तिपूजा' – में निराला जी ने अन्याय के विरूद्ध राम का संघर्ष दर्शाया है और अन्ततः नैतिकता की विजय दिखाई है। 'तुलसीदास; कविता में मध्ययुगीन पृष्ठभूमि में आजादी के प्रश्न को उठाया है। मुगल साम्राज्य के आधिपत्य के कारण भारतीय जनता का जो सांस्कृतिक पतन चित्रित किया है वह वस्तुतः अंग्रेजी शासन के समय भारतीय जनता के नैतिक पतन का ही चित्र है। कालिंजर का गढ़ जो कभी वीरो के दुर्ग के रूप में प्रसिद्ध था आज वही बन्दीग्रह के समान बना हुआ है। शौर्य वीरता के प्रतीक योद्धा इसमें बन्द है; जबकि किन्नर इस सबसे बेफिक्र बाहर नृत्य गान में मस्त है; यथा –

''वीरों का गढ़, वह कालिंजर सिंहों के लिए आज पिंजर,
नर है भीतर बाहर किन्नरगण गाते है।''[6]

निराला सांस्कृतिक जागरण के अग्रदूत कहे जाते है। रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती ने निराला की सांस्कृतिक निष्ठा को और अधिक दृढ़ता प्रदान की है। वे संस्कृति का अर्थ केवल पुरातनता और परम्परा से चिपके रहना नहीं चाहते बल्कि उसमें नवीनता का भी उतना ही प्राधान्य है जितना कि पुरातनता का, परिणाम स्वरूप उनकी कविता में प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा के साथ–साथ नये मूल्यों के स्वर भी ध्वनित होते है।

भारतीय संस्कृति में शक्ति, सरस्वती और लक्ष्मी का उच्चतम स्थान है। निराला ने शक्ति की उपासना अपने काव्य में जगह–जगह पर की है 'राम शक्ति पूजा' के अतिरिक्त कई कविताओं में शक्ति की आराधना की है जो कर्म एवं पौरुष की देवी है। 'एक बार बस और नाच तू श्यामा' कविता ऐसी है जिसके माध्यम से निराला प्राचीन का विनाश और नूतनता का निर्माण करना चाहते है। सरस्वती का पूजन भी उन्होंने कई कविताओं में किया है। 'विधवा' और 'बहू' में भी निराला ने नारी गरिमा और मर्यादा के अत्यन्त भव्य चित्र अंकित किए है। 'कुकुरमुत्ता' कविता के माध्यम से निराला सर्वहारा वर्ग का पोषण करते हैं तथा शोषित, पीड़ित मानवता के प्रति गहन सहानुभूति रखते है। 'बेला' और 'नये पत्ते में कवि का स्वर पूर्णतया जनवादी हो गया है। इतना ही नहीं स्थान–स्थान पर क्रान्ति का आह्वान करता है।[7]

मानवता और सार्वभौम करूणा के फलस्वरूप ही निराला 'भिक्षुक' और 'वह तोड़ती पत्थर' जैसी सहानुभूति

पूर्ण रचनाएं कर सकें। वह मानवता के सजग प्रहरी है। समग्रता निराला का काव्य जहाँ एक ओर वेदान्तिक संस्कृति को परिभाषित करता है वहीं दूसरी ओर आधुनिक संस्कृति की उपेक्षा नहीं करता है। डॉ0 भट्नागर ने ठीक ही कहा हैं कि सनातन भारतीय संस्कृति के व्याख्याता होते हुए भी वह हमारी नवोदित सामाजिक संस्कृति के कवि बन सके है।''[8]

निराला के व्यक्तित्व में राष्ट्रीय चेतना कूट–कूट कर भरी थी देश के जनसाधारण की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को देखकर अत्यन्त व्यथित एवं दुःखी रहा करते थे। देश की स्वाधीनता के लिए जो आन्दोलन चल रहे थे उनमें निराला पूर्णतः सक्रिय रहे। उन्होंने अपने जिले के किसानों को संगठित कर उनका नेतृत्व किया। निराला भारतीय और विश्व राजनीति के बारे में जो सामग्री मिलती उसे ध्यान से पढ़ते थे, जो देखते सुनते थे, उससे पढ़ी हुई सामग्री की तुलना करते थे, फिर अंग्रेजी राज और भारत के बारे में अपने निष्कर्ष निकालते थे। तब स्वाधीनता प्रेम उनके साहित्य की प्रेरणा हो तो इसमें आश्यर्च नहीं।[9]

निराला की स्वाधीन चेतना के विषय में डॉ0 राम विलास शर्मा का मत है कि सन् 1920 से 1947 तक स्वाधीनता प्राप्ति का आकाँक्षा उनके काव्य की मूल प्रेरणा है। हिन्दी में उनकी पहली प्रकाशित कविता जन्मभूमि पर है – जन्मभूमि मेरी है जग महारानी'[10]

इसी प्रकार निराला ने इलाहाबाद के उन विद्यार्थियों की स्मृति में एक गीत लिखा, जिन्होंने सन् 1946 में अंग्रेजी सरकार के दमन का वीरता पूर्वक सामना किया था। यथा –

''युवजनों की है जान, खून की होली जो खेली।
पायी है लोगो ने मान, खून की होली जो खेली।[11]

निराला ने अपने काव्य में उन राजनेताओं की भी बड़ी अच्छी खबर ली जो देश की जनता के प्रति ईमानदार एवं निष्ठावान नहीं रहे यथा –

'महँगाई की बाढ़ बढ़ आयी, गाँठ की छूटी गाढ़ी कमाई।
भूखे–नंगे खड़े शरमायें, न आये वीर जवाहर लाल।[12]

राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से निराला की 'वीणावादिनी वर दे' कविता अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस कविता में कवि 'स्वतन्त्र रब' भारत में भरने की याचना सरस्वती से करते हैं। निराला भारतीय जन–मानस में आजादी की उत्तेजना भरनें का सफल प्रयास करते है यथा –

''शेरो की माँद में, आया है आज स्यार – जागो फिर एक बार''[13]

इसी प्रकार सन् 1920 में रची निराला की 'मातृ–वन्दना' कविता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसमें कवि ने नर जीवन के सभी स्वार्थों को भारतमाता पर न्यौछावर कर देने का वर माँगा है साथ ही माँ से ऐसी शक्ति प्रदान करने की प्रार्थना की है, जिससे कि वह यमराज के भी तीक्ष्ण बाण सह सके। अन्तिम पंक्तियों में विशेष रूप से कवि का उदात्त राष्ट्रीय चेतना का स्पष्ट पता चलता है –

क्लेदयुक्त अपना तन दूँगा,
मुक्त करूँगा तुझे अटल,
तेरे चरणों पर देकर बलि
सकल श्रेय–श्रम संचित फल।[14]

निराला के राष्ट्रीय मूल्य बड़े व्यापक है वह अखिल मानवता का संस्पर्श करते है। उनकी राष्ट्रीय धार्मिक, साम्प्रदायिक अथवा जातीय संकीर्णता से परे है।

इतना ही नहीं सामाजिक आर्थिक मूल्यों की दृष्टि से निराला अत्यन्त समृद्ध है। समाज में ऊँच, नीच,

छोटे–बड़े, कुलीन–अकुलीन जैसी संकीर्ण मनोवृत्तियों का वह जीवन पर्यन्त विरोध करते रहे। इस दृष्टि से उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में एक रूपता है। सामाजिक आर्थिक शोषण, असमानता और अन्याय के विरुद्ध निराला जीवन पर्यन्त लड़ते रहे और इस दृष्टि से वे हिन्दी के अकेले रचनाकार हैं।

मानव मूल्यों की दृष्टि से निराला का काव्य अपने समसामयिक रचनाकारों की तुलना में कहीं अधिक समृद्ध और सम्पुष्ट है। छायावाद ही नहीं सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में मूल चेतना से सम्प्रक्त ऐसा कवि ढूढ़ने से भी नहीं मिलेगा। उच्चतर मानवीय मूल्यों की सुन्दर और विशद प्रतिस्थापना इस काव्य में स्पष्टतः परिलक्षित होती है। करुणा, मैत्री और विश्व बन्धुत्व के साथ ही युद्ध और भोगवाद का विरोध तथा पाशुविकता से मुक्ति का आह्वान छायावादी काव्य की प्रमुख्य विशेषता है।[15]

इस प्रकार हम कह सकते है कि निराला के काव्य में उपलब्ध धार्मिक–आध्यात्मिक मूल्यों का आधार मानवीय सेवा को अपनाने का तीव्र उद्घोष है। इसी कारण निराला यहाँ सन्तों की श्रेणी में आ बैठते है। भक्ति की भाव धारा अखिल भारतीय लोक मानव कल्याण से जुड़ी है।

सन्दर्भ

1. लेखक और परिवेश : सं0 डॉ0 वचन देव कुमार, पृष्ठ 12
2. आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी,वाणी वितान वाराणसी1965–कवि निराला, पृष्ठ 24–25,
3. निराला, परिमल, पृष्ठ 146, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1978
4. डॉ0 राम रतन भट्नागर : निराला और नव जागरण, पृष्ठ 120
5. निराला, परिमल, पृष्ठ 167–168
6. निराला, तुलसीदास, पृष्ठ 13
7. निराला के काव्य में मानव मूल्य और दर्शन : डॉ0 देवेन्द्र नाथ, पृष्ठ 184
8. डॉ0 राम रतन भट्नागर – निराला और नवजागरण, पृष्ठ 214
9. डॉ0 रामविलास शर्मा – निराला की साहित्य साधना–2, पृष्ठ 14
10. डॉ0 रामविलास शर्मा – निराला की साहित्य साधना–2, पृष्ठ 147
11. निराला : नये पत्ते, पृष्ठ 104 लोक भारतीय प्रकाशन इलाहाबाद 1973
12. निराला : वेला, पृष्ठ 54
13. निराला : परिमल, पृष्ठ 157
14. निराला : परिमल, पृष्ठ 22
15. डॉ0 संतोश कुमार तिवारी – छायावादी काव्य की प्रगतिशील चेतना, पृष्ठ 43

अन्य सन्दर्भ

1. डॉ0 धनंजय वर्मा : निराला काव्य और व्यक्तित्व : विद्या प्रकाशन मन्दिर, दिल्ली 1965
2. डॉ0 राम विलास शर्मा : राग–विराग : लोकभारती प्रकाशन : इलाहाबाद 1979
3. डॉ0 राम रतन भट्नागर : निराला और नवजागरण : साथी प्रकाशन : सागर 1965
4. डॉ0 राम विलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना भाग–1, 2 : राजकमल प्रकाशन : दिल्ली
5. डॉ0 संतोष कुमार तिवारी : छायावादी काव्य की प्रगतिशील चेतना : भारतीय ग्रन्थ निकेतन : दिल्ली 1974

❑❑

9

उदात्त समाज दृष्टा – कहानीकार कौशिक

डॉ0 गीता अस्थाना
एसो0 प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्षा – हिन्दी विभाग
जे0डी0वी0एम0 पी0जी0 कालेज कानपुर

तू नये सत्य के लिये नित्य कर मन– मंथन।
ओ, स्वर मेरे ! तू आगत की अनुगूँज न बन ।।

वैचारिक मन–मंथन द्वारा ही शाश्वत व चिरन्तन सत्य के अस्तित्व का अमृत–पान संभव है। यही सत्यं–शिवम्–सुंदरम् की चरम अभिव्यक्ति है। सत्य, शिव एवं सौन्दर्य से आप्लावित साहित्य ही श्रेय–प्रेय से सुवासित हो लोक पावन बनता है। रामधारी सिंह दिनकर ने सत्यम्–शिवम्–सुंदरम को साहित्य का त्रिविध ऐश्वर्य कहा है, जिसमें से किसी एक को भी विलग नहीं किया जा सकता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने सत्य और मंगल की सामंजस्य से सौन्दर्य बोध के सृजन की बात कही है– ''सत्य के साथ मंगलमय के पूर्ण सामंजस्य को यदि हम देख सकें, तो फिर सौन्दर्य हमारे लिए अगोचर नहीं रहता।''[1]

साहित्य के लिए लोक मंगल अर्थात् शिव तत्व सर्व प्रधान होता है और उसी का परिणाम सत्य अपने वास्तविक रूप में सुंदर भी होता है। इस प्रकार साहित्य सृजन के लिए तीन परम सहायक तत्व हैं–

1. अनुभूत्यात्मक सत्य की अभिव्यक्ति।
2. लोक मंगल की भावना।
3. सौन्दर्यानुभूति।

इन्हीं तत्वों के आधार पर साहित्य सर्जक जीवन व जगत से तादात्मीकरण और आत्म–मंथन करता हुआ जीवन के कटु सत्य की अभिव्यक्ति लोक मंगलकारी उद्देश्य के साथ करने हेतु छटपटाता है, तभी सृष्टिकर्ता लोकहितकारी सर्जक की भांति यत्र–तत्र सौन्दर्यात्मकता का अनुभव करता है। अस्तु साहित्य का प्रमुख उद्देश्य सत्यानुप्राणित लोकमंगल है जो अनुरंजन एवं सौन्दर्य से युक्त होगा ही।

गद्य साहित्य की विभिन्न विधाओं के समान 'कहानी' विधा का उद्भव और विकास मानव सभ्यता के विकास के समानान्तर ही हुआ है। विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में भी 'यम–यमी', 'पुरूरवा–उर्वशी' आदि आख्यानों का वर्णन मिलता है। कथा, आख्यायिका, किस्सा, कहानी आदि विभिन्न उपनामों से जानी जाने वाली यह विधा साहित्य में कहानी के रूप में अपने स्वरूप को परिमार्जित करती विकास के विभिन्न उबड़–खाबड़, टेढ़े–मेढ़े रास्ते को तय करती आज नई कहानी, अकहानी एवं यथार्थवादी आधुनिक कहानी, समकालीन कहानी के रूप में प्रतिष्ठापित हुई है। पाश्चात्य आलोचकों में सर्वप्रथम 'हेनरी हडसन' ने कहानी को परिभाषित करते हुए कहा था– ''लघु कथा में एक मूल भाव होता है। उस मूल भाव का विकास तार्किक निष्कर्षो के साथ लक्ष्य की एकनिष्ठता से सरल व स्वाभाविक ढंग से किया जाता है। बेल्स ने केवल कहानी के आकार को ध्यान में रखते हुए कहा कि उसे इतनी बड़ी होनी चाहिए कि 20 मिनट में आसानी से पढ़ी जा सके। 'सर ह्यूम पोल के अनुसार कहानी में घटनाओं को इस प्रकार चित्रित किया जाना चाहिए कि आशातीत विकास दिखाई पड़े।'[2]

हिन्दी कहानीकारों में इलाचन्द्र जोशी के अनुसार – ''इस सुवृहद चक्र (जीवन) की किसी विशेष परिस्थिति को, स्वाभाविक गति को प्रदर्शित करने में ही कहानी की विशेषता है।''[3] जैनेन्द्र कुमार ने कहा है ''कि कहानी में फार्म मुख्य बात नहीं है, मुख्य है उसका कथ्य।''[4] अज्ञेय के अनुसार–''कहानी जीवन की प्रतिच्छाया है और जीवन

स्वयं अधूरी कहानी है।''[5] निर्मल वर्मा के लिए कहानी अंधेरे में एक चीख है।

''आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी कहानी का आरम्भ सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन काल से माना है। 'इन्दुमती', 'गुलबहार', 'प्लेग की चुड़ैल', 'ग्यारह वर्ष' का समय', पंडित और पंडितानी', 'दुलाईवाली' आदि कहानियाँ सर्वप्रथम क्रमशः सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हुई थीं। हिन्दी कहानी के विकास या उन्मेष काल में मुंशी प्रेमचन्द एवं जयशंकर प्रसाद के उपरान्त ही चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक, पाण्डेय सुदर्शन, बेचन शर्मा उग्र, आचार्य चतुरसेन शास्त्री आदि का आविर्भाव हुआ।''[6] ऊर्दू से हिन्दी में आने वाले लेखको में विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, प्रेमचंद मंडल के कथा लेखकों में प्रमुख हैं। कौशिक जी का जन्म 1891 ई0 में अम्बाला में हुआ था। तदोपरान्त कानपुर ही इनकी साहित्यिक कर्मभूमि रही है। 'चित्रशाला भाग–1', 'चित्रशाला भाग–2' एवं 'कला मंदिर' नामक कहानी संग्रह में इनकी कहानियां संग्रहित हैं। शर्मा जी ने लगभग 300 कहानियों का सृजन किया है। ''मुंशी प्रेमचंद की वैचारिक परम्परा से साम्य रखने वाले कौशिक जी ने भी समाज सुधार को अपनी कहानी कला का लक्ष्य बनाया। आपकी प्रथम कहानी 'रक्षाबंधन' सन् 1913 में प्रकाशित हुई। आपके द्वारा सृजित प्रमुख कहानियों 'गल्प मंदिर', 'ताई', 'इक्केवाला', 'कल्लोल', 'प्रेम प्रतिमा', 'मणि माला', 'खोटा बेटा', 'पेरिस की नर्तकी', 'साध की होली', आदि हैं। इनमें एक ओर सामाजिक संबधों, पारिवारिक मर्यादाओं, भारतीय सांस्कृतिक जीवनमूल्यों एवं परम्पराओं पर प्रकाश डाला गया है, वहीं मानवीय मूल्यों के संरक्षण के साथ साथ जीवन सत्य को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है। मानवीय मूल्यों से ओत प्रोत कौशिक जी की कहानियों में विकृतियों एवं सामाजिक विसंगतियों को दर्शाते हुए उनका निदान प्रस्तुत करना ही सामाजिक सुधार हेतु किया गया सत्प्रयास हैं।''[7]

'ताई' हिन्दी कहानियों में मील का पत्थर मानी जाती है। कतिपय स्मरणीय चरित्रों व पात्रों का सृजन करना कौशिक जी की अपनी कहानियों की विशिष्टता थी। कहानी के पात्रों को वे अपनी कहानियों के माध्यम से इस प्रकार जीवंत करते थे कि पाठक को वर्षों तक वह पात्र स्मरणीय रहे। 'साप्ताहिक जीवन' में इनकी आरम्भिक कथाएं प्रकाशित हुईं थीं। कहानी में सामाजिक समस्याओं, पारिवारिक घटनाओं और उनका मूल्यांकन प्रस्तुत करने वाले आप प्रथम लेखक थे, जिन्होंने आदर्शवाद के उस दृष्टिकोण को चित्रित किया, जो तत्कालीन भारतीय साहित्य की मूल परंपरा थी। समाज के साधारण व मध्यम वर्ग के जीवन का सजीव चित्रण इनकी कहानियों में सहजता से व्यक्त हुआ। कौशिक जी को पारिवारिक जीवन का विशेष ज्ञान था। उन्होंने परिवार के भीतर की गहराई में झांककर अपनी कहानियों में पारिवारिक संवेदनाओं को गंभीरता पूर्वक उजागर करने का नेक व सफलतम् प्रयास किया है। विशेष रूप से 'माता का हृदय', 'खोटा बेटा', 'सुसाहस', प्रतिशोध, 'अन्तिम भेंट', 'शांति' आदि में माता–पिता, पिता–पुत्र, स्त्री–पुरूष के प्रेम संबधों, सास– बहू के वैमनस्य, वृद्धों की पारिवारिक स्थिति और अन्य पारिवारिक संबधों में निहित भावनाओं को चित्रित किया है। उनकी कहानियों में समष्टि रूप से सत्य की संवेदना, विकास की संचेतना, मंगल की भावना और यथार्थ को आत्मसात करने की प्रेरणा अन्तर्निहित है।

सन् 1929–30 के आस–पास प्रकाशित 'माँ' उपन्यास अत्यन्त लोकप्रिय कथा पर आधारित है। इसी क्रम में 'संघर्ष' और 'भिखारिणी' उपन्यासों के कथा क्रम भी पारिवारिक व सामाजिक दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट बन पड़े हैं। अपने रचना काल के 80–85 वर्षों बाद भी जब हम उसे आज पढ़ते हैं तो तत्कालीन यथार्थ, संवेदना और दर्शन की दृष्टि से इनकी ये कृतियाँ अपने काल का अतिक्रमण करती हुई समीचीन व प्रासंगिक बन पड़ी हैं। उपन्यास की कथा नायिका सुलोचना का व्यवहार वास्तव में 'माँ' के गरिमामयी व्यक्तित्व को उजागर करता है। वह एक अशिक्षित और साधारण स्त्री है, जो टूटती बिखरती नहीं है। अमरीक सिंह दीप ने तो कहा है– '' वह अपनी सारी शक्ति, सारी ऊर्जा अपने बड़े बेटे शंभूनाथ पर केन्द्रित कर लेती हैं और उसे अपने सपने, अपने आदर्शों में ढाल कर एक पढ़ा लिखा नेक इंसान बनाकर ही दम लेती हैं।''[8]

कौशिक जी के कथा साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है – परिवार की धुरी व समाज की रीढ़ स्त्री के प्रति

उनकी गहरी चिंतन दृष्टि। स्वतन्त्रता से पूर्व एवं बाद में भी सामन्ती जीवन में विवाहित निःसंतान स्त्री या विधवा की सामाजिक दुर्दशा– जो भोजन वस्त्र के अतिरिक्त पराधीनता का जीवन–यापन करती थीं। संयुक्त परिवारों में अन्तर्कलह, संपत्ति विवाद, सौत डाह आदि अनेक बिन्दुओं तद्‌युगीन स्त्री मन और उसके विचारों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। मुजरा करने वाली स्त्रियाँ कहीं न कहीं सामंत परिवार की उन स्त्रियों से अधिक स्वच्छद और स्वेच्छाचारी थीं, जो पुरूष वर्चस्व की व्यवस्था में तानाशाह और पुरूष प्रधान सामाजिक मानसिकता वाले पतियों द्वारा कुचली जा रही थीं, जिनका सजीव चित्रण कर कौशिक जी ने परिवार, समाज एवं राष्ट्रोत्थान की दिशा में भगीरथ प्रयास किया है। कहानी के मूल कथ्य एवं भावगत सौन्दर्य अनुभूति के कारण कौशिक जी की कहानियाँ अपने समय के कथाकारों से एक सोपान ऊपर की श्रेणी में अपना स्थान रखती हैं। इनकी कहानियों में शिल्पगत वैशिष्ट्य के सन्दर्भ में भाषा सहज, सरल एवं प्रभावोत्पादक होने के साथ–साथ पात्रानुकूल है। कहानियों की शैली के अन्तर्गत वर्णनात्मकता, गतिमयता एवं रोचकता का आधिक्य है। साथ ही पात्र एवं विषय वस्तु के अनुकूल यत्र तत्र कहानियों में हास्य व्यंग का पुट भी सजीव बन पड़ा है।

हास्य एवं विनोद से परिपूर्ण कौशिक जी की कहानियाँ 'चाँद' पत्रिका में दुबे जी की चिट्ठियां, के रूप में प्रकाशित हुई थीं। इस प्रकार सन् 1913 से लेकर सन् 1948 तक हिन्दी कहानी के विकास काल में कौशिक जी ने साहित्य सृजनरत एक साधक तुल्य हिन्दी जगत को वह अक्षयकोष प्रदान किया जिसका अभयपान आज के नए कहानीकारों का मार्ग प्रशस्त करता रहेगा।

वर्तमान प्रतिस्पर्धात्मक परिवेश में जहाँ एक ओर संयुक्त परिवार विलुप्तप्राय हैं, एकाकी परिवार विखण्डित हो रहे हैं, तलाक के आंकड़े बढ़ रहे हैं, वृद्ध माता पिता वृद्धाश्रमों में शरण लेने हेतु विवश हैं, युवा वर्ग मूल्य विहीन हो तनाव ग्रस्त रहते हुए नशे की लत में संलिप्त आत्महत्याओं की ओर प्रवृत्त हो रहा है, सम्पूर्ण मानवता तार–तार होती दृष्टि गोचर हो रही है। समाज में नारी की स्थिति सुदृढ़ हुई है किन्तु विवाह विच्छेद, तीन तलाक के आंकड़े और बढ़ते औद्योगिकीकरण एवं नगरीकरण से नारी जहाँ आर्थिक रूप से संपन्न हुई है वहीं वह स्वयं अपने अस्मिता पर प्रश्न चिन्ह के दायरें में आबद्ध है। भ्रष्टाचार, नैतिक पतन अपनी चरम सीमा पर है– ''ऐसे में मानवीय संवेदनाओं के संपोषक कौशिक जी की लगभग 100 वर्ष पूर्व लिखी कहानियाँ आज प्रासंगिक बन पड़ी हैं। कहानियों के पात्र आज के संत्रास से जूझते मानव को माधुर्य– सुधा का पान करा वह जीवन का संदेश देते हैं।''[9] इस प्रकार मानवीय संवेदनओं का औदात्य रूप पारिवारिक व सामाजिक कटुता को समाप्त कर संबंधों को मधुरता व सहजता के डोर में बांधकर स्वस्थ समाज सृष्टा व दृष्टा के कर्तव्य का निर्वहन ही कौशिक जी के औदात्य पूर्ण मानवीय व्यक्तित्व की महनीय विशेषता का द्योतक है। निश्चय ही कौशिक जी युगों–युगों तक मानवीयता का संदेश प्रदान कर अमरत्व की शाश्वत बेल के रूप में पुष्पित व पल्वित होते रहेंगे– एक ऐसी बेल जो जीवन अमृत रस का पान कराने की सामर्थ्य से परिपूर्ण हो।

सन्दर्भ संकेत

1. डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद (2002) निबंध और निबंध, पृष्ठ–17
2. रामस्वरूप चतुर्वेदी (1986) हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ–120
3. डॉ0 नगेन्द्र (1973) हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–668
4. रामस्वरूप चतुर्वेदी (1986) हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ–222
5. रामस्वरूप चतुर्वेदी (1988) हिन्दी कहानी का उद्‌भव और विकास, पृष्ठ–51
6. डॉ0 राजेन्द्र यादव (2003) हिन्दी कहानी का स्वरूप और संवेदना, पृष्ठ–53
7. डॉ0 राकेश शुक्ल (2019) उनकी सृष्टि अपनी दृष्टि, पृष्ठ– 196
8. विश्वम्भरनाथ कौशिक (1930) 'माँ' उपन्यास, पृष्ठ– 92
9. डॉ0 लक्ष्मी कांत पाण्डेय (2016 सितम्बर अंक) पुनर्नवा पत्रिका पृष्ठ–20

❑❑

10

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के वैचारिक दृष्टि

डॉ0 शिवशंकर यादव
सहायक आचार्य – हिन्दी विभाग
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ

हिन्दी आलोचना के विकास में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का योगदान किस रूप में महत्वपूर्ण है? इस प्रश्न का उत्तर आचार्य द्विवेदी के समग्र साहित्य के मूल्यांकन से ही संभव हो सकता है। क्योंकि जब आचार्य द्विवेदी के बहुआयामी साहित्य को देखते हैं तो उनका व्यक्तित्व किस रूप में अपने से पूर्व एवं बाद के आलोचकों से भिन्न है। इसका उल्लेख करते हुए विश्वनाथ प्रसाद तिवारी कहते हैं, ''द्विवेदी जी का आलोचक व्यक्तित्व अन्य आलोचकों की तुलना में इसलिए विशिष्ट हो जाता है कि उनमें एक ओर आचार्यत्व की गरिमा है तो दूसरी ओर गहरी सर्जनात्मक ऊर्जा चिन्तन और भावुकता का यह दुर्लभ संयोग बिरले लेखकों में दिखाई पड़ेगा उनका व्यक्तित्व मूलतः एक सर्जनात्मक व्यक्तित्व है। उनमें जो भाव प्रवणता और भवोच्छ्वास है और जो संभवतः रवीन्द्रनाथ से प्रभावित है उसके कारण कुछ लोग उन्हे शुद्ध आलोचक नहीं मानते। द्विवेदी जी की दृष्टि मुख्यतः शोधपरक तथा ऐतिहासिक–सांस्कृतिक है।''[1]

आचार्य द्विवेदी ने साहित्य की महत्ता स्थापित करते हुए कहा है, ''आहार निद्रा भय आदि मनोभाव समस्त प्राणियों में समान है। मनुष्य जब इनकी पूर्ति का प्रयत्न करता है तो वह अपने उस छोटे प्रयोजन में उलझा रहता है जो पशुओं के समान ही है। प्राचीन काल से इन पशु सामान्य प्रवृत्तियों को मनुष्य ने तिरस्कार के साथ देखा है। वह इन तुच्छताओं से ऊपर उठ सका है, यही उसकी विशेषता है। जो बातें हमें इन तुच्छताओं का दास बना देती हैं या इन तुच्छताओं को ही मनुष्य का असली रूप बनाती हैं, वे मनुष्य के चित्त से उसके महत्व को उसके वैशिष्टय को और उसके वास्तविक रूप को हटा देती हैं। वे लोभ और मोह का पाठ पढ़ाती हैं। साहित्य वे नहीं हो सकती क्योंकि उनकी शिक्षा से मनुष्य खंड की साधना करता है विभेद और तुच्छता को बड़ा समझने लगता है और सारे विश्व के साथ एकत्व की अनुभूति से विरत हो जाता है।''[2]

आचार्य द्विवेदी का पूरा चिन्तन मनुष्य के विकास यात्रा का परिचायक है वे सारे शास्त्र चिन्तन का साध्य मानव कल्याण ही मानते हैं। उनके निबन्धों में मानव एवं साहित्य के अंतः संबंध दृष्टिगोचर होते हैं। उनके निबंधों की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए डॉ0 रामचन्द्र तिवारी कहते हैं'' यही कारण है कि वे चाहे 'साहित्य के मर्म पर विचार कर रहें हों, चाहे 'मानव धर्म' पर चाहे 'भारत की सांस्कृतिक समस्या' के विषय में सोंच रहे हो चाहे 'मौलिकता के प्रश्न पर चाहे 'सहज भाषा' की व्याख्या कर रहे हों, चाहे 'साहित्य के इतिहास' की चाहे 'विकासवाद' समझा रहें हों, चाहे 'मार्क्सवाद' घूम फिरकर मानव मुक्ति की समस्या पर आ जाते हैं मनुष्य, मनुष्यता की श्रेष्ठता, मनुष्य की एकता और अन्ततः मनुष्य की मुक्ति पर उनका अखंड विश्वास है।''[3]

भारतीय धर्म साधना या शिल्प साधना के रहस्यों को समझने के लिए तंत्र सहित्य के मूल सिद्धांतों की जानकारी आवश्यक है। द्विवेदी जी ने जिस किसी भारतीय दर्शन का अध्ययन किया है, लेकिन उन दर्शनों को समझने के लिए अपनी बौद्धिक दृष्टि का परिचय दिया है। शक्ति दर्शन के परात्पर पुरुष (शिव) और मनुष्य का संबंध स्पष्ट करते हुए स्वयं द्विवेदी जी कहते हैं– 'केवल मनुष्य को इच्छा, क्रिया और ज्ञान की त्रिधारा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त इसलिए परात्पर पुरुष को भी जब कुछ करना होता है, तब उसे नरदेह धारण करनी पड़ती है। देह तो वह और भी धारण कर सकता है पर नरदेह में उसका पूर्ण विस्तार होता है।''[4]

आचार्य द्विवेदी दर्शन के उन सूक्ष्म तत्वों को मानव सापेक्ष बनाकर ही स्वीकार करते हैं। इसके साथ–साथ मानवेतर प्रकृति का भी सम्यक उल्लेख करते हैं। आचार्य द्विवेदी ने भारतीय दार्शनिक एवं आध्यात्मिक परंपरा एवं आधुनिक पाश्चात्य् सौन्दर्य शास्त्र के आलोक में कालिदास की कला विषयक मान्यताओं का विश्लेषण किया है।

उनकी दृष्टि सृजनात्मक दृष्टि है। जिस कारण वे अध्ययन के उस भाव को दिखाने का प्रयास करते हैं जो सृजनकार की अनुभूतियों से जुड़ा हो आचार्य द्विवेदी को कालिदास सामान्य कवि नहीं लगते हैं वे भारत की अंतर्रात्मा और भारतीय मनीषा को वाणी देने वाले राष्ट्रीय कवि हैं। वे कहते हैं– ''भारतीय धर्म, दर्शन, शिल्प और साधना में जो कुछ उदात्त है, जो कुछ दृप्त है, जो कुछ महनीय है और जो कुछ ललित और मोहन है उनका प्रयत्न पूर्वक सजाया–सँवारा रूप कालिदास का काव्य है। सुकुमारता के साथ सुशीलता का, मानसिक मृदुता के साथ चारित्रिक दृढ़ता का, अपार वैभव के साथ विपुल वैराग्य का सौन्दर्य के साथ धर्म का– ऐसा मणिकांचन योग संसार के साहित्य में विरल है।''[5]

आचार्य द्विवेदी ने 'विकासवाद' और 'मार्क्सवाद' की भी चर्चा की है। 'विकासवाद' के सिद्धांत के संबध में वे कहते हैं– 'विकासवाद का सिद्धांत आजकल प्रायः सर्व स्वीकृति सिद्धांत है। इस सृष्टि– प्रक्रिया को इस दृष्टि से देखने वाले को यह बात अत्यंत स्पष्ट हो जायेगी कि मनुष्य के रूप में ही सृष्टि का सर्वोत्तम प्राणी विकसित हुआ है। मनुष्य देह में ही मन और बुद्धि का भाव वेग और तर्क युक्ति के आश्रय इन्द्रिय–विशेष का विकास हुआ है। यह संसार क्या है? और कैसा है? इसके जानने का एक मात्र साधन मनुष्य की बुद्धि है। हम जो कुछ समझ सकते हैं, जो कुछ समझ रहें हैं मनुष्य का समझा हुआ सत्य है। मनुष्य–निरपेक्ष सत्य बाद की बात है।'[6]

आचार्य द्विवेदी ने मनुष्य की बुद्धि और उसकी स्वभाव से संबधित बातों को बड़ी बारीकी से दर्शन से जोड़ दिया है। आचार्य द्विवेदी ने किसी साहित्य के निर्माण में ऐतिहासिक सामाजिक संदर्भ को महत्व इसलिए दिया क्योंकि वे जनता के रूचि को महत्व देते थे। जिनके मूल में मानवतावादी दृष्टिकोंण था। 'अशोक के फूल' निबंध में संकलित उनके निबंध का शीर्षक है 'मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है'। इसका एक उदाहरण दृष्टव्य है– 'संसार में अच्छी बात कहने वालों की कमी नहीं है, परन्तु मनुष्य के सामाजिक संगठन में ही ऐसा कहीं कुछ ऐसा बड़ा दोष रह गया है। इसलिए आज की सबसे बड़ी समस्या यह नही कि अच्छी बात कैसे कही जाय बल्कि यह है कि अच्छी बात को सुनने और मानने के लिए मनुष्य को कैसे तैयार किया जाय।''[7]

द्विवेदी जी ने एक ओर तो अपने इतिहास–बोध का परिचय देते हुए धर्म, समाज, जाति, व्यवस्था और संस्कार को नये संदर्भ में देखने का प्रयास किया। जो उनकी प्रगितिशीलता का परिचायक है। इसके साथ–साथ सामान्य जीवन के परिवेक्षण के आधार पर निश्कर्ष तक पहुँचने की पद्धति वैज्ञानिक एवं आधुनिक है। आचार्य द्विवेदी की आलोचना एवं गद्य शैली विशेषता का उल्लेख करते हुए डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी ने कहा है, ''कवि की अभिव्यक्ति तक पाठक को ऐसे भाव–पथ के द्वारा पहुँचा देना कि उसे पता ही न चलने पाये कि वह लेखक को नहीं कवि को ही पढ़ रहा है, द्विवेदी जी की आलोचना और गद्य–शैली की भी विशेषता है।''[8]

आगे प्रेमचन्द की विशेषता बताते हुए द्विवेदी जी लिखते हैं ''अगर कोई उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार–विचार, भाव, भाषा, रहन–सहन, आशा–अकांक्षा, दुःख–सुख और सूझ–बूझ को जानना चाहे तो प्रेमचन्द से अधिक उत्तम परिचायक इस युग में नहीं पा सकेगा।''[9]

सन्दर्भ संकेत

1. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ सं0 60 साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 2016
2. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ सं0 62 साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 2016
3. डॉ0 रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी आलोचना शिखरों का साक्षात्कार, पृ0 89, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, 2014
4. डॉ0 रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी आलोचना शिखरों का साक्षात्कार, पृ0 91, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, 2014
5. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ सं0 69 साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 2016
6. डॉ0 रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी आलोचना शिखरों का साक्षात्कार, पृ0 91, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, 2014
7. इन्द्रप्रस्थ भारती, हजारी प्रसाद द्विवेदी–जन्मशती अंक, पृ0 138, जनवरी–मार्च, 2007
8. डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी, हिन्दी आलोचना, पृ0 150, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2013
9. डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी, हिन्दी आलोचना, पृ0 150, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2013

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

11

जयशंकर प्रसाद के नाटकों में गुप्तकालीन राजनीतिक जीवन

डॉ0 संदीप कुमार श्रीवास्तव
सहायक प्रवक्ता
स्व0 रामस्वरुप यादव महाविद्यालय पूंछ झाँसी उ0प्र0

राजा के गुण एवं उसके कर्तव्यः—गुप्तकालीन राजतंत्र में राजा का स्थान सर्वोपरि था उसे राजपद के विकास के लिए युद्ध करने पड़ते थे स्कन्दगुप्त में धातु सेन कुमार गुप्त को कहता है आपने भी स्वंय इतने युद्ध किये हैं मैंने तो समक्षा था राज सिंहासन पर बैठे राजदण्ड हिला देने से ही इतना बड़ा गुप्त साम्राज्य स्थापित हो गया। इस कथन से यह स्पष्ट है कि राजा राजसिंहासन पर बैठ कर युद्ध मंत्रणा आदि करता होगा और वह हाथ में राजदण्ड धारण करता होगा। राजा को साम्राट, परमभट्टारक, परमेश्वर, राजाधिराज, देव महाराजाधिराज आदि विरुदों से पुकारा जाता था। विक्रमादित्य की उपाधि विशेष रुप से उल्लेखनीय थी। प्रसाद ने स्कन्दगुप्त के लिए विक्रमादित्य की उपाधि का वर्णन किया है। वीरता गुप्त राजाओं का प्रमुख गुण था। इसी वीरता के कारण ही उन्होंने गुप्त साम्राज्य के वैभव को बढ़ाया था। वे युद्ध क्षेत्र में शत्रुओं से आत्मविश्वास व वीरता पूर्वक लड़ते थे और युद्ध से विमुख नही होते थे। स्कन्दगुप्त को जब पता चलता है कि हूणों का आक्रमण हो रहा है तो वह अपने सैनिकों को प्रोत्साहन देते हुए कहता है कि वीर मगध सैनिको! आज स्कन्दगुप्त तुम्हारी परिचालना कर रहा है, यह ध्यान रहे, गरुणध्वज का मान रहे भले ही प्राण जाएँ।

गुप्तकालीन राजाओं का मुख्य कर्तव्य प्रजा का कल्याण करना था। उनकी हर मुसीवत से रक्षा करके उनको सुरक्षित जीवन देना। स्कन्दगुप्त में पर्णदत्त स्कन्दगुप्त को कहता है—प्रौढ सम्राट विलासी जीवन व्यतीत करने में लगे है और इस समय स्कन्दगुप्त तुम्हारे लिए यही उचित है कि तुम अपने अधिकारों का प्रयोग करो। वो आगे कहता है कि त्रस्त प्रजा की रक्षा के लिए, ब्राह्मण और गौ की मर्यादा में विश्वास के लिए आतंक से प्रकृति को आश्वासन देने के लिए आपको अपने अधिकारों का प्रयोग करना होगा। गुप्त साम्राज्य के भावी शासक को अपने उत्तरदातित्व का ध्यान नहीं। इस पर स्कन्दगुप्त कहता है कि परमभट्टारक महाराजाधिराज अश्वमेघ पराक्रम श्रीकुमारगुप्त महेन्द्रादित्य के सुशासित राज्य की सुपालित प्रजा को डरने का कारण नहीं। इस कथन से यही बात प्रकट होती है कि प्रजा रक्षण राजा का मुख्य कर्तव्य होता था सरण में आये हुए की रक्षा करना भी गुप्त शासकों का कर्त्तव्य था। ऐसा प्रसाद के नाटक स्कन्दगुप्त से पता चलता है।

शासन के कार्य को चलाने के लिए राजा की सहायता के लिए अनेक मंत्री व अधिकारी होते थे। प्रायः ये उच्च्व वर्ग से ही सम्बन्धित होते होंगे। बड़े ही योग्य, विद्वान, वीर तथा निपुण व्यक्तियों को ही उच्च पदवियों पर रखा जाता था और उनकी नियुक्ति स्वंय राजा करता था प्रत्येक प्रान्त कई विषयों में बटा होता था विषय के शासक को विषयपति कहते थे गुप्त सम्राट न्यायप्रिय थे। न्याय करने में उनका फैसला ही अंतिम होता था।

राज्याभिषेक का उत्तरदायित्व भी राजा का ही होता था। स्कन्दगुप्त में स्कन्दगुप्त का अभिषेक उज्जयिनी की राज सभा में होता है प्रसाद ने स्कन्दगुप्त के राज्याभिषेक के बारे में लिखा है— ''गोविन्दगुप्त और बन्धुवर्मा हाथ पकड़कर स्कन्दगुप्त को सिहांसन पर बैठाते है। भीम छत्र लेकर बैठता है देवसेना चमर करती है। गोविन्दगुप्त खड़ग का उपहार देते है। चक्र गरुड़ाकित राजदण्ड देता है। सम्राट भी उस समय देश की रक्षा हेतु कुछ न कुछ प्रण

करता है। स्कन्दगुप्त कहता है कि आर्य! इस गुरुभार उत्तरदायित्व का सत्य से पालन कर सकूँ और आर्यराष्ट्र की रक्षा में सर्वस्व अर्पण कर सकूँ, आप लोग इसके लिए भगवान से प्रार्थना कीजिए और आशीर्वाद दीजिए कि स्कन्दगुप्त अपने कर्तव्य से, स्वदेश सेवा से कभी विचलित न हो। राज्याभिषेक के अवसर पर सब उसे आशीर्वाद देते है और उसकी जयकार करते है।

राजाओं की स्वलाभ हेतु कुमंत्रणाएं भी हुआ करती थी प्रसाद के नाटको में जहाँ एक ओर स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त जैसे उच्च आर्दशों वाले सम्राट हुये हैं वहीं दूसरी ओर रामगुप्त, देवगुप्त, नरेन्द्रगुप्त जैसे राजा भी हुये है जिन्होंने अपनी छल–प्रपंचा, कुटिलता तथा नीचता से गुप्त साम्राज्य के वैभव को क्षति पहुँचायी। राज्यश्री में छल–कपट, नीचता को धारण किए हुए है–मालवराज देवगुप्त। देवगुप्त एक विलासी राजा है तथा नैतिकता से परे है। सुरमा जो कि एक मालिन है, के प्रति उसका कामाचार उसकी नीचता व विलासिता का परिचायक है। देवगुप्त ग्रहवर्मा को समाप्त करके छल पूर्वक कान्यकुब्ज को हस्तगत करता है। राज्यश्री को बन्दी बनाना भी कोई उचित कार्य नही दीखता। इस प्रकार वह छल कपट की साक्षात मूर्ति है। प्रसाद ने यह स्पष्ट किया है कि बर्धनकाल तक आते–आते गुप्त राजाओ की प्रकृति बदल गई थी। देवगुप्त उच्छृंखल प्रकृति का राजा है वह एक स्थान पर अपने सहचर मधुकर से कहता है, ''मधुकर! देवगुप्त उसी गुप्त कुल का है, जिसके नाम से एक दिन समस्त जम्बूद्वीप विकम्पित होता था। आज सिंह विहीन जंगल में स्यारों का राज्य है। मुझे फिर एक बार वही चेष्टा करनी होगी। स्थाणीश्वर और कान्यकुब्ज दोनो का ध्वंस करना है।'' किन्तु उसके इस कथन से उसकी विलासमयी महत्वाकांक्षा ही प्रकट होती है न कि गुप्तों के प्राचीन गौरव को प्रतिष्ठित करने की भावना।

राजनीतिक कार्यो में रानी की प्रवीणता– भारतीय राजनीति में रानी का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। गुप्त काल में भी रानी को अत्यधिक सम्मान मिला है। प्रसाद ने रानी की अधिक उपाधियों का उल्लेख तो नहीं किया। उन्होंने रानी के लिए महादेवी, साम्राज्ञी विरुदों का प्रयोग किया है। ध्रुवस्वामिनी में महादेवी की पदवी को उच्च पदवी कहा गया है इसे गुप्तकुल बधू व गुप्तकुल लक्ष्मी भी कहा जाता था। यदि रानी थकी हुई होती थी तो उस समय किसी से नही मिलती थी उससे मिलने के लिए बिना इजाजत कोई नही आ सकता होगा। गुप्तकालीन रानियां राजनीति में कुशल होती थी। चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती जो कि वाकाटक वंश की रानी थी, अपने पुत्र दिवाकर सेन की संरक्षिका के रुप में शासन करती रही। प्रसाद के नाटकों में रानियों को राजनीति में कुशल दिखाया गया है। स्कन्दगुप्त में अनन्त देवी शासन प्रबन्ध में अत्यधिक कुशल है। अधिकारियों की नियुक्ति में भी वह महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। रानी अनन्तदेवी की कृपा से ही भटार्क को महाबलाधिकृत का पद मिला था जबकि पृथ्वीसेन इसका विरोध करते थे।

महत्वाकांक्षिणी अनन्तदेवी भटार्क और बौद्ध कापालिक प्रपंचबुद्धि के सहयोग से कुचक्र रचती है। कुमारगुप्त की रहस्यमयी स्थिति में मृत्यु हो जाती है। वह नायक शर्वनाग को भी पदवृद्धि तथा स्वर्ण का लालच देकर अपनी तरफ कर लेती है सभी परिस्थितियों को अनुकूल कर लेने के उपरान्त वह पुरगुप्त को सम्राट के पद पर षड़यन्त्र के माध्यम से पहुँचा देती है। भटार्क पुरगुप्त को सम्राट घोषित करते है। उसकी निर्मम मनोवृति का परिचय उस समय मिलता है जब वह महादेवी देवकी की हत्या का प्रयास करती है।

युवराज की राजनीतिक स्थिति– युवराज का भी गुप्त साम्राज्य में महत्वपूर्ण स्थान था सम्राट के ज्येष्ठ राजकुमार को युवराज भट्टारक और अन्य पुत्रों को युवराज कहा जाता था। प्रसाद के नाटक स्कन्दगुप्त में स्कन्दगुप्त जो कि कुमारगुप्त का ज्येष्ठपुत्र था के लिए युवराज भट्टारक विरुद का प्रयोग किया गया है। सम्राट की ही भांति युवराज का भी समुचित आदर किया जाता था। मगध का वृद्ध महानायक पर्णदत्त स्कन्दगुप्त से कहता है, ''युवराज! आप सम्राट के प्रतिनिधि है, मै तो आज्ञाकारी सेवक हूँ।''

गुप्तकाल में युवराज को राजनीति का सम्यक ज्ञान होता था। स्कन्दगुप्त के प्रथम अंक में चक्रपालित

स्कन्दगुप्त को गुप्तकुल के अव्यवस्थित उत्तराधिकार नियम के बारे में कहता है तो स्कन्दगुप्त उसे कहते हैं कि तुम्हारे पास इस बात का कुछ आधार भी है। चक्रपालित को उसके पिता पर्णदत्त से कहता है,'' आर्य पर्णदत्त क्षमा कीजिए। हृदय की बातों को राजनीतिक भाषा में व्यक्त करना चक्र नहीं जानता। इस कथन से स्पष्ट होता है कि युवराज स्कन्दगुप्त को ज्ञान है कि राजनीति में कैसी भाषा का प्रयोग कहाँ करना उचित है। शासन के कार्यो में वह राजा का हाथ बटाता था। कुमारगुप्त के अनुपस्थित होने पर मालव–नरेश बंधुवर्मा का दूत युवराज के पास ही युद्ध में सहायता हेतु जाता है वह दूत को आश्वासन देता है कि गुप्त साम्राज्य व मालवराष्ट्र में संधि के कारण व शरणागत की रक्षा करने के क्षत्रिय धर्म के कारण वह मालव नरेश की सहायता करेगा। गुप्तकाल में उत्तराधिकार का नियम अव्यवस्थित था। गुप्तकाल में यह जरुरी नही था कि सम्राट का बड़ा पुत्र ही राज्यधिकारी हो। यह राजा इच्छा पर था कि वह अपने अमर्यादित और नीच पुत्र को चाहे वह बड़ा है उत्तराधिकार से बंचित कर दे। समुद्रगुप्त ने छोटे पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय को उत्तराधिकारी मनोनीत किया किन्तु रामगुप्त ने बलात् शासन पर अधिकार प्राप्त कर लिया तथा स्कन्दगुप्त भी ग्रह क्लेश के पश्चात ही सत्तारुढ़ हुए।

परिषद एवं उसके सदस्य – प्रसाद के नाटकों से पता चलता है कि शासन के कार्यो में राजा की सहायता के लिए परिषद हुआ करती थी। स्कन्दगुप्त में कुमारगुप्त की परिषद में कुछ व्यंग्य विनोदाति के बाद कुमारामात्य पृथ्वीसेन युद्ध की सूचना सम्राट को देते है इसमें परिषद का विस्तृत स्वरुप नही मिलता। ध्रुवस्वामिनी में भी परिषद का उल्लेख मिलता है रामगुप्त परिषद के सदस्यों से कहता है कि तुम सब पाखण्डी हो, विद्रोही हो। मैं अपने न्यायपूर्ण अधिकार को तुम्हारे जैसे कुत्तों के भौकने पर न छोडूगाँ। रामगुप्त के कथन से परिषद की अक्षमता का पता चलता है। परिषद की अक्षमता इस बात से भी पता चलती है कि समुद्रगुप्त तो चन्द्रगुप्त को उत्तराधिकारी बनाना चाहता है किन्तु रामगुप्त और शिखरस्वामी का प्रपंच सफल हो गया नाटक के अन्त में अवसर मिलने पर जब चन्द्रगुप्त ने भी रामगुप्त व आमात्य का विद्रोह किया तो दबी हुई सी परिषद उभर कर सामने आयी और उसने रामगुप्त को सिंहासन से वंचित कर दिया।

प्रसाद ने गुप्तकाल से सम्बन्धित नाटको में स्पष्ट यह कहीं नही कहा कि मंत्रीपरिषद के सदस्य कितने है। स्कन्दगुप्त नाटक के पुरुष पात्रों की तालिका में मंत्री कुमारामात्य पृथ्वीसेन का नाम दिया है। नाटक के प्रथम अंक में सम्राट कुमारगुप्त राजमंदिर में परिषद के साथ बैठे है इस परिषद में मंत्री कुमारामात्य पृथ्वीसेन भी है। साम्राज्य के मुख्य पदों पर काम करने वाले कर्मचारियों को कुमारामात्य कहते थे कुमारामात्य राजघराने के भी होते थे और दूसरे लोग भी। मंत्री कुमारामात्य पृथ्वीसेन के कार्यो को देखकर लगता है सम्भवतः वह प्रधानमंत्री ही हो। सम्राट के नीचे प्रधान सेनापति होता था जिसे महाबलाधिकृत कहा जाता था। शासन प्रबन्ध में सेना के कार्यो में वह महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था। साम्राज्य में उसका बहुत सम्मान व दबदवा होता होगा। इस बात की प्रतीति हमें इस स्कन्दगुप्त के कथन से होती है। पर्णदत्त जब स्कन्दगुप्त को कहते है कि कुमारामात्य महाबलाधिकृत वीरसेन ने स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया तो स्कन्दगुप्त कहते है–''क्या! महाबलाधिकृत अब नही है शोक।'' इसके पश्चात भटार्क को नवीन महाबलाधिकृत बनाया जाता है। स्कन्दगुप्त में प्रसाद ने इसे भी परिषद का सदस्य बताया है।

सामन्त शासन के कार्यो में सम्राट का साथ देते थे। जब शकराज गुप्त साम्राज्य के सम्राट से अपने लिए सम्राट की रानी ध्रुवस्वामिनी सहित मगध के सामन्तों की स्त्रियों को मांगता है तो सम्राट की आज्ञानुसार इस कार्य हेतु सामन्तों का जाना तय होता है। वहाँ वह शकराज व उसके सामन्तों के साथ हुए युद्ध में चन्द्रगुप्त का साथ देते हैं। ध्रुवस्वामिनी में यह दिखाया गया है कि वे सम्राट का भी विरोध करते थे यदि सम्राट अन्यायी, अनुचित आचरण वाला हो तो। स्कन्दगुप्त में भी हूणों को एक बार ही भारतीय सीमा से दूर करने के लिए स्कन्दगुप्त ने समस्त सामन्तों का आमंत्रण दिया था।

परिषद के कार्य– ध्रुवस्वामिनी में राज्याधिकार एवं उससे उत्पन्न कलह आदि को दूर कर समुचित फैसला

देना ही परिषद का कार्य देखने को मिलता है। परिषद का फैसला राजा, अमात्य तथा अन्य किसी भी जन को मानना पड़ता था। शिखर स्वामी रामगुप्त को यही बात कहता है किन्तु परिषद का विचार तो मानना ही होगा। डॉ0 जगदीशचन्द्र जोशी ने ध्रुवस्वामिनी में आयी परिषद को जनपरिषद कहा है प्रसाद के अनुसार इनका कार्य विशेष महत्वपूर्ण है। राज्य संक्रांति के अवसरों पर शासन चलाने से लेकर राज्य परिवर्तन तक के सभी निर्णयों का अधिकार इसी परिषद को दिया गया है।

अन्य उच्चधिकारी गण– प्रसाद के नाटको में जिन उच्चाधिकारियों का वर्णन आया है वे उच्च कुल से सम्बन्ध ा रखते थे या नहीं, उसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है किन्तु फिर भी उनका शासन कार्यो में महत्वपूर्ण स्थान था।

सेनापति– सेनापति का शासन कार्यो में महत्वपूर्ण हाथ होता था साम्राज्य में उसका उचित सम्मान था राजनीति सम्बन्धी बातों को वह जानता था। स्कन्द्रगुप्त द्वारा सेनापति पर्णदत्त के लिए आर्य जैसे सम्मानार्थक शब्द व उसकी वीरता से संन्तुष्ट होने से उसके शासन कार्यो में महत्ता सिद्व हो जाती है।

महादण्डनायक– गुप्त साम्राज्य में महादण्डनायक का स्थान भी उच्च अधिकारियों में था। इसका सम्बन्ध सेना की अपेक्षा प्रशासन से सम्भवतः अधिक था।

महाप्रतिहार– महादण्डनायक की भांति महाप्रतिहार का भी उच्च पद गिना जाता होगा इस बात का ज्ञान स्वंय महाप्रतिहार के कथन से होता है जब नायक उसे अन्तःपुर में सम्राट के पास जाने नही देता तो वह नायक से कहता है कि ''अवोध! तू नहीं जानता–सम्राट के अन्तःपुर पर स्वंय का सम्राट का भी उतना अधिकार नहीं जितना महाप्रतिहार का।''

विशयपति– गुप्तकाल में प्रान्तों को जिलों में बांटा जाता था जिलों के लिए विषय शब्द मिलता है विषय के शासक को विषयपति कहते थे। प्रसाद ने भी स्कन्दगुप्त में नायक को पदोन्नति करके उसे विषयपति बना दिया।

संदर्भ संकेत

1. स्कन्दगुप्त
2. ध्रुवस्वामिनी
3. राजश्री
4. परमेश्वरी लाल गुप्त, गुप्त साम्राज्य
5. बी0एन0 लुणिया, प्राचीन भारतीय संस्कृति
6. सुरेन्द्रनाथ सिंह, प्रसाद के काव्य और नाटक
7. श्रीराम गोयल, गुप्त साम्राज्य का इतिहास
8. जगदीश चन्द्र जोशी– प्रसाद के नाटकों का ऐतिहासिक एंव सांस्कृतिक अध्ययन

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

12

अन्त्योदय योजना और आधुनिक हिन्दी कविता

डॉ. सुमन सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर – हिन्दी विभाग
दयानन्द गर्ल्स पी.जी.कालेज, कानपुर

पंडित दीनदयाल उपाध्याय एक प्रखर विचारक, उत्कृष्ट संगठनकर्ता तथा एक ऐसे नेता थे, जिन्होंने जीवनपर्यन्त अपनी व्यक्तिगत ईमानदारी व सत्यनिष्ठा को महत्व दिया। वे मजहब और सम्प्रदाय के आधार पर भारतीय संस्कृति का विभाजन करने वालों लोगों को जिम्मेदार मानते थे। उनका मानना था कि हिन्दू कोई धर्म या सम्प्रदाय नहीं, बल्कि भारत की राष्ट्रीय संस्कृति है। राष्ट्रधर्म स्वयं एक सांस्कृतिक संरचना में प्रवृत्त नीतितत्व है। वैदिक संहिताओं और धर्म–शास्त्रों में भी इस तत्व को प्राथमिकता प्रदान की गयी है। उनका मानना था कि 'सांस्कृति विविधता ही भारत की असली ताकत है और इसी के बूते पर वह एक दिन विश्वमंच पर अगुवा राष्ट्र बन सकेगा। भारत की सांस्कृतिक विरासत पूरी दुनिया को प्रकाशमान कर रही है'। संस्कृति राष्ट्र की अमूल्य ध ारोहर है 'संस्कृति ही मनुष्य की जीवन प्रणाली का निर्धारण करती है।

पं. दीनदयाल जी के चिन्तन को ही 'अन्त्योदय' के नाम से सम्बोधित किया जाता है। 'अन्त्योदय' शब्द का उपयोग मूलरूप से ऐसे व्यक्ति के विकास के लिए किया गया जो निर्धन है, वंचित है, अथवा आर्थिक रूप से पिछड़ा हो। यह एक विचार नहीं बल्कि क्रियान्वयन की एक पद्धति है। पंडित जी का मानना था समाज में लागू की जाने वाली योजनाएँ एक प्रकार की हों, जिनसे पिछड़े लोगों का अधिकतम हित हो तथा जिन्हें रोजगार की जरूरत हो उनको रोजगार मिले, उनका समग्र विकास हों। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामय की भावना से ओत प्रोत है अन्त्योदय योजना।

भारतीय संस्कृति की अनन्य विशिष्टता है – मानव मात्र का कल्याण। पं.दीनदयाल जी के विचारों का केन्द्र भी 'सर्वजन कल्याण' है। यह भावना उनके अन्त्योदय योजना की परिकल्पना में दृष्टिगत होता है। उनका मानना था कि हमारी प्रगति का आंकलन सामाजिक पीढ़ी के सर्वोच्च पायदान पर पहुँचे व्यक्ति से नहीं बल्कि सबसे निचले पायदान पर खड़े व्यक्ति की स्थिति से होना चाहिए। जब तक समाज के अन्तिम व्यक्ति का विकास नहीं होगा तब तक राष्ट्र के विकसित होने की कल्पना नहीं की जा सकती। समाज के अन्तिम व्यक्ति को धारा से जोड़ने के लिए निरन्तर कार्य तेजी से होना चाहिए। उन्होंने राष्ट्र व समाज को जोड़ने के लिए निरन्तर संघर्ष किया। उनके इस अन्त्योदय योजना को शासन स्तर पर सफल बनाने के प्रयास किये जा रहे हैं। यदि श्रमिक वर्ग असन्तुष्ट है तो देश की प्रगतिशील परिकल्पना अधूरी रह जायेगी। सरकारी नीतियों का लाभ हर स्तर व हर वर्ग के व्यक्ति को मिलना चाहिए यही शासन का उद्देश्य होना चाहिए।

पं. दीनदयाल जी ने अपने दर्शन से जहाँ पूरे विश्व को एक सूत्र में बाँधने की कोशिश की है, वहीं गाँधी जी के सर्वोदय को उन्होंने अन्त्योदय का नाम देकर उसका प्रतिपादन किया है। अन्त्योदय से उनका अभिप्राय था कि आर्थिक सम्पन्नता के लिए किये जाने वाले प्रयास समाज के आर्थिक दृष्टि से सबसे निचले और पिछड़े लोगों से शुरू किये जाने चाहिए। भारत वर्ष में मजदूरों की आर्थिक स्थिति बड़ी दयनीय थी और आज भी है। वे जितना परिश्रम करते हैं उतना मूल्य उन्हें नहीं मिलता। सबसे बड़ी बात तो यह है कि देश का अन्नदाता किसान स्वयं भुखमरी के कगार पर खड़ा है। बेरोजगारी, भ्रष्टाचार और मँहगाई एक त्रासदी बनकर देशवासियों के सामने खड़ी है, ऐसी स्थिति में दीनदयाल जी ने अन्त्योदय के रूप में देशवासियों को एक रास्ता दिखाया, जिससे समाज के अन्तिम व्यक्ति तक आर्थिक विकास पहुँच सके।

कवि मुक्तिबोध को भी यही चिन्ता सताती है कि आर्थिक स्थिति से दयनीय शोषित मानव कब सुविधा सम्पन्न होंगें। अभावग्रस्त मजदूरों और निम्न वर्ग के लोगों के जीवन में समरसता भरने के लिए और उन्हें अपनापन बाँटने के लिए वे आकुल व्याकुल हैं –

'समस्या एक
मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में सभी मानव,
सुखी सुन्दर और शोषण मुक्त कब होंगे।
कि मैं अपनी अधूरी दीर्घ कविता में,
उमंग कर जन्म लेना चाहता फिर से'।

एक अर्थशास्त्री के रूप में दीनदयाल जी मानते थे कि हर व्यक्ति को उसकी क्षमता, रूचि के अनुसार काम मिले। ऐसा काम जिससे कम से कम उसकी प्राथमिक आवश्यकताओं रोटी, कपड़ा और मकान सहज रूप से प्राप्त हो सके। अपने विचारों में उन्होंने सदैव अखण्ड भारत को केन्द्र में रखते थे। वे राजनीति में भी दलीय छुआ–छूत को गलत मानते थे। कबीर ने भी ऊँच–नीच, जाति–पाँति के भेदभाव को दूर करने की बात की हैं –

'जाति–पॉति पूछे नहीं कोई,
हरि को भजे सो हरि का होई'।

वे पूँजीवाद और समाजवाद के मध्य एक ऐसी राह के पक्षधर थे जिसमें दोनों प्रणालियों के गुण तो मौजूद हों लेकिन उनके अतिरिक्त अलगाव जैसे अवगुण न हो। उन्होंने एक वर्गहीन, जातिहीन और संघर्ष मुक्त सामाजिक व्यवस्था की कल्पना की थी। अध्यक्षीय भाषण में कहा था कि – 'हमने किसी सम्प्रदाय अथवा वर्ग की सेवा का नहीं बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्र की सेवा का व्रत किया है। सभी देशवासी हमारे बन्धु–बान्धव हैं। हम धरती माता को सही अर्थों में सुजलां, सुफलां बनाकर रहेगें'[3]। कवि नागार्जुन की भी यही कामना है।

'पुलकित तन हो मुकुलित मन हो,
सरस और सक्षम जीवन हो।
अन्न वस्त्रदा, सुखदा, सुभदा
सर्व सुखद, सुखदा, सुभदा
सर्व सुखद सुन्दर समाज हो'[4]।

अन्त्योदय का उद्देश्य व्यक्ति एवं समाज की आवश्यकताओं को संतुलित करते हुए प्रत्येक मानव के गरिमापूर्ण जीवन को सुनिश्चित करना था। वे एक ऐसा 'स्वदेशी सामाजिक, आर्थिक मॉडल प्रस्तुत करना चाहते थे जिसमें विकास के केन्द्र में 'मानव' हो। 'कामायनी' भी मानवता के रूपक का चित्रण करती है और इसकी प्रमुख बिन्दु मानव ही है। जयशंकर प्रसाद की सदेच्छा थी कि –

'चेतना का सुन्दर इतिहास,
अखिल मानव भावों का सत्य,
विश्व के हृदय पटल पर दिव्य,
अक्षरों से अंकित हो नित्य'[5]

यह दुर्भाग्य की बात है कि हमारे देश के महापुरूषों चिंतकों तथा महान विचारकों को जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन भारत के प्रगति, समृद्धि तथा विकास के लिए समर्पित कर दिया, उन्हें हमारे भारतीय राजनेताओं ने दल तथा जाति के आधार पर बाँटकर उनका बंटवारा कर अपने–अपने हितों व स्वार्थ सिद्धी करते रहे। सादा जीवन उच्च विचार की प्रतिमूर्ति दीनदयाल जी के विचारों में देश की मिट्टी की महक को अनुभव किया जा सकता है।

वे वास्तव में राजनीति में ऋषि परम्परा के मनीषी थे। वे भारतीय जनसंघ से अवश्य जुड़े रहे, फिर भी दलीय संकीर्णताओं से ऊपर थे। उनका पूरा जीवन समाज सेवा राष्ट्रहित के लिए अर्पित था –

'अर्पित हो मेरा मनुज काय,
बहुजन हिताय बहुजन सुखाय'[6]।

उनकी आस्था प्राचीन अक्षय राष्ट्र जीवन की जड़ों से रस ग्रहण करती थी। वे राजनेता मात्र नहीं थे, बल्कि उच्चकोटि के चितंक, विचारक और लेखक भी थे। तत्कालीन व्यवस्था तथा परिस्थितियों में आपके विचारों तथा दर्शन को महत्व नहीं दिया गया। आज हमारा देश विषम परिस्थितियों से जूझ रहा है। ऐसे में पंडित दीनदयाल जी के विचार व दर्शन हमें सही दिशा प्रदान कर सकते हैं और अन्त्योदय योजना की राह पर चलकर आर्थिक विषमता को दूर किया जा सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. युगपुरुष पंडित दीनदयाल उपाध्याय – मनोज सांखल
2. मुक्तिबोध रचनावली–चतुर्थ खण्ड – नोमिचन्द्र जैन – पृ. 27
3. पंडित दीनदयाल उपाध्याय – संजय दुबे – पृ. –54
4. सतरंगे पंखोवाली – नागार्जुन – पृ. 46–47
5. कामायनी जयशंकर प्रसाद –श्रद्धा सर्ग
6. कुणाल गीत – मैथिलीशरण गुप्त – पृ. –136
7. पंडित दीनदयाल उपाध्याय व्यक्ति एवं विचार– डॉ. लक्ष्मीकान्त पाण्डेय

❑❑

13

गीत से प्रबन्ध तक

डॉ. गायत्री शर्मा
गंगा स्वर प्रवाहिनी
जयपुर (राजस्थान)

भारतीय संगीत के इतिहास में कितनी ही गायन शैलियाँ दृष्टिगोचर होती है। कंठ संगीत में सर्वप्रथम पहचान व प्रचार में 'गान' शब्द को लिया जा सकता है। सामवेद में गायन की प्रक्रिया को ही गान कहा गया है। गान यानि कि गाना गाने की प्रक्रिया अथवा यूं भी कहा सकते हैं कि गीत का एक प्रकार। संगीत रत्नाकर में गीत के दो भेद बताए गये हैं।

प्रथम – गांधर्व

द्वितीय – गान

अनादि सं प्रदायं यदगन्धर्वेः संप्रयुज्यते
नियतं श्रेयसो हेतुस्तद्गान्धर्वं जगुर्षाधाः। (सं.र.)

रत्नाकर के इस श्लोक में स्पष्ट कहा गया है कि जो मनुष्यों द्वारा ना रचा गया हो अपितु गांधर्वों द्वारा रचित हो, जो लौकिक सुख, स्वर्ग और मोक्ष को प्रदान करने वाले हो वही गुणी जनों द्वारा गांधर्व संज्ञा को प्राप्त हुआ। संगीत के प्राचीन ग्रंथों में गांधर्व को संगीत का सूचक माना गया है। नाट्य शास्त्र में नाटक की कथा शुरु होने से पहले एक विशिष्ट गीत प्रयुक्त होता था वह गांधर्व कहलाता था। नियमबद्धता व संगीत के तीनों घटकों से यह परिपूरित था। ''गांधर्व में स्वरुप की दृष्टि से दवर पक्ष में दो ग्रामों का भेद जाति और अंश का भेद, स्वर की लोपावधि, एक स्थान में कम से कम 5 स्वरों का प्रयोग, नियत अलंकारों का ही प्रयोग 14 मूर्छना 84 शुद्ध तानों की मर्यादा का नियम अनिवार्य और अपरिवर्तनीय था।''

इससे लगता है रागों में जो नियम प्रयुक्त होते हैं वे गांधर्व में भी थे। जिस तरह राग की जाति, उसके अलंकार उसकी पूर्णता के लिए कम से कम 5 स्वरों का इस्तेमाल होना आदि नियम होते है उसी प्रकार गांधर्व में भी यह नियमबद्धता थी। गांधर्व हाथ की क्रियाओं पर आधारित ताल का प्रयोग, यति, ग्रह लय, मार्ग आदि को नियत ढंग से प्रयोग में लेना अनिवार्य था। यह गांधर्वों द्वारा रचित गीत अदृश्य फल की प्रधानता के साथ–साथ जन रंजनात्मकता से सराबोर सामाजिक आनंद भी प्रदान करता था।

पं. शारंग देव की गांधर्व की व्याख्या अभिनव की व्याख्या से प्रभावित है अभिनव ने गांधर्व को सामवेद से उत्पन्न होने के कारण अनादि काल से प्रचलित मोक्ष को देने वाला विशिष्ट नियम युक्त, और गंधर्वों का प्रिय कहा है। गायन शुरु होने से पूर्व किया जाने वाला पवित्र मंत्रोच्चार गांधर्व है जो कि नियम बद्धता को स्वयं में समाहित किए हुए है।

''यत् वाग्येय कारेण रचितं लक्षणान्वितम्।
देशी रागादिषु प्रोक्तं तद्गानं जनरञ्जनम्।''

वाग्येयकार द्वारा देशीरागों में रचित रचना जो कि मनोरंजन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो उसे गान कहा गया है। गान पौरूषेय है क्योंकि वाग्येयकारों द्वारा रचित है। गान में गांधर्व की भांति कड़े नियमों को समाहित नहीं किया गया। स्वर, ताल, पद तीनों घटक समान रूप से समाहित होते हैं परन्तु किंचित परिवर्तनीय भी होता है। संगीत रत्नाकर के प्रबन्धाध्याय में पंडित शारंगदेव ने स्पष्ट किया है कि गाने नाट्य के अंतर्गत विभिन्न परिस्थितियों,

इस भाव स्थितियों और पात्रों की प्रकृति के अनुसार और अनुरुप प्रयोग किये जाने वाले रंजकता प्रधान गीत वे, जो ध्रुवायी कहलाते हैं।

''गान में अर्थ बोध की दृष्टि से पद प्रधान और स्वर उसका उपरंजक होने से गौण है।''

इस प्रकार गांधर्व और गान दोनों गीत के ही भिन्न प्रकार है परन्तु दोनों में स्वरुप, फल, काल और धर्म की दृष्टि से अंतर दृष्टिगोचर होते हैं। गांधर्व व गान दोनों को क्रमशः मार्ग संगीत और देशी संगीत के अंतर्गत रखा जा सकता है।

गांधर्व तथा गान की व्याख्या के पश्चात गान के दो भेदों का विस्तृत विवरण आवश्यक है क्यों कि इन्हीं में से प्रबन्ध के अंकुर का प्रस्फुटन हुआ है।

गान को दो भागों में विभक्त किया गया है –

1. अनिबद्ध गान
2. निबद्धगान

''निबद्धम निबद्ध तद् द्वेधा निगदितं बुधैः।''

निबद्धगान का अर्थ होता है बंधा हुआ एवं पूर्व रचित, अनिबद्ध गान का अर्थ है बिना बंधा किंचित् तुरंत रचित।

निबद्धगान अर्थ युक्त, छंदबद्ध व ताल युक्त होता है इसके विपरीत अनिबद्धगान अर्थहीन, तालरहित, छंद रहित होता है।

''आलप्तिर्बन्ध हीनत्वादनिबद्धमितीरिता।
सा चास्माभिः पुरा प्रोक्ता निबद्धंत्वधुनोच्यते।

अर्थात् गण का मुक्त रूप से विस्तार आलप्ति होता है। इसमें राग के नियम तो होते है परन्तु पूर्व रचित ना होने के कारण गायक उसको अपने ढंग से गाता है। जिस तरह आलप्ति विस्तृत होती है उसी प्रकार अनिबद्धगान भी प्रयोक्ता की इच्छानुसार विस्तृत हो सकता है, आलप्ति में ताल का बंधन नहीं होता अतएव इसे अनिबद्ध की संज्ञा दी गई है।

''बंद्ध धातुभिइरङ्गैश्च निबद्ध ननिधयिते।''

अर्थात् धातुओं से युक्त गान निबद्ध गान कहलाता है। धातु – उदग्राह, मेलापक, ध्रुव और आभोग।

निबद्ध के तीन प्रकार है –

गान –

1. प्रबन्ध
2. वस्तु
3. रूपक

ये तीनों प्रकार पुष्प की भिन्न–भिन्न पत्तियों के समान है जिनकी खुशबू में कोई अंतर नहीं होता है।

प्रबन्ध शब्द से तात्पर्य है चारों धातुओं और छः अंगों से युक्त (प्रबद्ध)।

रूपक का शाब्दिक अर्थ रूप या आकृति होता है अर्थात् जिसमें राग का रुप समाया हो वही रूपक है। धातुओं और अंगों का 'बसना' वस्तु की संज्ञा को सार्थक करता है।

प्रबन्ध को यदि मानव शरीर के रूप में मानें तो इसकी विवेचना इस प्रकार हो सकती है।

जिस तरह मनुष्य का शरीर धातुओं और अंगों से निर्मित है उसी प्रकार प्रबन्ध पुरुष का निर्माण भी चार धातुओं और छह अंगों से हुआ है।

चे चारों धातुएँ प्रबन्ध की स्वर योजना के बारे में सूचित करती है। प्रबन्ध की ये धातुएँ आज तक हमारी गायन शैलियों में किसी न किसी रूप में विद्यमान है।

उद्गाह से गीत प्रारंभ होता है तथा ध्रुव से गीत का समापन। इन दोनों के बीच का धातु में लायक होता है। मेलापक कुछ ही प्रबन्धों में होता है क्योंकि इसका प्रयोजन सिर्फ ध्रुव और उद्ग्राह को जोड़ना होता है। गीत के अंतिम भाग को आभोग कहा जाता है। आभोग गीत में पूर्णता लाता है, इसमें वाग्येयकार का नाम अंकित होता है। किसी–किसी प्रबन्ध की रचना मेलापक व आभोग के बिना भी होती है। किसी प्रबन्ध में दो, तो किसी में तीन और किसी में चार धातु भी दिखाई देती है।

प्रबन्ध में ध्रुव का परित्याग नहीं किया जा सकता वह अटल है इसीलिए इसे ध्रुव की संज्ञा प्राप्त हुई।

मेलापक और आभोगरहित प्रबन्ध द्विधातुक प्रबन्ध कहलाए, उदग्राह, मेलापक व ध्रुव धातु से युक्त प्रबन्ध विधातु प्रबन्ध कहलाए तथा चारों धातुओं से युक्त प्रबंधों को चर्तुधातु प्रबंध कहा गया।

प्रबंध के छह अंग

- स्वर
- विरुद्ध
- पद
- तेन
- पाट
- ताल

अंड़्गानि षट्तस्य स्वश्य विरुदंपदम्।
तेनक, पाट, तालौ च प्रबन्ध पुरूषस्य ते।
भवन्त्यंगवंदढ़्गानि।'' *(सं.सं. पृ.209)*

स्वर प्रबंध का अनिवार्य अंग परंतु स्वरासक्षर इसमें अनिवार्य नहीं है। विरुद्ध–नायक के गुणों का वर्णन विरुद्ध कहलाता है। वाधाक्षरों की ध्वनिपार है तो समय की सूचकांक ताल है। प्रबन्ध में प्रयुक्त 'ओम तत तरन' इत्यादि शब्द तेन कहलाते हैं।

सार्थक शब्दों की रचना पद कहलाती है।
इस तरह सम्पूर्ण प्रबंध का निर्माण होता है।

संदर्भ

- संगीत रत्नाकर – प्रबन्धाध्याय, सरस्वती व्याख्या, सुभद्रा चौधरी, श्लोक सं. 2, पृ.सं. 22.
- वही, पृ.सं.202.
- संगीत रत्नाकार, पृ.सं. 203.
- संगीत रत्नाकार, पृ.सं. 202.
- संगीत रत्नाकार, पृ.सं. 204, श्लो. सं. 4.
- संगीत रत्नाकार, पृ.सं. 205.
- संगीत रत्नाकार, पृ.सं. 205.

❑❑

14

अज्ञेय के साहित्य में पुरातनता में नवीन सन्दर्भों की पड़ताल

डॉ0 सियाराम
एसोव प्रो0, हिन्दी विभाग
तिलक महाविद्यालय, औरैया, उ.प्र.

हिन्दी की छायावादी कविता में जीवन–सौन्दर्य के प्रति आकर्षण का भाव तो विद्यमान था किन्तु वह केवल कलात्मक सौन्दर्य से नयनों को ही अभिराम लगती थी। उसका मानव जीवन में कोई सार्थक उपयोग नही हो सका। छायावादी कवियों ने जीवन को केवल स्वप्न मात्र माना, उन्हें जीवन में सत्य एवं यथार्थ की गंध स्यात् कभी नही मिली। यही कारण है, छायावादी कविता के स्वप्न सत्य के ताप से झुलसने लगे और शनैः–शनैः जनसाधारण में इसके विरुद्ध सुगबुगाहट शुरू हो गयी। जीवन चेतना ने करवट बदली और साहित्य में नये अध्याय और नूतन जीवन मूल्य विकसित होने लगे। इसके मूल में प्रगतिवादी दृष्टि एवं शोषित–पीड़ितों के प्रति सहानुभति का भाव था। प्रयोगवाद के आते ही कविता के क्षेत्र में वैचारिकता और बौद्धिकता का दौर चल पड़ा। देखते ही देखते बिम्बों, प्रतीकों तथा उपमानों के मिथकीय प्रयोग होने लगे और छोटी कविताओं का फैशन चल पड़ा जिसे साहित्य में प्रयोगवादी युग कहा गया।

प्रयोगवादी नूतन काव्यधारा को जन्म देने और विकसित करने का अत्यधिक श्रेय 'अज्ञेय' जी को है। उन्होंने प्रयोगवादी कविता की प्रवृत्ति एवं चिन्तन पद्धति का न केवल सर्वाधिक विवेचन किया बल्कि तदानुरूप साहित्य सृजन भी किया। प्रथम काव्य संग्रह 'भग्नदूत' (1933 ई0) से ही उनके प्रयोगवादी स्वर सुनाई देने लगते हैं जो कालान्तर में चिन्ता (1942 ई0), इत्यलम् (1947 ई0), हरी घास पर क्षण भर (1949 ई0), बावरा अहेरी (1955 ई0), इन्द्रधनुष रौंदे हुए थे (1957 ई0), अरी ओ करुण प्रभामय (1959 ई0) और आँगन के पार द्वार (1959 ई0) आदि ग्रन्थों में निरन्तर प्रखर होते गये। इन संग्रहों की कविताएँ जीवन में व्याप्त विषमताओं और कुण्ठाओं से द्वन्द्व ही नहीं करती वरन् वास्तविक तथ्यों का उद्घाटन, आत्मान्वेषण एवं सत्यान्वेषण से भी संपृक्त हैं।

चूँकि अज्ञेय चिन्तनशील कवि हैं। इसीलिए उनकी कविता में वैचारिकता एवं चिन्तन के वे तत्त्व विद्यमान है जिनसे आज का मानव प्रभावित हो रहा है। अज्ञेय ऐसे सवालों का सामना करने को तत्पर दिखते हैं जो उनके समय में बल्कि सम्प्रति भी विद्यमान है। आधुनिक युगीन मनुष्य, व्यक्ति और समाज पर मध्ययुगीन चिन्तन (जीव, ब्रह्म, माया, जीवन, जगत आदि) से भिन्न हैं। अज्ञेय भी आधुनिक मानव की भाँति व्यक्ति को ही मूल्यों का प्रतिष्ठाता मानते है। तभी तो वे कहते हैं– ''समाज और व्यक्ति की परस्पर निर्भरता भी उन मूल्यों में से एक है जिसका सृष्टा और प्रतिष्ठाता मानव है। यह परस्परता विवेक पर आश्रित है और स्वतंत्रता के आधारभूत मूल्य की रक्षा और उसके विकास के लिए भी वांछनीय है।''[1] मानव मूल्य किसी व्यक्ति द्वारा ही बनाये जाते हैं और समयान्तराल पर बहुपयोगी होने के कारण समाज उन्हें अंगीकार कर लेता है। इस प्रकार के मूल्य सामाजिक ढाँचे के अनुकूल होने पर शीघ्र स्वीकृति पा जाते हैं जबकि विपरीत होने की स्थिति में उन्हें स्वीकृत होने में समय लगता है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने सामाजिक दायित्वों का सम्यक् निर्वाह करे। इस सम्बन्ध में अज्ञेय का स्पष्ट मानना है– ''समाज के प्रत्येक व्यक्ति का समाज के प्रति कुछ दायित्व होता है। समाज जितना ही कम विकसित हो उतना ही वह दायित्व अधिक स्पष्ट और अनिवार्य होता है – अविकसित समाज में विकल्प की गुंजाइश कम रहती है। इसी बात को यों भी कहा जा सकता है कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति का एक निश्चित धर्म होता है और

जितना ही समाज अविकसित होता है, उतना ही वह धर्म रूढ़ और अनिवार्य।''[2]

अज्ञेय परम्पराधर्मी प्रयोग कर्त्ता कवि हैं। इसीलिए उनकी कविता में जाँच और पड़ताल की मानसिकता विद्यमान है। वे सच्चे अर्थों में आधुनिक कवि है। तभी वे बदलते हुए परिवेश के प्रति पूर्ण सजग हैं। उन्हें नये भावों से सम्बन्ध स्थापन करना एवं उन्हें दूसरों पर व्यक्त करना बखूबी आता है। इसीलिए उनकी कविता में एक ओर तो अपने समय को उद्घाटित करने वाले जीवन सत्यों को प्रस्तुत किया गया है वहीं दूसरी ओर परम्परागत सत्यों को नये संदर्भों में परखा गया है।

अज्ञेय का 'अहं' एक ऐसी चेतना है जिसे उन्होंने सामाजिक–मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं से उत्पन्न नयी अवधारणा में व्यक्त किया है। उनका 'अहं' सजीव गतिशील तत्त्वों की पहचान करके सृजनात्मक भूमिका अदा करता है। अज्ञेय का 'अहं' रूढ़िगत अवधारणाओं को नकारता है और वर्तमान परिवेश के सन्दर्भ में एक क्रान्तिकारी भूमिका निभाता है। उन्होंने 'भग्नदूत' में इसका स्पष्ट वर्णन किया है–

कानन का सौन्दर्य लूटकर,
सुमन इकट्ठे करके
यों सुरक्षित नीहार कणों से
आँचल में मैं भरके,
देव! आऊँगा तेरे द्वार।
किन्तु नही तेरे चरणों में दूँगा वह उपहार।

तोड़ मरोड़ फूल अपने मैं
पथ में बिखराऊँगा,
पैरों से फिर कुचल उन्हें मैं
पलट चला जाऊँगा।[3]

यहाँ कवि का अहं पारस्परिक पुरानी रूढ़ि से विद्रोह करता है। वह फूलों को मात्र देवताओं पर चढ़ाने की वस्तु नही मानता बल्कि वह स्वयं फूलों से अपना पथ आच्छादित करना चाहता है। इसी प्रकार अज्ञेय का कवि अंधविश्वास को भी दृढ़ चुनौती देता है–

मंदिर तुम्हारा है/देवता हैं किसके ?
प्रणति तुम्हारी है/फूल झरे किसके ?
नहीं, नहीं मैं झरा, मैं झुका,
मैं ही तो मन्दिर हूँ/ओ देवता! तुम्हारा।[4]

यहाँ मन्दिर, देवता, फूल, प्रणति आदि परम्परागत प्रतीकों का नये सन्दर्भ में प्रयोग किया गया है। जब कवि कहता है 'नहीं, नहीं मैं झरा, मैं झुका, मैं ही तो मन्दिर हूँ' तो वह स्पष्टता पुरानी परम्परा को नूतन सन्दर्भ में देखने का प्रयास करता है। इसी प्रकार जब अज्ञेय समाज में व्याप्त रूढ़ियों तथा शोषण एवं अमानवीयता के पुराने ढाँचे को देखते हैं तो उनका 'अहं' आहत हो उठता है और वे इन अगतिशील जड़ तत्त्वों को ललकार उठते हैं–

तुम सत्ताधारी, मानवता के शव पर आसीन।
जीवन के चिर रिपु, विकास के प्रतिद्वन्द्वी प्राचीन।
तुम, श्मशान के देव! सुनो, यह रणभेरी की तान'
आज तुम्हें ललकार रहा हूँ, सुनो घृणा का गान।[5]

अज्ञेय जहाँ कहीं भी मनुष्य का अपमान होते देखते हैं उनका मन विद्रोह कर उठता है। उनका यह विद्रोह सदियों से चला आ रही अमानवता के खिलाफ एक मानवीय दृष्टि प्रदान करता है। इसीलिए अज्ञेय 'सेक्स' सम्बन्धी रूढ़िबद्ध नैतिकता को नकार कर प्रेमानुभूति को नये सिरे से परिभाषित करते हैं—

थोड़ी देर/खुली—खुली/आँखें मिलीं
बिजलियों— से दौड़े संकेत।
सदियों की संस्कारों की/नीवें हिलीं
अभिप्रेत हुए प्रेत।
न देहें हिली—डुलीं/न कोई बोला,
गुँथ गयीं दो दुरन्त/ जिजीविशाएँ/फिर पलटी तुरन्तः
सहजता पर/ हम लौट आये
कौंध में/मैंने पहचाना/मेरे भीतर जो असुर है।
रुंधा, छटपटाता/प्रबल पर भोला।[6]

'यौन और प्रेम' के भाव प्राचीन काल से ही साहित्य के विषय बनते रहे हैं किन्तु वर्तमान सन्दर्भ के विकास के साथ—साथ यौन और प्रेम जैसे मूल राग सम्बन्धी अवधारणा भी बदल गयी है। इस सम्बन्ध में अज्ञेय स्पष्ट कहते हैं— ''हमारे मूल राग—विराग नही बदले, प्रेम अब भी प्रेम है और घृणा अब भी घृणा। यह साधरणतया स्वीकार किया जा सकता है पर यह भी ध्यान में रखना होगा कि राग वही रहने पर भी रागात्मक सम्बन्धों की प्रणालियाँ भी बदल गयीं हैं।''[7]

स्पष्ट है कि मौन एवं प्रेम जैसे मूल रागों को अज्ञेय नवीन संदर्भ में देखते हैं। वे इन्हें किसी रहस्य में न लपेटकर नितान्त मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने की प्रेरणा देते हैं। वे मनुष्य की मूल वृत्तियों में नैतिक—अनैतिक के बन्धन को अस्वीकार करते हैं तथा इन्हें अपराधबोध से स्वतंत्र करते हुए स्पष्ट कहते हैं—

आह, मेरा श्वास है उत्तप्त,
धमनियों में उमड़ आयी है लहू की धार
प्यार है अभिशप्त
तुम कहाँ हो, नारी ?[8]

'तुम कहाँ हो, नारी' यह कहना आधुनिक मनोविज्ञान की देन है जहाँ सेक्स को चरित्रहीनता नही माना जाता है। यह सम्बन्ध आधुनिक काल में मुक्त प्रेम के मनोवैज्ञानिक सत्य से कवि को परिचित कराता है। अज्ञेय की प्रयोगशील दृष्टि स्त्री—पुरुष सम्बन्धों को मनोवैज्ञानिक आधार पर देखती है। इनकी कविता में यौन और प्रेम की अनुभूति लौकिक स्तर पर अभिव्यक्त हुई है—

मुझे सब कुछ याद है। मैं उन सबों को भी
नही भूला! तुम्हारी देह पर जो
खेलती हैं अनमनी मेरी उंगलियाँ— और जिन का खेलना
सच है, मुझे जो भुला देता हैं—
सभी मेरी इन्द्रियों की चेतना उन में जगी है।[9]

अज्ञेय प्रेम को छायावादी कवियों की भाँति अमूर्त व वायवी न बनाकर मुझे मूर्त्त जीवन से जोड़ते हैं। सांसारिक प्रेम में आशा—निराशा, आशंका—कुण्ठा सभी विद्यमान रहती हैं तथा यही प्रेम को वास्तविकता से जोड़ती हैं। अज्ञेय के लिए प्रेमिका इसी दुनिया की जीती जागती स्त्री है, इसीलिए वह स्पष्ट कहते हैं—

इसी जमुना के किनारे एक दिन
मैने सुनी थी दुःख की गाथा तुम्हारी
और सहसा कहा था बेबसः
तुम्हें मैं प्यार करता हूँ।
गहे थे दो हाथ मौन समाधि में,
स्वीकार की।[10]

अज्ञेय की कविता में प्रेम, वासना और विवेक जीवन के यथार्थ से टकराते हैं। यहाँ प्रेम मात्र भोग का ही नहीं अपितु संघर्ष का भी प्रतीक है। प्रेम और यौन मानव जाति के ही नही वरन् सम्पूर्ण जीव–जगत के शाश्वत भाव हैं। इनकी बदलती हुई मान्यताओं के प्रति अज्ञेय सचेत हैं। वे इन भावों को फ्रायड के मनोविज्ञान के अनुसार मानवीय रूप में ही देखते–परखते और स्वीकारते हैं तभी तो कहते हैं–

मैंने तुम्हें छुआ है/मेरी मुट्ठियों में भरी हुई तुम
मेरी उंगलियों बीच छनकर बही हो–
कण प्रतिकण आप्त, स्पृष्ट, मुक्त।
मैंने तुम्हें चूमा है
और हर चुम्बन की तप्त, लाल, अयस्कठोर छाप
मेरा हर रक्त–कण धारे है।''

'यौन और प्रेम' प्रत्येक युग और समाज में चर्चित एवं चित्रित होते रहे हैं। इनका अपना एक सामाजिक सन्दर्भ रहा है। इन सम्बन्धों से जहाँ सामाजिक ताना–बाना प्रभावित होता रहा है वहीं ये सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों के निर्धारण में भी महत्त्वपूर्ण रहे हैं। समय–समय पर इनका रूप बदलता रहा हैं किन्तु कला के स्तर पर स्त्री–पुरुष सम्बन्धों एवं यौन–प्रेम रागों का नकार ही अधिक मिलता है। आधुनिक कवि इस सच्चाई से मुँह न फेरकर इन्हें असली रूप में देखता है। अज्ञेय की कविता में स्त्री–पुरुष के सम्बन्धों को रूढ़ि एवं परम्परा से मुक्ति मिली है। उनके अनुसार प्रेम की रागात्मक अवधारणा की अपेक्षा यौन–तृप्ति का एक क्षण अधिक सार्थक व अच्छा है क्योंकि इसमें छद्म मूल्यों का कोई आवरण नही होता। यही है अज्ञेय की प्रयोगशील दृष्टि।

व्यक्ति की इच्छा या अस्तित्व का समाज में सम्पूर्ण विलयन समाज एवं व्यक्ति किसी के हित में नही हो सकता है क्योंकि समाज का सतत् विकास जागरुक व्यक्तियों पर ही निर्भर है। विवेक सम्पन्न व्यक्ति अपना अस्तित्व बरकरार रखते हुए समाज को दिशा देने हेतु रूढ़ियों से टकराता है, असहमत होता है। अज्ञेय जी इस तथ्य से पूर्ण परिचित है, तभी वे कहते हैं–

किन्तु हम हैं द्वीप।
हम धारा नही है।
स्थिर समर्पण है हमारा/हम सदा से द्वीप हैं स्रोतस्विनी के
किन्तु हम बहते नहीं है क्योंकि बहना रेत होना है।
हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं।
पैर उखड़ेंगे/प्लवन होगा/ढहेंगे/सहेंगे/बह जायेंगे।
और फिर हम सलिल को तनिक गंदला ही करेंगे।
अनुपयोगी ही बनायेंगे।[12]

यहाँ समाज एवं व्यक्ति के बारे में कवि स्पष्ट धारणा है कि जिस तरह नदी में द्वीप के विलय हो जाने से न तो द्वीप की अर्थवत्ता रहती है और न ही नदी का विकास होता है क्योंकि बहना रेत होना है, उसी तरह व्यक्ति' की इयत्ता का खत्म होना, सब कुछ खत्म हो जाना है। अज्ञेय व्यक्ति के निर्माण में समाज के योगदान को भी स्वीकार करते हैं। वे व्यक्ति को एक सामाजिक इकाई मानकर इसे पूर्ण समर्थ देखना चाहते है क्योंकि व्यक्ति के समर्थ होने से समाज स्वमेव समर्थ हो जायेगा।

आज हम जिस युग में जी रह हैं वहाँ वैज्ञानिक प्रगति से हमारी मान्यताओं और उनके आधारों में मूलभूत परिवर्तन आ गया है किन्तु हम इस परिवर्तन को उतनी ही तीव्रता से जीवन और व्यवहार में स्वीकार नही कर पा रहे हैं। इस सम्बन्ध में अज्ञेय का मानना है कि यांत्रिक उन्नति आत्मा को प्रेरणा नही देती जबकि यह प्रेरणा मानव जीवन के लिए आवश्यक है। यांत्रिक उन्नति के परिवेश ने मनुष्य के समक्ष एक नया संकट उत्पन्न किया है जो पहले कभी न था। इसे अज्ञेय का कवि मन बखूबी महसूस करता है–

किन्तु यहाँ आसपास / घुमड़न है, त्रास है।
मशीनों की गड़गड़ाहट में।
भोली (कितनी भोली) आत्माओं की
अनुरणन की मोहमयी प्यास है।
यंत्र हमें दलते हैं / और हम अपने को छलते हैं
थोड़ा और खट लो थोड़ा और पिस लो–
यन्त्र का उद्देश्य तो बस अवकाश है।
और अवकाश मात्र अवकाश है।
बाहर हैं वे–वही तारे, वही एक शुक्र तारा
वही खूनी ममता से भरा आकाश है।[13]

स्पष्ट है कि कवि यहाँ यांत्रिक परिवेश और प्राचीन परिवेश को नये सन्दर्भ में विचित्र करते हुए यह बताना चाहता है कि आज के वैज्ञानिक परिवेश में व्यक्ति प्रकृति से लगातार दूर होता जा रहा है और मानसिक शान्ति खोता जा रहा है। इसी प्रकार कारखानों और उनमें उबलते हुए आदमी की पीड़ा को व्यक्त करते हुए अज्ञेय कहते हैं–

पहाड़ियों से घिरी हुई इस छोटी सी घाटी में
ये मुँहझोसीं चिमनियाँ बराबर
धुआँ उगलती जाती हैं
भीतर जलते लाल धातु के साथ
कमकरों की दुस्साध्य विशमताएँ भी
तप्त उबलती जाती हैं।[14]

अर्थात जिस उद्यम से मानव–मुक्ति सम्भव थी वही उद्यम बदलते परिवेश में मानव के शोषण एवं पीड़ा को और बढ़ाते जाते हैं, उसे छलते जा रहे हैं।

इसी प्रकार अज्ञेय की कविता पश्चिम के अंधानुकरण पर भी व्यंग्य करती है और भारतीयों के नकली व्यवहार पर भी। आज के वातावरण में नकलीपन एक विशेषता बन गया है, आज प्रेम भी छल बन गया है और मुस्कराहट के पीछे घृणा छिपी है अर्थात् पूरे मानवीय सम्बन्धों में कृत्रिमता एवं नकलीपन उतर आया है। यह कटु सत्य है जिस पर अज्ञेय लिखते हैं–

नहीं, ये मेरे देश की आँखें नही हैं
पुते गालों के ऊपर/नकली भवों के नीचे
छाया प्यार के छलावे बिछाती
मुकुर से उठायी हुई/मुस्कान मुस्कुराती
ये आँखें– नही मेरे देश की नहीं हैं–
तनाव से झुर्रियाँ पड़ी कोरों की दरार से।
शरारे छोड़ती घृणा से सिकुड़ी पुतलियाँ–
नही, ये मेरे देश की आखें नही हैं–[15]

'नही, ये मेरे देश की आखें नही हैं' कहकर कवि यह बताना चाहता है कि वह अपने देश की वास्तविक आँखों को पहचानता है अर्थात अपनी जातिगत अस्मिता और जीवन व्यवहार की पहचान उसे है। नकली और असली से परिचित कवि की यही दृष्टि परम्परा और नवीनता के फर्क को स्पष्ट करती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अज्ञेय प्रयोगशील मानसिकता के कवि हैं। वे अपनी पूर्व की काव्य परम्परा की सदैव जाँच–पड़ताल करते हुए मानव को उसके यथार्थ रूप में चित्रित करते है। अहं, प्रेम, व्यक्ति और समाज पर अज्ञेय ने अपनी लेखनी चलायी और कविता द्वारा अपने समय के उद्‌घाटित नये जीवन सत्यों को नवीन संदर्भों में परखा। इसीलिए अज्ञेय को हिन्दी जगत् में आधुनिक साहित्य की शुरुआत करने वाला कवि माना जाता है। वे घोर परम्परावादी और अपने को जनवादी कहने वाले एवं यथार्थ साहित्यिक मूल्यों की स्थापना करते हैं।

सन्दर्भ

1. अज्ञेय : स्रोत और सेतु (प्र0सं0), पृष्ठ–118।
2. सच्चिदानंद वात्सायन : त्रिशंकु (सं0–1973), पृष्ठ–27।
3. अज्ञेय : पूर्वा' भग्न दूत (सं0–1965), पृष्ठ–26।
4. अज्ञेय : क्योंकि मैं उसे जनता हूँ (प्र0सं0), पृष्ठ–43।
5. अज्ञेय : पूर्वा' बंदी स्वप्न (सं0–1967), पृष्ठ–49।
6. अज्ञेय : क्योंकि मैं उसे जनता हूँ (प्र0सं0), पृष्ठ–47।
7. सच्चिदानंद वात्सायन : आधुनिक हिन्दी साहित्य (प्र0सं0), पृष्ठ–229।
8. अज्ञेय : पूर्वा, पृष्ठ–132।
9. अज्ञेय : पूर्वा, पृष्ठ–216।
10. अज्ञेय : पूर्वा, पृष्ठ–238।
11. अज्ञेय : कितनी नावों में कितनी बार (द्वि0सं0), पृष्ठ–32।
12. सच्चिदानंद वात्सायन : आधुनिक हिन्दी साहित्य (पृ0सं0), पृष्ठ–97।
13. अज्ञेय : आत्मनेपद (प्रं0सं0), पृष्ठ–263।
14. अज्ञेय : अरी ओ करुणा प्रभामय (प्रं0सं0), पृष्ठ–45।
15. अज्ञेय : नदी की बाँक पर छाया (प्रं0सं0), पृष्ठ–11।

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

15

प्रेमचंद के उपन्यास रंगभूमि में वर्णित नारी जीवन

डा० संगीता परेशान्ति संगा
पूर्व शोधकर्त्ता, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग
राँची विश्वविद्यालय, राँची

रंगभूमि उपन्यास में नारी सदैव मानव परिवार की मुख्य आधार समझी गयी है। इसीलिए प्रत्येक राष्ट्र एवं समाज के सर्वांगीण विकास में वह मुख्य भूमिका का निर्वाह करती है, इसलिए प्राणियों के विकास में प्रेमचंद भी स्त्रीत्व को पुरूषपन से अधिक उपयोगी समझते हैं, ठीक उसी तरह जिस प्रकार प्रेम, त्याग और अहिंसा को हिंसा, संग्राम और कलह से मुक्त समझा जाता है। रंगभूमि में नारी पात्रों को भी प्रेमचंद ने आदर्श गुणों से मुक्त वर्णन किया है। सोफिया, जाह्नवी आदि ऐसे ही पात्र हैं। प्रेमचंद की नारियों में अतिशय, सहनशीलता, प्रेम की अन्नयता, निश्छलता, एकनिष्ठता और सर्वस्व त्याग की भावना का समावेश मिलता है। वे केवल त्याग की प्रतिमूर्ति बनकर एक मंदिर मात्र में सुसज्जित होकर नहीं रहती अपितु सामाजिक और राजनीतिक चेतना के मार्ग पर भी अग्रसर होती दिखाई देती है। "उन्होंने नारी को भी समाज का महत्वपूर्ण अंग माना उसके अधिकार, सम्मान, प्रतिष्ठा और महिमा की बात की।"[1]

रानी जाह्नवी एक उच्चवर्गीय विशिष्ठ पढ़ी–लिखी नारी है, जो एक आदर्श माता भी है, साथ ही पतिपरायण एक देशभक्त नारी भी है। डॉ० गांगुली के सत्संग के फलस्वरूप उनकी जीवन दृष्टि बदल जाती है। महाभारत तथा वीर वीरांगनाओं की कथाओं का अध्ययन करने पर उनके मन में अपने लिए बड़ी ग्लानि होती है और वह सोचने लगती है– "एक वे देवियाँ थीं, जो जाति की मर्यादा रखने के लिए प्राण तक दे देती थी, एक मैं अभागिनी हूँ कि लोक–परलोक की सब चिंताएँ छोड़कर केवल विषय वासनाओं में लिप्त हूँ। मुझे जाति की इस अद्योगति को देखकर अपनी विलासिता पर लज्जा आती थी।"[2] राजपूत नारियों की कर्तव्यनिष्ठा और देश सेवा में योगदान रानी जाह्नवी की लक्ष्य साधना बन जाती है। उसमें यह विश्वास घर कर जाता है कि अन्याय भ्रष्टाचार एवं परतंत्रता के पाश सेवा, बलिदान एवं त्याग से काटे जा सकते हैं, इसलिए देश की माताओं को चाहिए कि वे भी अपनी संतान के संस्कारों में इन प्रवृत्तियों को आग्रह–पूर्वक जगाने का प्रयास करें। वह स्वयं भी (विनय की माता) सोफी के समक्ष विनय की बात करते हुए कहती है– "विनय इन लोगों के साथ जा रहा है, और मैं गर्व से फूली नहीं समाती कि मेरा पुत्र जाति हित के लिए यह आयोजन कर रहा और तुमसे सच कहती हूँ अगर कोई ऐसा अवसर पड़े कि जाति–रक्षा के लिए उसे प्राण भी देना पड़े तो मुझे जरा भी शोक न होगा। शोक तब होगा, जब मैं उसे ऐश्वर्य के सामने सिर झुकाते या कर्त्तव्य के क्षेत्र से हटते देखूँगी।"[3]

मिसेज सेवक को माता के रूप में स्वार्थी एवं लोलुप ही चित्रित किया गया है, जो सम्मान ओहदे की ओर आकर्षित रहती है। माता की सी वात्सलता, क्षमा, आश्वासन के शब्द उससे अपेक्षित नहीं जब सोफिया रानी जाह्नवी के यहाँ रहती है तो उसकी खोज–खबर लेना नहीं चाहती लेकिन मि० क्लार्क द्वारा निमंत्रण की बात लेकर वह सोफी को लेने आती है। सोफी उस समय माता के गले से लिपटकर रो रही होती है, ऐसे में माता की सहानुभूति एवं आश्वासन की जरूरत होती है, लेकिन माता की आँखों में आँसू न थे। वे तो मिस्टर कलार्क के निमंत्रण का सुख–संवाद सुनाने के लिए अधीर हो रही थी। उसने कहा– "ऐसा सज्जन सिविलियन मैंने नहीं देखा। कोई भी अंग्रेज खानदान में उसका विवाह हो सकता है। लेकिन वह तुम्हारा सौभाग्य है कि वह तुम्हें अभी तक याद करते हैं। सोफिया को यह बात अच्छी नहीं लगी। सोफिया ने घृणा से मुँह फेर लिया। माता की सम्मान लोलुपता असहय थी। न मुहब्बत की बातें है, न आश्वासन के शब्द, न ममता के उद्‌गार कदाचित प्रभु मसीह ने भी निमंत्रित किया

होता तो वह इतनी प्रसन्न न होती।"[4]

इंदु विवाह के उपरांत अपने को एक कैदी की तरह मानती है। वह राजा महेन्द्र सिंह की पत्नी बनकर व्यस्त पति के धन की साम्राज्ञी बनकर खुश नहीं है तभी तो वह सोफिया को भी चेताए देती है कि किसी देशसेवक से शादी मत करना वरना उसके अवकाश के समय मनोरंजन की सामग्री मात्र बनकर रहना पड़ेगा। इंदु अपने ससुराल में परवश है। अपने पति की इच्छा के बगैर वह माँ के बुलाने पर उनसे मिलने भी नहीं जा सकती थी जो उसे बहुत अखरता है। वह पति के हाथों विवश है तभी तो वह सोचती है– "यह अन्याय नहीं तो और क्या है? घोर अत्याचार। कहने को तो मैं रानी हूँ लेकिन इतना अख्तियार भी नहीं कि घर से बाहर जा सकूँ। मुझसे तो लौडियाँ ही अच्छी है।"[5]

इन्दु की इच्छा या उसके स्वाभिमान की अपेक्षा उसके पति को अपने नाम से प्रेम है, संसार की सारी वस्तुएँ नाम की फीकी है। यही कारण है कि जब सोफी को संग ले जाने के इंदु के अनुनय–विनय को वे नहीं स्वीकारते। इंदु हृदय की गहराइयों से श्रद्धापूर्वक उनकी आज्ञा का पालन नहीं करती वह विवश है। उनकी बात मानने को माता जाह्नवी ने भी इंदु को यही सिखाया है। वह उसे पति–परायण सती देखना चाहती है, जिसे अपने पुरूष की आज्ञा या इच्छा के सामने अपने मान–अपमान का जरा भी विचार नहीं होता। वह आदर्श पत्नी की तरह चुप रह जाती है।

कुल्सुम ताहिर अली की पत्नी है जो एक साधारण नारी के स्वाभाविक गुणों से युक्त दिखाई देती है। ताहिर अली अपनी माताओं, पुत्र माहिर अली की पढ़ाई का खर्च उठाता है जिससे उसके स्वयं के इलाज के लिए भी उसे सोचना पड़ जाता है। कुल्सुम को यह बात अच्छी नहीं लगती। मन ही मन वह रकिया और जैनब से जलती है। उसे यह कतई पसंद नहीं कि उसका पति पूरे परिवार की सोचता रहे, उनकी जरूरतों का ख्याल करता रहे और उसके अपने बच्चे खाने को लाले पड़े। वह कहती– "घर के लोगों के पीछे क्या जान दे दोगे?ताहिर अली– कैसी बातें करती हो, आखिर वे लोग कोई गैर तो नहीं हैं, अपने ही भाई हैं, अपनी ही माएँ है। उनकी परवरिश मेरे सिवा और कौन करेगा?

कुल्सुम– तुम समझते हो . . . . . मेरे बच्चे पैसे–पैसे को तरसते है और वहाँ मिठाईयों की हांडियाँ आती है उनके लड़के मजे से खाते हैं। देखती हूँ और आँखें बंद कर लेती हूँ।"[6] कुल्सुम पति पर आश्रित है, वह उन्हें समझने का प्रयास करती है परंतु ताहिर अली पूरे परिवार को लेकर चलने वाला है। वह पुनः समझाती है कि मुझे तो आपका ही आसरा है अतः अपनी इलाज के लिए डॉक्टर की फीस जरूरी है। यहाँ उसके पत्नी सुलभ भावों का उजागर होता है कि वह अपने पति को स्वस्थ देखना चाहती है।

उपन्यासकार प्रेम का मूल स्वरूप उसे मानते हैं जो पारस्परिक विश्वास, त्याग, बलिदान आदि मानव मूल्यों को अन्तर्गत करके पनपता है। पुरूष की अपेक्षा नारी को प्रेम के रूप में वे अधिक एकनिष्ठ पवित्र तथा दानिनी समझते हैं। इसलिए उनके उपन्यासों में नारी के प्रेमिका रूप का वर्णन गरिमापूर्ण है। इस अनुरागमयी नारी के लिए परिस्थितियाँ कैसी भी हो प्रियतम से पृथक कल्पना उसके लिए असहय है। उसका धर्म, समाज और सर्वस्व समर्पित कर चुका है। उसके साथ वह अटूट तार में बँधकर उसके लिए बड़े से बड़ा त्याग कर सकती है, किन्तु प्रणयविहीन जीवन से किसी प्रकार का समझौता नहीं कर सकती। सोफिया नारी की इसी अनुराग भावना का प्रतिनिधित्व करती है।

जॉन सेवक की पुत्री सोफिया अपने दकियानुसी माता–पिता से विद्रोह करके घर से निकल पड़ती है क्योंकि उसका अध्ययन गंभीर है, विचार स्पष्ट और दृष्टिकोण व्यापक है। वह विनय के प्रति अनुरक्त होती है लेकिन धर्म आड़े आने के कारण रानी जाह्नवी उसकी अनुमति नहीं देती। सोफिया का प्रेम सत्य है, अनन्त है और वासनारहित है। उसमें प्रतिदान की संकीर्णता नहीं, आत्मसमर्पण का औदात्य है। प्रेमचंद का कहना है– "प्रेम और

वासना में उतना ही अंतर है। जितना कंचन और कांच में, प्रेम की सीमा भक्ति से मिलती है और उनमें केवल मात्रा का भेद है। भक्ति में सम्मान और प्रेम में सेवाभाव का आधिक्य होती है। प्रेम के लिए धर्म की विभिन्नता कोई बाधक नहीं है। ऐसी बाधाएँ उस मनोभाव के लिए है, जिसका अंत विवाह है, उस प्रेम के लिए नहीं, जिसका अंत बलिदान है।"[7]

नारी स्वभाव से ही प्रेम करना जानती है, प्रेम करती है। उस मनुष्य से प्रेम करती है, जो उसके मानकों पर सही अर्थ में मनुष्य सिद्ध हुआ है, वह मनुष्य है।

विनय। विनय सोफिया का प्रेमी है। एक इसाई है दूसरा हिन्दू फलस्वरूप जातिगत, धर्मगत एवं समाजगत अनेक व्यवधान इन दोनों के बीच आकर खड़े हो जाते हैं। किस वक्त में उनके चरणों पर गिरकर कहूँगी– "अम्मा, तुम्हारा बेटा मेरा मालिक है, मेरे नाते उसे क्षमा कर दो, उस वक्त वह मुझे पैरों से ठुकराएँगी नहीं। वहाँ से झल्लायी हुई उठकर चली जाएँगी, लेकिन एक क्षण बाद मुझे बुलाएँगी और प्रेम से गले लगाएँगी। मैं उनसे तुम्हारी प्राण भिक्षा माँगूँगी, फिर तुम्हें माँग लूँगी।"[8] जीवन की परिस्थितियाँ अनुकूल हर स्थिति में वह एक आदर्श प्रेमिका की भाँति सोफिया के हृदय में विनय का प्रेम पनतपा और पल्लवित होता रहता है।

बुढ़िया, दारोगा की वृद्धा माँ होने पर बहुत दुःखी है। उसे घर में बहू और बच्चों के पोषण करने के लिए भीख माँगने का मार्मिक चित्र प्रेमचंद ने खींचा है। वह भी एक नारी है, जिसका सबकुछ समाप्त हो गया फिर भी अपनी बूढ़ी कंधों पर जीवित लाशों को ढोयी जा रही है। जब सोफिया उसे बताती है कि उसके पुत्र की हत्या करने वाली वह स्वयं है, तो बुढ़िया को विश्वास नहीं होता। उसे तो सोफिया दया और करूणा की प्रतिमूर्ति सी दिखाई देती है, परंतु माँ का ममत्व जब जान लेता है कि सोफिया उसके पुत्र की हत्या का कारण है तो शाप देने से नहीं चूकती। वह कहती है– "क्या तू ही वह पिशाचिनी है?...... जैसा तूने किया है, वैसा तेरे आगे आयेगा, मैं तुझे और क्या कहूँ। मेरी भाँति तेरे भी दिन रोते बीते।"[9] सोफी उसे माता कहकर पुकारती परंतु उसकी आत्मा ने जो कहा सोफी की जीवन सचमुच रोते बीता। अंत समय में उसे जल समाधि ही लेनी पड़ी। इस तरह हम देखते हैं कि नारी का यह स्वरूप प्रस्तुत उपन्यास में अपनी पराकष्ठा को स्पर्श करता है। प्रेमचंद की नारी भावना में आकाश की व्यापकत्व प्रकाशपुंज सा आदर्शलोक, सरिता की सी निःस्पृह व्यवहारिक एवं उपयोगिता, मानव सुलभ चिंतन, सितार की लरजन–सी सहानुभूति ये सब इस प्रकार से विद्यमान हैं कि कहीं भी नारी या पुरूष के हृदय को एक तार में बाँध सकती है और उसके द्वारा नारी के प्रति जो एक श्रद्धा भावना उद्बुद्ध होती है उससे बड़े तथा गंभीर लोकमंगल का कल्पना इस हाड़मांस के जगत में संभव नहीं हो सकती। अपने औपन्यासिक पात्रों के घनिष्ठ और निर्णायक सामाजिक संबंधों के कारण ही प्रेमचंद व्यक्ति के माध्यम से विभिन्न सामाजिक प्रश्नों और स्थितियों को प्रस्तुत करने में समर्थ हो सके हैं।

संदर्भ

1. प्रेमचंद, रंगभूमि, प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ 88
2. वही, पृष्ठ 82
3. वही, पृष्ठ 90
4. वही, पृष्ठ 101
5. वही, पृष्ठ 107
6. वही, पृष्ठ 110
7. वही, पृष्ठ 111
8. वही, पृष्ठ 117

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

16

दामोदरदत्त दीक्षित की कहानियों में अभिव्यक्त बदलते संबंधों की रूपरेखा

डॉ0 श्रीकला
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
एन एस एसहिन्दू कॉलेज, चंगनास्सेरी, कोट्टायम, केरल

दामोदर दत्त दीक्षित ऐसे एक महान लेखक एवं बहुमुखी प्रतिभा हैं जिनका बहुत कम ही आलोचना हुई हैं। उनका पुरस्कृत उपन्यास 'धुआं और चीखें' समकालीन सन्दर्भ में प्रासंगिक कृति हैं। 'दरवाजे वाला खेत', 'हद्देदार', 'अलगी–अलग' आदि कहानी संग्रह अस्सियोत्तर साहित्य में अपना अलग और विशिष्ट स्थान रखते हैं। व्यंग्य रचानाओं में उनके निजीपन का संसार बखूबी अनावृत होते हैं। 'विकट वन के विचित्र किस्से' चर्चित लघुकथा संग्रह हैं। 'जैसे उनके दिल बहुरे' पुरस्कृत लोक–कथा संग्रह हैं सयह रचना इस विधा की महत्वपूर्ण कड़ी हैं। 'हम न भूलेंगे तुम्हें' शीर्षक व्यक्ति संग्रह, संस्मरण, पत्र, डायरी, अनुवाद एवं संपादन कार्य से उन्होंने हिंदी साहित्य को संपन्न किया हैं। कहानीकार और व्यंग्य कार के रूप में उन्हें अधिक ख्याति प्राप्त हैं। '51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ' उनका प्रसिद्ध व्यंग्य संग्रह हैं।

हिंदी साहित्य के इने गिने व्यंग्यकारों की परंपरा में दीक्षित जी का नाम भी उल्लेखनीय हैं। प्रतिपल बदलते मानव जीवन में ऐसे अनेक अनदेखे दृश्य होते हैं जिनको कहानी के स्वरुप में बदलने का विशेष सामर्थ्य दीक्षित जी ने प्रदर्शित किया हैं। छोटे–मोटे कभी अपरिपक्व दिखनेवाले क्षणों को भी बड़ी सादगी के साथ कहानी के बनावट के अनुरूप बदलकर उनको किंचित सुखद तनाव के साथ वे प्रस्तुत करते हैं। दामोदरदत दीक्षित का कहानी संग्रह 'प्रेम सम्बन्धों की कहानियां' 2013 में प्रकाशित हुई हैं। इसमें कुल 14 कहानियां संगृहीत हैं। इन कहानियों में लेखक ने मानव प्रेम को विभिन्न परिवेशों से देखा–परखा हैं सशिक्षित–अशिक्षित, गरीब–अमीर, गाव–शहर, परंपरागत – आधुनिक आदि कई मायने में स्त्री–पुरुष सम्बन्धों का आकलन इन कहानियों के द्वारा किया गया हैं। 'संस्कार' शीर्षक कहानी में कहानीकार ने साबित किया हैं कि गाँववालों का आपसी सम्बन्ध सघन एवं गहनतम हैं जबकि शहर में केवल सतही सम्बन्धों को ही अधिक देखने को मिलते हैं। इसमें सुधारवाद के परिप्रेक्ष्य में प्रमुख पात्र 'मनसुख मिश्र' के चरित्र का निर्माण किया हैं। श्लीलता और अश्लीलता गाँववालो के नज़र में, कभी संबंधों की सुरक्षा और कभी क्षति का कारण बनते हैं। "किसी छोटे गरीब आदमी ने यह किया होता तो तत्काल गॉव निकाला हो गया होता। प्रतिष्ठा और पैसे की वजह से मनसुख मिस्र इस जलालत से बच गए।" इस कथन से कहानीकार ने एक शहरी आदमी के द्वारा तब्दील किये गए परिवेश को प्यार की गर्माहट के साथ उद्घाटित किये हैं। उनकी संवेदना में मानवीयता की रक्षा करनेवाले का धैर्य संगुम्फित हैं। "क्या तुम मेरे घर नही चल सकती हो?" – यह संस्कार को बदलने की ख्वाहिश से युक्त वह निमंत्रण हैं। इस कहानी में स्नेह संवेदनाओ के बीच आहत स्वाभिमान और सूखी स्नेह सरिता का भी चित्रण मिलते हैं। गॉव का अलग संस्कार हैं, ज़िन्दगी अलग हैं। कहानीकार ने यह दिखाया हैं कि परिवेश बदलने पर भी रेशमा और मनसुख मिश्र के प्यार में सघनता और तीव्र हो गया हैं। रेशमा का कहना हैं – "यहाँ घर की कैद थी, फिर भी खुली छत थी जिसकी पूंजी हरे भरे खेत घनी अमराइयाँ दूधिया पानी की नहर, ठंठी मादक हवा, छिटकी चाँदनी और चमकते सितारे थे। यह सब न भी होता तो भी बाबू की मुहब्बत इतनी वज़नी थी कि यह जगह हजार हॉथ बेहतर होती। वहाँ ऊब, भीड़ और कान पकाने वाले शोर से होती थी, यहाँ अकेलेपन से सन ही बाबू उसे कुछ कहते, न ही वह कहने का मौका देती। दोनों एक दूसरे पर कुर्बान थे।

'आस–निरास' कहानी में लेखक ने आधुनिक महानगरीय जीवन में पल्लवित 'यूज़ एंड थ्रो' कल्चर मानवीय संबंधों को भी नकारात्मक देहक्रांति की तरह बदल देने की प्रवृति का पर्दाफाश किया हैं। इसमें स्त्री मन की भावनाओ को आन्दोलित करती उत्तराधुनिक मानसिकता को यथार्थ के धराधल पर पेश किया गया हैं। मेट्रोपोलिटन नगरों में स्त्री की अस्मिता मात्र 'उपभोग की चीज़' हो गयी है। संबंधों का खोखलापन मानवीय मूल्यों को रद्दोबदल करने की सिलसिला बहुत पुरानी हैं। कहानी का मुख्य पात्र रश्मि महसूस करती है। कि आधुनिक युग में नारी के साथ 'प्यार' नहीं दरअसल केवल एक नाटक ही इसके बहाने प्रदर्शित होती हैं। सच्चे प्यार के लिए आंदोलित रश्मि का मन इसके लिए एक लिटमस टेस्ट की ज़रूरत पर प्रतिक्रिया करती हैं – "जिनमें सच्ची चाहत होती हैं वे सात समंदर पार कर अलंघ्य पर्वत लांघकर सामने आ खड़े होते हैं – प्यार का यह लिटमस टेस्ट हैं।" (पृष्ठ–47)

आधुनिक ज़माने में, वैज्ञानिक तौर पर प्यार को साबित करनी पड़ती हैं। यहाँ प्यार मात्र एक भावना से बढकर उसकी उपस्थिति की अनिवार्यता को ठोस बनाने की आकांक्षा स्पष्ट हैं। समकालीन समाज की चुनौतियों ने मनुष्य के दिल में आस्था और विशवास का रूप भी बदल दिया हैं। मानवीय संबंधों की अवधरणाएँ अक्सर स्वेच्छाचारिता का रूप लेकर प्रविष्ठ होते हैं। पाश्चात्य तौर तरीकों को स्वायत्त करने की प्रणाली वैवाहिक संबंधों के परम्परित स्वरुप में भी परिवर्तन लाया हैं।

परिवेश जितने भी बदले परीक्षा हमेशा दुर्बल को ही लेनी पड़ती हैं। कहानीकार ने खुलकर आधुनिक शिक्षित नारी की स्थिति भी दुर्बल ठहराया हैं "नवविवाहिता को पग पग पर परीक्षा देनी पड़ती हैं, अगर फेल होती हैं तो हमेशा के लिए फेल मान लिया जाता हैं – सप्लीमेंटरी–कम्पार्टमेंटल की भी सुविधा नहीं।" (पृष्ठ–49) कहानी की नायिका रेशमी ने अपना पहला प्यार झूठा निकलने के उपरांत उदयन नामक पुरुष से परंपरा के अनुसार दहेज़ देकर समस्त रीति रिवाजों का पालन करते हुए विवाह कर लेती हैं लेकिन महामिलन के रात ही वह उसका असलियत पहचानकर मन से चीख चीख कर दम घुट जाती हैं। वह पुरुष वर्चस्ववादी पारिवारिक व्यवस्था से एकदम अतृप्त हैं।

आज की स्वावलंबित नारी की अस्मिता, दैहिक तृप्ति के बाहर उससे भी ऊपर उच्च्य स्थरीय मानसिक सम्बन्ध के रूप में प्यार को देखती हैं। वे खुद को नष्ट करके नहीं, अलग करके प्रतिक्रिया करती हैं। उनके नज़र में, वे सभी मान्यताएं जिनमें नारी को अपनी अस्तित्व का विलयन करनी पड़ती हैं, गिरी हुई हैं। रश्मि जिस तरीके से पति रुपी मर्द को मन से परास्त कर देती हैं, वह निश्चय ही प्रशंसनीय हैं– "उदयन, तुम भी दकियानूसी बल्कि घटिया मर्द निकले, या फिर सारी मर्दानगी दिखाने के बावजूद मर्द भी नहीं, भले तुमने मुझे पास कर दिया पर मैं तुम्हें फेल करती हूँ। यहाँ प्रतिक्रिया एवं प्रतिरोध की आवाज़ बुलंद किया गया हैं जिसका कारण प्रेम संबंधों की खाई ही समझना चाहिए। पुरुष वर्चस्व वादी समाज की परिकल्पना उत्तर आधुनिक युग में भी बिलकुल बदला नहीं हैं।

'वह कमबख्त प्यार करती थी' एक शिक्षक और शोधार्थी के बीच का सामान्य सी रिश्ता कई घनीभूत क्षणों से गुज़रकर अंत में प्यार में बदल जाने की मार्मिक कहानी हैं। कहानी के बीचों बीच लेखक कई रंगीली तैल चित्र खींचते हैं सशैफाली और रोहित इसके मुख्य पात्र हैं। उच्च शिक्षा में अक्सर गुरु एवं शिष्य साथियों के समान संपर्क करते हैं। इस कहानी में रिश्तों का ढेर नहीं हैं, बल्कि घनिष्ठ एवं गहरे मानसिक व्यापारों को ही कहानीकार ने वाणी दी हैं।

परिवेशानुकूल सोचनेवाले दो व्यक्तित्वों के बीच में अहम्मन्यता को खोये बिना ही प्यार अतिथि के रूप में आता हैं। फिर आभ्यंतर वातावरण की झलक धीरे धीरे बाहर झांकती हैं। कहानी के शुरुआत से अंत तक के वातावरण की कोमलता में तनिक भी कमी नज़र नहीं आता हैं। कहानी का नायक वास्तव में कोई व्यक्ति नहीं बल्कि प्यार की वह रिश्ता हैं, जिसमें परिवेशगत तनाव कहानी कला के अनुकूल प्रस्तुत किया गया हैं। बौधिक दृष्टि से

उच्चस्तरीय तटस्थता का प्रदर्शन होते हुए भी हार्दिकता को प्रारंभ से अंत तक जितनी लगाव के साथ उकेरा गया हैं वह वस्तुतः समीचीन हैं।

मानव मन की तर्कातीत स्थितियों से गुज़रकर कहानी कार ने जो चित्रण किया हैं उसमें आँखों से ओझल नहीं होनेवाले अनेक दृश्य एवं कल्पनाएँ हैं। अनुराग की एकपक्षीयता का सवाल भी जानबूझकर इसमें उठाया गया हैं। संक्षिप्त भेंट आकाश जैसा विस्तृत सुख देनी गयी क्या एक पक्षीय अनुराग से इतना उद्दाम सम्मोहन संभव हैं?. .....पृष्ठ–34 प्रतिपल बदलते ज़िन्दगी में प्यार के ऐसे अमुक क्षण होते हैं जिन्हें कुछ निर्मम बुधिजिवियोम के बीच में ढूँढ़ने की सफल कोशिश की गयी हैं। 'ईगोसेंत्रिक पीपुल' जैसा प्रयोग करके कथाकार ने अपने उद्देस्न्य को पूरी तरह अनावृत किया हैं। रोहित और शेफाली मात्र ज़िन्दगी के ऐसे रंगीन पर्चे हैं जिसमें अनोखी ऐन्द्रजालिकता की भाँति कुछ भी नहीं हैं। कहते हुए मानवीय संबंधों की सरल स्वीकृतियों का उपक्रम पेश किया हैं। (पृष्ठ–34) विश्व विद्यालयी वातावरण की विशिष्टता को खोये बिना ही मन में भावों की उपस्थिति को सम्पूर्ण स्वाभाविकता के साथ जोड़ा गया हैं। संयोगवश अंत में पता चलता हैं कि नायिका का उसकी नायक कौन हैं, तब तक एक शोधकार्य की भांति पाठक भी इसी प्रतीक्षा में लगे रहते हैं कि प्यार का सिलसिला कहाँ की ओर हैं? प्यार में लज्जा का समावेश भी बदला नहीं हैं – लज्जा जो गर्हित कार्य करने वाले बच्चे के चहरे पर होती हैं।

कई कहानियाँ असफल – मुरझाये क्षणों को भी अत्यंत बारीकी के साथ रूप देने की कोशिश से उद्भूत हैं। प्रत्येक कहानी में परिवेश की सघनता तथा पात्रों के चरित्र चित्रण की स्वाभाविकता मौजूद हैं। दीक्षितजी की भाषा एवं अभिव्यक्ति शैली में रहस्यमयता नहीं हैं। कहानीकार का उद्देश्य साफ साफ अनावृत होता हैं। कहानी में चित्रित सन्दर्भ हमारे रू–ब–रू की ज़िन्दगी का परिछेद मात्र हैं। इसमें न ही ऐन्द्रजालिकता हैं और न ही फंटेसी सज़िन्दगी रूपी पहाड़ से अनवरत बहने वाली संबंधों की नदी अनेक अजीब एवं रहस्यमय तटों को स्पर्श करते हुए आगे बढती हैं। इन तटों के विभिन्न कोणों से कहानीकार ने परिवर्तनशील सम्बन्धों के दृश्य खींचा हैं। उनमें मानव की खास प्रतिक्रियाएं तथा अन्दर्द्वंद्वों के विभिन्न आयामों को देख सकते हैं।

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

17

स्वानुभूति से सहानुभूति का आन्तरिक द्वन्द्व

आरती
शोध छात्रा – हिन्दी विभाग
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

भारतीय समाज की अवधारणा पितृसत्तात्मक समाज पर टिकी है, जहाँ स्त्रियाँ मूकदर्शक बनकर रहती है उन्हें बोलने का या अपनी राय देने का अधिकार नहीं है। उनकी स्थिति पिंजरें में बन्द पंक्षी की भाँति है जिसे दाना–पानी तो मिलता है, परन्तु उड़ने की आजादी नहीं। वह उसी में पंख फड़फड़ा कर उड़ने का निष्फल प्रयास करता है और कभी–कभी अपने प्रयासों में सफल भी हो जाता है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज में घटित घटनाओं को साहित्यकार समाज के समक्ष साहित्य के माध्यम से ही व्यक्त करता है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में पिछले तीन–चार दशकों से स्त्री लेखन की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया है। स्त्री की समस्याओं से सम्बन्धित लेखन को स्त्री लेखन का नाम दिया गया है। हिन्दी कथा साहित्य में सहानुभूति एवं स्वानुभूति का आन्तरिक द्वन्द चल रहा है दोनों में होड़ चल रही है कि कौन स्त्री के प्रति मानवीय संवेदना बेहतर तरीके से व्यक्त कर सकता है।

''साहित्य में स्वानुभूति और सहानुभूति का प्रश्न वस्तुतः स्त्री जीवन तथा उसकी बहुआयामी समस्याओं पर लेखिकाओं और लेखकों के लेखन में पहचाने जाने वाले अन्तर से जुड़ा है।''[1] स्वानुभूति लेखन से तात्पर्य है जब कोई लेखक या लेखिका अनुभवजनित उद्‌गार जैसे– पीड़ा, व्यथा, दुःख–दर्द, आदि यथार्थ के साथ अपनी रचनाओं में व्यक्त करता है। अपना भोगा हुआ यथार्थ अति कटु होता है वह कभी न भूलने वाला दर्द है जो जाने–अनजाने रचनाकार की रचना में किसी न किसी रुप में आ ही जाता है। कुछ अनुभव ऐसे होते है जो जिन्दगी भर पीछा नहीं छोड़ते। स्वानुभूति के सन्दर्भ में महादेवी वर्मा कहती है ''विचार के क्षणों में मुझे गद्य लिखना ही अच्छा लगता रहा है, क्योंकि उसमें अपनी अनुभूति ही नहीं बाह्य परिस्थितियों के विश्लेषण के लिए भी पर्याप्त अवकाश रहता है।''[2]

सदियों से पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने स्त्रियों को दबा कर रखा स्त्री केवल वही बात बोलती थी जो पुरुष कहलाना चाहता था। परन्तु आधुनिक स्त्री अब जब अपनी बात कहने में स्वयं सक्षम है, तो पुरुष वर्ग के सहारे की क्या जरुरत अब वह स्वयं के पैरों पर खड़ी है तो बैसाखियों की क्या आवश्यकता। जहाँ तक स्त्री के सन्दर्भ में पुरुष स्वानुभूति नही व्यक्त कर सकता हाँ यह बात और है कि वह अपनी अनुभूति पुरुष सन्दर्भ में व्यक्त कर सकता है। सूर्यबाला के अनुसार– ''अनुभव यही कहता है कि लेखिकाओं का क्षेत्र अधिकतर घर नारी मन रहा है जबकि पुरुष लेखन का घर बाहर दोनों। लेकिन हम इस क्षति की पूर्ति भी तो कर लेती हैं। नारी मन की अथाह गहराइयों में पैठकर इतना तो मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि नारी के अन्दर इतने गूढ़, तिलस्म, गुफाएँ, और प्राचीर हैं कि इन्हें भेद पाना आसान नहीं, जिनको जितनी सत्यता और ईमानदारी से नारी भेद सकती है पुरुष नहीं।''[3] समकालीन साहित्य में स्त्री लेखन का जो परिनिष्ठित रुप हमें आज पढ़ने को मिलता है वह हठात नहीं आ गया है इसकी पृष्ठभूमि अचानक नहीं बन गयी बल्कि उसके पीछे सैकड़ों वर्षों से दबी कुचली आवाज है जो पहले बुदबुदाहट एवं बड़बड़ाहट के रुप में स्त्रियों के मुख से निकलती थी। आज वहीं साहित्य में अपने दुःख दर्दो को व्यक्त करके पितृसत्तात्मक व्यवस्था को इसका आभास करा रही है कि वह एक जीती जागती इन्सान है, कोई तरासी हुई प्रतिमा नही जो देखने में तो प्रतीत हो, की अभी बोल पड़ेगी परन्तु वास्तविकता यही है कि वह मूक

ही बनी रहेंगी। स्त्री कुछ लिखने का अपने बारे में या अपनी जैसी अन्य स्त्री की बात को लेखन के माध्यम से अभिव्यक्त करने का सदियों से प्रयास कर रही थी परन्तु सफल नहीं हो पा रही थी क्योंकि उसे स्वतन्त्रता नहीं थी अपनी अभिव्यक्ति को व्यक्त करने की। 19शताब्दी में स्त्री अगर लेखन क्षेत्र में आती थी तो उसे समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता था इसलिए कुछ लेखिकाओं ने नाम बदलकर लेखन कार्य किया। इसका उदाहरण 'राजेन्द्र बाला घोष' जिन्होंने 'बंग महिला' के नाम से लिखा नहीं ंतो पुरुषों द्वारा लिखित 'भाग्यवती' आदि पढ़कर ही हम संतोश कर लेते थे। स्त्री लेखन की कड़ी का प्रथम प्रयास 'महादेवी वर्मा' के निबन्ध 'शृखला की कड़ियाँ' माना जाता है। इस निबन्ध संग्रह में महादेवी वर्मा ने स्त्री सम्बन्धी समस्याओं को उठाया है, इसी शृखला में अगला नाम 'सीमोन द बोउवार' की स्त्री जीवन की समस्याओं को उद्घाटित करती पुस्तक 'द सेकेण्ड सैक्स' जो हिन्दी में प्रभा खेतान द्वारा अनुवादित 'स्त्री उपेक्षिता' प्रमुख है। जिसमें सिमोन ने कहा कि ''स्त्री पैदा नही होती बल्कि बना दी जाती है।''[4] कहकर पितृसत्तात्मक समाज को कटघरे में लाकर खड़ा कर दिया था।

आधुनिक लेखिकाओं ने स्त्री विशेषकर अपने समाज की स्त्री की पीड़ा, समस्या एवं उसके अन्तर्विरोधों को व्याख्यायित कर साहित्य रचा है। आधुनिक स्त्री समाज द्वारा थोपी पुरातनपंथी, पराम्परा, रीति–रिवाजों के झूठे आवरण में नहीं जीना चाहती। वह चाहती है स्वतन्त्रता, स्वच्छन्दता, समानता तथा अपने शब्दों की अभिव्यक्ति की आजादी। इस आजादी को पाने के लिए स्त्रियों ने सदियों से संघर्ष किया है, कभी वह विद्रोही तो कभी व्यभिचारिणी कहलायी है सिर्फ अपने अधिकारों को पाने के लिए। स्त्री लेखन के सन्दर्भ में प्रभा खेतान का कथन समीचीन ही है कि ''स्त्री लेखन की सीमा उसके स्त्री होने में निहित कारणों में है...उसके अनुभव का जगत संकुचित होगा... .. लेकिन किस सामाजिक परिवेश में ऐसा घटा? किन–किन जोखिमों में हिन्दी समाज की स्त्री को गुजरना पड़ता है? स्त्री पुरुष की परिस्थिति समान नहीं ंतो रचनात्मक परिणाम भी कैसे होंगे।''[5] अब प्रश्न यह उठता है कि क्या कोई पुरुष स्त्री की समस्याओं को अपने शब्दों में वैसा ही व्यक्त करने में सफल होगा जैसा कि पीड़ित स्त्री कर पायेगीं। बलात्कार की पीड़ा पुरुष नहीं बल्कि बलत्कारी स्त्री ही कर पायेगी क्योंकि उसने उस दर्द को झेला महसूस किया है। परन्तु यह जरुरी नहीं कि स्त्री जो कुछ भी लिख रही है वह स्वयं उसकी भोक्ता हो क्योंकि किसी भी लेखन में कुछ न कुछ कल्पना का समावेश होता ही है। ''स्त्री होना, स्त्री के विषय में लिखना, तथा स्त्री होकर स्त्री के विशय में लिखना भिन्न वस्तुएँ है।''[6]

प्रभा खेतान ने स्त्री एवं स्त्रीमन के सुलझे एवं अनसुलझे प्रश्नों को साहित्य के माध्यम से उठाया है। वह एक सशक्त लेखिका है जिन्होंने अपनी आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' एवं अपने उपन्यासों 'आओं पेपे घर चलें पीली आँधी' एवं छिन्नमस्ता आदि में स्त्री की पीड़ा, यातनाओं को बड़ी सजीवता से समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया है। 'छिन्नमस्ता' उपन्यास की नायिका प्रिया जिसनें अपनी जिन्दगी में सिर्फ दुःख ही देखे कभी माँ, भाई बहनों की उपेक्षा कभी पति द्वारा तिरस्कृत हुई। वह अपने मनोभावों को शब्दों में व्यक्त करके कहती है कि ''मैंने दुःख झेला है। पीड़ा और त्रासदी में झुलसी हूँ। जिस दिन मैंने त्रासदी को ही अपने होने की शर्त समझ लिया, उसी दिन, उस स्वीकृति के बाद, मैंने खुद को एक बड़ी गैर जरुरी लड़ाई से बचा लिया। कुछ के प्रति यह मेरा समर्पण था। सारे जुल्मों के सामने.......सलीब पर लटकते मैंने पाया कि मैं अब पूरी तरह जिन्दगी की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार हूँ।''[7] स्त्री कभी स्वतन्त्र होकर साँस नहीं ले सकती जब तक उसके ऊपर किसी पुरुष का हाथ न हो, यह केवल पुरुषों की ही नहीं बल्कि स्त्री भी इसी मानसिकता का शिकार थी। परन्तु आधुनिक स्त्री अब अपनी मर्जी की मालिक स्वयं है उसे पुरुष के सहारे की जरुरत नहीं है, वह स्वयं आर्थिक रुप से सक्षम होने का प्रयास कर रही है और परम्परा की जकड़न से मुक्त होती जा रही है। प्रभा खेतान के उपन्यास 'अपने–अपने चेहरे' की रमा रीतू से कहती है कि ''मुक्ति केवल आर्थिक नहीं होती है। जरुरत तो है कि औरत अपनी मानसिक जकड़न से निकले। धीरे–धीरे मुझे यही समझ में आया कि अकेला होना कोई अपराध नहीं।''[8] प्रभा जी के सारे उपन्यास उनके

जीवन से सम्बन्धित है उन्होंने जो पीड़ा भोगी या जो संघर्ष समाज में किया उसका यथार्थ अपने लेखन में लिख दिया। दूसरी औरत के दर्द को उन्होंने अपने लेखन में बखूबी उकेरा है कि किस प्रकार समाज में वह उपेक्षा का शिकार होती है तथा समाज में किस नजर से देखी जाती है सम्पन्न महिला होने के बावजूद समाज में उन्हें तिरस्कृत होना पड़ता है। ''अपनी तमाम निर्भरता के बावजूद एक सफल व्यवसायी महिला होते हुए भी एक इस सम्बन्ध के कारण लोगों की ताना–बोली और उपेक्षा से मन की सारी कोमलता झुलस जाती थी। एक तीखी यन्त्रणा से मन चीखने लगता था।''[9] यह उनके साथ एक बार नहीं बार–बार घटित होता था और वह सदैव अपमान के बोझ तले दब जाती ''अरे लोग तो हमसे भी सवाल–जवाब करेंगे? हमारी भी तो बहू–बेटियाँ हैं। उनके सामने ऐसे गलत उदाहरण को कैसे परोस दें।''

''इसकी देखा–देखी हमारी बहू–बेटियाँ बिगड़ेगी नहीं? और कल को वे किसी से उलझ जाएँ तो?'' ''इस औरत को हम मंच पर कैसे बैठाए ? माना कि पढ़ी–लिखी, आत्मनिर्भर स्त्री है पर ऐसी स्त्री समाज की नाक नहीं बन सकती।''[10]

यद्यपि स्वानुभूति लेखन को हम सिरे से नहीं नकार सकते परन्तु वह कहाँ तक वास्तविक पीड़ा का अनुभव व्यक्त करता है इसमें सन्देह है। महिला लेखिकाओं के साहित्य में पर्दापण के कारण आज तक पुरुषों ने जो साहित्य में स्त्रियों का मिथक बना रखा था वह टूट रहा है। क्योंकि पुरुष स्त्री पात्रों के माध्यम से पुरुषसत्ता का ही गुणगान करवाते थे। वह स्त्री पात्र उन्हीं की बनाई भाषा का प्रयोग करके पितृसत्तात्मक व्यवस्था की पक्षधर होती थी, जो समाज की मान–मर्यादा का पाठ पढ़ाती है। स्वानुभूति परक साहित्य में स्त्री का विद्रोही रुप उभरकर सामने आता है। वह समाज की परवाह किये बगैर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होती है। वह तो सिर्फ इतिहास बदलना चाहती है औरतों का इतिहास वह समाज द्वारा बनायें नियमों का विरोध करना चाहती है जो सिर्फ उसके लिए बन्धन है जिन्हें तोड़कर वह स्वच्छन्द जीवन को जीना चाहती है। 'छिन्नमस्ता' की प्रिया कहती है कि ''यह प्रतिक्रिया है क्रान्ति नहीं ''क्रान्ति किसे कहते है? जो इतिहास की तारीख बदल दे। क्या मैं कभी इतिहास कीः हाँ, कम से कम अपनी जिन्दगी के इतिहास की तारीख बदल पाऊँगी?''[11]

आधुनिक स्त्री पितृसत्तात्मक व्यवस्था के मूल्यों, परम्पराओं, रुढ़ियों को तोड़कर अपने लिए उपयुक्त समाज बनाने का प्रयत्न कर रही है वह उन सारे बन्धनों को सिरे से नकारती है जिसने उसकी आजादी पर पहरा लगा दिया था।

सहानुभूति लेखन में लेखक स्त्री की वैसी स्थिति नही व्यक्त कर पाता जैसी स्त्रियों पर गुजरती है, क्योंकि वह केवल दृष्टा (साक्षी) होता है, भोक्ता नहीं। सहानुभूति परक लेखन के सन्दर्भ में महादेवी वर्मा का कथन है कि ''पुरुष के लिए नारीत्व अनुमान है, परन्तु नारी के लिए अनुभव। अतः अपने जीवन का जैसा सजीव चित्र वह हमें दे सकेगी वैसा पुरुष बहुत साधना के उपरान्त भी शायद ही दे सकें।''[12] दया भावना से प्रेरित लेखन में किसी का दुःख पीड़ा संत्रास आदि कम या ज्यादा भी हो सकती है उसे उसी अहसास के साथ साहित्य में अभिव्यक्ति कर पाना नामुनकिन तो नही परन्तु मुश्किल जरुर है। सहानुभूति लेखन में प्रायः नारी को आदर्श रुप में दर्शाया जाता है कि वह सती, सावित्री वाली एवं पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली हो। जैनेन्द्र के उपन्यास 'त्यागपत्र' की मृणाल कहती है कि ''जिसको तन दिया उससे पैसा कैसे लिया जा सकता है; यह मेरी समझ में नहीं आता। तन देने की जरुरत मैं समझ सकती हूँ। तन दे सकूँगी शायद वह अनिवार्य हो पर लेना कैसे? दान स्त्री का धर्म है। नही तो उसका और क्या धर्म है ? उससे? मन माँगा जाएगा, तन भी माँगा जाएगा। सती का आदर्श और क्या है,''[13] वही दूसरी ओर कहती है कि 'व्याहता स्त्री का धर्म होता है कि वह अपने पति के प्रति वफादार हो।' ऐसा नही है कि पुरुष लेखकों के लेखन में स्वानुभूति का अनुभव न होता हो जैनेन्द्र का उपन्यास 'सुनीता' में बहुत ही मार्मिक वर्णन है स्त्री का, एवं निर्मल वर्मा की कहानी परिन्दे में लतिका का चरित्र सहानुभूति परक होते हुए भी बड़ा ही मार्मिक

है वह कहती है कि ''सब कुछ होने के बावजूद वह क्या चीज है जो हमें चलाए चलती है, हम रुकते है तो भी अपने रेले में वह हमें घसीट ले जाती है।''[14] सहानुभूति एवं स्वानुभूति में ज्यादा अन्तर नही बस शब्दों का फेर बदल है ''एक प्रकार से स्वानुभूति और सहानुभूति अपने शब्दिक अर्थ में भले भिन्नता रखते हों परन्तु उनकी आत्मा में भेद नहीं है। प्रत्येक सहानुभूति, स्वानुभूति भी होगी या होनी चाहिए। मोटे तौर पर स्वानुभूति में अपनी अनुभूति तथा सहानुभूति में अपने अतिरिक्त अन्य किसी का भाव महसूस करना अथवा अन्य किसी द्वारा हमारा भाव समझने को लाते है। परन्तु हम सहानुभूति को अनुभूति से कैसे अलग कर सकते है।''[15] अब यह अपवाद ही है कि ''जाके पैर भई न बिवाई, वो का जानै पीर पराई''।

सन्दर्भ

1. स्त्री विमर्श विविध पहलू –सम्पादक –कल्पना वर्मा, पृष्ठ 109
2. श्रृंखला की कड़ियाँ के अपनी बात – महादेवी वर्मा
3. प्रभा खेतान के साहित्य में नारी विमर्श – डॉ० कामिनी तिवारी, पृष्ठ 40
4. स्त्री उपेक्षिता – प्रभा खेतान, पृष्ठ 131
5. स्त्री विमर्श–विविध पहलू – सम्पादक कल्पना वर्मा, पृष्ठ 111
6. स्त्री विमर्श–विविध पहलू – सम्पादक कल्पना वर्मा, पृष्ठ 97
7. छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान, पृष्ठ 9
8. अपने–अपने चेहरे – प्रभा खेतान, पृष्ठ 149
9. अन्या से अनन्या – प्रभा खेतान, पृष्ठ 240
10. अन्या से अनन्या – प्रभा खेतान, पृष्ठ 198
11. छिन्नमस्ता– प्रभा खेतान– पृष्ठ 98
12. श्रृंखला की कड़ियाँ – महादेवी वर्मा, पृष्ठ 72
13. त्यागपत्र–जैनेन्द्र, पृष्ठ 55
14. हिन्दी कहानी संग्रह– भीष्म साहनी, पृष्ठ 250
15. स्त्री विमर्श विविध पहलू– कल्पना वर्मा, पृष्ठ 93

❑❑

ऐतिहासिक उपन्यास 'शिवराज विजय' में राष्ट्रीय चेतना के स्वर

डॉ. पूजा श्रीवास्तव
असि. प्रोफेसर – संस्कृत विभाग
महिला महाविद्यालय (परा.) किदवई नगर, कानपुर

सम्पूर्ण विश्व में समृद्धि एवं कीर्ति के विस्तार के लिए तथा सम्प्रभुता की सुरक्षा हेतु मनुष्य में एक प्रबल एवं अदम्य भावना भरी रहती है जो राष्ट्र की उन्नति व रक्षा करने में सम्प्रेरिका व सहायिका की भूमिका का निर्वहन करती है। अपनी वसुधा, जन समूह, संस्कृति, सभ्यता, इतिहास धर्म, साहित्य कला, राजनीति, जीवनदर्शन् आदि के प्रति लोगों के मन में गरिमा एवं महिमा का एक स्वाभाविक अभिमान होता है जो राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधे रखता है। यह वह आधारशिला है जिस पर सम्पूर्ण देश अनेकता में भी एकता की एक अभेद्य एवं हार्दिक अनुभूति करता है। निःसंदेह यह अनुभूति ही, राष्ट्रीय भावना है। इसी भावना से प्रेरित होकर लोग अपने देश को स्वर्ग से भी अधिक महत्वपूर्ण समझते हुए उसकी उपमा माता से देते है। वेदों में कहा भी गया है –

1. *तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत् पिता द्यौः।*
   तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना श्रृणुतं धिष्णया युवम्।।[1]
2. *माता भुमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।*[2]

वेदों में राष्ट्र की परिकल्पना के साथ–साथ देश के प्रति दायित्वो व कर्त्तव्यों को निवर्हन करने के उपदेश प्राप्त होते हैं। हमारे वैदिक ऋषियों ने अपनी मातृभूमि को तेज और बल से परिपूर्ण उत्तम राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित किया है। उन्होंने आपस में मिलकर चलों, मिलकर बोलों, मिल जुलकर ज्ञान प्राप्त करों, सौमनस्य बनाएँ, उद्देश्य में हार्दिक समानता रखों, साथ–साथ कार्य करों, सभी सम्मलित व संगठित हों। समग्र राष्ट्र को अपने गृह के समान समझो, आदि राष्ट्र प्रेम की अदम्य भावना से ओत–प्रोत उपदेश देते हुए मातृभूमि की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।
समानोमन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।[3]
समानी व आकूतिः समाना हदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।[4]

वैदिक ऋषियों ने 'सर्वजन हिताय', 'सर्वजन सुखाय', भारतभूमि की सुन्दरता, सम्पन्नता व उपयोगिता तथा राष्ट्र भूमि के प्रति आत्म गौरव पूर्ण भावना का वर्णन करके हमारे हृदय में जो ममत्वपूर्ण भाव तथा अंकुरशील बीज बोए है वह निश्चय ही राष्ट्रीय चेतना का प्रतीक है। और यही भावना देश के लिए सर्वथा प्रिय एवं श्रेष्ठ होती है, तथा जनमानस को धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक आदि विविध क्षेत्रों में प्रत्यक्ष व व्यापक रूप से प्रभावित करती है।

वेदों के अतिरिक्त, संस्कृत साहित्य के अर्न्तगत जनमानस में राष्ट्रीय चेतना' के स्वरों को जगाने वाले साहित्यकारों की साहित्य सम्पदा में भी 'राष्ट्रीय चेतना' की अभिव्यक्ति विविध रूपों में होती है। साहित्य कार कहीं

तो राष्ट्र की मर्मस्पर्शिनी शिक्षा देता है तो कहीं राष्ट्र की भौगोलिक सीमाओं की रक्षा के लिए ओजस्वी स्फूर्ति प्रदान करता है। व्यास, कालिदास, भवभूति सरीके अनेक प्राचीन संस्कृत साहित्यकारों की कृतियों में असीमित साहित्यिक सौन्दर्य के साथ ही भारतीय संस्कृति, जीवन दर्शन, राष्ट्रीय भावना जैसी भारतीय समाज के लिए मूल्यवान तत्वों के भावों का वर्णन प्राप्त होता है वहीं अर्वाचीन संस्कृत विद्वानों में भी अनेक ऐसे साहित्यकार हुए जिनकी रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना का सुरीला स्वर सुनाई देता है। इन साहित्यकारो में महाकवि श्री अम्बिकादत्त व्यास की लेखनी से अमृत धारा रूपी अतीव ऊर्जस्वी ऐतिहासिक उपन्यास 'शिवराज–विजय' का प्रणयन हुआ जिसमें देशभक्ति तथा राष्ट्रीय भावना से भरपूर शिवाजी के राजनैतिक कार्यों का अतीव सजीव चित्रण प्राप्त होता है। भारत एवं भारतीयता के विरोधी मुगल सम्राट औरंगजेब नया उसके समीपस्थ मुगल सेनापति अफजल खाँ, शाइस्ताखां आदि यवनों के द्योर दुराचारों से पीड़ित भारतीयों की रक्षा करने में अपने प्राणों की भी चिन्ता न करने वाले, महावीर शिवाजी ने अपनी संस्कृति व सभ्यता के पोषण हेतु जो अथक–प्रयास किये वे भारत के इतिहास में सदैव स्वर्णाक्षरों में लिखे जायेंगे। इसी प्रसंग में पं. अम्बिकादत्त व्यास जी अपने उपन्यास 'शिवराज विजय' में यवन कालीन भारत की दयनीय एवं कारूणिक परिदृश्य की व्यंज्जना करते हुए लिखा है कि उन दिनों भारतवर्ष की साम्प्रतीक दयनीय स्थिति अत्यन्त ही हृदय विदारक एवं कष्टप्रद थी। भारत की जनता आकान्त यवनों के अत्याचारों से अत्यन्त पीड़ित थी, क्योंकि उस समय वेदों को फाड़कर गलियों में फेंक दिया जाता था, धर्मशास्त्रों को उछालकर अग्नि में जलाया जाता था, पुराणों को पीसकर पानी में डाल दिया जाता था, भाष्यों को नष्ट करके भाड़ो में भूना जाता था, कहीं तो मन्दिर तोड़े जा रहे थे, तो कहीं तुलसी के वन काटे जा रहे थे, कहीं स्त्रियों का अपहरण किया जा रहा था, कहीं सम्पत्तियाँ लूटी जा रही थी, कहीं–कहीं चीत्कार हो रहा था, कहीं खून की नदियाँ बह रही थी तो कहीं आग लगाई जा रही थी –

वेदाविच्छिद्य वीथीषु विक्षिप्यन्ते, धर्मशास्त्राण्यद्धूय धूमध्वजेषु ध्मायन्ते ,पुराणानि पिष्टवा पानीयेषु पात्यन्ते, भाष्याणि भ्रंशयित्वा भ्राष्ट्रेषु भर्ज्यन्ते, 'क्वचिन्मन्दिराणि भिद्यन्ते, क्वचित्तुलसीवनानि छिद्यन्ते, क्वचिछासः अपहियन्ते, क्वचिद्ध–नानि लुण्ठयन्ते,क्वचिदार्त्तनादाः, क्वचिद् रूधिरधाराः क्वचिदग्रिदाहः क्वचिद् गृहिनपाद्द्ः।

तत्कालीन भारत की ऐसी दयनीय स्थिति के श्रवण मात्र से दुःखित ब्रह्मचारी गुरू के राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत हृदय के उद्गार इस प्रकार से प्रस्फुटित हो उठे – भगवन्! धैर्य, प्रसाद (हर्ष) प्रताप तेज वीरता, पराकम, शान्ति, श्री (लक्ष्मी) सुख, धर्म और विद्या के साथ वीरवर विक्रमादित्य के दिवंगत हो जाने के पश्चात् देश के भाग्य पर खेद प्रकट किया तथा देशद्रोही यवनों की दासता स्वीकारने के कारण पर ग्लानि प्रकट करते हुए कहा कि भारत वर्ष के राजा लोगों में परस्पर मित्र भाव की अपेक्षा शत्रुभाव पैदा हो गया। सैनिक विलाषी हो गये और अमात्य लोग राज्य की चिन्ता त्यागकर स्वार्थ चिन्ता में लग गये। मिथ्या प्रशंसा को ही वे राजस्व मानने लगे। ऐसी शिथिल शासन व्यवस्था वाले राज्य पर सहज ही आक्रमण किया जा सकता है। इसी कारण महमूद गजनवी ने भारत देश को अपना निशाना बनाया।

'भगवन्! धैर्यण, प्रसादेन, प्रतापेन, तेजसा, वीर्येण, विक्रमेण, शान्त्या, श्रिया, सौख्येन, धर्मेण विद्यया च सममेव परलोकं सनाथितवति तत्र भवति, वीर विक्रमादित्ये शनैः शनैः पारस्परिक विरोध विशिथिलीकृत स्नेह बन्धनेषु राजसु, भामिनी भ्रूभङ्ग भूरिभाव प्रभावपराभूत – वैभवेषु भटेषु, स्वार्थ–चिन्ता– सन्तान–वितानैक तानेष्व मात्यवर्गेषु, प्रशंसा मात्र प्रियेषु, प्रभुषु, 'इन्द्रस्त्वं– वरूणस्त्वं कुबेरस्त्वम्' इति वर्णनामात्रसक्तेषु बुधजनेषु कश्चन् गजनीस्थाननिवासी महामदो यवनः ससेनः प्राविशद् भारतवर्षे।[5]

यहाँ पर महाकवि व्यास ने राज्य सम्पदा की अभिवृद्धि सुदृढ़ के लिए राजा व मंत्री की पारस्परिक एकमत्यता पर बल देते हुए लिखते है कि भारतीयों की हार का प्रमुख कारण आपसी कलह व वैमनस्य ही था क्योंकि पारस्परिक शत्रुता, बाहरी शत्रु के लिए सुगम मार्ग बना देती है।

अम्बिकादत्तव्यास जी ने यवनों के अत्याचारों के विरोध में शिवाजी, गौर सिंह, रघुवीर सिंह, श्याम सिंह, आदि अनेक कथापात्रों के समर्पित भावों को प्रस्तुत किया है। उपन्यास के चरित नायक श्री शिवाजी ने देशभक्त शूखीरों की अदम्य सेना का संगठन तथा संचालन अपनी प्रतिभाशाली एवं राजनीति पूर्ण सूझबूझ द्वारा भारतवर्ष की गरिमा को सुरक्षित किया है। सेना में गौरसिंह की गुप्तचरीय सजगता व कुशलता के द्वारा छिपकर आये यवन आक्रान्ता को देखना, व उसके प्रहार से बचना शिवाजी के सुयोग्य वीर की शूरवीरता को दर्शाता है।

तदेवसंशयस्थानमित्यङ्गुल्या निर्दिश्य, कुटीरवलीके गोपयित्वा स्थायितानाम् सीनामेकमाकृष्य, रिक्तहस्तेनैवमुनिना पृष्ठतोऽनुगम्यमानः, कपोल –तल–विलम्बमानान् चक्षुश्चुम्बिनः कुटिल–कचान् बामकराङ्गुलिभिरपसारयन्... सोऽपिसम्मुखमवतस्थे।[6]

आश्रमवासीमुनियों तथा ब्रह्मचारियों की सर्तकता, राजनीति–निपुणता,व वीरता से विदित होता है कि आश्रमवासी तपस्वी भी धर्म और देश रक्षा के लिए युद्ध करने को सदैव तत्पर रहते थे।[7] उपन्यास में एक स्थान पर गौर सिंह (सन्यासी) का शिवाजी द्वारा नियुक्त द्वारपाल की परीक्षा लेते है व द्वारपाल को विविध प्रकार के लालच देते है परन्तु द्वारपाल की स्वामिभक्ति व राष्ट्र के प्रति प्रेम उसके कदम को एक पग भी डिगा नहीं पाती। किसी भी राष्ट्र के उत्थान में चारित्रिक उच्चता व राष्ट्र के प्रति व्यक्तिगत सुखों की उपेक्षा आदि तत्व मुख्य होते हैं जिस देश में ऐसे कर्मठ व चरित्रवान् कर्मचारी होंगे उसका भविष्य निश्चय ही सुदृढ़ होगा। गौरसिंह (सन्यासी) व द्वारपाल की वार्ता इसी राष्ट्रभक्ति को उजागर करती है –

सन्यासी – निरीक्षत्व, त्वमधुमना दौवारिकोऽसि, प्राणानगणयन्, जीविकां निर्वहसि, त्वं ससस्रं वाङयुतं वा मुद्रा राशीकृताः कदापि प्राप्स्यसीति न कथमपि संभाव्यते।

दौवारिक – आम्र, अग्रे कथ्यताम्।

सन्यासी – वयं च संन्यासिनो वनेषु गिरिकन्दरेषु च विचरामः, सर्व रसायन–तत्वं विद्मः

दौवारिक – स्यादेवम्, अग्रे अग्रे?

सन्यासी – तद् यदि त्वं मां प्रविशन्तं न प्रतिरून्धेः तदधुनैव परिष्कृतं पारद–भस्म तुभ्यं दद्याम् : यथात्वं गुज्जामात्रेणापि द्वाञ्चशत्सङ्खयाक–तुलापरि–मितं ताम्रं जाम्बूनदं विधातुं शक्नुयाः।

दौवारिक – हंहो! कपटसंन्यासिन्!! कथं विश्वासघातं स्वामिवञ्चनं च शिक्षयसि?

ते केचनान्ये भवन्ति जार–जातः, ये उत्कोचलोभेन स्वामिनं वञ्चयित्वा आत्मानमन्धतमसे पातयन्ति न वयं शिवगणास्तादृशाः। (संन्यासिनो हस्तं – धृत्वा) इतस्तु सत्यं कथय कस्त्वम्? कुतः आयातः? केन वा प्रेषितः?[8]

गौर सिंह द्वारा शिवाजी के अनुचर (द्वारपाल) का आकस्मिक परीक्षण के दौरान द्वारपाल की कर्त्तव्यपरायणता एवं निर्लुब्धता उसकी राष्ट्रभक्ति व जागरूकता को प्रदर्शित करती है। राजकीय सेवा में लगे कर्मचारियों के निष्ठा की ऐसी कसौटी ही राष्ट्र कल्याण के मार्ग में सहायक होती है। इसी प्रकार रघुवीर सिंह भी प्रचण्ड आँधी, वर्षा, आदि प्राकृतिक आपदाओं को चीरता हुआ अपने कर्त्तव्यपथ पर गमन करने से नहीं रुकता।[9]

राजप्रसाद में बैठे हुए अपने वीरवर सेनानियों के साथ विचार–विमर्श कर शिवाजी अपने वीरों के हृदय में राष्ट्रप्रेम के प्रति उनकी ध्येयनिष्ठा एवं प्रतिबद्धता की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए कहते है – 'बहुत सुन्दर! ऐसा क्यों न हो? तुम सब भारतीय हों, उसमें भी उच्च कुल में उत्पन्न हुए हो, यह भारतवर्ष है। सबको अपने देश के प्रति स्वाभाविक अनुराग होता है। तुम्हारा सनातन धर्म संसार में पवित्रतम है। उसे ये जालिम समूल उखाड़ रहे हैं। और 'चाहे प्राण चले जावें पर धर्म न जायें' इस प्रकार का आर्यजनो का सिद्धान्त है। महापुरूष धर्म के लिए लुट जाते है, गिराये जाते है, मारे जाते है पर धर्म को नहीं छोड़ते, अपितु धर्म की रक्षा के लिए सारे सुखों को छोड़कर अर्द्धरात्रि में, वर्षा, गर्मी, घने जंगल, पर्वतों की गुफाओं, सर्पो, सिंहों व हाथियों के समूहों में भी चमकती तलवारों

में भी निडर होकर विचरण करते है। इसलिए तुम सभी धन्य हो और सच्चे भारतवासी हो'[10] शिवाजी के इस वक्तव्य में धर्म की पवित्रता एवं स्वदेश प्रेम की भावना के स्वर स्पष्ट दृष्टिगोचर होते है। स्वयं शिवाजी का महाराष्ट्र पराधीन न हो स्वाधीन बना रहे इस सन्दर्भ में उनकी सारगर्भित दृढ़ प्रतिज्ञा – 'कार्य सिद्ध करूँगा या देह को ही नष्ट कर दूँगा' – 'कार्य वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्'[11] राष्ट्रीय चेतना को दर्शाती है।

द्वितीय निवास में एक स्थान पर व्यास जी ने भगवान् सूर्य के माध्यम में यवनों द्वारा किये जा रहे अत्याचारों से वसुधा की स्वतन्त्रता के प्रति जनता के मन में आत्मीयता और जागरूकता के भाव को भरने का भरसक प्रयत्न करते हुए लिखा है – 'क्या मेरे कुल में ऐसा कोई नहीं हो जो धर्म का विनाश करने वाले दुष्ट यवनों को उस यज्ञ के योग्य भारतवर्ष से गला पकड़कर बाहर निकाल दें'।

'नास्ति कोऽपि मत्कुलेः, यः सकण्ठग्रहं धर्म–ध्वंसिनो यवनहतकान् यज्ञिया– दस्माद भारत–गर्भान्निस्सारयेत्'[12]

षष्ठ निश्वासः में महादेव देशद्रोही यवनो की दासता को स्वीकारने व उनका साथ देने वाले यशस्वी सिंह और सिंह जैसे भारतीय नरेशो को भारतीयता, राष्ट्रीयता व देशभक्ति का उपदेश देते हैं तथा दिल्ली कलङ्क औरंगजेब का साथ देने वाले जसवन्त सिंह के हृदय को झकझोरते हुए महादेव के उद्‌गार कुछ इस प्रकार व्यक्त होकर उनमें राष्ट्रीय चेतना का पुनः संचार करते है –

महाराज! यं भवान् दिल्लीश्वर इति ब्रूते, तस्यैव राक्षसस्योचितानि कर्म्माणि दृश्यन्ताम् आत्मनो जनन–पोषण–हेतु – भूतस्यवली पलित सक्रन्द–नयन जलसिक्त–श्वेत–श्मश्रुकूर्चस्य पितुः सावहेलं निगृह्य कारागरे स्थापनं महतां कार्य वा? यै सह जननी–करस्थ मोदक महमहमिकया समाच्छ्यि भुक्तम, तात! तातेति भाषणैः क्रीणा कौतुकैश्च पूर्ववयो व्यत्यायितम्, तेषामेव सोदर्याणां सच्द्द9लं सदर्प सक्रौर्य च मारणम्,.....उत प्रतिज्ञा पालन–व्याजेन महापातकवर्द्धनम्?[13]

अर्थात् महाराज ! जिसे आप दिल्लीश्वर कह रहे है उसी के राक्षसोचित कर्मो को देखिए। अपने जन्मदाता, पालन–पोषण करने वाले पके बालों वाले, रोने से निकले हुए आँसुओं से सफेद मूँछ और दाढ़ी को सींचने वाले पिता को अपमान पूर्वक कैद कर, कारागार में रखना क्या महापुरूषों का काम है? अथवा जिनके साथ मैं पहले लूँगा, मैं पहले लूँगा कहकर माता के हाथ लड्डू खाये, भैया–भैया कहते हुए बचपन व्यतीत किया उन्हीं सगे भाइयों को कपट से क्रूरता पूर्वक मार डालना, तथा हत्या करने के उपरान्त भी लज्जित न हो क्या महापुरुषों का काम है?.

जिन दुराचारियों को कुचलने के लिए पृथ्वी भी क्षमा छोड़ देती है, समुद्र भी मर्यादा का उल्लङ्घन कर जाता है, भगवान विष्णु भी करूणा का परित्याग कर देते है उन कुकर्मियों को दण्ड देना या प्रतिज्ञा के बहाने महापातक को बढ़ाना? इसका निर्णय स्वयं अपने विवेक से करें।

औरंगजेब व यवनों की क्रूर अत्याचारों से भारतवासियों को स्वतन्त्र कराने का अदम्य साहस, संगठन व तीव्र क्रियाशीलता की भावना पग–पग पर दृष्टिगोचर होती है। युद्ध में जाने से पूर्व अपनी मृत्यु की संभावना करके राष्ट्रीय व स्वतन्त्रता की अग्नि को प्रज्वलित रखने की बात करते शिवाजी के इस उद्‌बोधन में राष्ट्रीय चेतना के स्वर मुखरित होते है –

शिवराज – वीरवर! क्षम्यताम्, नाहं युष्माकं धैर्य गाम्भीर्य चातुर्य वीर्य वा विस्मरामि। परमलमनु द्य। केवलमाशीर्भिरेव संवर्द्धयता मेष जनः। निश्चयेन।ऽहं युष्मदाशीः संवद्धितो विजेष्ये। दैवाद् वीरगतिं गतच्श्चेद्, भवत्सु कुशीलषु पुनरपि स्वतन्त्रमेव महाराष्ट्र–राज्यम्, पुनरपि प्राप्तशरणो वैदिको धर्मः, पुनरपि च कम्प एवं वक्षः सु भारत – प्रत्यर्थि – पत्नीनाम्। युष्मासु मया सह भारतभुव विरहयत्सु च कस्मिन् धुरं धारयिष्यति धर्मः?[14]

अर्थात् क्षमा करना वीरवर! मैं आप लोगों के धैर्य, गाम्भीर्य, कौशल, और वीरता को नहीं भूला हूँ। परन्तु आज अनुरोध मत कीजिए। केवल आशीर्वादों से मुझे संवर्द्धित कीजिए। मैं आप लोगों के आशीर्वाद के बल से विजय को प्राप्त करूँगा । संयोगवश यदि मुझे वीरगति भी प्राप्त हो जाए, तो भी आप लोगों के सकुशल रहने पर महाराष्ट्र राज्य फिर भी स्वतन्त्र ही रहेगा, वैदिक धर्म को शरण मिलेगी, और पुनः भारतवर्ष के शत्रुओं की पत्नियों के हृदय

में कम्पन होता रहेगा। किन्तु मेरे साथ ही आप लोगों के भी भारतभूमि को छोड़ देने पर धर्म की धुरा को कौन धारण करेगा ? भारतवासियों की स्वतन्त्रता का भार कौन संभालेगा ? और नवीन विकास प्राप्त कर रही मराठा जाति किसके आगे रोएगी ? अतः और कुछ भी मत कहिए। मेरे एवं मेरे साथियों के लिए मंङ्गलकामना कीजिए, जिससे हम इन नीच अहङ्कारियों को पराजित कर सकें।

देश की मान मर्यादा के रक्षार्थ भारतीय जनमानस में तन, मन, धन के समर्पण भाव से युक्त राष्ट्रीय भावना को जागृत करने में यह उपन्यास आज भी उपादेय प्रतीत होता है! व्यास जी ने भारतीयों के हृदय में पनपती हुई स्वराज्य की भावना एवं देश प्रेमी शिवाजी व उनके वीर साथियों की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है जो प्रत्येक देशभक्त को भाव विभोर कर देती है। निःसंदेह भारतीयों के हृदय में राष्ट्रीय चेतना के स्वर को जागृत करने के लिए व्यास जी निरन्तर जागरूक रहे है। इस उपन्यास में ऐसे अनेक दृश्य दृष्टिगोचर होते है जिनसे जनमानस में राष्ट्रीय चेतना का अमन्द संचार हुआ करता है।

सन्दर्भ सूची

1. ऋग्वेद 1/89/4
2. अथर्ववेद 12/1/12
3. ऋग्वेद 10/191/2–4
4. शिवराजविजय – महाकवि अम्बिकादत्त व्यास (सम्पूर्ण) प्रथमोनिश्वासः पृ. सं. 37
5. शिवराजविजय – महाकवि अम्बिकादत्त व्यास (सम्पूर्ण) प्रथमोनिश्वासः पृ. सं. 56–59
6. शिवराजविजय – महाकवि अम्बिकादत्त व्यास (सम्पूर्ण) प्रथमोनिश्वासः पृ. सं. 88–89
7. शिवराजविजय – महाकवि अम्बिकादत्त व्यास (सम्पूर्ण) प्रथमोनिश्वासः पृ. सं. 77–93
8. शिवराजविजय – महाकवि अम्बिकादत्त व्यास (सम्पूर्ण) द्वितीयोनिश्वासः पृ. सं. –123–125
9. शिवराजविजय – महाकवि अम्बिकादत्त व्यास (सम्पूर्ण) चतुर्थोनिश्वासः पृ. सं. 343–351
10. शिवराजविजय – महाकवि अम्बिकादत्त व्यास (सम्पूर्ण) द्वितीयोनिश्वासः पृ. सं. 144
11. शिवराजविजय – महाकवि अम्बिकादत्त व्यास (सम्पूर्ण) प्रथमो निश्वासः पृ.सं. – 74
12. शिवराजविजय – महाकवि अम्बिकादत्त व्यास (सम्पूर्ण) द्वितीयो निश्वासः पृ. सं. – 109
13. शिवराजविजय – महाकवि अम्बिकादत्त व्यास (सम्पूर्ण) षष्ठो निश्वासः पृ. सं. 87–107
14. शिवराजविजय – महाकवि अम्बिकादत्त व्यास (सम्पूर्ण) सप्तमो निश्वासः पृ. सं. – 169–170

❑❑

मृच्छकटिक (प्रकरण) में प्रतिपादित रसाभिव्यंजना शैली

डॉ. पुष्पा यादव विद्यालंकार
एसो. प्रो. एवम अध्यक्ष संस्कृत विभाग
महिला महाविद्यालय (पी.जी.) किदवई नगर, कानपुर

भारतीय नाट्यविधा के अनुसार 'रस' रूपक का महत्त्वपूर्ण तत्व है। दृश्य काव्य के तीन भेदकों में वस्तु, नेता के बाद तीसरा भेद रस है। वैसे तो क्या, आख्यायिका एवं महाकाव्य आदि सभी में रसास्वाद होता है किन्तु रस की व्यंजना करना, सामाजिकों के हृदय में रसोद्रेक उत्पन्न करना दृश्य काव्य का प्रमुख लक्ष्य है।

रस क्या है? के विषय में विस्तृत न जाकर इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि विभाव, अनुभाव और संचारीभावों के संयोग से सहृदयों को जो अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है, वही रस है। इस रस की प्रतीति करना या कराना ही रूपकों का मुख्य प्रयोजन है अतः विभिन्न रूपकों में भिन्न–भिन्न प्रकार के रसों की प्रधानता और गौणता होती है। जहाँ तक प्रस्तुत रूपक का सम्बन्ध है, यह प्रकरण कोटि का है, अतः इसमें नाट्यशास्त्र के नियमानुसार श्रृंगार रस प्रधान होता है तथा अन्य रस उसके अंग के रूप में विद्यमान रहते हैं।[1] यद्यपि धनंजय ने वीर रस को भी प्रधानता दी है।[2]

मृच्छकटिक प्रकरण में स्पष्ट रूप से श्रृंगार रस अंगी है, श्रृंगार रस भी दो प्रकार का है – संभोग श्रृंगार और विप्रलंभ श्रृंगार। यहाँ पर संभोग श्रृंगार अंगी रस है तथा विप्रलम्भ श्रृंगार, करूण, हास्य, भयानक, वीभत्स और वीर आदि उसके अंग है।

संभोग श्रृंगार – मृच्छकटिक प्रकरण में नायक चारूदत्त और नायिका वसन्तसेना के प्रणय का चित्रण किया गया है। नाट्य समीक्षा की दृष्टि से वसन्तसेना गणिका होने से सामान्य कोटि की नायिका है तथापि यहाँ गणिका वसन्तसेना का प्रेम कुलनारी के प्रेम के समान अनन्य प्रेम होने से तथा नाटक के अन्त में कुलवधु के पद को प्राप्त करने से यह प्रेम उच्चकोटि तक पहुँच जाता है। श्रृंगार रस का स्थायी भाव 'रति' होता है और सामान्य तौर पर रति का आश्रय नायक होता है किन्तु प्रस्तुत प्रकरण में नायक के स्थान पर नायिका रति के आश्रय के रूप में प्रतीत होती है क्योंकि प्रेमांकुर नायिका के हृदय में पहले प्रस्फुटित होता है। उसके उक्त प्रणय की सूचना हमें सर्वप्रथम शकार के उस कथन से प्राप्त होती है जिसमें वह विट से कहता है – 'भाव, भाव यह जन्मदासी कामदेवायन उद्यान से लेकर गुणों के भण्डार एवं रूपयौवन सम्पन्न उस दरिद्र चारूदत्त से प्रेम करने लगी है मेरी कामना नहीं करती है। बांयी ओर उसका घर है।'[3] शकार के उक्त कथन से वसन्तसेना मन ही मन प्रसन्न है क्योंकि शीघ्र ही प्रिय समागम की संभावना है। इसी अंक के चतुर्थ दृश्य में चारूदत्त और वसन्तसेना परस्पर मिलते हैं। सर्वप्रथम चारूदत्त ने उसे रदनिका समझकर जो व्यवहार किया था, उसके लिये क्षमा याचना करता है और मन ही मन उसके सौन्दर्य की प्रशंसा भी करता है। परन्तु उसे पराई स्त्री समझ कर दर्शन करना उचित नहीं समझता, तत्क्षण ही मैत्रेय (विदूषक) अपने मित्र की शंका निवारण करते हुये कहता है कि 'पराई स्त्री के दर्शन की शंका से बस करो। यह वसन्तसेना काम–देवायनोद्यान से लेकर तुझ पर अनुरक्त है।'[4]

जहाँ तक प्रणय और अनुराग का सम्बन्ध है, तो पहल यद्यपि वसन्तसेना द्वारा की गई परन्तु चारूदत्त भी उसके प्रति उदासीन नहीं है। चारूदत्त के हृदय में भी उसके प्रति प्रेम विद्यमान है किन्तु अपनी निर्धनता की अनुभूति से वह अत्यधिक दुःखी है तथा अपने आपको धनाड्य गणिका वसन्तसेना का प्रणयी कहने में संकोच करता है। नाटक के द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ अंक में विप्रलम्भ श्रृंगार के अभिव्यंजक भावों से संभोग श्रृंगार परिपुष्ट होता

है। प्रत्येक अंक में नायक के कुछ ऐसे गुण नायिका के समक्ष प्रस्तुत करता है कि दोनों का प्रणय सूत्र गहन होता जाता है। द्वितीय अंक में अपना इतिवृत्त कहकर संवाहक ने वसन्तसेना के हृदय में चारूदत्त के उदार गुणों की छाप अधिक सघन भाव से अंकित कर दी है – 'उज्जैन में मैंने प्रवेश करके एक महानुभाव की सेवा की, जो अत्यन्त दर्शनीय, मधुरभाषी, किसी को कुछ देकर उस दान का कीर्तन न करने वाले, अपने प्रति किये गये बुरे बर्ताव को भुलाने वाले है। अधिक कहने से क्या? उदारता से पराई वस्तु को अपना समझते है और शरणागत वत्सल है'[5]।

इसी अंक का कर्णपूरक वाला प्रसंग भी उसकी आसक्ति को और भी गहन बनाने में सहायक सिद्ध हुआ है[6]। पंचम अंक में वसन्तसेना अभिसारिका बनकर चारूदत्त से मिलने हेतु जाती है। यहाँ मेघ गर्जना और दुर्दिन का अन्धकार तथा विद्युत की चमक उन दोनों के प्रणय को उद्दीप्त करने में सहायक सिद्ध हुये हैं। मेघों की गर्जना से चारूदत्त अत्यन्त उदीप्त होकर कह उठता है कि 'हे मेघ, तुम और अधिक गर्जन करो, तुम्हारी कृपा से कामपीड़ित मेरा शरीर (वसन्तसेना के) स्पर्श से रोमांचित एवं उत्पन्न आसक्ति वाला होकर कदम्ब पुष्प की समानता को प्राप्त कर रहा है'[7]।

वसन्तसेना चारूदत्त के घर पहुँचती है वहाँ वसन्तसेना का आलिंगन करके चारूदत्त अपने आन्तरिक कोमल भावों को इस प्रकार प्रकट करता है – 'वास्तव में उनके जीवन धन्य हैं जो घर में आई हुई कामिनियों के बादल के जल से शीतल अंगों को स्पर्श करते है'[8]। इतना ही नहीं वसन्तसेना अपने प्रियतम चारूदत्त से होने वाले मिलन में बरसते हुये मेघों को अवरोधक मानकर अपने भाव व्यक्त करते हुये कहती है कि 'हे इन्द्र! गरजो या बरसो या सैकड़ों वज्र छोड़ो, किन्तु प्रियतम के प्रति प्रस्थान करती हुई स्त्रियाँ रोकी नहीं जा सकती'[9]।

'यदि मेघ गरजता है तो भले ही गरजे,(क्योंकि) पुरुष निष्ठुर होते हैं। हे विद्युत! तुम भी (स्त्री होकर) कामिनियों के दुःख को नहीं जानती हो[10]। सप्तम अंक में चारूदत्त और वसन्तसेना दोनों को परस्पर मिलने के लिये अधीर दिखाया गया है। किन्तु भाग्य की विडम्बना। चारूदत्त पर वसन्तसेना की हत्या का अभियोग और मृत्युदण्ड। विप्रलंभ करुण दशा को प्राप्त करने वाला ही होता है कि दोनों का पुनर्मिलन होता है और चारूदत्त के मुख से अकस्मात् प्रस्फुटित होता है – 'अहो प्रभावः प्रिय मस्य मृतोऽपि को नाम पुनर्ध्रियेतः[11]।

नाटक के अन्त में चारूदत्त को कुलवधू के रूप में प्रिया (वसन्तसेना) की प्राप्ति होती है – शर्विलक –'आर्या वसन्तसेना! प्रसन्न हुये राजा आर्यक आपको वधु शब्द से अनुग्रहीत करते हैं'[12]।

विप्रलंभ श्रृंगार – संभोग श्रृंगार के साथ ही साथ विप्रलंभ श्रृंगार का भी यत्र–तत्र सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है। द्वितीय अंक के प्रारम्भ में वसन्तसेना चारूदत्त के लिये विशेष उत्कण्ठित दिखायी देती है। मदनिका उसकी स्थिति को भांप लेती है और कहती है कि आर्या की शून्य हृदयता से जानती हूँ कि हृदय से किसी का चित्र बनाने में मग्न दिखायी देती है। प्रायः चित्रादि की रचना विरहावास्था में होती है। वसन्तेसना मदनिका को चित्र दिखाते हुये पूछती है कि चित्र चारूदत्त के अनुरूप है। जब मदनिका उसकी अनुरूपता प्रतिपादित करती है तो वसन्तेसना प्रश्न करती है कि तुम उसे कैसे जानती हो, तब मदनिका स्पष्ट करती है कि आपकी प्रेमपूर्ण दृष्टि इसमें संलग्न है। अतएव मैं इसे विधिवत् समझ रही हूँ[13] इसी प्रकार पंचम अंक के प्रारम्भ में जब विदूषक चारूदत्त से वेश्या वसन्तसेना का त्याग करने की प्रार्थना करता है तो वहाँ चारूदत्त की वसन्तसेना के प्रति उत्कण्ठा दिखाई देती है। विदूषक वेश्या को जूते के अन्दर प्रविष्ट हुई कंकड़ी को दुःख से निकाली जाने वाली बताता है[14]।

चारूदत्त विदूषक को भटकाने के लिये ऊपरी मन से कह देता है कि गणिका जन धन से वश में करने योग्य है, परन्तु अपने मन में कहता है, नहीं यह वसन्तसेना तो गुणों के द्वारा वश में करने योग्य है। चारूदत्त के कथन में विरह की वेदना भी है – हमें तो धन ने त्याग दिया है। अतएव मेरे द्वारा तो वह त्याग ही दी गई है[15]। षष्ठ और सप्तम अंक में विप्रलम्भ श्रृंगार की सहज अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। अतएव संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रकरण में संभोग और विप्रलंभ दोनों ही प्रकार के श्रृंगार रस का निसर्ग चित्रण हुआ है।

हास्य रस – हास्य और व्यंग्य की दृष्टि से यह प्रकरण संस्कृत के रूपकों में विशिष्ट स्थान रखता है। इस प्रकरण में अनेक स्थलों पर अनेक प्रकार से हास्य व्यंजना हुई है। शकार के मूर्खतापूर्ण कथनों से हास्य की व्यंजना हो जाती है। शकार के मूर्खतापूर्ण कथनों से हास्य की व्यंजना हो जाती है। यथा–'शकार कहता है – 'मेरे मदन, मनंग और मन्मथ को बढ़ाती हुई मेरी निद्रा को उचाटती हुई, भयभीत होकर लड़खड़ाती हुई भाग रही हो। तुम मेरे वश में उसी प्रकार आ गई हो जिस प्रकार रावण के वश में कुन्ती आ गयी थी'। तो यहाँ त्रेता और द्वापर का संगम उपहासास्पद है'[16]।

वाग्वैदग्ध्य से हास्य उत्पन्न करने में मैत्रेय का सर्वाधिक सहयोग है – 'संस्कृत पढ़ती हुई स्त्री उसे नवनासिका छिद्रित गाय के सूं–सूं शब्द करने के सृदश्य लगती है'[17]। मैत्रेय पारम्परिक विदूषक है। उसकी आकृति और उसका भोलापन ही उसे हास्य का पात्र बनाता है। यथा–चारूदत्त के घर में चोर सेंध फोड़ कर चोर निकल गया'। तब वह घबरा जाता है तथा अपना सन्तुलन खोकर कहता है – 'हूँ दासी की पुत्री क्या कहती है, चोर को फोड़ कर सेंध निकल गई'[18]।

इसी प्रकार शकार की बात–चीत करने का ढंग, वसन्तसेना के प्रति उसका प्रेम प्रदर्शन, स्त्रियों को मारने में शौर्य प्रदर्शन परन्तु मनुष्य और राक्षसों से भयखाना, ये सभी बातें उसके चरित्र को हास्यास्पद बना देती है। उसकी इस बात को सुनकर किसे हंसी नहीं आ जायेगी – 'दरिद्र चारूदत्त को वध के लिये ले जाते समय इतनी अधिक भीड़ हो रही है, जिस समय मेरे जैसा श्रेष्ठ मनुष्य वध के लिये ले जाया जायेगा, इस समय न जाने कितनी भीड़ होगी'[19]।

करुण रस – मृच्छकटिक नाटक चूँकि मध्यम वर्ग के समाज से सम्बन्धित है। अतः इसमें श्रृंगार के साथ–साथ करुण रस का भी सुन्दर चित्रण हुआ है। वैभवनाश का आलम्बन ग्रहण कर महाकवि शूद्रक ने चारूदत्त की दरिद्रता का वर्णन अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ किया है। साथ ही अभियोग एवं प्राणदण्ड जैसे विषयों को अपने करूण रस का आलम्बन बनाकर रस का पूर्णरूपेण परिपाक किया है। दरिद्र व्यक्ति की शोकजनक अवस्था को देखकर काव्यशास्त्रियों ने 'वैभवनाश' को भी करूणा का आलम्बन माना है। यहाँ पर चारूदत्त आश्रय है, धन वैभवनाश आलम्बन, गृह की आर्थिक दशा, मित्रों का विमुखीकरण होना आदि उद्दीपन और चिन्ता विषाद आदि संचारी भावों से परिपुष्ट करूण रस है'[20]।

महाकवि शूद्रक ने करूण रस के चित्रण के साथ ही नायक चारूदत्त के भव्य चरित्र को भी हम लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया है। नायक चारूदत्त यद्यपि निर्धन है तथापि अपनी निर्धनता से अधिक उसे इस बात का दुःख है कि निर्धन होने पर मित्रगण विमुख हो जाते हैं। अपने हृदय की वेदना व्यक्त करते हुये चारूदत्त अपने मित्र से कहता है 'मित्र, दुःखों का अनुभव करने के बाद सुख शोभित होता है, जिस प्रकार गहन अन्धकार में दीपक का दर्शन'। परन्तु जो मनुष्य सुख से निर्धनता को प्राप्त होता है, वह तो शरीर धारण किये हुये भी मृतक के समान जीवन व्यतीत करता है'[21]।

मानव के दरिद्र हो जाने पर उसके विषय में लोकनीति क्या कहती है, यह नाटककार ने नायक चारूदत्त के मुख से ही कहलाया है – 'बन्धुजन निर्धनता के कारण (निर्धन) व्यक्ति के कहने में नहीं, रहते, अत्यंत स्नेही मित्र भी विपरीत हो जाते हैं, आपत्तियाँ अधिक हो जाती हैं। शक्ति क्षय को प्राप्त हो जाती है, चरित्र, रूपी चन्द्रमा की शोभा धुंधली हो जाती है, जो दूसरों के द्वारा किया गया पापकर्म है वह उसी का किया हुआ समझा जाता है[22]। इसके अतिरिक्त भी अनेक स्थलों पर करूण रस की मार्मिक अभिव्यंजना हुई है।

अद्भुत रस – अद्भुत रस का स्थायी भाव विस्मय है। वह दिव्यजनों के दर्शन, अभीप्सित मनोरथ की प्राप्ति, उपवन, देव मन्दिर आदि में गमन, सभा, विमान, मायाजाल आदि की सम्भावना आदि विभावों से उत्पन्न होता है[23]।

द्वितीय अंक में परिव्राजक की प्राणरक्षा के विषय में कर्णपूरक कहता है कि 'विन्ध्याचल के शिखर के समान

विशाल उस क्रुद्ध हाथी को लोहदण्ड से मारकर उसके दाँतों के मध्य स्थित उस संन्यासी को मैंने बचा लिया'[25]।

यहाँ कर्णपूरक के द्वारा अद्वितीय वीरता का कार्य करने तथा जन समुदाय के आश्चर्यचकित होकर साधुवाद देने से अद्भुत रस है। इसके अतिरिक्त भी आर्यक द्वारा राज्यप्राप्ति, चारूदत्त की प्राण रक्षा तथा धूता को अग्नि प्रवेश से रोका जाना तथा वसन्तसेना को कुलवधु पद की प्राप्ति से अद्भुत रस की प्रतीति स्पष्ट है।

वीररस – वीर रस के चारों भेदों (दानवीर, धर्मवीर, युद्धवीर तथा दयावीर) का वर्णन प्रकरण में प्राप्त होता है –

– भास रचित चारूदत्त नाटक में त्याग और दानशीलता के वर्णन में दानवीरता की ही झलक मिलती है। इस विषय में चारूदत्त कहता है कि 'मेरी सम्पत्ति प्रेमीजनों के कार्यों में ही नष्ट हुई है, मैंने किसी याचक को असन्तुष्ट नहीं किया, समस्त सम्पत्ति नष्ट कर देने पर भी मेरा मन क्षयभाव को प्राप्त नहीं होता'[25]।

– मृच्छकटिक में चारूदत्त की दानशीलता का वर्णन करते विट कहता है – 'वह हम जैसे जनों के स्नेह से निर्धन कर दिये गये। चारूदत्त के द्वारा कोई समृद्धि से तिरस्कृत नहीं हुआ। मनुष्यों की प्यास दूर कर वह ग्रीष्म ऋतु में जलयुक्त जलाशय की भाँति सूख गया'[27]।

– चारूदत्त की धार्मिक प्रवृत्ति मे हमें धर्मवीरता के दर्शन होते है। वह नित्य नियम से संध्या–वंदन आदि धार्मिक कृत्य करता है, समाधि लगाता है, देवताओं की पूजा करता है और बलि प्रदान करता है। उसका कुल विविध यज्ञों के अनुष्ठान से पवित्र है तथा धार्मिक सभा तथा मनुष्यों से आकीर्ण यज्ञशालाओं में वेद ध्वनियों से प्रकाशित हो चुका है। इस विषय में चारूदत्त स्वयं कहता है –

'मखशतं परिपूतं गोत्रमुद्भासितं में, सदसि में निबिडचैत्यब्रह्मघोषेः पुरस्तात्'[27]।

चतुर्थ अंक में नेपथ्य में राजपुरूषों द्वारा घोषित यह सूचना प्राप्त करने पर कि किसी ज्योतिषी द्वारा कही गयी भविष्यवाणी के आधार पर 'गोपालदारक आर्यक राजा होगा' इससे भयभीत होकर राजा पालक उसे कठोर कारागार में डाल देता है। शर्विलक अपने मित्र को छुड़ाने के लिये अपनी नवविवाहिता वधु को छोड़कर चल देता है और घोषणा करता है कि 'मैं राहु के मुख में पड़े हुये चन्द्रबिम्ब के सदृश उसे शीघ्र ही मुक्त करूँगा'[28] यहाँ युद्धवीर रस की स्पष्ट प्रतीति होती है।

उक्त प्रमुख रसों के अतिरिक्त वीभत्स, भयानक और शान्त रस के उद्धरण भी प्रकरण में यत्र–तत्र दृष्टिगोचर होते हैं। अष्टम अंक में शकार द्वारा वसन्त सेना का गला दबाना तथा उसका मूर्छित होना' इसमें वीभत्स रस की प्रतीति होती है। षष्ठ अंक में आर्यक के बन्दीगृह से निकल भागने तथा चारूदत्त की गाड़ी में शरण लेने, मार्ग में उसके निरीक्षण आदि के समय भयानक रस की प्रतीति होती है। मृच्छकटिक प्रकरण में शान्त रस का भी सुन्दर परिपाक हुआ है। अष्टम अंक के प्रारम्भ में बौद्धधर्म के निदेशक तत्वों का विवेचन करते हुये भिक्षु की उक्तियों में सहृदय शान्त रस का ही आस्वाद ग्रहण करते है। इन्द्रिय दमन एवं अविद्या तथा अहंकार का विनाश कर आत्मा की रक्षा के विषय में भिक्षु कहता है – 'जो मनुष्य चोर रूपी पंचज्ञानेन्द्रियों का दमन कर देता है स्त्री रूपी अविद्या, का नाशकर ग्रामरूपी आत्मा की रक्षा कर लेता है तथा शिथिलीभूत चाण्डाल रूपी अहंकार को मार देता है, वह निश्चित ही स्वर्ग जाता है[29]।

इस प्रकार मृच्छकटिक में प्रायः सभी रसों का सुन्दर वर्णन दृष्टिगोचर है।

संदर्भ सूची

1. साहित्य दर्पण – 6/225
2. दशरूपक – 3/33,40
3. शकार – भाव भाव, एषा गर्भदासी कामदेवायतानोद्यानात्प्रभृति तस्य दरिद्रचारूदत्तस्यानुरक्ता न माँ कामयते। वामतस्यस्यगृहम्। मृच्छकटिक – प्रथम अंक पृ. –216

4. अथवा, न युक्तं परकलत्रदर्शनम्।
विदूषकः – भोः अलं परकलत्रदर्शनशक्ङ.या। एषा वसन्तसेनाकाम देवायतनोद्यानात्प्रभृति त्वामनुरक्ता।
मृच्छकटिक – प्रथम अंक पृ.– 251
5. संवाहक – इहापि मया प्रविश्योज्जयिनीमेक आर्यः शुश्रुषितः। यस्तादृर्शनः प्रियदर्शनः, दत्त्वा न कीर्तियति, अपकृतं विस्मरति किं बहुना प्रलपितेन। दक्षिणतया परकीयमिवात्मानमवगच्छति, शरणागतवत्सलश्च।
मृच्छकटिक – द्वितीय अंक – 291
6. कर्णपूरकः आर्ये, एकेन शून्यान्याभरणस्थानानि परामदृश्य ऊर्ध्व प्रेक्ष्य दीर्घ निश्वास्यायं प्रावारको ममोपरि क्षिप्तः।
मृच्छकटिक – द्वितीय अंक – 306
7. चारूदत्त – भो मेघ! गम्भीरतरं नद त्वं तव प्रसादात्स्मरपीडितं में।
संस्पर्शरोमांच्चितजातरांग कदम्बपुष्पत्वमुपैति गात्रम्।। मृच्छकटिक – 5/47
8. चारूदत्त – धन्यासि तेषां खलु जीवितानि ये कामिनीनां गृहमागतानाम्।
आर्द्राणि मेघोदकशीतलानि गात्राणि गात्रेषु परिष्वजन्ति।। मृच्छकटिक – 5/49
9. वसन्तसेना – गर्जं वा वर्ष वा शक्र! मुच्च वा शतशोऽशनिम्।
न शक्या हि स्त्रियो रोद्धुं प्रस्थिता दयितं प्रति।। मृच्छकटिक – 5/31
10. वसन्तसेना : यदि गर्जति वारिधरो गर्जतु तन्नाम निष्ठुराः पुरूषाः।
अयि विद्युत्प्रमदानां त्वमपि च दुःखं न जानासि।। मृच्छकटिक – 5/32
11. मृच्छकटिक – 10/43
12. तदेव – दशम अंक पृ. 784 तथा प्राप्ता भूयः प्रियेयम। 10/58
13. मदनिका – आर्यायः शून्यहृदयत्वेन जानामि हृदयगतं कमप्यार्याभिषलतीति। मृच्छकटिक – द्वितीय अंक, पृ. 261
14. वसन्तसेना – चेति मदनिके, सुसदृशीयं चित्राकृतिरार्य चारूदतस्य।
मदनिका – सुसदृशी
वसन्तसेना – कथं त्वं जानासि?
मदनिका – येनार्यायाः सुस्निग्धदृष्टिरनुलग्ना।
15. विदूषक – तदहं ब्राह्मणो भूत्वेदानीं भवन्तं शीर्षेण पतित्वा विज्ञापयामि–
'निवर्त्यतामात्मास्माद्बहुप्रत्यवायाद् गणिका प्रसंगात्' गणिका
नाम पादुकान्तर प्रविष्टे व लेष्टका दुःखेन पुनर्निराक्रियते। मृच्छकटिक – पंचम अंक – पृ. 432
16. चारूदत्त – यस्यार्थस्तस्य सा कान्ता धन हार्यो ह्यसौ जनः।
(स्वगतम्) न गुणहार्यो ह्यसौ जना (प्रकाशम्)
वयमर्थैः परित्यक्ता ननु त्यक्तैव सा मया।। मृच्छकटिक –5/9
17. शकार – तिष्ठ वसन्तसेने तिष्ठ!
मम मदनमनंग मन्मथं वर्धयन्ती।
निशि च शयनके मम निद्रामाक्षिपन्ती।
प्रसरसि भयभीता प्रस्खलन्ती स्खलन्ती।
मम वशमनुयाता रावणस्येव कुन्ती।। मृच्छकटिक – 1/21
18. विदूषकः मम तावद्द्वाभ्यामेव हास्यं जायते। स्त्रियाँ संस्कृत पठन्त्या,
मनुष्येण च काकलीं गायता। स्त्री तावत पठन्ती, दत्तनवयनस्येव
गृष्टिः, अधिकं सू सू शब्दं करोति। – मृच्छकटिक – तृतीय अंक, पृ.313
19. रदनिकाः आर्य मैत्रेय, उत्तिष्ठोतिष्ठ। अस्माकं गेहे संधि कर्त्तयित्वा चौरीनिष्क्रान्तः।
विदूषकः (उत्थाय) आः दास्या पुत्रिके, किं भणसि 'चौरं कर्त्तयित्वा संधिनिष्क्रान्तः।' मृच्छकटिक – तृतीय अंक पृ. 339

20. शकार : ही ही एतस्य दरिद्रचारूदत्तस्य वध्यं नीयमानस्तैतावाज्जनसंमर्दः।
यस्यां वेलायांमस्यादृशः प्रवरो वरमानुषो वध्यं नीयते। तस्यां वेलायां कीदृशो भवेत्'। मृच्छकटिक – दशम अंक, पृ. 733
21. अशोक लता जैनः संस्कृत साहित्य में करूण रस पृ. 354
22. चारूदत्तः
सुखं हि दुःखान्यमुभूय शोभते घनाधकारेष्वेव दीपदर्शनम्।
सुखातु यो याति नरो दरिद्रतां धृतः शरीरेण मृतः स जीवति।। मृच्छकटिक– 1/10
23. चारूदत्तः –
दरिद्रयात्पुरूषस्य बान्धवजनो वाक्ये न संतिष्ठते।
सुस्निग्धा विमुखीभवन्ति सुहृदः स्फारीभन्त्यापदः।
सत्त्वं ह्रासमुर्पति शीलशशिनः कान्तिः परिम्लायते।
पापं कर्म च यत्परैरपि कृतं तत्रस्य संभाव्यते।। मृच्छकटिक – 1/36
24. कर्णपूरकः
आहत्य सरोषं तं हस्तिनं विन्ध्यशैलशिरवराभ्याम्।
मोचितो मया स दन्तान्तरसंस्थितः परिव्राजकः।।
25. भास चौरवम्बा – 1/4
26. मृच्छकटिक चौरवम्बा – 1/46
27. तदेव – 10/34
28. तदेव – 4/27
29. तदेव – 8/2

❑❑

20

डॉ. रांगेय राघव के उपन्यासों में नारी की सामाजिक विषमताओं का यथार्थ चित्रण

डॉ. गरिमा जैन
असि. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
अर्मापुर पी.जी. कॉलेज, कानपुर

मानव दृष्टा तथा सृष्टा स्वयं होता है। वह शून्य से सृजन तक की यात्रा में विस्तृत स्वरूप में व्याप्त होता है। 'स्त्री पुरुष संबंध शाश्वत सत्य है'[1]। उनमें एक–दूसरे के प्रति आकर्षण स्वाभाविक है। एक ओर जहाँ से आकर्षण निर्मल प्रेम के रूप में जीवन देता है। तो वहीं दूसरी ओर विकृत मानसिकता के परिणामस्वरूप जीवन में विष घोल देता है।

डॉ. रांगेय राघव जी ने नारी जीवन की विषमताओं को इस दृष्टि से चित्रित किया है जिससे उसे समाज की सहानुभूति समर्थन और सराहना मिल सके तथा उसे स्वयं अपने सामर्थ्य का बोध हो सके। पुरुष होकर भी उन्होंने नारी मन को पहचाना और नारी की समस्याओं के चित्रण में उसके जीवन के अभावों और आवश्यकताओं को मुक्त ह्रदय से व्यक्त किया डॉ. रांगेय राघव के उपन्यासों में नारी द्वारा भोगा गया यथार्थ स्पष्ट दिखाई देता है। यथार्थ के प्रति नया रूप, संबंधों में बदलाव, विद्रोह का भाव तथा वैयक्तिक चेतना का प्रकाशन हुआ है। परंम्परागत सामाजिक आस्थाओं में विश्वास तथा उनके खण्डन के साथ ही नारी की आर्थिक दशा में वैषम्य के स्वर मुखरित हुए हैं। निर्मल प्रेम यौन संबंध की अनियंत्रित भंगिमाओं और दिशाहीन स्वेच्छाचरिता को यथार्थ धरातल पर अंकित किया गया है। डॉ. रागेय राघव जी ने खुली आँखों से अपने चारों ओर छायी विभीषिका को देखा समझा है। इनके उपन्यासों में नारी के संदर्भ में निर्धनता का अभिशाप, दिशा पाने की व्याकुलता, घूसखोरी और भ्रष्टाचार, घुटन, विवशता की अनुभूति, आदि के चित्रण दिखाई देते हैं।

डॉ. रांगेय राघव के पूर्व के उपन्यासकारों के सम्मुख नारी के सुधार अथवा विकास का ही प्रश्न प्रमुख रहा है। वे नारी के विकास के मार्ग में आने वाले अवरोधी अथवा समस्याओं को दूर करना चाहते हैं। नारी के समक्ष जीवन जीने का सुनिश्चित मार्ग बन चुका है। वह समझने लगी थी कि वह पुरुष की दासी नहीं अर्धांगिनी है और परिवार समाज तथा देश इन सब में पुरुष के समान वह भी अधिकार रखती है। नारी भी अपने अस्तित्व एवं अस्मिता के संबंध में विचार करने लगी और तर्क के आधार पर अपना मंतव्य प्रगट करने लगी। नारी के तर्कों का आधार मनोविश्लेषण रहा है। इस आधार पर जीवन सत्य विविध रूपों में उजागर होने लगा। तिलिस्मी, जासूसी के रहस्य से हटकर नारी विकास करती हुई अपना विशिष्ट व्यक्तित्व प्रकट करने लगी। रांगेय राघव जी के काल में नारी का आंतरिक पक्ष भी अपनी रचनाओं में उद्घाटित किया है।

डॉ. रांगेय राघव ऐसे ही संवेदनशील और जागरूक उपन्यासकार हैं, जिन्होंने अपने उपन्यासों में नारी जीवन से संबंधित अनेक समस्याओं एवं विषमताओं का चित्रण किया है। साथ ही उन समस्याओं को सुलझाने के लिए उचित निदान कर समाधान भी प्रस्तुत किया है।

मनुष्य का जीवन समस्याओं एवं विषमताओं से ओत–प्रोत है। इन्हीं विषमताओं और समस्याओं को अपनी रचना में शब्दबद्ध करता है। प्रत्येक युग में नारी की स्थिति एवं उसके गुणों की व्याख्या अपने–भावों व शब्दों के माध्यम से साहित्यकार करता आया है।

डॉ. रांगेय राघव के युग में नारी शिक्षा का प्रचार–प्रसार काफी मात्रा में हुआ था। इसके दो मुख्य कारण थे। एक नारी को आत्मविश्वास प्रदान कर आत्मनिर्भर बनाना और दूसरा यह कि शिक्षित नारी अपने योग्य पति

को चुन सकती है। शिक्षित और उच्च शिक्षित नारियों में आत्मविश्वास का निर्माण होता है। जिसकी वजह से वह अन्याय के विरूद्ध आवाज उठा सकती है तथा अपने जीवन की विषमताओं को समझने और उनके निराकरण के लिए प्रयत्न कर सकती है। इनके उपन्यासों में शिक्षित नारियों का विभाजन दो वर्गो में किया है। प्रथम वर्ग में पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित नारी पात्र रखे हैं। उन्होंने अपने उपन्यास 'घरौंदा' में सह शिक्षा से उत्पन्न समस्या को उजागर किया है। ''मैं अपमान उसे समझती हूँ कि साधनहीन होकर हा–हा खाता फिरे। अभिमान यदि है, तो रूपये का धन का, सम्मान वह है, जो सब कुछ होते हुए भी करते हुए भी, कोई कुछ कहने का साहस न करे।''[2] तो दूसरी ओर वो नारियाँ हैं, वह अपनी शिक्षा का उपयोग सही अर्थो में करती हैं। शिक्षित होने के कारण उनमें आत्म–विश्वास है। परिस्थिति से जूझने की क्षमता है। 'प्रोफेसर' उपन्यास की निर्मला एक उच्च वर्ग की कन्या है, परंतु उसे अपने धन पर गर्व नहीं है। वह सहृदयी है। करूणा भाव उसमें अधिक मात्रा में है, इसलिए अनेक अनाथों की सहायता करने का निश्चय करती है। उसे समाज में फैले हुए अनाचार तथा बुराइयों को देखकर दुःख होता है। वह कहती है 'दुनिया में इतनी बुराई होती है और हम लोग सब कुछ देखते हैं फिर बोलते क्यों नहीं'[3]? 'काका' उपन्यास की कान्ता शिक्षित है। वह ग्रामीण नारी अपनी शिक्षा का सदुपयोग करती हैं। वह बाल विधवा है और उसके पति का भी देहांत हो गया है। वह बेसहारा नारी ऐसी विकट स्थिति में भी हिम्मत नहीं हारती। अपनी विवेक, बुद्धि जाग्रत रखकर उचित–अनुचित का निर्णय लेती है। विधवा जीवन की समस्त समस्याओं का सामना करने के लिए धैर्य धारण करती है। वह सोचती है पर वह पढ़ी है, उसे सिलाई आती है, वह किसी स्कूल में पढ़ाकर पेट के लायक तो कमा ही सकती है। ऐसी वह गई गुजरी तो नहीं'[4]। घरौंदा उपन्यास की लीला भी उच्च शिक्षित युवती है। उसकी रहन–सहन पाश्चात्य ढंग की है, किन्तु विचार भारतीय संस्कृति के अनुरूप हैं। वह आधुनिक समाज में स्त्रियों की आजादी पर अपने गंभीर विचार व्यक्त करते हुए कहती हैं' तब हम कैसे मान लें कि आजादी से सोचने को दिमाग दिया जाता है, जो बड़े कहते हैं वही हमें करना पड़ता है[5]। 'छोटी सी बात' की सुशीला आधुनिकता से प्रभावित है, परंतु कहीं भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करती। वह नारी को सबला के रूप में देखना चाहती है। स्त्री संघ का निर्माण करके नारियों को जाग्रत करने के लिए अपनी शिक्षा का सदुपयोग करती है। यह कार्य करते हुए उसे अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है किन्तु वह कहीं भी विचलित नहीं होती। उसे अपनी राष्ट्रभाषा से प्रेम है। वह अपने समाज कल्याण के कार्य का ब्यौरा अपनी सहेली को पत्र लिखकर देती है, 'अब मेरी योजना का रास्ता खुलता जा रहा है। स्त्रियों का संगठन करना ही होगा बहिन। यह देश नींद से जागा। इसको और जगाना होगा'[6]। इस तरह डॉ. रांगेय राघव ने अपने उपन्यासों में अधिकतर शिक्षित–उच्च शिक्षित नारी पात्र को स्थान दिया है, जिसमें कुछ एक पात्र आधुनिकता के प्रवाह में तिनके की तरह बह गए हैं। उनके प्रति उपन्यासकार ने सहानुभूति नहीं दर्शायी है। डॉ. रांगेय राघव के कुछ एक उपन्यासों के नारी पात्र शिक्षित होते हुए भी उनमें अपने विचार को उजागर करने की क्षमता नहीं है। ऐसे साहसहीन नारी पात्रों के प्रति उपन्यासकार उदार रहे हैं और उनके चरित्र को कलंकित नहीं होने देते। यह नारियाँ शिक्षित होकर भी समाज और धर्म के बंधनों में जकड़ी हुई रहती हैं। उपन्यासकार ने शिक्षित उच्च नारियों को ही अपने उपन्यास में स्थान दिया है ऐसी बात नहीं, अशिक्षित नारियों को भी अपने उपन्यास में चित्रित किया है। इसका उद्‌देश्य संभवतः यह रहा होगा कि नारी को शिक्षित होना ही चाहिए। शिक्षा के महत्व को समझकर अपनी उन्नति तथा समाज और देश का कल्याण करना चाहिए। अशिक्षित नारियों को स्वतंत्रता नहीं दी जाती। वह आत्मनिर्भर भी नहीं बन सकती और न ही उसमें आत्म–विश्वास होता है। उनका सब कुछ पुरुष पर निर्भर होता है, जैसा पति, भाई तथा पिता रखेगा, वैसा ही रहना पड़ता है। इसके विपरीत शिक्षित नारी आत्मविश्वास से आत्मनिर्भर बनने के प्रयत्न कर सकती है। अशिक्षित नारी पात्र पिछड़े वर्ग के है। इनमें 'कब तक पुकारूँ' की प्यारी और कजरी है। अन्य पात्रों में 'राई और पर्वत' की विद्या। 'आखिरी आवाज' की निहार कौर। शिक्षा के अभाव में वह समाज के ठेकेदार की कठपुतली बनती है। जो जैसा चाहेगा वैसा उसको उपयोग कर लेते हैं।

नारी का मूल स्वभाव ही प्रेम करना है। वह प्रेम और करुणा की मूर्ति है। प्रेम शाश्वत है, इसलिए वह जबरदस्ती से नहीं किया जा सकता वह हो जाता है लेकिन विवाह किया जाता हैं, अपने आप नहीं होता। डॉ. रांगेय राघव के उपन्यासों में नारी स्वच्छंद प्रेम करती हुई चित्रित हुई है, परन्तु उसने प्रेम की मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया है। कहीं उसके एकांगी प्रेम का चित्रण है, तो कहीं वह अपने प्रेम का प्रतिदान चाहती है। कुछ एक उपन्यासों में नारी पात्र विवाहित होकर भी अन्य पुरूष से प्रेम संबंध रखती हैं। इसी प्रकार असफल प्रेमिकाओं का भी चित्रण उन्होंने अपने उपन्यास में किया है। साथ ही अपने प्रेमी को ही पति के रूप में स्वीकारने वाली नारियाँ भी डॉ. रांगेय राघव के उपन्यास में अंकित हुई हैं। इनके उपन्यासों में कई प्रकार के विवाहों (बाल विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, अनमेल विवाह) इत्यादि द्वारा निर्मित सामाजिक विषमताओं को उजागर किया है। डॉ. रांगेय राघव ने अपने प्रथम उपन्यास 'घरौंदा' में इसका उल्लेख किया है। इंदिरा नामक युवती अपनी सहेली लवंग के विवाह की बात सुनकर अपने विवाह संबंधी विचार करती है, ''काश वह भी ऐसा ही व्यक्ति पाती लेकिन लवंग का भाग्य अच्छा है। उसकी किस्मत सबकी तरह नहीं हैं'[7] 'राई और पर्वत' की विद्या का बाल विवाह हुआ था। उसके जीवन में अकाल वैधव्य आया जिसके कारण उसे जीवन में अपमान और प्रताड़ना सहनी पड़ी। 'भारती का सपूत' इस उपन्यास में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की बहनों को अकाल वैधव्य का शिकार होना पड़ा। ऐसी ही बाल विध ावा है 'काका' उपन्यास की कान्ता। जो विधवा होने के पश्चात रामधुन पात्र के साथ पुनर्विवाह करते हुए चित्रित किया है। वह कहती है 'भले ही यह पाप हो पर यही अच्छा है। मेरे वेश्या बनने से या चेली बनने से यह पवित्र है। स्त्री हूँ तो स्त्री जैसा जीवन क्यों न बिताऊँ'[8]?

डॉ. रांगेय राघव ने अन्तर्जातीय, अनमेल विवाह के दुष्परिणाम की ओर संकेत किया है। नारी को समाज में इन विवाह के कारण कितनी विषमताओ का सामना करना पड़ता है। वेश्या समस्या अपने समाज को लगा हुआ असाध्य रोग है। परित्यक्ता नारी को सामाजिक, राजनैतिक और पारिवारिक परिस्थितियाँ वेश्या बनाती हैं।

डॉ. रांगेय राघव ने अपने युग में नारी शिक्षा का प्रचार–प्रसार बड़े पैमाने पर किया है। नारी स्वातंत्र्य तथा समानाधिकार पर जोर दिया है। 'कल्पना' उपन्यास की नीला भी नारी स्वतंत्रता पर बल देते हुए कहती है 'यह तो सच है कि स्वतंत्रता तभी आएगी, जब स्त्री और पुरुष पर बराबर कर्त्तव्यों का बोझ होगा'[9]।

उपेक्षित नारियों के तिरस्कार से व्याप्त सामाजिक विषमता को भी चित्रित किया है।

समग्रतः डॉ. रांगेय राघव ने अपने उपन्यासों में सामाजिक विषमताओं से संघर्ष करती हुई नारी का यथार्थ चित्रण किया है। वह नारी को समर्थ बनाकर आत्म–विश्वास से जीवनयापन करते हुए देखना चाहते हैं। उक्त समस्याओं का निदान लोगों की सामाजिक मानसिकता बदलने पर निर्भर है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आधुनिक समाज की नारी चेतना, डॉ. सुजाता वर्मा, पृ. सं. 125
2. घरौंदा, डॉ. रांगेय राघव, पृ. सं. 44
3. प्रोफेसर डॉ. रांगेय राघव, पृ. सं. 45
4. काका, डॉ. रांगेय राघव, पृ. सं. 122
5. घरौंदा, डॉ. रांगेय राघव, पृ. सं. 152–153
6. छोटी सी बात डॉ. रांगेय राघव, पृ. सं. 28
7. घरौंदा डॉ. रांगेय राघव, पृ. सं. 182
8. काका डॉ. रांगेय राघव, पृ. सं. 164
9. कल्पना डॉ. रांगेय राघव, पृ. सं. 13

❑❑

21

ओजस्वी कवि दिनकर

डॉ0 अलका द्विवेदी
एसोसिएट प्रोफेसर
जुहारी देवी गर्ल्स कॉलेज कानपुर

प्रज्ञा
शोध छात्रा
जुहारी देवी गर्ल्स कॉलेज कानपुर

रामधारी सिंह दिनकर जी साहित्य जगत के एक दैदीप्यमान सूर्य सदृश है। स्वतंत्रता के पूर्व वह एक विद्रोही कवि के रूप में अपनी छाप छोड़ते है। उनकी अभिव्यंजना शैली की उग्र क्रान्ति चेतना उनके दृढ़ व्यक्तित्व का दर्पण बनकर प्रस्फुटित होती है। दिनकर जी अपनी अधिकांश रचनाओं में वीरता, दृढ़ता व जाग्रति का स्वर गुंजित करते हैं।

''कवि दिनकर भारतीय स्वातंत्र्य के प्रबल कवि रहें हैं वे जन जागरण के वाहक बनकर अपने विद्रोह को निर्भीकता से व्यक्त कर राष्ट्रीय चेतना से युक्त कविताएँ देते रहे। बिहार की विद्रोह राष्ट्रीय चेतना के अग्निमय वातावरण में उनक कवि व्यक्तित्व से क्रान्ति का नारा फूट पड़ना स्वाभाविक था। इसी राष्ट्रीयता ने दिनकर को उद्दीप्त क्रान्तिकारी बना दिया था।''[1]

'हुंकार, सामधेनी, परशुराम की प्रतीक्षा, कुरूक्षेत्र, रश्मिरथी, आदि अनेक रचनाएँ है जिसमें दिनकर जी ने अपने विचारों की उत्तेजना से लोगों के हृदय को झंकृत किया है। रामधारी सिंह दिनकर जी आत्मविश्वास, निडरता, निर्भयता, क्रांतिचेतना जैसे गुणों को अपनी रचनाओं के माध्यम से एक नवीन स्वर प्रदान करते है। उनके शब्दो की गरिमा व्यक्तित्व को उस उच्च शिखर तक पहुँचाती है, जिससे मनुष्य को स्वयं में एक असीम ऊर्जा की प्रवाहमयता का अहसास होता है। उनकी अभिव्यक्ति की सशक्तता, ओजस्विता एक निर्जीव हताश व्यक्ति को भी आन्दोलित कर देती है। रामधारी सिंह दिनकर जी ने अपनी एक कविता मे कहा है

खोल दृग मधु नींद तज,
तन्द्रालसे, रुपसि विजन की।
साज नव श्रृंगार, मधु घटसंगले,
कर सुधि भुवन की।
विश्व में तृण–तृण जगी है
आज मधु की प्यास आली।

दिनकर जी सामाजिक रूढ़िवादिताओं, कुपरम्पराओं का पोशण करने के पक्षपाती नही थे। उनकी कविताओं को पढ़कर हृदय में उसी आत्मबल प्रेरणा व असीम शक्ति की प्रतीति होती है जो विवेकानन्द के विचारों को पढ़कर प्राप्त होती है। कायरता का विरोध प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से इनकी रचनाओं में द्योतित होता है। उनके संदर्भ में कहा गया है–

''रामधारी सिंह दिनकर ने शुरूआती दौर में विद्रोही रचनाओं के साथ ही साहित्य में अपनी धमक बनाई थी। जोश से परिपूर्ण रचनाओं के माध्यम से भारतीय जनमानस में एक अलग ही अलख जगाने का प्रयास किया। जिसमें वह काफी हद तक सफल भी रहे। दिनकर जी की रचनाएँ हमारे मन के अन्दर बैठा भय, गलत धारणा, अन्याय, अत्याचार, दुर्भावना स्वतः नष्ट सी होने लगती है।''[2]

'रेणुका' नामक रचना अपने आप में क्रान्ति व परिवर्तन का स्वर पिरोये हुए है। उनकी रचनाएँ एक ओर विद्रोह की अग्नि है तो वहीं दूसरी ओर करुणा, दया, क्षमा जैसे गुणों की अनुरागिनी है। जाग्रति के स्वर को दिनकर जी

की रचनाएँ इतना बुलन्द करती है कि समाज के समक्ष क्रान्ति को नई धारा फूट पड़ती है। 'हुंकार' नामक रचना में रामधारी सिंह दिनकर भी प्रातः कालीन पक्षी सदृश चहचहा उठते हैं। वह अपनी रचनाओं के माध्यम से जनमानस को जाग्रत करते हुए दिखायी देते हैं। जो मानव अपने कर्त्तव्य पक्ष में सोया हुआ है उसके लिए प्रेरणा व उद्बोधान के विगुल की गूँज रामधारी सिंह जी इस रचना में सुनाई देती है। कवि दिनकर मनुष्य के शक्ति रूप को जगाते है। पथ पर आई हुई विद्रूपताओं, बाधाओं को नश्ट करने का साहस का उद्‌गम स्रोत दिनकर जी की रचनाओं में मिलता है–

शीमाकृति बढ़–बढ़ कबन्ध का कर फैलाए
लील, दीर्घ बन्धभुजबीच जो कुछ आ पाए
बढ़, बढ़ चारों ओर, छोड़, निज ग्रास न कोई
रह जाए अवशिष्ट सृष्टि का हास न कोई
(रसवन्ती कविता संग्रह उदयांचल प्रकाशन पटना 2010 रामधारी सिंह दिनकर)

दिनकर जी ने पौराणिक कथानकों के नवीन स्वरूप को अपनी नई दृष्टि के माध्यम से उद्घाटित किया। ऐसे महाकाव्य जो जनमानस में एक प्रश्न छोड़कर चले गये कि युद्ध उचित था या अनुचित। दिनकर जी ने अपनी कल्पनाशीलता व विवेकशीलता के माध्यम से मानव को उसका समुचित उत्तर देने का प्रयास किया है दिनकर जी कुरूक्षेत्र रचना में एक ओर युद्ध के दुश्परिणामों पर ग्लानि, पश्चाताप का वर्णन कर अपनी संवेदनशीलता का परिचय अनजाने में दे जाते है दूसरी ओर भीष्म की तार्किकता के माध्यम से अन्याय के अन्त को अनिवार्य बताते है। ''कवि ने युद्ध के जिन अनेक ज्ञात–अज्ञात कारणों की ओर संकेत किये हैं वे महाभारतकालीन समाज से नहीं बल्कि वर्तमान विश्व–समाज से सम्बन्धित है। कुरूक्षेत्र की रचना के पीछे कवि का एक महत्त्वपूर्ण उद्‌देश्य देश की जनता में सम्मानपूर्ण एवं संघर्शरत जीवन जीने की ललक पैदा करना भी रहा था इस तथ्य की अवहेलना कुरुक्षेत्र के अध्ययन मूल्यांकन में नहीं की जा सकती।''[3] उनका मानना था यदि क्षमा, करुणा, दया, सहानुभूति जैसे ये गुण आपको कायर सिद्ध करके अन्याय, शोशण, अत्याचार को बढ़ावा देने लगे तब वे गुण बेईमानी हो जाते है।

क्षमा शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल हो।
उसको क्या जो दन्तहीन, विषरहित विनीत सरल हो।   *(कुरूक्षेत्र)*

ये कालजयी खण्डकाव्य कितनी दुविधाओं, परेशानियों का निराकरण कर जाता है। महाभारत युद्ध के बाद का ऐसा प्रकरण उद्घाटित किया जिसे जनमानस से सोचा ही नहीं, युद्ध की विभीषिका जो अहिंसा के लिए प्रेरणादायक है। युद्ध, ग्लानि जो स्वीकृत कर्मों पर विचार विवेक प्रस्तुत करती है व भीष्म पितामह के द्वन्द्व निवारण उत्तर, अन्याय, अत्याचार के प्रतिकार हेतु प्रेरित करते है। यदि अन्याय का समय पर प्रतिकार न हो तो वह नासूर बन जाता है।

''पहली समस्या थी समाजवाद की, आर्थिक विशमता की, मजदूर किसानों के शोषण की, दूसरी समस्या उन्होंने उठाई युद्ध और शान्ति की। क्या युद्ध जरूरी है क्या समस्याओं का हल शान्ति से किया जा सकता है। हिंसा और अंहिसा का सवाल।..... दिनकर के साहित्य का लगभग 90 प्रतिशत साहित्य किसी न किसी प्रकार के अन्याय के खिलाफ न्याय की समस्या से जूझता हआ साहित्य है।''[4]

'सामधेनी' काव्य ग्रन्थ मनुष्य को तपस्या त्याग बलिदान के लिए प्रेरित करता है यह ग्रन्थ जनमानस में वीरता की वह अजस्त्र धारा प्रवाहित करता है कि मानस में स्व समर्पण का भाव उद्‌दीप्त हो उठे। देश हित, समाज हित, परमार्थ, परोपकार जैसे उत्कृष्ट विचारों का प्रवाह मानव जगत में इस हद तक बढ़े कि स्वार्थ की विलासवती भावना उसे तिरोहित न कर सके। सामधेनी के संदर्भ में बच्चन सिंह जी ने लिखा है–

''सामधेनी ऋग्वेद की उस ऋचा का नाम है जो यज्ञों को प्रज्ज्वलित करते समय पढ़ी जाती है दिनकर की

सामधेनी में स्वाधीनता के यज्ञ में बलि होने वाली जवानियों का आह्वान है।''[5]

सामधेनी मनुष्य के ह्रदय में एक तेज का संचार करती है उस तेजोद्‌दीप्त भाव से मनुष्य मन चमत्कृत हो उठता है। द्वन्द्वगीत नामक रचना में किंकर्त्तव्यविमूढ़ मनुष्य को निरन्तर परिश्रम करने व दृढ़ इच्छा शक्ति जाग्रत करने की प्रेरणा प्रदान करते हैं जो मनुष्य स्वयं अन्तर्मन की शक्ति से अपरिचित है उसे एक दिव्य दृष्टि प्रदान करते हैं। उनकी रचना की यह विशिष्टता है कि वह व्यक्ति को इतना आत्मबल साहस व ऊर्जा प्रदान करती है कि वह निरन्तर संघर्श से भी हारता नहीं है। यह दिनकर जी की ओजस्विता ही है वह एक प्रकाश पुंज है जो सबका मार्ग अवलोकित कराता है।

बहुत चला तू केन्द्र छोड़कर
दर स्वयं से जाने को
अब तो कुछ दिन पन्थ मोड़
पन्थी। अपने को पाने को
जला आग कोई जिससे तू
स्वयं ज्योति साकार बनें[6]

दिनकर जी की प्रत्येक रचना अपने आप से प्रपात की असीम जलधारा सदृश प्रभावी है जो शिलाओं को भी तोड़ने सक्षम है फिर चाहे वह परशुराम की प्रतीक्षा हो, हारे को हरिनाम, यशोधरा, रसवन्ती, धूप और धुआ या इतिहास के आँसू। परशुराम को प्रतीक्षा नामक खण्डकाव्य व्यवस्था के प्रति विद्रोह भी है और क्षोभ भी, क्रोध भी है और ग्लानि भी। परशुराम की प्रतीक्षा में भारत की दुर्दशा, दुर्व्यवस्था का अभाव और अहसास का चित्रण प्राप्त होता है, इसमें एक ऐसे क्रान्तिवीर की आवश्यकता है। जो समाज का, राश्ट्र का उन्नायक बनेगा, देश की प्रगति का प्रवर्तक बनेगा, प्रगति पथों की खोज करेगा। समाज को नयी चेतना गत्यात्मकता प्रदान करेगा। राष्ट्र के ऐसे ही वीर सपूतों के कवि है रामधारी सिंह दिनकर जो देश की स्वतंत्रता के लिए वीरता की ओज की और बलिदान के अनुपमेय उदाहरण प्रस्तुत कर जाते हैं।

साहसी शूर–रस के उस मतवाले को
टेरो, टेरो, आजाद हिन्द वाले को।

(परशुराम की प्रतीक्षा लोक भारती प्रकाशन, 1987 खण्ड तीन)

वीरों के प्रशस्तिगीत, वीरों की वीरता का चित्रण, शहीदों के समर्पण की पराकाश्ठा का जैसा तेजोमय चित्रण दिनकर जी ने अपनी प्रभावपूर्ण शैली में किया वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी भाषा भी भावानुरूप सशक्त व प्रभावपूर्ण हो उठती है। 1962 के भारत चीन की भयावह स्थिति कवि दिनकर को आहत करती है–

तृतीय सोपान का प्रारम्भ चीनी आक्रमण से हुआ है। कवि की नवनिर्माण तथा समग्र सुधार की भावना पुनः एक बार उग्र रूप धारण करती प्रतीत होती है भारतीय जनता इस आक्रमण से आक्रोश कर उठी कवि दिनकर ने इसी आक्रोश रूपी अग्नि में 'परशुराम की प्रतीक्षा' में आहुति डाली।[7]

दिनकर दीपक के जलते रहने की वह प्रेरणा है जो उसे आँधियों से जूझने तक की ताकत दे डालती हैं दिनकर जी की छवि एक ऐसे कवि की थी कि वह संजीवनी जैसे थे जो नवीन प्राण फूँकने में, गिरने के बाद संभलने में सहायक है। भारत की त्रासद स्थितियों के प्रति विद्रोह, राष्ट्र–प्रेम का स्वर, बलिदान की भावना का संचार उनकी रचनाओं के प्राण स्वरूप थे। उनकी रचनाएँ क्रान्ति आन्दोलनों का क्रान्ति स्वर का प्रतीक है–

''दिनकर मानते है कि सच्चा काव्य जाग्रत पौरूश का निनाद है। उन्होंने अपने पौरुश का ध्येय देश का पौरुश जगाना ही बनाया है।''[8]

रश्मिरथी खण्डकाव्य उपेक्षित वर्ग को मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास है। अतीत के गर्भ में समाए हुए कुछ ऐसे तीर है जो उदात्त गुणों के रत्नाकर होकर भी प्रशस्तिपरक दृश्टि से उन्हें रीता ही रखा। जिस प्रशंसा के वे पात्र थे उन्हें वह कभी नहीं प्राप्त हुई। रश्मिरथी के नायक कर्ण एक ऐसे मानव प्रतीक के रूप में उभरकर आए है जो समाज की वंचना, उपेक्षा, अवहेलना, शोशण का प्रतीक है, इसी सामाजिक विडम्बना के प्रति विद्रोह का स्वर है रश्मिरथी–

धूलो में मैं पड़ा हुआ?
किसका स्नेह पा बड़ा हुआ?
किसने मुझको सम्मान दिया?
नृपता दे महिमावान किया।[9]

कर्ण के त्याग, दानशीलता का ऐसा विचारोत्तेजक ओजस्वी वर्णन पाठकों को एक नयी दृश्टि प्रदान करता है कर्ण का चरित्र एक सूर्य सा चमकता प्रतीत होता है जो समाज की धुन्ध बादलों के कारण छिप गया था।

निस्सन्देह दिनकर एक तेजस्वी दिनकर सदृश थे जिन्होंने ओजस्वी रश्मियों रूपी रचनाओं से सम्पूर्ण साहित्य जगत को आलोकित कर दिया।

लेखन की उदात्तता, विचारों की दृढ़ता व सशक्तता, तेजोमया प्रस्तुति, प्रकरण की प्रासंगिकता, लय व शैली की हुंकार ने उनके ओजस्वी स्वरूप को मूर्तिमान किया है, कर रही है, करती रहेगी।

संदर्भ

1. ''दिनकर के काव्य में युग चेतना'', डॉ0 पुष्पा ठक्कर, अरविन्द प्रकाशन, मुम्बई : प्रथम संस्करण 1986, पृ0सं0–123
2. 'रामधारी सिंह दिनकर के साहित्य में राष्ट्र चेतना'' सुनीता, आजकल पत्रिका अगस्त 2017 वरिष्ठ संस्थापक राकेश रेणु सम्पादक जय सिंह आजकल प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, पृ0 सं0–32–33
3. ''दिनकर के काव्य में मानवतावादी प्रेम चेतना'', डॉ0 मधुबाला, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली : प्रथम संस्करण 1985, पृ0सं0–150
4. 'औरंगजेब रोड बदलने पर दिनकर कया कहते' वीर भारत तलवार हंस पत्रिका सम्पादक संजय सहाय सितम्बर 2017 अक्षर प्रकाशन नयी दिल्ली, पृ0सं0 30–31
5. ''हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास'' डॉ0 बच्चन सिंह राधाकृष्णन् प्रकाशन नई दिल्ली, सातवाँ संस्करण 2014, पृ0सं0 405
6. ''द्वन्द्वगीत'' रामधारी सिंह दिनकर श्री अजन्ता प्रेस लिमिटेड अजन्ता नया टोला पटना (बिहार) संस्करण 1951, पृ0सं02
7. ''दिनकर के काव्य मे राष्ट्रीय भावना'' डॉ0 शिवाकान्त गोस्वामी प्रथम संस्करण 1985 प्रगति प्रकाशन, आगरा, पृ0सं0 101
8. 'दिनकर सृष्टि और दृष्टि' डॉ0 छोटे लाल दीक्षित' अभिलाषा प्रकाशन ब्रह्मनगर कानपुर, संस्करण, प्रथम जून 1978 पृ0सं01।
9. रष्मिरथी रामधारी सिहं 'दिनकर' लोकभारती प्रकाशन महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद आठवाँ पेपर बैक संस्करण 2016 तृतीय सर्ग, पृ0सं0 51

❑❑

उत्तरशती की काव्य प्रवृत्तियों में भक्ति का वैशिष्ट्य

डॉ0 कविता यादव
प्रवक्ता–हिन्दी विभाग
राजकुमारी महाविद्यालय रूदौली, फैजाबाद

हिन्दी में भक्ति काव्य की उद्भावना हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्य काल में हुई थी। जब धर्म की रक्षा हेतु धर्मभावना से अनुप्रशित होकर निर्गुण एवं सगुण भक्ति धाराओं का विकास हुआ– धर्म का प्रवाह कर्म ज्ञान और भक्ति इन तीन धाराओं में चलता है। इन तीनों के सामंजस्य से धर्म अपनी पूर्ण सजीव दशा में रहता है। किसी एक के भी अभाव से वह विलांग रहता है। कर्म के बिना वह लूला–लंगड़ा, ज्ञान के बिना अंधा और भक्ति के बिना ह्रदय विहीन अर्थात निष्प्राण रहता है। धर्म की भावात्मक अनुभूति या भक्ति जिसका सूत्रपात महाभारत काल में और विस्तृत प्रवर्तन पुराण काल में हुआ था।

सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से संसार के दुख से छूटकर मुक्ति का लाभ प्राप्त करने के लिए जो तीन निवृति मार्ग प्रचलित रहे हैं उनमें ज्ञान मार्ग और योग मार्ग के अतिरिक्त जो तीसरा मार्ग है उसे भक्ति मार्ग कहा जाता है। ज्ञान मार्ग और योग मार्ग अपेक्षाकृत सांस्कारिक जन के लिए कठिन है जबकि भक्ति मार्ग सर्वसुलभ है। पूर्व युगों में सांख्य दर्शन और वेदान्त दर्शन के अन्तर्गत विवेक और वैराग्य साध्य अभ्यास भी उनके लिए कठिन होते हैं। इसके विपरीत मंत्र, योग और प्रेम योग की भक्ति के सरल साधन सर्वसुलभ हैं। ज्ञान और योग के गहन विशय दुर्लभ कहा गया है। ज्ञान मार्ग के आत्मतत्व की दुर्लबता के विशय में श्रीमद्भागवत गीता में कहा गया है कि कोई तो आश्चर्य समझकर इसे देखते हैं। कोई आश्चर्य के साथ इसका वर्णन करते हैं और कोई आश्चर्य से इसको सुनते हैं। सुनकर भी कोई इसे नहीं जानता।

निर्गुण पंथ के सन्तों के सम्बन्ध में यह अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए कि उनमें कोई दार्शनिक व्यवस्था दिखाने का प्रयत्न व्यर्थ है, उन पर द्वेत, अद्वेत, विशिष्टाद्वैत आदि का आरोप करके वर्गीकरण करना दार्शनिक पद्धित की अनभिज्ञता प्रकट करेगा। उसमें जो थोड़ा बहुत भेद दिखाई पड़ेगा वह उन अवयवों की न्यूनता या अधिकता के कारण जिनका मेल करके निर्गुण पथ चला है, जैसे–किसी में वेदान्त के ज्ञानतत्व का अवयव अधिक मिलेगा, किसी में योगियों की साधना तत्व का, किसी में सूफियों के मधुर प्रेमतत्व का और प्रगति के अतिरिक्त वैष्णव तत्व का और कोई अंश उनमें नहीं है। उसके सुरति और निरति शब्द बौद्ध सिद्धों के हैं। बौद्ध धर्म के अष्टांग मार्ग है सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि। सम्यक स्मृति वह दशा है जिसमें क्षण–क्षण पर मिटने वाला ज्ञान स्थिर हो जाता है और उसकी श्रृंखला बंध जाती है। सम्यक में साधक सब संवेदनों से परे हो जाता है। अतः सुरति–निरति शब्द योगियों की बानियों से आये हैं। वैशणवों से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

सिद्धान्त स्फुरण भक्ति के परिप्रेक्ष्य में यह भी ज्ञातव्य है कि प्रेम और श्रद्धा दोनों के मेल से भक्ति की उत्पत्ति हुई है। श्रद्धा धर्म की अनुगामिनी है। जहाँ धर्म का स्फुरण दिखाई पड़ता है वही श्रद्धा टिकती है। धर्म ब्रह्म से सतस्वरुप की व्यक्त प्रवृत्ति है उस स्वरुप की क्रियात्मक अभिव्यक्ति है जिसका आभास अखिल विश्व की स्थिति में मिलता है। पूर्णभक्त व्यक्त जगत के बीच सत् की इस सर्व–शक्तिमयी प्रवृत्ति के उदय का धर्म की इस मंगलमयी ज्योति के स्फुरण का साक्षात्कार चाहता रहता है। इसी ज्योति के प्रकाश में सत् के अन्ततः रुप सौन्दर्य की मनोहर झाँकी उसे मिलती है। लोक में जब कभी वह धर्म के स्वरुप को तिरोहित या आच्छादित देखता है।

भक्ति के मार्ग के आचार्यों ने इसे अपेक्षाकृत आशावादी और सरल बना दिया है इसीलिए सामान्य गृहस्त

जन ने भी इसे अपना लिया है और मोक्ष की प्राप्ति का साधन स्वीकार कर लिया है। इसे व्यापकता और परिपूर्णता प्रदान करने के लिए उन्होंने कर्म, ज्ञान और योग आदि को भी श्रद्धा रुप में भक्ति के अन्तर्गत समाहित कर लिया है। भक्ति मार्ग में शूद्र, स्त्री और वैश्य वर्ग के व्यक्तियों को भी आध्यात्मिक उन्नति का अधिकार दिया गया है, यहाँ तक कि दुराचारियों को भी इस साधन से अधिक सुधार का अवसर मिलता है।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से भज धातु से इसकी उत्पत्ति हुई है। जिसका अर्थ, 'भजना' होता है। नारद के अनुसार वह परम प्रेमरुपा और अमृत स्वरुपा है जिसे प्राप्त कर मनुश्य सिंह, अमर और तृप्त हो जाता है। सा तस्मिन परम प्रेमरुपा, अमृत स्वरुपा च (भ०स०:2:3)

भगवान को प्राप्त करने के साधनों में कर्म, ज्ञान, योग और भक्ति मार्ग की गणना होती है। सहज साध्य होने के कारण आचार्यों ने भक्ति मार्ग को प्रमुखता दी है। भक्ति मार्ग ही प्रमुख भागवत धर्म है, जिसका उदय ईसा से लगभग 1400 वर्ष पूर्व अनुमाना जाता है। इससे पूर्व ऋग्वेद के वरूण सूत्र तथा उसकी ऋचाओं में भक्ति की कल्पना का आभास मिलता है।

ब्राह्मण काल में कर्मकाण्ड की प्रबलता के कारण भक्ति का प्रभाव कुंठित हो गया था। उपनिषद युग में निर्गुण ब्रह्म की अनुभूति के लिए मन, आकाश, सूर्य, अग्नि, यज्ञ आदि सगुण प्रतीतों की उपासना के स्पष्ट संकेत मिलते हैं। मैत्रयुपनिषद, छन्दोंग्योपनिषद, मुण्डकोपनिषद, श्वेताश्वतरोपनिषद आदि उपनिषदों में शिव, रूद्र, विष्णु, अच्युत, नारायण आदि को परामात्मा के रूप कहकर उनकी उपासना का निर्देश है।

उत्तरशती के काव्य में सगुण भक्ति सन्दर्भ में यहाँ पर यह ज्ञातव्य है कि भागवत मत के अनुसार ब्रह्म, अद्वैत, अनादि, अनन्त, निर्विकार निरवद्य, अन्तर्यामी, सर्वव्यापक असीम आनन्द स्वरूप है। वह प्राकृत गुण, सत्व, रज और तम से हीन है, आकार देश और काल से रहित पूर्ण नित्थ और व्यापक है। परन्तु उनमें अप्राकृत गुण माने गये हैं। षडगुज युक्त होने के कारण वही परमब्रह्म भगवान कहा जाता है। सब द्वन्दों से विनिमुक्ति सब उपाधियों से विवर्जित, सब कारणों का कारण षडगुणरूप पर ब्रम्ह निर्गुण और सगुज दोनों हैं। अप्राकृत गुणों में हीन होने के कारण वह निर्गुण है तथा षडगुण युक्त होने के कारण सगुण हैं–छः गुण हैं–ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, बल, वीर तथा तेज। ज्ञान, अजड़, स्वप्रकाश, नित्य और सर्वस्व का अवगाहन करने वाला गुण है। शक्ति जगत का उपादान कारण है। ऐश्वर्य जगत के निर्माण में, श्रम के अभाव को ही बल कहते हैं। जगत का उपादान कारण होने पर भी विकार रहित होने का गुण ही वीर्य है। जगत की सृष्टि में सहकारी की अनावश्यकता ही तेज है।

जगत के कल्याण के लिए भगवान अपने आप ही व्यूह विभव, अच विचार तथा अर्न्यामी चार रूपों की सृष्टि करते हैं। व्यूह चार हैं–वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरूद्ध। षडगुण युक्त भगवान ही समस्त भूतवासी होने के कारण वासुदेव कहलाते हैं। परन्तु शेष तीन व्यूहों में दो–दो गुणों की विद्यमानता होती है। विभव का अर्थ है अवतार, जो मुख्य और गौण दो प्रकार के होते हैं। अर्थावतार भगवान की प्रस्तरीय मूर्तियां हैं। जो अवतार के रूप में पूजा के उपयोग में आती है। सब प्राणियों के हृदयों में निवास करने वाले भगवान अन्तर्यामी कहे जाते हैं।

इसी प्रकार से निर्गुण भक्ति के सन्दर्भ में यह ज्ञातव्य है कि निर्गुण शब्द अपने पारिभाषिक रूप में सत्वादि गुणों से रहित या उनसे परे समझे जाने वाली किसी ऐसी अनिवर्चनीय संज्ञा का बोधक है जिसे बहुधा परमतत्व, परमात्मा, अथवा ब्रह्म जैसी संज्ञाओं द्वारा अभिहित किया जाता है, परन्तु प्रस्तुत सन्दर्भ में सम्प्रदाय शब्द के पूर्व में आ जाने के कारण यह उन व्यक्तियों की ओर भी संकेत कर सकता है कि जो उक्त प्रकार की शक्ति में विश्वास करते हैं और तद्नुसार उन्हीं के समुदाय को निर्गुण सम्प्रदाय भी सूचित कर सकता है। इसी प्रकार जहां सम्प्रदाय शब्द का अर्थ गुरू परम्परागत उपदेश होगा, वहां निर्गुण सम्प्रदाय से अभिप्राय उस पद्धति से हो सकता है, जिसमें उक्त प्रकार की सत्ता में आस्था रखने का उपदेश दिया जाता है अथवा जहां इस सम्बन्ध में विशिष्ट नियम प्रचलित हों। ऐसे लोगों की विचारधारा को 'निर्गुणन्मत' कहा जाता है उसी अभिप्राय को और भी स्पष्ट करने के लिए

कभी–कभी निर्गुण सन्तमन भी कहा दिया जाता है। निर्गुण मत को मानने वाले तथा इस प्रकार निर्गुण सम्प्रदाय में सम्मिलित सदस्यों को कुछ लोगों ने 'निगुनियां' शब्द द्वारा भी अभिहित किया गया है। इस दृष्टि से निर्गुण सम्प्रदाय को ही, दूसरे शब्दों में हम निर्गुनियां का सम्प्रदाय भी कह सकते हैं। निर्गुण सम्प्रदाय शब्द के पर्याय रूप में निर्गुणपन्थ एवं निर्गुण मार्ग शब्दों के प्रयोग भी दिखाई पड़ते हैं और ये दोनों ही उक्त निर्गुणमत का प्रचार करने वाले साम्प्रदायिक मण्डली विशेष रूप के उस संगठन को सूचित करते हैं, जिसका निर्माण वैसे उद्देश्य के अनुसार किया गया हो इसे कभी–कभी सन्त सम्प्रदाय भी कह देते हैं।

इसी सन्दर्भ में यह भी ज्ञातव्य है कि शांडिल्य भक्ति सूत्रों में भक्ति की व्याख्या ''सा परनुरक्तिरीश्वर'' की गयी है। इसके अनुसार ईश्वर में अत्यन्त अनुराक्ति की भक्ति है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि ई के प्रति प्रेम का नाम ही भक्ति है। वह अमृत स्वरूप है जिसको पाकर मनुष्य सिद्ध और तृप्त हो जाता है, उसे किसी भी वसतु के लिए उत्साह नहीं रह जाता तथा भगवान के प्रेम की व्याकुलता की अवस्था में भी महात्म्य की विस्मृतिन हो क्योंकि उसके बिना भक्ति लौकिक प्रेम के समान हो जाती है। भगवान भक्ति का लक्षण सांसारिक विषयों का नाम देने वाली इन्द्रियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति निष्काम रूप से भगवान में जब लगती है, तब उस प्रवृत्ति को भक्ति कहते हैं। बल्लभाचार्य जी ने भक्ति के लक्षण को स्पष्ट करते हुए यह परिलक्षित किया है कि ''भगवान में महाम्य ज्ञान पूर्वक सुदृढ़ और सतत् स्नेह ही भक्ति है।'' भक्ति का इससे अच्छा व सरल उपाय दूसरा नहीं है।

संदर्भ

- हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ0 रामचन्द्र शुक्ल
- श्रीमद्भागवत गीता, अध्याय–2
- 'अष्टछाप बल्लभ सम्प्रदाय', दूसरा भाग, डॉ0 दीन दयाल गुप्त
- हिन्दी साहित्य कोश – डॉ0 धीरेन्द्र शर्मा
- हिन्दी शब्दकोशः सगुणधारा – सगुण सम्प्रदाय – डॉ0 धीरेन्द्र शर्मा
- धर्म और साम्प्रदायिकता – श्री नरेन्द्र मोहन

❑❑

भिण्ड जिले के कवियों के काव्य में राष्ट्रीय चेतना

कृष्णकांत गोयल
शोधार्थी–हिन्दी
महात्मा गांधी ग्रामोदय चित्रकूट विश्वविद्यालय, चित्रकूट, जिला, सतना (म.प्र.)

राष्ट्रीय चेतना का सामान्य अर्थ–सम्पूर्ण राष्ट्र के हित में किए जाने वाले विचार और व्यवहार राष्ट्रीय चेतना के अन्तर्गत आते है जो कि देशवासियों की अपने राष्ट्र के प्रति निष्ठावान भावना से हैं। इसके पर्याय के रूप में हम देश भक्ति, राष्ट्रभक्ति, राष्ट्रीय अस्मिता, राष्ट्रवादी चेतना, राष्ट्रीय एकता, सामाजिक सौहार्द्र, परस्पर सहयोग जैसे शब्दों को राष्ट्रीय चेतना के अर्थ में प्रयुक्त करते हैं। जिसका अर्थ राष्ट्रीय चेतना ही है। और यह सांस्कृतिक एकता के आधार पर एक राष्ट्र के रूप में संगठित है। यही राष्ट्रीयता है। देश रक्षक है, और सामाजिक विकास की सामाजिक संजीवनी है। भारत जैसे विशाल देश के विभिन्न प्रकार के निवासी विभिन्न विचारों, व्यवहारों वाले होकर सांस्कृतिक रूप से भी भिन्नता वाले हैं। परन्तु अपने देश की राष्ट्रीय चेतना में ये सभी भिन्नताएं अभिन्न होकर, राष्ट्रीय चेतना में ऐसे घुल–मिल जाते हैं जैसे छोटे–छोटे नालों, नदियों का पानी दूर से बहते हुए आकर एक उससे बड़ी नदी में समाहित हो जाता है। यही विचार और व्यवहार राष्ट्रीय चेतना बन जाते हैं, जो सामान्यतः अदृश्य रहते किसी समय विशेष पर मानवीय व्यवहार में दृष्टिगोचर होते हैं। हमने जिनको कभी नहीं देखा है, और न समक्ष में देखते हैं, परन्तु किसी अखबार की खबर पढ़ते हैं और टी. वी. पर मैच देखते हैं, तो भारतीय खेल की विजय अपने विचार और व्यवहार में पूरी तरह समाहित स्वतः कर लेते हैं, और भारतीय खिलाड़ियों के उत्साह–वर्धन में प्रसन्न होकर भारतीय ध्वज फहराने लगते हैं। भारत देश की महानता के यशगान लिखना, प्रशंसा करना और देश की सीमा पर आये दुश्मनों को मिट्टी में मिलाने, धूल चटाने, भारतीय सैनिकों की बहादुरी के गीत और कविताएं लिखने और गुनगुनाने, संग्रह–ग्रंथ, पत्र–पत्रिका प्रकाशन करते हैं। उनके जीवन से जुड़ी रचनायें प्रकाशित करते हैं। यही राष्ट्रीय चेतना मुखर होकर सबके सामने प्रस्तुत होती है। जिससे अन्य भारतीयों में भी राष्ट्रीय चेतना का संचार होने लगता है।

देश का गौरव–गान :– भारत देश के गौरव–गान कई कवियों ने लिखे हैं। भिण्ड जिले के कवियों ने अपनी–अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त कर देश के जवानों का वर्णन किया है। हरिबाबू शर्मा 'निराला' देश के इतिहास–पुरूषों को स्मरण करते हुए देश की मर्यादा, अनुशासन और देव स्थानों की धार्मिकता को मानवीय ध ार्मिकता से जोड़ते हुए कहते हैं–

रामकृष्ण की भूमि है यह, भारत जिसका नाम है।
गांधी, सुभाष, और भगतसिंह का, भूमण्डल पर नाम है।
मुझको सारी दुनिया में पहुंचाना यह संदेश है।
मर्यादा में सबसे आगे, मेरा भारत देश है।
हिन्दू मुस्लिम सभी जनों का यहां देव स्थान है।
महिमा इसकी सारे जग में, ऊंची इसकी शान है।[1]

इसी प्रकार से भिण्ड के वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. सुखदेवसिंह सेंगर ने देश की महानता पर कई रचनायें लिखी हैं। एक रचना में भारत की सोने जैसे मिट्टी, पर्यावरणीय सौन्दर्य, सेना की बहादुरी–साहस निरंतर चलते रहने की गौरव–गाथा वर्णित करते हुए लिखते हैं–

जिसकी मिट्टी चन्दन–सोना, सभी ओर हरियाली है।
सुन्दर फूल–फलों से आती, जीवन में खुशहाली है।
देश की सीमा और आंतरिक सुरक्षा में चौकस रहना।
मौसम मार, अभाव, विपत्ति, सीखें साहस से सहना।
पथ में पड़े पहाड़ तोड़कर, सदा शिखर पर चढ़ते हैं।
तूफानों को रोक, सदा पग मंजिल को ही बढ़ते हैं।
मेरा भारत शान तिरंगा, जब तक सांस न झुक पाये।
इनकी गौरव–गाथा जन–गण रहे संगठित सब गाये।[2]

भिण्ड नगर के कवि डॉ. विनोद सक्सेना शान्ति व सद्भाव के व्यंग्यकार हैं। वह अपने देश के गौरव को बताते हैं कि देशवासी विचार और व्यवहार से शांति प्रिय हैं। परन्तु अवसर आने पर अपनी सुरक्षा–स्वाभिमान के लिये बुद्धि के साथ तोप–तलवार भी उठा लेते हैं–

भारत सुन्दर देश है, विचार व व्यवहार से।
काम लेता बुद्धि से, फिर तोप व तलवार से।[3]

देश का गौरवगान करते हुए ख्यात नाम शायर और गीतकार डॉ. काजी तनवीर अपने एक गीत के अंश में इस प्रकार कहते हैं–

ये मेरे देश की माटी है, जो सोना उगले।
भोले मासूम किसानों की ये झोली भर दे।[4]

आलमपुर जिला भिण्ड के वयोवृद्ध कवि डॉ. सीताराम गुप्त 'दिनेश' भारतीय सेनानियों के वीरत्व का गुणगान करते हैं। यही नहीं, जवानों के शौर्य को सूरज के तेज के समान शक्तिमान बताते हुये अपने एक गीत में लिखते हैं–

जय भारत के सिंह सपूत, जय भारत के वीर जवान।
निर्भय, अटल, अजेय, साहसी, अनुपम, शौर्य–दिनमान।[5]

एक भारतीय सैनिक का सीमा पर अदम्य साहस, शौर्य, उत्साह, सक्षम और समर्थ बल
डॉ. शिवेन्द्रसिंह 'शिवेन्द्र' के प्रस्तुत गीतांश में देखिए–

माँ से कहना, लाल तुम्हारा रण में यूं लड़ता है!
जैसे जंगल में शेरों का दल आगे बढ़ता है।[6]

भिण्ड नगर के कवि किशोरीलाल जैन 'बादल' भारत देश की सभ्यता, संस्कृति, अनेकता में एकता जैसे गुणों, मानवीय व्यवहारों की राष्ट्रीय एकता पर अपनी काव्यमय अभिव्यक्ति इस प्रकार करते हैं–

अनेकता में एकता, राष्ट्र की विशेषता है।
संस्कृति की पवित्रता में, भारतीय सभ्यता है।
थान, स्थान सिद्ध, क्षेत्रों में पाये जायें।
सरिता, गिरि, कंद्रायें, वृक्ष भी पूजे जायें।
वेष–भूषा भिन्न–भिन्न, भाषायें अनेक हैं।
जातियों में बंटे हैं, फिर तो भी हम एक हैं।[7]

इसी प्रकार डॉ. सुखदेव सिंह सेंगर अपने एक गीत में सैनिक ध्वज प्रशंसा हैं–

देश भक्ति में देश के लिए निडर काम करते हैं।
बन जाते इतिहास अमर, वे कभी नहीं मरते हैं।
भारतीय ध्वज शान तिरंगा, सदा करे सम्मान है।
इसकी गौरव–गाथा लिखता, भारत देश महान हैं।[8]

राष्ट्रीय चेतना और जन जागृति :– वैसे सामान्यतः राष्ट्रीय चेतना के अन्तर्गत मनुष्य के वे सभी विचार और व्यवहार आते हैं, जो भारत देश, समाज और उससे जुड़ी समस्त शक्तियों, स्त्रोतों, वस्तुओं, संसाधनों, सम्पत्तियों आदि की रक्षा और उसकी समृद्धि विषयक होते हैं। इनका कार्य क्षेत्र कोई निश्चित न होकर घर–परिवार से लेकर सम्पूर्ण देश के लिए होता है। उपरोक्त निष्कर्ष माधव महाविद्यालय ग्वालियर में आयोज्य दो दिवसीय एक अन्तर्राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी (हिन्दी) में विद्वानों द्वारा प्रस्तुत–पठित शोध पत्रों और व्याख्यानों से प्रस्तुत हुए।[9]

परहित सन्दर्भ में मनोज स्वर्ण का एक गीतांश यहां प्रस्तुत है–

हंसते–हंसते परहित जो, मृत्यु को गले लगाता है।
इस धरती का तृण–तृण उसका कर्जदार हो जाता है।
परमारथ की खातिर जीना–मरना जिनका ध्येय रहा।
ऐसे दिव्य पुरूष के सन्मुख, शीश स्वयं झुक जाता है।[10]

ड़ॉ. श्रीमती शशिवाला राजपूत का गीतांश भी निरंतर सक्रियता की प्रेरणा देता है–

अपनी गरिमा से गिरना नहीं चाहिए।
कर्म कोई घिनौना करना नहीं चाहिए।
आये तूफां, भले या चलें आंधियां।
कर्म का दीप बुझना नहीं चाहिए।[11]

सैनिकों और शहीदों की साहसी सराहनाः– देश पर शहीद हुए सेनानी और सैनिकों के साहसी शौर्य और वीरता की काव्य रचनायें भी भिण्ड जिले के कवियों ने सृजित की हैं। ये रचनाएं जहां प्रेरक हैं, वहीं कर्तव्य निष्ठा भी जागृत करने वाली हैं। एंसा ही एक प्रेरक गीत डॉ. रामसहाय बरैया लिखते हैं–

आज शहीदों के सपनों को, हम साकार बनायेंगे।
साथ–साथ हम कदम मिलाकर, ऊंच–नीच का भेद भुलाकर
मातृभूमि की हर कीमत पर रक्षा करते जायेंगे।[12]

मेहगांव के कवि डॉ. रणवीरसिंह सेंगर व्याख्याता सीमा–प्रहरी की सराहना यूं करते हैं–

हम समय के सजग प्रहरी दम लगाते, काम का आह्वान देते हैं।
जागते सीमा पर प्रहरी, कर्तव्य निष्ठा में स्वयं बलिदान देते हैं।[13]

कवि कु. वीरेन्द्र सिंह विद्रोही शहीदों को किसी का बेटा–भाई नहीं मानते, वल्कि राष्ट्रपुत्र और मां भारती का लाल अपने काव्यांश में यूं बताते हैं–

वीर शहीद किसी के बेटे–भाई नहीं होते हैं।
शहीद राष्ट्रपुत्र, माँ भारती के लाल होते हैं।[14]

भिण्ड के हबलदार सुल्तान सिंह नरवरिया कमाण्डो कारगिल विजय में तोलोलिंग चोटी पर तिरंगा फहराने और शहीद होने पर डॉ. दुर्गाप्रसाद शर्मा पचौरी (विरखड़ी) लिखते हैं–

सुपर कमाण्डो! शौर्य मूर्ति! बल साहस का प्रतिरूपा।
कारगिल विजय ऑपरेशन का सार्थक घटक अनूपा।

युवकों में उत्साह, वीरता, साहस, अभय बढ़ाये।
मातृ भूमि हित लड़ने–मरने के जय भाव जगाये।
वीरचक्र से सम्मानित, हे तन–मन–सर्वस दानी।
अनुकरणीय, अमर होगी, तेरी गाथा वलिदानी।[15]

डॉ. शिवेन्द्र सिंह 'शिवेन्द्र' भारत की मिट्टी को कई अर्थों में उर्वरा करने के पक्षधर हैं और वह दुश्मन को खदेड़ने–मारने के लिये ऊंचे पर्वत की चोटी पर चढ़ने सजग भारतीयों को मजबूत पैर और साहसी पंख प्राप्ति की प्रेरणा देते हुए कहते हैं–

दुश्मन को मार भगाने में सर्वस्व निछावर कर दूंगा।
करगिल की सूनी गोदी को निज शीष चढ़ाकर भर दूंगा।
'सुल्तान' धरा की मिट्टी को, उर्वरा रक्त से कर देगा।
तोलोलिंग चोटी पर चढ़ने, सबको पग देगा, पर देगा।[16]

स्वतंत्रता की प्राप्ति का समर :–स्वतंत्रता हमें यूं ही नहीं मिल गई। इसकी प्राप्ति के लिए देश के स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों ने जो त्याग किए और बलिदान दिये, वे हमारे इतिहास में अमर हैं। इस आजादी की प्राप्ति के संघर्ष में जहां नेताओं, पत्रकारों, साहित्यकारों, समाज सेवियों, बुद्धिजीवियों आदि ने जो सामाजिक संगठन–शक्ति की चेतना जगाई, वहीं भारतीय कवियों ने भी गीत और कविताओं का सृजन कर जन मानस में राष्ट्रीय चेतना के साथ साहस, संयम, धैर्य, विवेक, बलिदान जैसे भाव भरे, उन्ही के परिणाम स्वरूप हमारा भारत स्वतंत्र हो सका। भिण्ड जिले के कवियों ने भी अपनी लेखनी चलाई। जिससे राष्ट्रीय चेतना विस्तृत और बलवती होती है। कवि किशोरी लाल जैन 'बादल' अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद के त्याग और बलिदान को स्मरण कर लिखते हैं–

कफन को बांध कर निकले, जुनूनी था सफर यारो।
वतन के उन शहीदों को, झुका है अपना सर यारो।
लगाकर जान की बाजी, वतन की आबरू रख ली।
जिये आजाद होकर के, हुये मर कर अमर यारो।[17]

स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए किये गये प्रयासों और बलिदानों की गाथा से युक्त रचना में डॉ. निरूपमा दीक्षित ने अपनी सशक्त अभिव्यक्ति दी है। उनकी कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं–

जे न सुख से रहे, आगे बढ़ते गये, खेलते ही रहे रक्त की होलियां।
याद कर लो जरा देश के वासियों, उन शहीदों के सीने में लगी गोलियां।
देख पाने का स्वाधीनता की घड़ी, पग समर के सफर में बढ़ाते रहे।
जोश में जो उछलते रहे क्रांति कर, शीष चरणों में माँ के चढ़ाते रहे।[18]

भिण्ड नगर के कवि डॉ. रामसिया शर्मा स्वतंत्रता संग्राम का एक चित्र अपनी कविता में यूं प्रस्तुत करते हैं–

आज पुकारा है हिम गिरि ने, माँ ने मांगा फर्ज है।
और शहीदों के लहू ने, तुमसे मांगा कर्ज है।
बांह फड़कती है प्रताप की, शिवा बदलता है तेवर।
गुरू गोविन्द सिंह के कर का आज मचलता है खंजर।[19]

चर्चित कवियित्री श्रीमती शकुन्तला 'सुरभि' देश के सैनिकों को सब कुछ लुटाने वाला मानती हैं और कहती हैं कि हम वतन के लिए ही जियें और मरें भी। हम ऐसे शहीदों को नमन करते हैं–

वो तो आकर चले भी गये, जान देकर वतन के लिये।
हाथ जोड़े खड़े रह गये, हम तो उनके नमन के लिये।[20]

रघुपति सिंह 'सिंदौस' शहीद सैनिक सुल्तान सिंह के बारे में कवियू लिखते हैं–

तोलोलिंग चोटी के ऊपर, फहरा ध्वज केसरिया।
हंसते–गाते, गोली खाते, अरि को धूल चटाते।
मर कर भी अमर हो गये सुल्तान सिंह नरवरिया।[21]

राष्ट्रीय एकता पर उपरोक्त कवियों के साथ भिण्ड जिले के डॉ. शिवशंकर कटारे, डॉ. नादा कमलेश, डॉ. नीरस, डॉ. रसूल अहमद सागर, हरनारायण हिण्डोलिया, राधारमण बाजपेयी 'निर्मल', देवेन्द्र सिंह 'दाऊ', हरिहर सिंह 'मानसभृंग', डॉ. बी.एस. पाल, डॉ. बाबूराम माहौर 'प्रयासी', बाबूराम राही, फूलसिंह परमार 'गगन', प्रेम मौर्य 'प्यासा', पवन जैन, सुरेश जैन, कु. प्राची हितैरिया, सुमन चौहान, श्रीमती बबिता सागर, आशुतोष शर्मा 'आशु', डॉ. हेमलता गोयल, धर्मेन्द्र माहेश्वरी आदि कवियों के काव्य में राष्ट्रीय चेतना निहित है। जिस पर प्रथक से शोध की संभावनायें हैं।

संदर्भ

1. अपना देश (काव्य संग्रह) : डॉ. हरिबाबू शर्मा 'निराला', पृष्ठ–10
2. शहीदों की शौर्यगाथा (जिला भिण्ड), पृष्ठ–44
3. शहीद गाथा (काव्य संग्रह) : रामशंकर शर्मा, पृष्ठ–35
4. दीपों का दर्द (काव्य संग्रह) सं. डॉ. परशुराम सिंह, पृष्ठ–155
5. जियो और जीने दो (काव्य संग्रह) : डॉ. सीताराम गुप्त 'दिनेश' पृष्ठ–19
6. समवेत सुमन (ग्रंथ माला–6) सं. देवेन्द्र सिंह दाऊ, पृष्ठ–41
7. शब्द–शब्द सागर (काव्य संग्रह) सं. डॉ. रमेश कटारिया पारस, ग्वालियर पृष्ठ–96
8. डॉ. सुखदेवसिंह सेंगर का प्रकाशनाधीन काव्य संकलन– पानी हुआ पहाड़, पृष्ठ–19
9. माधव महाविद्यालय ग्वालियर में आयोज्य अन्तर्राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी (हिन्दी) में शोधार्थी ने सहभागिता की और शोध–पत्रों–व्याख्यानों के निष्कर्षों को नोट किया।
10. समक्ष में प्राप्त।
11. वही
12. जीवन बाग सजाओ (काव्य संग्रह) पृष्ठ–09
13. समक्ष में प्राप्त।
14. पत्रिका, ग्वालियर 26 जनवरी 2011, पृष्ठ–14
15. अमर शहीद सुल्तान सिंह नरवरिया (स्मृति ग्रंथ) : प्रधान संपादक डॉ. सुखदेवसिंह सेंगर, पृष्ठ–139, 187
16. वही
17. बादल की बरसात (प्रकाशनाधीन काव्य संग्रह) पृष्ठ–40
18. सृजन पत्रिका भिण्ड : संपादक डॉ. बी.एस. पाल, नवम्बर–2006, पृष्ठ–10
19. प्रकाशनाधीन (काव्य संग्रह) डॉ. रामसिया शर्मा
20. अमर शहीद सुल्तान सिंह नरवरिया (स्मृति ग्रंथ) : प्रधान संपाकद डॉ. सुखदेवसिंह सेंगर, पृष्ठ–142, 153
21. वही

❖❖

24

भारतीय चिन्तन परम्परा : स्मृति ग्रन्थों एवं नीति ग्रन्थों में महिला सशक्तिकरण की अवधारणा

डॉ0 यशमाया राजोरा
राजनीति विज्ञान विभाग
एफ.सी.आई गोदाम के सामने, शिव कॉलोनी दौसा (राजस्थान) पिन कोड़ – 303 303

महिला सशक्तिकरण एक सक्रिय एवं बहुआयामी प्रक्रिया है जो महिलाओं को सशक्त व जागरूक और प्रेरित करती है। यह सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि पहलुओं से संबंधित है। महिला सशक्तिकरण घर–परिवार से प्रारम्भ होता है क्योंकि उसे घर परिवार मे ंउचित स्थान मिलने लगता है।

महिला सशक्तिकरण महिलाओं को इस बात के लिए प्रेरित करता हैं कि महिलायें स्वंय यह सुनिश्चित करे कि वह किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से कम नहीं है वह सामाजिक,राजनैतिक, आर्थिक आदि सभी क्षैत्रों से संबंधित कार्य करने में सक्षम हैं।

सशक्तिकरण का तात्पर्य सिर्फ शक्ति का अधिग्रहण ही नहीं अपितु अपनी शक्ति प्रयोग की क्षमता का विकास करना है।

अर्थात महिला के निर्णय लेने की उस क्षमता से है जिसके कारण वह अपनी एक नई पहचान बना सके। महिला की सबलता और सुयोग्यता ही महिला सशक्तिकरण की पहचान है।

महिला सशक्तिकरण की आवश्यकता इसलिए हुई क्योंकि महिलायें जागरूक होते हुये भी अनेक प्रकार की समस्याओं से जूझ रही है जो उनके विकास में बाधक है और उनके सम्पूर्ण विकास की गति को क्षीण कर रही है जिस कारण महिलायें सक्षम होते हुए भी अपने अन्दर की प्रतिभा और अपनी कला का सही स्तर पर उपयोग नहीं कर पा रही है। महिलाओं को उनकी समस्याओं से छुटकारा दिलवाने के लिए आज आवश्यकता महिलाओं को सबल और सक्षम बनाया जायें और इसके लिए महिलाओं को व्यवसायिक व तकनीकी ज्ञान की विषयों से जोड़ने की परम आवश्यकता हैं। जब तक महिलाओं को व्यवसायिक व तकनीकी ज्ञान से अवगत नहीं होगी तब तक वो अज्ञानता की परिधि में घिरी रहेगी। महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए उनके ज्ञानपुंज को प्रज्जवलित करने की आवश्यकता हैं।

आज महिलायें कई प्रकार की प्रताडनाओं का शिकार हो रही है जैसे– लिंग असमानता, घरेलू हिंसा, मानसिक हिंसा, शारीरिक हिंसा, यौन उत्पीडन, बलात्कार, इत्यादि गम्भीर समस्याओं से महिलाओं का शोषण जैसी समस्याओं से जूझ रही हैं। आज हर क्षेत्र में महिलाओं का शोषण किया जा रहा है। अतः वर्तमान परिवेश में महिलाओ की उक्त सभी समस्याओ को दूर कर सबल और सशक्त बनाना जरूरी है। वर्तमान परिवेश में महिलाओं को लिंग असमानता, घरेलू हिंसा, मानसिक हिंसा, शारीरिक हिंसा, यौन उत्पीडन, बलात्कार जैसी समस्याओं से निजात दिलाने के लिए समाज के हर वर्ग को आगे बढकर सहयोग करने की आवश्यकता है। वर्तमान परिवेश में महिलाओ की उक्त सभी समस्याओ को दूर कर इन्हे सबल और सशक्त बनाना जरूरी है। इन समस्याओं को दूर करने और महिला सशक्तिकरण की आवाज को आगे बढाने के लिए जरूरी है कि पुरूष वर्ग भी आगे बढकर अपना समर्थन व सहयोग प्रदान करे।

भारतीय चिन्तन परम्पराओं में विशेषताएँ – भारतीय चिन्तन परम्पराओं में स्मृति ग्रन्थों व नीति ग्रन्थों में राजनीतिक. धार्मिक. और संस्कृति का वर्णन किया गया है जिसमें महिलाओं के संबंध में यह अभिव्यक्त किया गया है कि राजा और रानी दोनो मिलकर जनता की समस्याओं का समाधान किया करते थें। सार्वभौमिक व शाश्वत मूल्यों द्वारा धर्म को शाश्वत व नैतिक महत्व प्रदान किया गया हैं। स्मृतियों में महिलाओं के समस्त पक्षों के संबंध में आर्दशपरक, सैद्धान्तिक, दार्शनिक, प्रस्थापनायें प्रदान की गई हैं। ये स्मृतियाँ मानव के लौकिक, परलौकिक,कल्याण को सुनिश्चत करने में मन्तव्य से प्रेरित हैं। इस दृष्टिकोण से स्मृतिया जीवन के आर्थिक सामाजिक राजनैतिक पक्षों का खण्ड दृष्टि से विचार नहीं करती अपितु सभी को एक ही सम्रग्रीकृत व्यवस्था का अंश मानती हैं। साथ ही राज्य का यह दायित्व माना गया हैं कि वह महिलाओं के लौकिक आचरण को इस प्रकार नियंत्रण एवं नियमन करे कि उसके व्यक्तिगत एवं सामाजिक दोनों स्तरों पर मर्यादित अनुशासित एवं उद्देश्यपूर्ण 'परिधि' निर्धारित हो सके। महिलाओं के लौकिक आचरण का यह नियमन उसके मोक्ष प्राप्ति के आध्यात्मिक लक्ष्य की पूर्ति में सहायक होता हैं। नीतिशास्त्र एक प्रकार का आचारशास्त्र या राजशास्त्र में कोई एक शास्त्र नहीं अपितु समाज का सम्पूर्ण शास्त्र हैं, जिसने अपने ज्ञान का प्रदर्शन किया है जिसका एक मात्र ध्येय समाज कल्याण करना हैं। जिसे रक्षा, न्याय और शक्ति द्वारा प्राप्त किया जा सकता हैं। जीवन के गूढ़ रहस्यों कर्मो के औचित्य–अनौचित्य का निर्धारण करने वाली सभी विघाओं राजनीतिशास्त्र, जीवनशास्त्र, मनोविज्ञान, ईश्वर ज्ञान, तत्वदर्शन आदि के अध्ययन द्वारा महिलाओं को यह अवगत कराना हैं कि महिलायें इस समाज का एक अभिन्न अंग है, महिला की अनुपस्थिति में समाज का कोई औचित्य नहीं हैं। कर्त्तव्य, अधिकार, बाध्यता, दायित्व, गुण आदि सभी शब्द नीतिशास्त्र के अंग हैं, इस प्रकार मानव जीवन का सम्पूर्ण कियात्मक पक्ष नीतिशास्त्र का क्षेत्र तथा विषय नीति का संचालक महिलाओं को ही माना गया हैं।

स्मृति ग्रन्थों में महिलाओं के प्रति विरोधाभास दृष्टिकोण देखने को मिलता है। उदाहरणस्वरूप मनुस्मृति में जहाँ एक ओर सुख समृद्धि एवं विकास हेतु महिलाओं का सम्मान करने पर बल दिया गया हैं और जब भी समाज को उनके सहयोग की आवश्यकता महसूस हुई तो समाज में अपनी आवश्यकता के अनुसार महिलाओं को अपना सहयोग व समर्थन दिया किन्तु उन्हे स्वनिर्णय लेने हेतु कभी स्वतंत्र नही किया। मनुस्मुति में स्त्रीधन एवं पुर्नविवाह के अधिकार भी प्रदान किये गये हैं जो कि तत्कालीन परिस्थिति को देखतें हुएं एक क्रांतिकारी कदम प्रतीत होता हैं।

याज्ञवल्लक्य स्मृति में महिलाओं की रक्षा के नाम पर उसे पुरूष के संरक्षण में रखने पर बल दिया गया हैं। किन्तु महिलाओं को उनके अधिकारों से वचिंत नही किया गया हैं बल्कि उन्हे हमेशा उनसे जोड़कर रखा गया हैं ताकि स्त्री व पुरूष दोनो मिलकर सामाजिक व राजनितिक उत्तरदायित्वो की पूर्ति निष्ठापूर्वक कर सके। विवाह के संदर्भ में शुक्रनीति में स्त्री व पुरूष दोनो के लिये अपेक्षित योग्यता का वर्णन किया गया है। इस प्रकार इस ग्रन्थ में विवाह के प्रति किसी भी प्रकार का भेदभाव नही किया गया हैं। शुक्रनीति में सम्पत्ति के उत्तराधिकार के संदर्भ में महिलाओ को वचिंत किया गया है लेकिन सामाजिक गतिविधि एवं विवाह के संदर्भ में समानता का अधिकार प्रदान किया गया हैं। भारतीय चिन्तन परम्पराओ में भी महिलाओं की अपनी विशेषता रही हैं। वे राजमहल व गृहस्थ में रहकर भी शिक्षा ग्रहण करती थी। वह सामाजिक कार्यो में राजा के साथ रहकर धर्म–कर्म में भाग लेती थी। महिलाओं को राजनितिक निर्णय लेने व वरण करने का अधिकार था। स्त्रीधन आदि सभी तथ्य स्पष्ट रूप से परम्परा में देखने को मिलते हैं। स्त्रीधन आदि सभी तथ्य स्पष्ट रूप से परम्परा में देखते को मिलते हैं। वैदिक काल में महिलाओं का जीवन प्रत्येक क्षेत्र में समान रूप में आदर प्रतिष्ठित था। वह स्वतंत्रतापूर्वक शिक्षा ग्रहण करती थी। स्वच्छन्दता पूर्वक विचरण करती थी तथा पति के प्रत्येक कार्यो में सहभागी होती थी। वस्तुतः स्त्री व पुरूष दोनों ही यज्ञ रूपी रथ के दो बैल थे। यज्ञ में उसकी उपस्थिति की अनिवार्यता उसकी पत्नी संज्ञा को चरितार्थ

करती हैं।

भारतीय चिन्तन परम्परा में महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण की सामान्यतया – प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन परम्परा में महिलाओं के सन्दर्भ में कई स्थानों पर विभ्रम की स्थिति देखने को मिलती हैं जहाँ एक तरफ महिला को त्याग एवं तपस्विनी के रूप में स्वीकार किया गया हैं वही दूसरी ओर उनका घोर अपमान भी देखने को मिलता हैं। यदि हम भारतीय चिन्तन की प्रमुख कृति का अवलोकन करे तो पाते है कि महिलाओ की स्थिति में समय समय पर युग के अनुरूप पतिवर्तन होता रहा हैं।

वैदिक काल से लेकर पूर्व मध्य युग तक अनेक उतार चढ़ाव देखने को मिले। महिलाओं के अधिकारों में भी परिवर्तन पाया गया हैं। समाज में राजनीतिक अस्थिरता एवं सामाजिक सकीर्णता को बढ़ावा मिला। इतना ही नहीं महिलाओं पर मानसिक एवं सामाजिक दोष भी गढ़ दिये गये पर इन सबके बावजूद महिलाओं के कार्य को नकारा नहीं जा सकता।

महिलाओं के प्रति कई जगह विरोधाभाषी दृष्टिकोण देखने को मिलता है। मनुस्मृति में जहाँ एक और सुख–समृद्धि एवं विकास हेतु महिलाओं का घर में सम्मान करने पर बल दिया गया हैं। महिलाओं को रक्षा के नाम पर उसे पुरूष के संरक्षण में रहने पर बल दिया गया हैं। स्त्रीधन पर महिलाओं को अधिकार प्रदान किया गया हैं। शुक्रनीति में तो स्त्री एवं पुरूष दोनो के लिए अपेक्षित योग्यता का वर्णन किया गया हैं। विवाह के सन्दर्भ में किसी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं किया गया हैं।

विवाह की स्वतंत्रता, पुनर्विवाह का अधिकार विशेष परिस्थितियों में प्रदान कर महिलाओं की स्थिति को मजबूती प्रदान की गई हैं। अतः इस सन्दर्भ में भारतीय चिन्तन परम्परा में महिला की सभी तरह की स्थिति को दर्शाया गया हैं।

वर्तमान व्यवस्था में महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण – स्त्री व पुरूष समाज के दो अविभाज्य अंग हैं। वर्तमान युग में नारी का हर दृष्टि से विकास हुआ हैं। शिक्षित व जागरूक महिलाओं ने संगठन बनाकर सामाजिक बुराईयों के विरूद्ध आवाज उठाई फलस्वरूप बाल–विकास, मृत्यु भोज, बेमेल विवाह, विवाह दहेज प्रथा आदि सामाजिक बुराईयाँ दूर हुई हैं। सती प्रथा, जाति प्रथा छूआछूत आदि कुरूतियाँ भी दूर हुई हैं। इसमें समाज सुधारक आन्दोलन का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा हैं। किसी भी देश के निर्माण में नारी की विशेष भूमिका रही हैं। किसी विचारक ने ठीक कहा है कि संसार में जितने भी महत्वपूर्ण कार्य हुये हैं उन सब में नारी जाति का अपार सहयोग छिपा हैं।

महिलाओं की आत्मनिर्भरता भी अत्यावश्यक हैं। महिलायें शिक्षित हो तो वह शासकीय अथवा अशासकीय किसी भी संस्था के सम्मानजनक पद पर नियुक्ति पाकर परिवार को एक सकारात्मक वातावरण प्रदान कर सकती हैं। नारी पुरूष से किसी भी परिस्थिति में कम नही है चाहे वह एक माँ हो, बहन हो, बेटी हो, या पत्नी हों जीवन के हर क्षेत्र में वह डॉक्टर, वकील, इंजीनियर, अध्यापक, पायलट, वैज्ञानिक राजनितिक, संगीतज्ञ, साहित्कार, नृतयागंना, कलाविद बनकर अपनी सेवा से देश को समर्पित कर रही हैं।

सशक्तिकरण एक सक्रिय बहुआयामी प्रक्रिया हैं जो महिला वर्ग को शक्तिमान तथा अपनी पहचान बनाने के प्रति सचेत करती हैं। स्त्री के व्यक्तित्व का विकास और उसकी पूरी पहचान समाज व देश के विकास के लिये अत्यावश्यक हैं। सरकारी एवं गैर सरकारी स्तर पर स्वैच्छिक प्रयास जारी हैं और मीडिया स्त्री से जुडे अहम मुद्दों और समानता का दर्जा दिलाने के प्रयास में लगे हैं। हमारा मानना हैं कि स्वस्थ व आत्मनिर्भर समाज के लिए आज यह जरूरी हो गया हैं कि स्त्री को व्यवहारिक रूप में समाजनिर्माण के लिए महत्वपूर्ण वर्ग मानकर अवसर प्रदान किये जाये। उनके अपूर्व योगदान को देखकर स्वयं समाज ने स्वीकार किया कि बिना महिलाओं के योगदान के भारत में आजादी भी संभव नहीं थी। पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं के लिए हुए सघर्ष में सक्रिय भागीदारी निभानी

पड़ी एवं उन्हें एक ओर अपने परिवार तथा दूसरी ओर आजादी के आन्दोलन के रूप में दो ऐसे उत्तरदायित्व एक साथ निभाने पडते थे, जहाँ अटूट धैर्य, साहस, पराक्रम, त्याग एवं समर्पण की आवश्यकता हैं।

महिला शिक्षा, स्वास्थ्य और सशक्तिकरण से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण से यह तथ्य उभर कर सामने आता हैं कि शिक्षा और स्वास्थ्य महिला सशक्तिकरण के आवश्यक पहलू हैं। शिक्षा और स्वास्थ्य वह साध ान हैं जो महिलाओं के व्यक्तित्व में विकास ला सकता हैं, शासन तन्त्र में उनकी भागीदारी सुनिश्चित कर सकता हैं, समाज की मानसिकता और दृष्टिकोण को बदल सकता हैं और उनमें आर्थिक स्वावलम्बन एवं आत्मविश्वास को उत्पन्न कर सकता है।

नारी अब अबला नही सबला है आज अधिकाशतः नारी अपने पैरों पर खड़ी है उसमें से कुछ के पास सरकारी नौकरी हैं, कुछ के पास अपने व्यवसायिक प्रतिष्ठान हैं, कुछ सामाजिक संस्थाओं से जुड़ी हैं, तो कुछ विविध सांस्कृतिक गतिविधियों में सलग्न हैं। जैसे फैशन डिजाइनिंग, गृह सज्जा, पाक कला विशेषज्ञ आदि के रूप में अपने उज्जवल भविष्य का निर्माण कर आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए मार्ग प्रशस्त बना रही हैं।

सन्दर्भ

1 आचार्य राम मूर्ति – आयुर्वेद, चौखम्बा विद्या भवन वाराणासी 1958
2 मित्तल महेन्द्र – शुक्रनीति, मनोज पब्लिकेशन दिल्ली 1998
3 मिश्रा नारायण – याज्ञवल्क स्मृति, चौखम्बा संस्कृत प्रकाशन, अष्टम् संस्करण
4 सिंघल डॉ लता – भारतीय संस्कृति में नारी, परिमल पब्लिकेशन दिल्ली
5 मिश्र रोहित – समाज कार्य एवं महिला सशक्तिकरण, न्यू रॉयल बुक कम्पनी, लखनऊ, 2011
6 शर्मा रामा एवं ए.के.मिश्रा – महिला शक्तिकरण, अर्जून पब्लिषन हाउस, नई दिल्ली 2012
7 विपिन कुमार – वैश्विकरण एवं महिला शक्तिकरण, रिगल पब्लिकशन, नई दिल्ली 2009
8 कमलेष अग्रवाल – कौटिल्य अर्थशास्त्र एवं शुक्रनीति में राज्य व्यवस्थाएँ, राधा पब्लिकशनस्, नई दिल्ली 2009
9 शास्त्री हरगोविन्द – मनुस्मृति, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणासी 1998
10 गेरोला आचार्य – वाचस्पति कौटिल्य का अर्थशास्त्र, चौखम्बा प्रकाशन, लक्ष्मणदास दिल्ली

❑❑

25

हाशिये को तोड़ते हुए स्त्रियाँ

(विश्व में नारी–मुक्ति आंदोलन के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ0 जय सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर – संसकृत विभाग
राजकीय महिला महाविद्यालय, अम्बारी, जिला आजमगढ़ (उ.प्र.)

विश्व में नारी–मुक्ति आंदोलन के सन्दर्भ में प्रसिद्ध पत्रकार राजकिशोर का मानना है कि फ्रांस की राज्यक्रान्ति के जनक रूसो ने स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व का जो नारा दिया, वह वस्तुतः पुरुष समाज के लिए ही था, नवयुग के उस महास्वप्न में स्त्री कहीं नहीं थीं।[1] लेकिन इस भावना से नारी के स्वतंत्र अस्तित्व को बल मिला और नारी स्वतंत्रतता का आंदोलन चल पड़ा।[2]

परम्परा के बदलते प्रतिमानों की यदि बात की जाए तो सर्वप्रथम अमेरिका में नारी मुक्ति आंदोलन की असली शुरूआत उन्नीसवीं सदी में हुई, वैसे नीरा देसाई अमेरिका में नारी की स्वतंत्रता की शुरूआत सन् 1778 ई0 से मानती हैं।[3] अर्थात् लम्बे अरसे से विभिन्न देशों में नारी–मुक्ति आंदोलन भिन्न–भिन्न रूपों में एवं भिन्न–भिन्न पैमाने पर चलता रहा। सर्वप्रथम यहाँ अमेरिका की चर्चा करना इसलिए समीचीन है क्योंकि नागरिक अधिकार की वकालत करने वाले उदारवादी जनतंत्र की तरह उदारवादी नारीवाद की भी शुरूआत संयुक्त राज्य अमेरिका में पहले–पहल हुई। जहाँ 'राष्ट्रीय महिला संगठन' (नेशनल आर्गेनाइजेशन ऑफ वीमेन) ने सक्रिय भूमिका निभाई। मगर पिछले कुछ दशकों की प्रगति पर नजर डाली जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि अमेरिका में नारीवादी आंदोलन की परिणति दो विपरीत रूपों में हुई है। पहला रूप उपलब्धियों का है जिनमें विभिन्न व्यवसायों एवं प्रशासन/प्रबन्धन में महिलाओं की तीव्रगति से वृद्धि, राजनीति में बढ़ती भागीदारी, बदलते रूख एवं सांस्कृतिक मूल्य, शिक्षा एवं रोजगार में भेदभावपूर्ण कार्यकलापों के विरुद्ध नए कानून, उच्च शिक्षण संस्थानों में नारियों के हस्तक्षेप से हुए परिवर्तन तथा कानून, उच्च शिक्षण संस्थानों में नारियों के हस्तक्षेप से हुए परिवर्तन तथा अन्य हितों की रक्षा आदि को गिनाया जा सकता है। मगर दूसरा रूप विफलताओं का है जिनमें महिलाओं के प्रति बढ़ती हिंसा, व्यावसायिक लिंगवत विलगाव, पूर्व से मिले गर्भपात (एबोर्शन) के अधिकार पर हमले आदि शामिल हैं। दोनों रूप विरोधाभासी भले हों, किंतु यह सच हैं। कुछ लोगों का मानना है कि अमेरिका में जब सन् 1920 ई0 में महिलाओं को वोट देने का अधिकार पहली बार प्राप्त हुआ,[4] यानी महिलाएँ भी नागरिक बनीं तो वह नारीवाद की पहली लहर थी और उसके बाद वह चार दशकों तक हाशिए पर रहा। नारीवाद की दूसरी लहर साठ के दशक में शुरू हुई, जब भेदभावपूर्ण कानूनों और समाज में महिलाओं को दोयम दर्जा देने वाली परम्पराओं की घोर भर्त्सना की गई। महिलाओं की यह एक महत्वपूर्ण जीत रही है। इसके अलावा सन् 1920 ई0 के दशक से भिन्न आज के दौर में महिला संगठनों का संस्थायीकरण हुआ है। यद्यपि यह सच है कि अमेरिका में आज एक आमूल परिवर्तनवादी सरजमीनी आंदोलन नहीं है, फिर भी जोहन्ना ब्रेनर की दृष्टि में वहाँ अभी भी व्यक्तिगत अधिकारों के उल्लंघन अथवा भेदभाव जैसे मुद्दों पर महिलाओं को गोलबन्द किया जा सकता है।[5]

अन्य देशों की अपेक्षा आज अमेरिका में स्त्रियों के लिए विभिन्न प्रकार के अवसर तेजी से बढ़ रहे हैं, इसमें शायद ही कोई शक किसी को होना चाहिए। यद्यपि यह भी सच है कि कुछ सीमाएँ एवं बाधाएँ उनके व्यक्तिगत विकल्पों को निर्धारित करती हैं, विशेषकर परिवार में पालन–पोषण करने की जिम्मेदारी। ब्रेनर इसे स्पष्ट करते हुए

कहतीं हैं कि 'पूंजीवादी व्यवस्था में घर–परिवार निजता, घनिष्ठता और यौन–सुख के क्षेत्र ही नहीं होते, बल्कि वे जीने की आधारभूत इकाई भी होते हैं। पूँजीवादी समाजों में उस हद तक भिन्नता होती है जिस हद तक राज्य घर–परिवारों को अनुदान देता है अथवा घर की जिम्मेदारी के पूरक के रूप में सेवाएँ मुहैया कराता है। अमेरिका में जहाँ कल्याणकारी राज्य का ज्यादा अविकसित रूप है, घर–परिवारों को बाजार में निपटने के लिए अधिकांशतः छोड़ दिया जाता है। महिलाएं अपेक्षाकृत कम मजदूरी लिंग भेदी श्रम–विभाजन पर आधारित एक पारिवारिक रणनीति बनवाती हैं जिसमें पुरुष घर में मदद करते हुए आय अर्जित करने में विशेषज्ञता हासिल करते हैं और महिलाएँ तनख्वाह के लिए काम करते हुए भी देख–भाल करने में विशेषज्ञता हासिल करतीं हैं। इसे आंकड़ों की भाषा में इस तरह समझा जा सकता है। कि सन् 1960 ई0 में अमेरिका में मात्र सत्रह प्रतिशत महिलाएँ नियोजित थीं जिनके पास छह वर्ष से कम उम्र के बच्चे थे और अठारह प्रतिशत महिलाएँ अंशकालिक रूप से नियोजित थीं तथा सैंतालीस प्रतिशत महिलाएँ ही मजदूरी के लिए काम नहीं करती थीं।[6] इस प्रकार स्पष्ट है कि छोटे नन्हें–मुन्नों की माताएँ काफी बड़ी संख्या में काम करतीं हैं। इस दोहरी जिम्मेदारी के कारण वे अपने स्वरूप के विकास का अवसर नहीं पातीं।[7]

चिंतक ब्रेनर के अनुसार श्रमिक संघ व्यावसायिक संघ कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में महिला–अध्ययन कार्यक्रम समाज–सेवा संगठन, महिलाओं की किताबों की दुकानें, बार, कॉफी हाउस आदि सूचनाओं के आदान–प्रदान करने तथा संगठित करने की जमीनी संरचनाएी प्रदान करते हैं – नारीवाद सही अर्थों में जमीनी स्थानीय स्वैच्छिक राजनैतिक सक्रियता के रूप में नहीं रहा है, लेकिन महिलाओं के लिए वकालत करने के लिए संगठित महिलाएी एक हद तक राजनैतिक परिदृश्य का हिस्सा हैं जो हमारे इतिहास में पहले कभी नहीं था।[8]

अमेरिका में महिला आंदोलन का एक परिणाम यह भी हुआ है कि विश्वविद्यालयों और कालेंजो में 'महिला अध्ययन' नामक एक नया ज्ञानानुशासन शुरू किया गया है। सन् 1990 ई0 में 621 विश्वविद्यालयों एवं कॉलेजों ने यह कार्यक्रम शुरू किया था। इस ज्ञानानुशासन के विद्यार्थी नारीवादी विचारों/प्रकाशनों का प्रचार–प्रसार करते हैं। महिला शोधकर्ता एवं परामर्शी महिलाओं से संबंधित सरकारी/गैर–सरकारी योजनाओं में अपना योगदान देती हैं, मगर इसका एक नकारात्मक नतीजा यह हुआ है कि अकादमीय नारीवाद के संस्थायीकरण के कारण इसकी धार कमजोर हुई है क्योंकि इसके शोध और प्रकाशन अकादमीय मापदंडों द्वारा अनुकूलित कर दिए जाते हैं।[9]

नारी–आंदोलन की कई धाराएँ संयुक्त राज्य अमेरिका में पायी जाती हैं जिनकी प्राथमिकताएँ बिल्कुल अलग–अलग हैं। किंतु उन सभी को अमेरिकी पूँजीवादी व्यवस्था के दुष्परिणामों यथा बच्चों, वृद्धों और बीमारों की असुरक्षा, बेरोजगारी, पड़ोसिनों का बिखराव, अतिशय प्रतिस्पर्धा, लोक संस्थाओं की बदहाली, एकल परिवारों का एकाकीपन, 'डिब्बा–बन्द' बच्चों की देखभाल, यौन–उत्पीड़न, 'नियत बलात्कार', किशोरियों के गर्भधारण में वृद्धि और बढ़ते पाखंड का शिकार बनना पड़ रहा है।[10] एक और विरोधाभासी प्रवृत्ति का यहाँ उदय होता दिखाई देता है– एक ओर महिलाएँ समान व्यवहार चाहती हैं यानी उन्हें पुरूषों के समान दर्जा, रोजगार, वेतन एवं हैसियत मिले, प्रतिरक्षा में लड़ने का अधिकार हो। इसके लिए वे कानूनी प्रावधानों की वकालत करती हैं, किंतु दूसरी ओर वे भिन्नता' की दलील को आधार बनाकर विशेष रूप से सवैतनिक मातृत्व अवकाश भी चाहती हैं। मगर क्या यह सच नहीं कि हमारी जिंदगी में विभिन्न क्षणों में एवं स्थानों पर अंतविरोध भरे पड़े हैं। समलैंगिक महिलाओं के संगठित रूप से आंदोलन चलाने के फलस्वरूप परिवारों का विघटन हुआ, युवा पीढ़ी में नशे की प्रवृत्ति बढ़ी और किशोरों में (यौन तथा अन्य) अपराध व हिंसा की प्रवृत्ति भी बढ़ी सो, अंततः मुख्यधारा के नारीवादियों ने अपनी राजनैतिक लड़ाई में परिवारिक हिंसा तथा कार्यस्थल पर स्त्रियों के उत्पीड़न को रोकने के लिए महिलाओं द्वारा आन्दोलन चलाये गये और इन्हें रोकने लिए पुलिस गिरफ्तारोमुखी कार्रवाई तेजी से हुई। दरअसल उदारवादी

नारीवाद, समाज कल्याणपरक नारीवाद, एवं समाजवादी नारीवाद जैसी विभिन्न धाराओं तथा अकादमीय नारीवाद कार्यकर्ताओं ने महिलाओं के जटिल सवालों को नए सिरे से समझना शुरू किया है जिसमे लिंगभेद, रंगभेद जटिल सवालों को भी नए सिरे से समझना शुरू किया है जिसमें लिंगभेद, रंगभेद और वर्गभेद की तिकड़ी एक–दूसरे से जुड़ी है, मगर यह समझ से आगे बढ़कर धरातल पर समुचित कार्रवाई अभी तक शुरू नहीं हो सकी है।[11]

सन्दर्भ

1. क्या यह नारीवाद के अवसान का समय है, राजकिशोर, जनसत्ता, 30 जून 1998, नारी स्वतंत्र्य के बदलते रूप, रेणुका नैययर, पृ0 18
2. नारी स्वतंत्र्य के बदलते रूप, रेणुका नैययर, पृ0 18
3. भारतीय समाज में नारी, नीरा देसाई, पृ. 204
4. नारीवाद का पश्चिमी सन्दर्भ,नारी प्रश्न, सरला माहेश्वरी, पृ0 28
5. भारतीय महिलाओं की दशा–सुभाष शर्मा, पृ0 21, 22
6. सारा ई. रिक्स (सं.) 'द अमेरिकन वूमन 1990–91 (1990) न्यूयार्क, टेबुल 17
7. भारतीय महिलाओं की दशा–सुभाष शर्मा, पृ0 22, 23
8. भारतीय महिलाओं की दशा–सुभाष शर्मा, पृ0 24, 25
9. भारतीय महिलाओं की दशा–सुभाष शर्मा, पृ0 27, 28
10. नारी स्वतंत्र्य आन्दोलन : भारतीय और पाश्चात्य संदर्भ, समकालीन महिला लेखन, डॉ0 ओमप्रकाश शर्मा, पूजा प्रकाशन, आई–7, विजय चौक लक्ष्मी नगर,दिल्ली–92, पृ0 84–98
11. भारतीय महिलाओं की दशा–सुभाष शर्मा, पृ0 30, 31

❑❑

महिला उत्पीड़न के सामाजिक–सांस्कृतिक कारक

मनोज कुमार सरोज
शोधछात्र–समाजशास्त्र विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

मानव अधिकार मानव मात्र के नैसर्गिक, अविच्छेद्य एवं अनन्य अधिकार हैं। ये व्यक्तित्व के विकास, शोषणरहित समाज के निर्माण, आर्थिक समृद्धि और विश्व शान्ति के लिए अपरिहार्य हैं। मानव अधिकारों की अपरिहार्यता पर दीर्घकालिक संघर्ष के बाद आम सहमति सम्भव हो सकी है किन्तु अधिकारों की आवश्यकता, प्रकृति एवं क्रियान्वयन के विविध पक्षों पर आज भी विवाद है। जिन पक्षों पर आम सहमति है वह भी सशर्त है। इसका मूल कारण यह है कि लोकतंत्र, प्रगति एवं विकास की उल्लेखनीय व्यवस्थाओं में, लैंगिक न्याय, लैंगिक समता उपेक्षित है एवं महिलाएँ हाशिए पर हैं (येरणकर, 2013)।

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता', कदाचित किसी भी सभ्यता एवं संस्कृति में नारी के लिए इतना महान उद्घोश उपलब्ध नहीं होगा, यह सत्य है, परन्तु यथार्थ यह भी है कि कन्या भ्रूण हत्या से लेकर जीवन के प्रत्येक सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं पारिवारिक क्षेत्र में महिलायें सभ्यता के प्रारम्भ से ही लिंगभेद का आखेट होती चली आ रही हैं (रायजादा, 2000)।

द्विवेदी एवं त्रिपाठी (2013) के अनुसार महिलाओं के प्रति भेदभाव इसलिए विद्यमान हैं क्योंकि इसकी जड़े सामाजिक प्रतिमानों एवं मूल्यों में जमी हुई हैं। वैसे तो महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के कारणों को समाप्त किये बिना उसका पूर्ण निदान संभव नहीं पर यदि पाश्चात्य एवं विकसित देशों पर दृष्टिपात करे तो ऐसा लगता है कि इसका कारण मानवीय संरचना व स्वभाव में अंतर्निहित होने के कारण जड़ से इसका उन्मूलन सम्भव नहीं है। प्रत्येक स्थल व प्रत्येक प्रकार की महिला विरोधी हिंसा के लिए समाज और राज्य दोनों को ही अपना नैतिक एवं विधिक उत्तरदायित्व निभाना पड़ेगा। व्यावहारिक स्वरूप यही मांग करता है कि एक ऐसी सामाजिक पहल हो जिससे महिलाओं के प्रति पूरे समाज की सोच बदले। वर्तमान में भारतीय महिलाएँ समाज व राज्य की विभिन्न गतिविधियों में पर्याप्त सहभागिता कर रही है परन्तु इससे उनके प्रति घरेलू हिंसा के अलावा कार्यस्थल पर सड़कों एवं सार्वजनिक यातायात के माध्यमों में व समाज के अन्य स्थलों पर होने वाली हिंसा में भी वृद्धि हुई है। इसमें शारीरिक, मानसिक व यौन सभी प्रकार की हिंसा शामिल है (प्रताड़ना, छेड़छाड़, अपहरण, बलात्कार, भ्रूण हत्या, यौन उत्पीड़न, दहेज मृत्यु आदि)। विकास–खण्डों और जिलों में ही आजमाया जाता है। व्यापक और सार्वभौमिक कार्यक्रम का रूप उसे चुनिंदा जिलों में सफलता के बाद ही मिलता है और कई बार तो इससे पहले ही उसका सारा जोश ठण्डा जाता है। किशोरियों को पौष्टिक आहार प्रदान करने वाले कार्यक्रम, डी0डब्ल्यू0सी0आर0ए0 और सबला कार्यक्रम इसी दृष्टिकोण के परिणाम हैं।

कोचर (2013) का मत है स्त्रियाँ समाज के निर्माण, पोषण और विकास में प्रत्यक्ष रूप से योगदान देती हैं यह एक सर्वविदित तथ्य है। परन्तु उनके इस योगदान को प्रायः नजर अंदाज कर दिया जाता है क्योंकि वह सब उनके सहज स्वाभाविक कर्त्तव्य में शुमार किया जाता है। उन्हें समाज में वह स्थान नहीं मिल पाता जिसके वे वास्तविक रूप से हकदार हैं। उन्हें पितृसत्तात्मक समाज में दोयम दर्जे के नागरिक का दर्जा मिला हुआ है। उन्हें शिक्षा और घर से बाहर के जीवन में सीमित भूमिका देकर तमाम अवसरों से वंचित कर दिया जाता रहा है। यही नहीं उनके बारे में तमाम भ्रामक मिथक भी समाज में व्याप्त रहे हैं। उसे शक्ति, धात्री, जननी और देवी भी कहा

गया और उनके शोषण में भी कोई कसर नहीं छोड़ी गयी। आज भी बाल–विवाह, भ्रूण–हत्या, यौन शोषण और विभिन्न पूर्वाग्रह विभिन्न मात्रा में बदस्तूर कायम है। यह एक अजीब विडम्बना की स्थिति है। कानून की व्यवस्था सामाजिक प्रथाओं, अंध विश्वासों और दुरागृहों के मुकाबले कमजोर पड़ने लगती है। खाप पंचायतों द्वारा वयस्क युगलों को मृत्युदण्ड देना और कन्या की बलि चढ़ा देने की लोम हर्शक घटनाएँ इसी तरह का संकेत देती हैं कि भारतीय समाज में स्त्री को उसका हक दिलाने की यात्रा अभी भी संघर्षपूर्ण और लम्बी है।

भारत में पुरुष प्रधान समाज होने के कारण महिला वर्ग माँ के गर्भ से मृत्यु की गोद तक शोषण, दमन, अत्याचार एवं उत्पीड़न का शिकार है। इस पुरुष प्रधान समाज के कारण पुरुष शासक एवं महिलाएँ शोषित बनकर रह गई हैं। महिलाओं के सम्बन्ध में समाज में प्रचलित अवधारणाओं के कारण भी इनकी स्थिति कमजोर हुई हैं। भूमि के स्वामित्व, उत्पादन के सामानों पर नियंत्रण तथा निर्णय लेने की शक्ति पुरुषों के हाथों में होने के कारण महिलाएँ आर्थिक रूप से पुरुष को देवता, अन्नदाता एवं स्वामी मानती हैं। आर्थिक विषमता के परिणामस्वरूप स्त्री–पुरुष के मध्य अंतर उत्पन्न हुआ और महिलाओं की स्थिति अधीनस्थ की हो गई। महिलाओं की इस स्थिति का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं मौलिक कारण है– पुत्र प्राप्ति की लालसा। पुत्र को परिवार का उत्तराधिकारी, वंशबेल, संपत्ति का रखवाला एवं कुलदीपक माना जाता है। इस मानसिकता के कारण स्त्रियाँ युगों–युगों से शोषित होती चली आ रही हैं। पुरुष महिला विरोधी मानसिकता, सामाजिक व्यवस्था, अर्थतंत्र, धार्मिक व्यवस्था, सांस्कृतिक तंत्र, प्रशासन एवं राजनीतिक व्यवस्था पर वर्चस्व स्थापित किए हुए हैं तथा महिलाएँ पुरुषों पर निर्भर हैं।

भारतीय समाज में कहने के लिए तो महिलाओं को पुरुषों के बराबर दर्जा प्राप्त है लेकिन वास्तविकता आज भी देखी जा रही है कि विवाह, तलाक काम, सम्पत्ति में अधिकार, गुजारा भत्ता आदि ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जहाँ बराबरी के नाम पर महिलाओं के साथ भेदभाव न किया गया हो। महिलाओं के प्रति हिंसा विश्वव्यापी घटना बनी हुई है जिससे कोई भी समाज एवं समुदाय मुक्त नहीं हैं। समान अधिकारों के वातावरण के बावजूद महिलाओं को व्यवहारिक जीवन में गौण स्थान प्राप्त है। बड़ी संख्या में पुरुषों द्वारा शोषण से वे अत्याचार का शिकार होती हैं। बाल विवाह, वेश्यावृत्ति, विज्ञापनों में देह प्रदर्शन, नौकरियों में अभद्रतापूर्ण टिप्पणियों की शिकार, यौन अत्याचार, बलात्कार, बहुओं को दहेज के लिये जलाना, गर्भ में बालिका की हत्या जैसे महिला विरोधी जघन्य क्रिया–कलाप हमारे समाज में चेतना एवं जागरूकता बढ़ने के बाद भी मुँह उठाये हुये हैं। इसके अतिरिक्त महिलायें दोहरी नैतिकता का शिकार बनी हुई हैं। जो पुरुषों के लिये जायज हैं वह महिलाओं के लिये नाजायज है, उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है जोकि एक संवैधानिक अधिकार है और उन्हें हमेशा किसी न किसी पुरुष (कभी पिता, कभी पति, कभी पुत्र) के अधीन रहना पड़ता है।

नॉर्थ यूनिवर्सिटी, अमेरिका द्वारा वर्ष 2006–07 में पश्चिम बंगाल के 495 गाँवों के 8453 किशोर–किशोरियों और उनके माता–पिता पर किये गये सर्वे में यह तथ्य स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आया कि जिन गाँवों में महिलाओं के लिए आरक्षण नहीं था, वहाँ की तुलना में आरक्षण वाले गाँवों में माता–पिता के बीच बच्चों की शिक्षा को लेकर लिंगभेद 25 प्रतिशत और किशोरों में 32 प्रतिशत कम हुआ था। जिन गाँवों में महिलाओं के लिए सीटें आरक्षित थीं, वहाँ अधिक लड़कियाँ स्कूल जाती थी और घर के कामों में कम समय बिताती थीं। 2008 कि एक सर्वेक्षण के अनुसार मात्र 11 प्रतिशत स्त्रियों ने यह साहस दिखाया और वे भी हार गईं। एक तिहाई स्त्रियों ने माना कि उनके पतियों ने उन्हें दुबारा चुनाव लड़ने के लिए हतोत्साहित किया।

बुच (2012) के अनुसार महिलाओं हेतु नियोजन के मार्ग में सबसे बड़ी रूकावट और चुनौती, पुरुष–प्रधान समाज से आती हैं। उनके विरोध और प्रवृत्तियों से निपटना एक टेढ़ी खीर है। उनका यह विरोधात्मक रवैया महिला–केन्द्रित कार्यक्रमों के लिए पर्याप्त धनराशि का आवंटन न मिलने का प्रमुख कारण है। महिला केन्द्रित कार्यक्रमों को अन्य लक्षित सामाजिक समूहों के लिए बने कार्यक्रमों के समान महत्त्व नहीं मिलता। महिलाओं के

कार्यक्रमों को चाहें जितना सोच–विचार कर बनाया जाए, उसे केवल कुछ चुने हुए पुत्रियों को संपत्ति, जमीन जायदाद, शिक्षा, पोशण, चिकित्सा सुविधाओं इत्यादि से वंचित किया है। यही कारण है कि हमारे देश में कन्या भ्रूण हत्या का प्रतिशत बढ़ता जा रहा है। भारतवर्श में प्रतिवर्श पांच लाख कन्या भ्रूणों की हत्या कर दी जाती है। 1986 से 2006 के अंतराल में लगभग एक करोड़ कन्या भ्रूणों की कोख में हत्या की गई। भारत में स्त्री–पुरुश लिंगानुपात में अंतर का सर्वाधिक अहम कारण गरीबी एवं पुत्रों का अत्यधिक महत्त्व है। यहाँ प्रतिवर्श पैदा होने वाली 15 लाख बच्चियों में से लगभग 1.5 लाख बच्चियाँ अपने प्रथम जन्म दिन से पूर्व ही मर जाती हैं। गरीबी के कारण लड़कियों की कम खुराक, कम कैलोरी, कुपोशण इत्यादि के कारण युवावस्था भी बुढ़ापे और कमजोरी में बदल जाती हैं। भारत में लगभग 70 प्रतिशत महिलाएं रक्ताल्पता से पीड़ित हैं। दलित, जनजातीय एवं पिछडी जातियों की महिलाओं की स्थिति संपन्न वर्गों एवं जातियों की महिलाओं से भी बदतर है। मातृत्व मृत्युदर का चिकित्सा एवं सामाजिक कारणों से घनिश्ठ सम्बन्ध है। महिला मृत्युदर अधिक होने से भी लिंगानुपात में असंतुलन उत्पन्न होता है। महिलाओं की संख्या में गिरावट के कारण यौन हिंसा, बाल शोशण, पत्नियों की अदला–बदली, बच्चियों का यौन उत्पीड़न इत्यादि मामले बढ़े हैं। लड़कियों की खरीद–फरोख्त के मामले भी बढ़े हैं। महिलाओं के विरुद्ध हिंसा एवं अत्याचार दिन–प्रतिदिन बढ़ते ही जा रह हैं। यह अत्याचार एवं हिंसा ग्रामीण, शहरी, शिक्षित एवं अशिक्षित व्यावसायिक एवं गैर–व्यावसायिक, नौकरीपेशा एवं गृहणी, बच्ची एवं अधेड़ सभी वर्गों में बढ रही है। देश में आज महिलाएं घर–बाहर, गाँवों तथा शहरों, महानगरों तथा कस्बों सभी जगह असुरक्षित हैं। विवाहित महिलाओं के पति, सास, ससुर, कामकाजी महिलाओं को कार्यस्थल पर नियोक्ताओं, शिक्षण संस्थाओं में शिक्षकों एवं सहपाठियों, गली एवं बाजार में गुण्डों द्वारा हिंसा, उत्पीड़न, मारपीट, चीरहरण, छेड़खानी, यौन शोशण इत्यादि का सामना करना पड़ता है (मोहन, 2012:45)।

स्त्रियाँ समाज के निर्माण, पोशण और विकास में प्रत्यक्ष रूप से योगदान देती है यह एक सर्वविदित तथ्य है। परन्तु, उनके इस योगदान को प्रायः नजर अंदाज कर दिया जाता है क्योंकि वह सब उनके सहज स्वाभाविक कर्त्तव्य में शुमार किया जाता है। उन्हें समाज में वह स्थान नहीं मिल पाता जिसके वे वास्तविक रूप से हकदार हैं। उन्हें पितृसत्तात्मक समाज में दोयेम दर्जे के नागरिक का दर्जा मिला हुआ है। उन्हें शिक्षा और घर से बाहर के जीवन में सीमित भूमिका देकर तमाम अवसरों से वंचित कर दिया जाता रहा है। यही नहीं उनके बारे में तमाम भ्रामक मिथक भी समाज में व्याप्त रहे हैं। उसे शक्ति, धात्री, जननी और देवी भी कहा गया और उनके शोशण में भी कोई कसर नहीं छोड़ी गयी। भारतीय समाज में स्त्री की उसका हद दिलाने की यात्रा अभी भी संघर्शपूर्ण और लम्बी है (राश्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का प्रतिवेदन, 2013)।

भारतीय स्त्रियाँ चांद पर जा सकती हैं, हिमालय पर चढ़ सकती हैं, फिर भी अन्याय, शोशण, अत्याचार, यौनाचार, उत्पीड़न एवं भेदभाव की शिकार हैं। एक तरफ महिलाओं के उच्च स्थान प्राप्त कर लेने पर भी क्या ग्रामीण परिवेश एवं मलिन बस्तियों में रहने वाली एवं निम्न व मध्यम वर्ग की महिलाओं के जीवन में परिवर्तन हुआ है ? मध्यम वर्ग की महिलाओं के चेहरों पर असमानता, शोशण, दमन, अत्याचार की ज्वाला साफ नजर आती है। महिलाएं चाहें ग्रामीण अंचल की हो या शहरी, कहीं न कहीं शोशण से पीड़ित हैं। महिलाओं के प्रति हिंसा व बलात्कार के मामलों में प्रतिवर्श वृद्धि हो रही है। दहेज प्रथा महिलाओं की मौत का एक महत्त्वपूर्ण कारण हैं। महिलाओं की जिंदगी को नारकीय बनाने और अप्राकृतिक मौत का एक कारण है दहेज। दिन–प्रतिदिन दहेज हत्याएं बढ़ती जा रही हैं। यह समझा जाता है कि महिलाएँ घर की चारदीवारी के अंदर सुरक्षित हैं, परन्तु वास्तविकता कुछ और ही कहानी बयाँ करती है। महिलाओं के प्रति हिंसा के लिए जिम्मेदार स्वयं महिलाएँ भी हैं। केवल कानूनों के निर्माण से महिलाओं को घर में सुरक्षा एवं शांति प्राप्त नहीं होगी अपितु स्त्रियों के सम्बन्ध में पुरुषों को अपनी मानसिकता बदलनी होगी (मोहन, 2012)।

भारत में स्वतन्त्रता मिलने के पहले, मध्यकाल में महिलाओं की स्थिति संतोषजनक नहीं थी। स्वतन्त्रता के बाद संविधान में किये गये अनेक प्रावधानों के जरिये महिलाओं की स्थिति में क्रमशः गुणात्मक सुधार अवश्य हुआ है परन्तु ग्रामीण क्षेत्र में अब भी कमजोर वर्ग की महिलाओं की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आ सका है। उनकी कमजोर स्थिति के अनेक कारण हैं विशेषतः शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य, राजनैतिक एवं आर्थिक भागीदारी आदि की असमानता के कारण उनकी स्थिति निम्नतर बनी हुई है (शशि कुमार, 2013)।

महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा रोक अधिनियम–2005 में स्त्रियों को शारीरिक, यौन, मौखिक, भावनात्मक आर्थिक हिंसा से मुक्त कराने, सुरक्षित रखने का वादा किया। इस कानून के आने से पहले घर के अंदर स्त्रियों की सुरक्षा का कोई मतलब नहीं था। वे घर के अंदर घर के लोगों द्वारा प्रताड़ित होने के लिए मजबूर थीं। उन्हें भर पेट खाना नहीं देना, शिक्षा पाने के अवसर नहीं देना, उनके हिस्से की संपत्ति का खुद के लिए उपयोग करना, उन्हें गाली–गलौज ताने देना, मारना–पीटना या यौन हिंसा तक का प्रयोग करना जैसे आम बात है। यह सब कुछ घर के अंदर की बात है या आपस की बात है कह कर कोई भी अपराध करना सामान्य सी बात है। पर इस कानून ने इस स्थिति में बदलाव किया है। यह कानून स्त्रियों पर किसी भी प्रकार की हिंसा होने पर त्वरित न्याय दिलाने के लिए बनाया गया, पर यहाँ भी अदालती कार्यवाही वर्षों चल रही है। इसके अलावा कानून का प्रयोग शहरों में हो रहा है, जबकि ग्रामीण समाज, जहाँ घरेलू हिंसा बड़े पैमाने पर व्याप्त है, वहां इसका प्रयोग नहीं के बराबर है, कानून वहां अदालती इन्फ्रास्ट्रक्चर ही नहीं है (जैन, 2013)।

यद्यपि कानून महिलाओं को अनेक प्रकार की सुरक्षात्मक व्यवस्थाएँ दी गई है किन्तु महिलाएँ इन अधिकारों का उपयोग नहीं कर पा रहीं हैं और वे सामाजिक रूप से अनुनयपूर्ण निर्योग्यताओं का तथा निम्न स्तर का जीवन व्यतीत कर रही हैं। सामान्यतः वे अपने इन अधिकारों का उपभोग करने में अपनी अज्ञानतावश असफल हैं। यही कारण कानूनी रूप से पुरुषों के साथ समानता के उद्देश्य की प्राप्ति में असफल है। दूसरा अन्य कारक जो कि महिलाओं को उनके अधिकारों के प्रयोग में बाधक हैं, वह है सामाजिक संरचना जो कि ग्रामीण क्षेत्रों में मानव के व्यवहार को नियंत्रित करती है। सामाजिक आदर्श एवं सामाजिक मूल्य जो कि स्त्रियों के द्वारा अपने अधिकारों के प्रयोग के पक्ष में नहीं है और इस प्रकार के सामाजिक विधानों के व्यवहारिक रूप से लागू होने में बाधक सिद्ध होते हैं। इनका उद्देश्य महिलाओं की स्थिति को ऊपर उठते देखना नहीं है (येरणकर, 2013)।

जहाँ तक महिलाओं के सिविल अधिकारों का सम्बन्ध है, अभी भी परम्पराओं और प्रथाओं की विविधता ने जड़ें जमा रखी हैं। विधान की दृष्टि से, दृढ़ीकरण के पुराने सिद्धान्त से ऊपर समानता की अवधारणा की दिशा में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई है। तुलनात्मक दृष्टि से सामाजिक कानूनों के संदर्भ में भारत की महिलाएँ अन्य देशों की महिलाओं से कहीं आगे हैं। लेकिन महिलाओं के अधिकारों की रक्षा करने वाले और उन्हें बढ़ावा देने वाले कानूनों का कार्यान्वयन केवल धीमा, असन्तुलित और लापरवाहीपूर्ण ही नहीं रहा है और केवल यही नहीं कि महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से पुरुषों से अत्याधिक पीछे रखा जाता है, बल्कि यह भी कि कानूनों का प्रवर्तन अत्यन्त असन्तोषजनक रहा है (मोहिनी गिरी, 197:59)।

चौहान (1998) का कहना है कि महिलाओं के विरुद्ध परिवार एवं समाज में हिंसा की घटनाएँ किसी भी दिन के लिए कोई नई बात नहीं है। घर–परिवार में पति और अन्य पुरुषों द्वारा बात–बात पर महिलाओं को गालियाँ देना, अकारण ही उनकी पिटाई करना, उन्हें शारीरिक एवं मानसिक रूप से प्रताड़ित करना तथा यातनाएँ देना, कामकाज के स्थलों पर सहकर्मी महिलाओं के साथ अभद्रतापूर्ण ढंग से पेश आना एवं अश्लील मजाक करना, सार्वजनिक स्थलों पर उनके साथ छेड़छाड़ करना आदि ऐसे अनेक कृत्य हैं, जो पुरुषों द्वारा महिलाओं के मानवाधिकार हनन की कहानी कहते हैं, लेकिन मानवाधिकार की रक्षा के समर्थक इन मामलों में चुप हैं।

भारत का संविधान लिंग, जाति, रंग, आस्था आदि का भेद मिटा सबको अधिकार देने को कटिबद्ध है, किन्तु

आजादी के 67 वर्ष गुजर जाने के बाद भी महिला पुरुष में असमानता जारी है। महिलाओं ने हर क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया है। वह किसी की क्षेत्र में पुरुषों से पीछे नहीं रहीं हैं तथापि महिलाओं पर शोषण एवं अत्याचार जारी है। आज महिलाएँ अपने ही घर में सुरक्षित नहीं हैं और अपनों के द्वारा ही शोषण, अत्याचार की शिकार हैं। गृह मंत्रालय के अपराध रिकार्ड ब्यूरों की रिपोर्ट के अनुसार 44 मिनट में एक अपहरण और 47 मिनट में एक बलात्कार होता है। प्रतिदिन लगभग 22 दहेज हत्याएँ होती हैं। इस रिपोर्ट के अनुसार भारत के दिल्ली (16 प्रतिशत), हैदराबाद (8.1 प्रतिशत), बंगलोर (6.5 प्रतिशत) अहमदाबाद (6.4 प्रतिशत) और मुंबई (5.8 प्रतिशत) इन पांच बड़े शहरों में महिलाओं के खिलाफ अधिक अपराध होते हैं (एन0सी0आर0बी0, (2010)।

महिलाओं के साथ आपराधिक कर्म का प्रतिशत आई0पी0सी0 के अन्तर्गत आने वाले कुल आपराधिक कृत्य की तादाद में पिछले पांच सालों में बढ़ा है। साल 2007 में महिलाओं पर होने वाले अपराधों का प्रतिशत कुल अपराधों में अगर 8.8 प्रतिशत था तो साल 2015 में 9.4 प्रतिशत और वर्ष 2018 में, पिछले वर्षों की तुलना में महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराधों में 6.8 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो रिपोर्ट–2012 के अनुसार 14 साल से कम उम्र की 12.5 प्रतिशत बच्चियों के साथ वर्ष 2012 में बलात्कार की घटनाएँ दर्ज की गई, वहीं 14 साल से 18 साल के बीच की 23.9 प्रतिशत लड़कियों के साथ बलात्कार के मामले सामने आये। राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में फास्ट ट्रैक कोर्ट स्थापित होने के कुछ दिन पूर्व दिल्ली में बलात्कार के 1400 मामले कोर्ट में लम्बित पड़े थे, अगस्त तक यह आंकड़ा 1670 हो गया।

विभिन्न सर्वेक्षण अनुसंधान भारत में महिलाओं के खिलाफ हिंसा की काफी उच्च दर बताते हैं। एक सर्वेक्षण में, 50 प्रतिशत महिलाओं ने शारीरिक व मानसिक हिंसा की बात कही और 40.3 प्रतिशत महिलाओं ने कहा कि उनके साथ शारीरिक दुर्व्यवहार किया गया था जिससे थप्पड़ मारना, लात मारना, डराना या फिर हथियार के प्रयोग और जबरदस्ती सेक्स करना शामिल है सर्वेक्षण–3 (2005–06) द्वारा भी इन ऑकड़ों की पुष्टि होती है।

गृह मंत्रालय, भारत सरकार के नेशन क्राइम रिकार्ड ब्यूरो (2013) के ऑकड़ों के अनुसार वर्ष 2013 में देश में महिलाओं के विरुद्ध अपराध के 309546 मामले दर्ज दिये गये, जो पूर्व वर्ष से 26.7 प्रतिशत अधिक थे। महिलाओं के विरुद्ध अपराधों में यह बृद्धि विगत कई वर्षों से लगातार दर्ज हो रही है (वर्ष 2009 में 203804; वर्ष 2010 में 213585; वर्ष 2012 में 228649 व वर्ष 2017 में 244270)। वर्ष 2018 में उत्तर प्रदेश में महिलाओं के विरुद्ध कुल 32546 अपराध दर्ज किये गये, जो देश में दर्ज कुछ मामलों के 10.5 प्रतिशत थे।

चौबे (2012) का मानना है कि महिला के प्रति हिंसा की परम् स्थिति ओनर कीलिंग अर्थात् सम्मान की खातिर की गई हत्या है जिसमें किसी परिवार वंश या समुदाय के किसी सदस्य की हत्या उसी परिवार, वंश, समुदाय व्यक्ति द्वारा कर दी जाती है। हत्यारे इस विश्वास के साथ हत्या को अंजाम देते हैं कि मरने वाले सदस्य के कृत्यों के कारण उस परिवार, वंश या समुदाय का अपमान हुआ है। आमतौर पर इस प्रकार के अपराध का शिकार स्त्रियाँ ही होती हैं। सम्मान के लिए किसी महिला की हत्या महिलाओं के प्रति गंभीर अपराध हैं तथा मानवाधिकार व स्वतन्त्रता का खुला उल्लंघन है।

कुमावत (2013) का कहना है कि महिलायें आज भी सामाजिक एवं पारिवारिक कारणों की वजह से घरेलू हिंसा के खिलाफ पुलिस में शिकायत करने के लिए सामने आने से हिचकती हैं। औरतों को मर्दों के बराबर हद नहीं मिलता। उन्हें दया का पात्र समझा जाता है। कोई माने या न माने, पिता अपनी बेटी को और पति अपनी पत्नी को बराबरी का हक देने का जोखिम उठाने से अब भी घबराता है। समाज के एक बड़े भाग पीड़ित महिलाओं को शोषण, हिंसा, अत्याचार आदि से सुरक्षा प्रदान करना नितान्त आवश्यक है। दूसरी ओर महिलाओं को भी निष्क्रिय रूप से अत्याचार नहीं सहना चाहिए, वे अपने दमन एवं शोषण के प्रति जागरूक हो, उनका विरोध करें, न्यायालय, कानून एवं अपने परिजनों से मदद मांगे। इसलिए औरतों को अपने वाजिब हक के लिए लड़ना जारी रखना होगा।

लड़ाई लम्बी है, लेकिन कदम–कदम पर मिलने वाली कामयाबी निश्चित तौर पर बड़े बदलाव की नींव रखेगी।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नारीवादी आन्दोलन एंव मानवाधिकारों के संरक्षण सम्बन्धी अभियानों ने भारत सहित संसार के अधिकांश देशों में महिलाओं के प्रति समानता, वैचारिक सहृदयता और उत्तरदायित्व बोध का सूत्र सामने रखा है, परन्तु सामाजिकता में पुरुष और महिला सम्बन्धी जो भावनात्मक अंसतुलन और विकृति धीरे–धीरे शताब्दियों में जम गयी है, उसके शर्मनाक रूपों को तथ्यों, तर्कों, विचारों, कानूनों और परम्पराओं के द्वारा परास्त करने में काफी लम्बा समय लगेगा। विधिवेत्ता कितने ही कानून एवं दण्ड का प्रावधान करें, समाजशास्त्री कितने ही समाज सुधारक प्रयास करें, जब तक व्यक्ति की सोच में विशेषतः भूमण्डलीकरण के दौर में उपजी कुमनोवृत्तियों के शमन हेतु मूलभूत परिवर्तन नहीं आता, तब तक महिला उत्पीड़न एवं शोषण से मुक्ति नहीं पा सकती हैं।

सन्दर्भ

1. अश्वनी, ग्राम सभा का सशक्तीकरण : समस्याएँ व समाधान, योजना, फरवरी, 2011
2. अनिल एवं लालाराम, महिला हिंसा एवं लिंग भेद के सम्बन्ध में राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर कानूनी उपबंध, नई दिशाएँ, मानवाधिकार आयोग, नई दिल्ली, 2013, पृ0 57–68
3. आप्टे, भारतीय समाज में नारी, क्लासिक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 1996
4. आहूजा, राम, भारतीय समाज, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर, 2011
5. ओझा, रवीन्द्र नाथ, विकास में ग्राम सभा की भूमिका, योजना, फरवरी, 2011
6. कुमार, पंकज, महिला सशक्तीकरण एवं उनके अधिकार, नई दिल्ली, मानवाधिकार आयोग नई दिल्ली, 2013, पृ0 29–44
7. कुमावत, एस0एस0 ''महिलाओं के विरुद्ध असमानता एवं हिंसा'', आई0जे0एस0आर0, वा0–2, इश्यू–4, अप्रैल–2013
8. कौशिक, आशा, महिला अधिकारों का प्रश्न– भारतीय संदर्भ, राज्यशास्त्र समीक्षा, जनवरी–दिसम्बर–2000
9. गर्ग मंजुलता एवं कुमार, पुनीत, बौद्धिक–विमर्श के परिप्रेक्ष्य में महिला सशक्तीकरण की चुनौती : एक समीक्षा, नई दिशाएँ, मानवाधिकार आयोग, नई दिल्ली, 2013, पृ0 69–78
10. चौहान, श्यामसुन्दर, महिला मानवाधिकार और कुछ सवाल, नई दिशायें, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, नई दिल्ली, मार्च–1998
11. जैन कमलेश, ''नारी सशक्तिकरण : कल, आज और कल'', नई दिशाएँ, मानवाधिकार आयोग, नई दिल्ली, 2013, पृ0 1–14
12. दूबे, एस0 सी0, भारतीय समाज, विकास पब्लिकेशन, 1990
13. दुबे एस0सी0, भारतीय ग्राम वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, तृतीय संस्करण 2000
14. दुबे अभय कुमार, भारत का भूमण्डलीकरण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2003
15. देसाई, नीरा, भारतीय समाज में नारी, मैकमिलन इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 1982
16. देसाई, नीरा, भारतीय समाज में नारी, मैकलिन इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 1982

❑❑

बेरोजगार शिक्षित महिलाओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ0 सद्‌मा सिद्‌दीकी
असिस्टेंट प्रोफेसर–समाजशास्त्र
डॉ0 हरिवंश राय बच्चन पी.जी. कॉलेज, उन्नाव

विश्व के सभी देशों में अथवा पिछड़े हुए प्रत्येक देश में बेरोजगारी के कारण समान न होकर भिन्न–भिन्न है। इस दृष्टि से शिक्षित महिलाओं में बे रोजगारी वह बेरोजगारी है जिसमें महिलायें उच्च शिक्षा प्राप्त करके घर में बैठी है जिनको उनकी योग्यतानुसार नौकरी नहीं है और इस दृष्टि से बेरोजगारी की परिभाषा करना कठिन कार्य है और इसकी व्याख्या करना तो और भी कठिन है।

सामाजिक मूल्यों और वर्तमान आवश्वयकताओं की बढ़ती हुई प्रकृति के कारण अब विकासशील देशों में पुरुषों के अतिरिक्त महिलाओं में भी उद्यमिता के क्षेत्र में आगे आना शुरू कर दिया है परन्तु फिर भी महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार प्रदान नहीं किये गये हैं और न ही उनको नौकरी की सुविधा उपलब्ध कराई गयी है। शिक्षित महिलाओं में बेरोजगारी की संख्या ज्यादातर कला, विज्ञान और वाणिज्य के स्नातकों में भी केन्द्रित है। नवीनतम सरकारी अनुमानों के अनुसार इस समय शिक्षित बेरोजगारी की संख्या 63 लाख से भी अधिक है।

हमारे संविधान में (Article) 399 में स्त्री और पुरूश को समान अधिकार दिये गये हैं तथा कार्य करने में स्त्री व पुरुष का जो वेतन है वह भी बराबर है। यदि कार्य भी बराबर हो तो भारत में प्रत्येक कार्य में महिलाओं का बहुत बड़ा योगदान है। वे लम्बे समय तक घर व बाहर दोनों में कार्य करती है परन्तु इसके बाद भी उनके कार्य को महत्व नहीं दिया जाता है और उन्हें अनदेखा कर दिया जाता है क्योंकि वे एक नियमित दायरे में कार्य करती हैं। कुछ आंकड़े (Bhadauria, 1997) से ज्ञात होता है कि 315 दिनों में प्रत्येक दिन वह 10 घण्टे काम करती है परन्तु उसका वेतन उनके कार्य के अनुसार नहीं दिया जाता है।

आज के समय में भोजन उत्पादन के कार्य में 50%, कार्यालयों से जुड़े कार्यों में 30% तथा मजदूरी से जुड़े कार्यों में 60% महिलायें कार्य करती है परन्तु उन्हें इनका 10% ही लाभ होता है।

सम्बन्धित साहित्य का सिंहावलोकन – शिक्षित बेरोजगार महिलाओं के भारत एवं विश्व के दूसरे देशों में अनेक समाजशास्त्रीय एवं सामाजिक वैज्ञानिकों ने अध्ययन किये हैं।

मुक्ता मित्तल ने अपनी पुस्तक Educated Unemployed Women in India में शिक्षित बेरोजगार महिलायें अत्यन्त चिन्ता का विषय है जो भारत की योजना की प्रक्रिया पर भी प्रश्न चिन्ह लगाती है। वे अपनी पुस्तक में कहते है कि एक ओर तो उच्च शिक्षा रोजगार प्राप्त करने की कुंजी है, फिर भी शिक्षित महिलाओं को रोजगार न मिलने का विरोधाभास प्रकट होता है।

एक अध्ययन मित्तल ने लखनऊ में किया तथा शिक्षित बेरोजगार युवा महिलाओं को अध्ययन कर उनकी समस्याओं के सुधार हेतु प्रयास भी किये। Bala M. Laxmi (1992) में Int. J. Soc Psychiatry 1992 Winter : 38(4) 25.07.61 में अपने प्रपत्र Percicived Self in Educated Employed and Educated Unemployed Women में शिक्षित एवं अशिक्षित महिलाओं में आत्मधारणा की तुलना की है, जिसमें 150 शिक्षित रोजगार एवं 150 अशिक्षित बेरोजगार की पटना शहर में तुलनात्मक अध्ययन किया है। उन्होंने आत्म अवधारणा पैमाने DEDO 1985 को प्रयोग में लाया गया है। इसका निष्कर्ष इस प्रकार है अपने बारे में सोच शिक्षित महिलाओं की रोजगार करती शिक्षित महिलाओं व रोजगार रहित शिक्षित महिलाओं की तुलना में काफी अधिक था।

John E. Dunlop and Victoria A. Velkoff (1999) ने अपनी पुस्तक Women and Economic India में बताया कि बहुत सी महिलायें जिनको विश्वविद्यालय डिग्री प्राप्त है उनको सापेक्षित रूप से उच्च रोजगार नहीं मिलते है। उनमें केवल 28% है जो मुख्य रूप से कार्य हेतु रोजगार प्राप्त है।

सैद्धान्तिक पक्ष – महिलाओं को अत्यन्त भेदभाव का भी सामना करना पड़ता है। न केवल भारत में बल्कि विदेशों में कार्यरत महिलाओं को विभिन्न प्रकार का भेदभाव एवं यौन उत्पीड़न का भी सामना करना पड़ता है। एक अध्ययन में Liddle and Joshi (1986) में बताया है कि ''महिलाओं को बहुत अधिक कार्य करना पड़ता है उन सुविधाओं को प्राप्त करने के लिये जिनके समकक्ष कार्य कर रहे है, वे पुरुषों को प्राप्त है।''

केरल में शिक्षित महिलाओं की बेरोजगारी सबसे अधिक देखने को मिलती है। केरल में उच्च शिक्षा में लड़कियों का दाखिला 3.3 Per thousand Population जो कि भारत के राज्यों में सबसे अधिक है। शेष राज्यों में 209 Per thousand Population है (Instiate of applied man Power Research 2000-01) इसके साथ उच्च शिक्षा के क्षेत्र में केरल में 55.9% है। जो कि पूरे भारत में 37.7% है।

Tania (2008) के अनुसार–केरल में जहां पर आर्थिक वृद्धि एवं महिलाओं की शिक्षा बहुत अधिक है, वहां पर भी महिलाओं को रोजगार अवसर बहुत कम है। Alice Sebstian and K Navaneetham का यह अध्ययन स्पष्ट रूप से बताता है कि Human Development India में सबसे उच्च है वहां पर Gender Impowerment Index भी सबसे उच्च है, यह अध्ययन केरल में जहां महिलाओं की शिक्षा सबसे उच्च है।

दोहरी भूमिका – शिक्षित बेरोजगार महिलाओं को दोहरी भूमिका निभानी पड़ती है। ऐसी परिस्थितियों में महिलाओं में तनाव पैदा होना स्वाभाविक है। यद्यपि कार्यरत महिलायें पढ़ी–लिखी हैं। वे हर प्रकार से उनका अपना पुरुष के बराबर अपना अस्तित्व है पर व्यवहारिक रूप से वे अपने पति और सास–ससुर के अधीन ही रहती है। यह भी देखा गया है कि यदि कार्यरत महिलाओं को लौटने में देर हो जाती है तो उन्हें सफाई भी देनी पड़ती है और कई परिस्थितियों में उनका यौन शोषणीकरण भी होता है।

अध्ययन का उद्देश्य – उन्नाव में शिक्षित बेरोजगार महिलाओं में शिक्षा के स्तर का पता लगाना तथा महिलाओं में इच्छित रोजगार का पता लगाना तथा उनके पारिवारिक तथा वैवाहिक जीवन का पता लगाना और पति तथा पिता के आर्थिक स्तर का पता लगाना, इत्यादि वर्तमान आधुनिक समाज में जहां पर बढ़ती हुई औद्योगिकरण समाज जटिल होता जा रहा है। आज संस्थायें परस्पर एक–दूसरे से अन्तः क्रियायें करते हुए विकसित एवं जटिल होती जा रही है। ऐसी स्थिति में एक व्यक्ति जो कई प्रकार की संस्थाओं से सम्बन्धित होता है स्वयं की स्थिति का एक दूसरे से अपनी तुलना के आधार पर करता है।

इस चेतना के फलस्वरूप वह सामान्य लोगों से निकटता का अनुभव करता है।

बेरोजगारी एक अभिशाप है और इसका सबसे बड़ा दुष्परिणाम गरीबी है जो कि सभी बुराईयों की जड़ है। बेरोजगार व्यक्तियों के समान बेरोजगार महिलाओं की भी सामाजिक प्रतिष्ठा को गिरा देती है। उनमें हीनता की भावना पैदा हो जाती है और स्वयं को लज्जित महसूस करती है। एक महिला पुरुष के साथ कांधे से कांधा मिलाकर चलना चाहती है परन्तु उच्च शिक्षा प्राप्त होते हुए भी उसे बेरोजगारी जैसे गम्भीर समस्या का सामना करना पड़ता है। परिवार तथा पड़ोस भी शिक्षित बेरोजगार महिलाओं को उचित सम्मान नहीं देते हैं।

इस कारण महिलाओं में बेरोजगारी के कारण होने वाली आर्थिक हानि को तो मापा जा सकता है किन्तु सामाजिक हानि का मूल्यांकन करना अति कठिन है।

शिक्षित बेरोजगारी को दूर करने के उपाय – अतः स्पष्ट है कि गैर नौकरी शुदा शिक्षित महिलायें आज भी बेरोजगारी जैसी जटिल समस्या से ग्रस्त है जिन्हें दूर करने के लिये कारगर उपाय किये जाने चाहिये–

1. शिक्षा में व्यवसायिक ज्ञान को बढ़ाना।

2. डिग्रियों को नौकरी से पृथक करना।
3. जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण।
4. आर्थिक विकास की जाति को बढ़ाना।
5. योग्यतानुसार नौकरी देना।
6. रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध कराना।
7. धार्मिक विश्वासों तथा रूढ़िवादिता में कमी।
8. आर्थिक विकास की गति बढ़ाना।
9. सार्वजनिक निर्माण सम्बन्धी कार्यक्रम।
10. रोजगार कार्यक्रमों की जानकारी।

निष्कर्ष – वास्तविकता यह है कि भारत में महिलाओं की शिक्षा की दर में अत्यधिक वृद्धि होने के बाद एवं संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा महिलाओं में सशक्तिकरण किये जाने की घोषणा के बाद भी भारत सरकार द्वारा महिलाओं को पुरुषों के बराबर का कानूनी अधिकार प्रदान करने के बाद भी आज महिलाओं की पद तथा स्थिति अत्यन्त निम्न है।

संदर्भ

1. Agarwal S.N. (1997) Age of marriage in India-Allahabad Kitab Mahal(1962)
2. Alivaa Mohanty(2000)-Development of rural women-Yash Publication, Delhi
3. Andiappan P. (1980)- Women and Work- A comparative study of Sex Discrimination is Employment in India and the V.S.N- New Delhi Publication
4. Devi L. (2001) Education Employment and Job Preference of Women in Kerala- A Micro Level Case Study- Discussion Paper No. 42KRP11D
5. Gupta Giri Raj(ed)(1969)-Family and Social change in Modern India- New Delhi Vikas Publishing House
6. Hate Chandrakala (1969)- Changing Status of Women in Post Independence India Bombay Allied Publishers.
7. Indra (1957)-Status of Women in Ancient Raval Publication
8. Khanna R.S. (1996)- Liberalization and Unemployment in India- The Indian Journal of Public Administration Vol. XI II July September
9. Mukherjee C. and T.M. Thomas Issac(1997)- A Review of the Self employment programmes for educated unemployment in Kerala-Some Neglected Aspects Sage Publication New Delhi.
10. National Commission for Women India(1993)-Proceedings of the National Work shop on Employment Equality and Impact of Economic Reform on Women, (New Delhi)

❑❑

भारतीय समाज के विकास में महिलाओं की भागीदारी

डॉ0 अंजली साहू
अंशकालिक प्रवक्ता (हिन्दी विभाग)
शशि भूषण गर्ल्स डिग्री कॉलेज, लखनऊ

''मूर्द्धासिराड़् ध्रुवासि धरूणा धर्यास धरणी।
आयुशे त वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमायत्वा।।'' *(यजुर्वेद)*

''यजुर्वेद में नारी सम्बन्धी वैदिक भाव इस प्रकार मिलते है–''हे स्त्री तू सूर्य के तुल्य तेजस्विनी है। ध्रुव के समान निश्चल है। भूमि के समान ग्रहस्थ को धारण करने वाली। अतएव गृहणीयाँ।''

मानव जीवन पद्धति में नारी विधाता की सर्वोत्तम परिकल्पना है। नारी के बिना पुरुष अधूरा है। नारी के बिना जीवन की परिकल्पना करना भी व्यर्थ है। इस सम्बन्ध में ''स्वामी विवेकानन्द जी'' ने कहा है कि ''दुनिया का कल्याण तब तक नही हो सकता जब तक महिलाओं की दशा में सुधार न लाया जाए, बेहतर न बनाया जाए। यह सम्भव नहीं कि कोई पक्षी एक पंख से उड़ सके।'' भारतीय संस्कृति की सामाजिक परम्पराओं के अनुसार पुरातन काल में स्त्रियों का पद बहुत ऊँचा था, वैदिक काल नारी जीवन का स्वर्ण युग था समाज में उच्च स्तर की कन्याओं में उपनयन संस्कार का प्रचलन था। उपनयन के पश्चात् कन्याओं को सुव्यवस्थित शिक्षण दिया जाता था और उसके साथ ही ललित कलाएं, काव्य कला, संगीत कला, नृत्य तथा अभिनय की शिक्षा दी जाती थी। छठी शताब्दी ईसा पूर्व भारतीय समाज में धार्मिक अंधविश्वास कुरीतियाँ व कुपरम्पराएं व्याप्त हो चुकी थी जिसके कारण नारी की स्थिति गिरती जा रही थी। इन बुराइयों के विरूद्ध समाज व धर्म सुधार स्थापित करने हेतु आन्दोलन हुए। जिसके फलस्वरूप 'जैन धर्म' और 'बौद्ध धर्म' का उद्भव हुआ। उस समय महिलाओं में त्याग और कर्तव्य पालन की भावना विद्यमान रहती थी शासन सम्बन्धी कार्यो में भी वह अपना योगदान देती थीं वे युद्ध कला में प्रवीण थी। उदाहरण के रूप में जैन धर्म की उन्नीसवी तीर्थकर 'मल्लिनाथ' एक महिला थी।

जैन संघ में पुरुषों की अपेक्षा महिलाएँ अधिक थी। जैन महिलाओं ने अनेक उपवन लगाए तथा स्तूप बनवाए। जैन धर्म की अनुयायी महिलाओं ने समाज में महिलाओं की स्थिति में सुधार के अथक प्रयास किये। जिससे महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन आए। जैन धर्म के साथ बौद्ध धर्म भी नारी के प्रति सहिष्णु था। बौद्ध धर्म में पिता की अपेक्षा माता की प्रतिष्ठा अधिक थी। महात्मा बुद्ध ने महिलाओं को भी मोक्ष या निर्वाण पाने का अधिकारी माना। 'महात्मा बुद्ध' के धर्म और दर्शन की महिला सशक्तीकरण में प्रासंगिकता है। महिला सशक्तीकरण के सम्बन्ध में ऐतिहासिक काल का अवलोकन करें तो ज्ञात होता है कि मध्यकाल के प्रारम्भ में महिलाओं की स्थिति गिरती जा रही थी। मुस्लिम संस्कृति हिन्दू संस्कृति को प्रभावित कर रही थी और हिन्दू परिवारों में भी हिन्दू बालिकाओं को निर्धारित नियमों और सीमाओं में बंधकर रहना पड़ता था। जिससे महिलाओं की दशा खराब होने लगी। पूर्व मध्यकाल में पर्दा–प्रथा का प्रचलन शुरू हो गया। इस काल में प्रत्येक क्षेत्र में स्त्रियों की स्थिति अलग–अलग थी जैसे निर्धन कृषकों की स्त्रियों खेतो में काम करती, धनुष–बाण बनाती। उन्हें अमोद–प्रमोद के लिए समय व साधन नहीं मिल पाते थे। उनके सांस्कृतिक विकास के लिए उपर्युक्त परिस्थितियों नहीं थी। यह वर्ग आर्थिक समस्याओं से ग्रसित था। 9–10 वर्ष की आयु में ही बालिकाओं का विवाह कर दिया जाता था।

मध्यकालीन भारत में जहाँ एक ओर महिलाआं की स्थिति दयनीय थी वहीं दूसरी ओर उनके सशक्त रूप के भी दर्शन होते है। सन् 1548 में 'रानी दुर्गावती' अपने पति की मृत्यु के बाद अपने नाबालिग पुत्र वीर नारायण

की संरक्षिका बनी और राज्य का शासन अपने हाथ में लिया। भक्ति आन्दोलनों के समय सगुण और निर्गुण धाराओं की कवियित्रियों का उल्लेख भी इस काल में मिलता है।

जिन्होंने अपनी काव्य रचना के द्वारा समाज में अपनी ख्याति फैलायी जैसे कृष्णमार्गी कवियित्रियों में 'मीराबाई' प्रमुख हैं उन्होंने गीत 'गोविन्द', 'गर्वगीत', 'स्फुट पद' और 'मीरा के पदों' की रचना की।

महिला सशक्तीकरण में पुनर्जागरण आन्दोलनां और 18वी शताब्दी का विशिष्ट स्थान है पुनर्जागरण वह प्रक्रिया है जो पाश्चात्य संस्कृति के सम्पर्क में आने के बाद बौद्धिक वर्ग में नवचेतना जाग्रत होने के कारण समाज सुधार एवं धर्म सुधार के रूप में सामने आई। रूढ़िवादी, परम्परावादी, अंधविश्वास से युक्त धार्मिक परिवेश की कुरीतियों व बुराइयों को दूर कर शोषित वर्ग को मुक्त किया गया। समाज सुधार आन्दोलन के जनक 'राजाराम मोहन राय' ने महिला उत्थान के लिए अठ्ठारह पाठशालाएँ खुलवायी स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना की और सती प्रथा का विरोध किया। इन प्रयासों एवं आन्दोलनों के फलस्वरूप नारी की स्थिति में कुछ बदलाव आना आरम्भ हुआ।

सन् 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में पुरुषों के साथ भारत की महिलाओं का भी सराहनीय तथा महत्वपूर्ण योगदान रहा है। महिलाओं की भूमिका में अवध की 'रानी बेगम हजरत महल' झांसी की रानी 'लक्ष्मीबाई', महारानी तपस्विनी तथा नर्तकी 'अजीजन बाई' आदि के नाम हम बड़े फक्र व सम्मान से लेते है।

सन् 1857 के पश्चात् होने वाले राष्ट्रीय आन्दोलनों में भी महिलाओं की सक्रिय भूमिका रही चाहे वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन एवं आन्दोलन ही क्यों न हो महिलाओं ने प्रत्येक प्रयास भारत की आजादी के लिए अपना सर्वस्व समर्पण करके किया एक आम नारी की सहभागिता भी इन आन्दोलनों में तन–मन–धन–जन हर तरह दृष्टि गोचर हुई। जागरूकता के कारण राष्ट्रीय आन्दोलन में नारी ने त्याग व बलिदान में अपनी सहभागिता उजागर की। नारी की शिक्षा एवं राष्ट्र प्रेम के प्रति जागरूकता के कारण भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अधिवेशन में भी महिलाओं ने हिस्सा लिया। 'श्रीमती एनी विसेन्ट' कांग्रेस के 1908 के मद्रास अधिवेशन में तथा 'सरोजनी नायडू' कानपुर में होने वाले 42वें अधिवेशन में अध्यक्ष पद पर सुशोभित हुई। 1958 में 'श्रीमती इंदिरा गाँधी' कांग्रेस की राष्ट्रीय अध्यक्ष निर्वाचित हुई थी। 1975 में अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष एवं 8 मार्च 1992 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस का आयोजन किया गया अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं का महत्व समझा गया। महिलाओं के विकास के लिए संगठन स्थापित किये गये, विभिन्न कानून बनाए गये, संविधान द्वारा समानता, स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान किया गया। 1992–93 में राष्ट्रीय महिला कोश की स्थापना हुई, 2004 में सराहनीय कार्यो हेतु विश्व की तीसरी सशक्त महिला का खिताब पाने वाली सोनिया गांधी, सुषमा स्वराज, मायावती, विजयराजे सिंधिया, जयललिता आदि भी राजनीतिक क्षेत्र की सफल महिलाएँ हैं, इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश की तीन बार मुख्यमंत्री रही सुश्री 'कु0 मायावती जी' ने कई योजनाओं के अन्तर्गत महिला, सशक्तीकरण का प्रयास किया जैसे स्वास्थ्य सुविधा के अन्तर्गत माध्यमिक कक्षाओं की छात्राओं का परीक्षण करवाना, शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर छात्राओं की छात्रवृत्ति सम्बन्धी, सीनियर सिटीजन निराश्रित महिलाओं जिसमें 60 वर्ष से अधिक आयु की महिलाओं के पेंशन सम्बन्धी सुधार आदि करके बहुमूल्य योगदान दिया है। इसके साथ ही अपने 53वें जन्म दिवस के अवसर पर 15 जनवरी 2009 को कई कल्याणकारी योजनाओं का शुभारम्भ किया जैसे महामाया गरीब बालिका आशीर्वाद योजना' तथा सावित्री बाई फूले बालिका शिक्षा योजना आदि।

वर्तमान भारत के विभिन्न क्षेत्रों में महिलायें प्रशासन के छोटे से लेकर ऊँचे–ऊँचे पदों पर, सरपंच से प्रधानमंत्री के पद पर, पुलिस से सेना तक विभिन्न पदों पर, अध्यात्म से विज्ञान तक, अध्ययन से अध्यापन तक, समाज कल्याण के विभिन्न पदों पर कार्यरत होकर अपना योगदान दे रही हैं इसके साथ हीवह खेल जगत में, अन्तरिक्ष क्षेत्र में विज्ञान व कला क्षेत्र में भी ख्याति अर्जित कर रही है। विश्व स्तर पर भारत का नाम रौशन करने वाली तथा महिला

सशक्तीकरण की पहचान कराने वाली विभूतियों में प्राचीन कालीन गार्गी, घोषा, अपाला, आदि मध्यकाल में रजिया, नूरजहाँ, मुमताज, मीराबाई आदि आधुनिक काल में एनीविसेंट, सावित्री बाई फूले आदि। 1875 से पहले भी भारतीय महिलाएँ समर्पित होनी प्रारम्भ हो गई थी। जिनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैः– देवी चौधरानी, चेनम्मा महारानी लक्ष्मीबाई, दुर्गा भाभी, बेगम हजरतमहल आदि न जाने कितनी ही महिलाओं ने तन–मन–धन से राष्ट्र की आजादी के लिए अपने को न्यौछावर कर दिया। इसके साथ ही हम देखते हैं कि प्रतिभा पाटिल, शीला दीक्षित, ममता बनर्जी, सुषमा स्वराज, निर्मला सीतारमण, स्मृति ईरानी, हेमा मालिनी, जया प्रदा आदि राजनैतिक पदों पर विराजमान है। अंतरिक्ष की ऊँचाईयों को छूकर सैर करने वाली चावला व सुनीता विलियम्स भारत की ही मूल निवासनी हैं। इसी प्रकार खेल जगत में अपना सिक्का जमा देने वाली पीटी ऊषा, कर्णम मल्लेश्वरी, सानिया मिर्जा, साइना नेहवाल आदि है। साहित्य के क्षेत्र में सुभद्रा कु0 चौहान, महादेवी वर्मा, मैत्रीय पुश्पा, मृदुला गर्ग, अमृता प्रीतम, पुष्पा भारती आदि सांस्कृतिक क्षेत्र में भी भारत की महिलाएँ अपनी योग्यता व प्रभुत्व को सिद्ध कर रही है। जैसे 'लता मंगेश्कर' 'अनुराधा पोरवाल', डांस डायरेक्टर 'सरोज खान' नृत्यागंना 'सितारा देवी', सोनल मान सिंह तथा ऐश्वर्या राय, सुश्मिता सेन जो मिसवर्ड तथा यूनीवर्स रह चुकी हैं अभिनय के क्षेत्र में अपनी कला का प्रदर्शन कर रहीं हैं। इसके साथ ही भारत की प्रथम आई0पी0एस0 अधिकारी किरन बेदी तथा वाइस एडमिरल पुनीता अरोडा भी युवा पीढ़ी की महिलाओं के लिए प्रेरणा स्त्रोत है।

21वीं सदी महिलाओं की सदी घोषित हो चुकी है। नारी उत्थान में ही परिवार, समाज व राष्ट्र का उत्थान निहित होता है। अतः नारी की स्थिति में परिवर्तन से उनकी सन्तानें जो भावी नागरिक है देश को विकासशील से विकसित बनाने में अपना योगदान दे सकेगी। नारी को शिक्षित करके समाज को पंगु होने से बचाया जा सकता है। आज नारी अपनी विविध आयामी प्रतिभा के कारण प्रत्येक क्षेत्र में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान बना चुकी है। अब वह पुरुषों के अधीन न होकर उनके साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर उनके कार्यो में सहयोग प्रदान कर अपना हर उत्तरदायित्व निभा रही है।

❑❑

नई सदी में स्त्री चिन्तन के सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक आयाम

डॉ0 निर्मल सिंह यादव
आकाशवाणी के सामने ठाठीपुर गाँव,गाँधी रोड, ग्वालियर (म.प्र.)

भारत अपनी स्वतन्त्रता के सात से अधिक दशक बिता चुका है और इन वर्षों में भारत में बहुत कुछ बदला।विश्व के सबसे मजबूत एवं बड़े गणतंत्र ने सभी को अपनी इच्छा से जीने की, सोचने की, विचारों को व्यक्त करने की स्वतन्त्रता दी है। एक वर्ग ऐसा भी है जो आज भी इन सुखानुभूति से वंचित है –और वह वर्ग है स्त्रियों का।

नारी के सम्बन्ध में मनु का कथन ''पितारक्षति कौमारे.........न स्त्री स्वातंत्र्यम् अर्हति।'' वहीं पर उनका कथन ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'', भी दृश्टव्य है वस्तुतः यह समस्या प्राचीन काल से रही है। इसमें धर्म, संस्कृति साहित्य, परम्परा, रीतिरिवाज और शास्त्र को कारण माना गया है। भारतीय दृश्टि से इस पर विचार करने की की जरूरत है। पश्चिम की दृश्टि विचारणीय नहीं। भारतीय सन्दर्भों में समस्या के समाधान के लिए प्रयास हो तो अच्छा है। भारतीय मनीशा समानाधिकार, समानता, प्रतियोगिता की बात नहीं करती वह सहयोगिता सह धर्मिती, सहचारिता की बात करती है। इसी से परस्पर सन्तुलन स्थापित हो सकता है। साहित्य में सर्वाधिक शब्दावली नारी वाची है। नारी के अनेक तत्सम और तद्भव शब्द अन्य शब्दावली की तुलना में सर्वाधिक है। उन शब्दों के पीछे नारी के सौन्दर्य, स्वभाव, गुण, प्रकृति, सामाजिक, पारिवारिक दायित्व शब्दावली में देखा जा सकता है।

वस्तुतः जब तक मानसिकता में परिवर्तन नहीं होता तब तक पूर्ण विकास की परिकल्पना असम्भव है। केवल भारत की ही नहीं अपितु विश्व का ढाँचा बदलना होगा। तभी सम्पूर्ण उत्थान की बात कही जा सकती है। अन्यथा भारतीय माडल ही हमारे लिए अधिक अनुकूल और उपयुक्त है। क्योंकि परिवार रूपी रथ के संचालन के लिए महिला और पुरूश की समान आवश्यकता है। इस सहभागिता से ही व्यवस्था बन सकती है अन्यथा टूटन होना स्वाभाविक है।

स्त्री सर्वशक्तिमान ईश्वर की वह अनुपम चमत्कृति है जो लगभग अस्तित्वहीन शुक्र बिन्दु को धारण कर, नौ माह तक गर्भ में उसका पोषण कर और तदोपरान्त उसे शिशु के रूप में जन्म देकर अस्तित्व और इयत्ता के द्वार तक पहुँचाती है। सृष्टि–निर्माता भी स्त्री के अभाव में सृष्टि रचना नहीं कर सकता। इसीलिये किसी ने लिखा है कि ''रत्नगर्भा मेरे पास इक कोख है,जो बड़ी है किसी तीर्थ से धाम से।''

स्त्री के मातृस्वरूप की वन्दना विश्व के सभी धर्मों एवं संस्कृतियों ने एक स्वर में की है। ''भारतीय संस्कृति प्रत्येक स्त्री को माँ मानकर उसकी पूजा करती है और जननी, जन्मभूमि, पालनहारी सभी को माँ स्वरूप मानती है।'' स्वयं ईश्वर को भी इस धरा पर अवतरित होने के लिये माँ को ही माध्यम बनाना पड़ता है –''देवों ने अमृत पान किया,उस पर भी प्यासे प्राण रहे,पीने को माँ का मधुर दूध,भू पर लेते अवतार रहे।''

जिसका स्नेह–सिक्त चुम्बन सारे तापों का शमन करता है, जिसका वरदानी कर मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है और जिसके चरणतल में स्वर्ग स्थित है, वह माँ ही तो है – ''जिसका इक स्नेह भरा चुम्बन, जन्मों की सारी जलन हरे, जिसके चरणों की एक छुअन,पलभर में नर को अमर करे, जिसका वरदानी हाथ अगर, आ जाय शीश पर एक बार, तो मुक्ति सहज मिल जाती है, खुल पड़ें स्वर्ग के सभी द्वार, वो है माँ।''

यह कैसी विडम्बना है कि जिस नारी को प्रकृति ने सृष्टि का आधार बनाया है, जो असीम क्षमताओं की प्रबल धनी है, जिसके बारे में प्रायः कहा जाता है कि हर महान व्यक्ति के पीछे एक महिला ही होती है । उसी महिला के एक बड़े भाग को दिन प्रतिदिन दयनीय दुर्दशा से दो चार होना पड़ता है । यदि स्त्री जीवन के स्याह पक्ष पर नजर डालें तो बराबरी अभी तक नहीं मिल पाई है।

भारत में निम्न, उच्च, मध्यम और आदिवासी रूप में नारी का विभाजन दृष्टव्य है। उनके कार्य उनका ऐश्वर्य, श्रमशीलता गरीबी सर्वत्र दिखाई पड़ती है। इस दृष्टि से विचार करें कि संसार में कहीं भी उनकी स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। कुछ महिलाओं की स्थिति ठीक है जिनमें वे नेता, डॉक्टर, अफसर, इंजीनियर आदि के रूप में शोपीस के तौर पर प्रस्तुतीकरण हो रहा है। निचले वर्ग की स्त्रियाँ सभी देशों में विपन्नावस्था में हैं। तथा उन्हें सर्वाधिक श्रम करना पड़ता है। उनकी आर्थिक स्थिति दयनीय है। जबकि विश्व का आंकड़ा है कि संसार में सर्वाधिक श्रम महिलाएँ ही करती हैं। किन्तु उसका मूल्य श्रम के अनुरूप नहीं मिलता है। इसके साथ ही दैहिक शोषण भी होता है। महिला संगठनों ने समस्यायें तो उठाई हैं किन्तु उनके समाधान का सर्वसम्मत समुचित समाधान का मॉडल प्रस्तुत नहीं किया। उनके टकराव का कारण वैयक्तिक है। वस्तुतः इस समस्या पर गहराई से विचार करने की आवश्यकता है केवल विद्रूपताओं को उजागर करने से लाभ नहीं होगा। उनमें सुधार और संशोधन के रंग भरने होंगे। अभद्र शब्दावली से बचना होगा।

एक अमरीकी अनुसंधानकर्ता लेखक ने यह निष्कर्ष निकाला था कि महिला की क्षमताएँ लगभग हर क्षेत्र में जैसे शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक इत्यादि में पुरूष की तुलना में कहीं अधिक प्रबल है । वास्तविकता तो यह है कि सम्पूर्ण मानव जाति समाज, देश और विश्व यहाँ तक कि सम्पूर्ण सृष्टि का भविष्य महिला की क्षमाताओं पर ही निर्भर है। स्पष्ट है यदि नारी का समाज में उचित स्थान, आदर और सम्मान नहीं मिला तो सम्पूर्ण सृष्टि भयावह भूचाल की चपेट में होगी और मानव सभ्यता तहस नहस हो जायेगी।

अपना वाजिब अधिकार पाने के लिये पश्चिम में स्त्री–विमर्श का सूत्रपात हुआ। हमारे यहाँ भी स्त्री–स्वातन्त्र्य की बात उठी। पर यह बात प्रायः उसके देह स्वातंत्र्य की ही हिमायत करती रही। स्त्री स्वातन्त्र्य का यह आन्दोलन देह की स्वच्छन्दता का आन्दोलन बन गया। बाजारवाद ने स्त्री के प्रत्येक अंग को पण्य बना दिया। पुरुष की दृष्टि स्त्री की देह से ऊपर उठने को तैयार नहीं। स्त्री–देह का दर्शन ही सम्पूर्ण स्त्री–दर्शन के रूप में स्वीकृत हो गया।

संसार की सभी जातियाँ नारियों का समुचित सम्मान करके ही महान् हुई हैं। जो जाति नारी का सम्मान करना नहीं जानती, वह न तो अतीत में उन्नति कर सकी और न आगे उन्नति कर सकेगी। स्त्री–शिक्षा तथा नारी स्वातंत्र्य के प्रबल समर्थक स्वामी विवेकानन्द का यह कथन कवि की इन पंक्तियों में हमें चरितार्थ होता दृष्टिगोचर होता है :– जग जीवन के पुण्य क्षेत्र को, जिसने अमृत से सिंचित कर, मरूथल से उद्यान कर दिया, उस करुणा की दिव्य मूर्ति से, ईश्वर को भी प्यार अधिक है, पुरुषों की तुलना में जग में, नारी का अधिकार अधिक है।

स्त्री विमर्श केन्द्र में मुख्यतः शामिल हैं कि 'स्व' के अन्तर्गत देह, मन और अर्थ तीनों की आत्मनिर्भरता। नई सहस्राब्दी का स्त्री विमर्श घोर यथार्थ परक होने के साथ–साथ आक्रामक भी है। इसके मूल में सम्पूर्ण चेतना के स्थापित होने का आत्मबल समूह में हैं ''मन ही मन दोहराया हिम्मते मर्दा, मद्दे खुदा! धत् ये मुहावरा तो मर्दों के लिये हैं, स्त्रियों से जुड़ा कुछ मिलता क्यों नहीं?क्यों याद नही ंआ रही दूसरी सटीक कहावत?''

स्त्री और मुक्ति आज भी नदी के दो किनारे की तरह है जो कभी मिल नहीं पाती सतही तौर पर देखा जाये तो लगता है कि भारत ही नहीं, विश्व पटल पर अपनी पहचान बनाती हुई स्त्रियों ने अपनी पुरानी मान्यतायें बदली हैं। आज की स्त्री की अस्मिता का प्रश्न मुखर होता जा रहा है। अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिये संघर्ष करती हुई स्त्रियों ने लम्बा रास्ता तय कर लिया है, परन्तु आज भी एक बड़ा हिस्सा सदियों से सामाजिक अन्याय का शिकार है। ''जब–जब स्त्री अपनी उपस्थिति दर्ज कराना चाहती है तब तब जाने कितने रीति–रिवाजों,

परम्पराओं पौराणिक आख्यानों की दुहाई देकर उसे गुमनाम जीवन जीने पर विवश कर दिया जाता है।''

आज जरूरत है सम्पूर्ण समाज की मानसिकता में बदलाव के लिए क्रान्तिकारी सोच की आवश्यकता है यही नहीं क्रान्तिकारी उपायों एवं क्रान्तिकारी जागरूकता की भी आवश्यकता है । सम्पूर्ण समाज को युद्ध स्तर पर इन सभी बुराईयों से निपटना होगा । अपराधी प्रवृत्ति को समाज से समूल उखाड़ फेंकने के सभी सम्भव उपाय किये जाएँ और इस समस्या से एकजुट होकर निपटा जाये, वहीं निम्न सुझावों और उपायों को शीघ्रतम अमलीजामा पहनाने के लिए गंभीरता से विचार किया जाये।

अतः यह कहा जा सकता हैं कि नवीन सामाजिक आर्थिक परिदृश्य में महिलाओं के शोषण के लिए पुरुष या केवल सामाजिक व्यवस्था को दोष देना ही ठीक नहीं है यह भी सच्चाई है कि इन सबका कारण नारी अशिक्षा, उसका दब्बूपन, उसमें दक्षता की कमी तथा निर्णय न लेने की स्थिति आदि हैं। इस सबसे उबरने के लिए महिलाओं को शिक्षित होकर समाज में अपना एक नया मुकाम स्थापित करना होगा।

सन्दर्भ संकेत

1. भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास –सत्यकेतु।
2. वैदिक साहित्य का इतिहास – वल्देव उपाध्याय।
3. नारी अंक, गीता प्रेस, गोरखपुर।
4. मन–मरूस्थल बोल, बलवीर सिंह 'करुण'
5. मधुमती, अगस्त, 2006
6. गीत कपोत पूछते हैं, बलवीर सिंह 'करुण'
7. नारी मुक्ति चेतना व महिला कथाकार, डॉ0 हेमा देवरानी
8. कविता का कहानीपन, अनामिका वागर्थ, मार्च 2006, सं0 रवीन्द्र कालिया
9. स्त्री विमर्श और सामाजिक आन्दोलन– डॉ0 राजनारायण
10. इण्डिया टुडे, सितम्बर 2010
11. जनगणना रिपोर्ट, 2001
12. हिन्दुस्तान टाइॅम्स, जनवरी 2011
13. भारत सरकार रिपोर्ट, 2000
14. महात्मा गाँधी, यंग इण्डिया

❑❑

उपनिषत्सु आत्मविज्ञानम्

डॉ0 प्रत्यूष वत्सला द्विवेदी
असिस्टेंट प्रोफेसर– संस्कृत विभाग
डी0बी0एस0 कालेज, कानपुर

उपनिषदां महत्त्वम् अप्रतिममस्ति? न केवलं भारतीयाः अपितु पाश्चात्त्याः विद्वांसोऽपि ह्युपनिषदां महत्त्वम् अंगीकुर्वन्ति। त्रिविधतापपीडिताः प्राणिनः उपनिषदां चिन्तनेन तद्योगेन च परां शान्ति लब्धुं शक्नुवन्ति। ये खलु आधिव्याधिसमायुक्ताः संसारसागरनिमग्नाः जनाः सन्ति ते ह्युपनिषज्ज्ञानेन शाश्वतं पदं प्राप्तुमर्हन्ति। उपनिषदां ज्ञानं दिव्यम्। उपनिषद्भास्कररश्मिभिः लोके जनः सहसैव ज्ञानालोकं प्राप्य सन्मार्गगामी भवितुमर्हति। अभ्युदयनिः श्रेयसावाप्तये उपनिषदामवलम्बनमनिवार्यत्वेन मतम्। भारतीय–दर्शने सर्वत्र आसां प्रभावः स्फुटमवलोक्यते। इद्मेव कारणमस्ति यत् सर्वे बुधाः, मनीषिणः, महात्मानः, धर्माचार्याः, तत्त्वज्ञाः, आचारशिक्षकाः, धर्मनिदेशकाः, विविधविद्याकोविदाश्च उपनिषदां महत्त्वं सादरमुररीकुर्वन्ति। सम्प्रति तु भवन्तु हिन्दवः, मन्ये, त ईशायिनः, सन्तु ते मौहम्मदाः सर्व एव जना उपनिषदां गुणगायनं तन्वन्ति।

'उपनिषत्'–शब्दस्यार्थः–'उप+नि–उपसर्गपूर्वकाद् विशरणगत्यवसाद्नार्थकात्' 'षद्लृ' (सद्) धातोः क्विप्प्रत्यये कृते 'उपनिषद'–शब्दो निष्पद्यते, उप–गुरोः समीपे, निःनिश्चयेन, सद्–स्थानम्अयमाशयो यद्, ब्रह्मज्ञानार्थं–वास्तविकतत्त्वज्ञानार्थं गुरोः समीपे संस्थितिरेव 'उपनिषद्', इत्युच्यते। उपनिषच्छब्दः 'पराविद्येति' पदेनापि व्यपदिश्यते। एषा विद्या 'ब्रह्मविद्येति' संज्ञयापि प्रसिद्धास्ति। 'सद्धातोः' अर्थत्रयमवलम्ब्य उपनिषच्छब्द्स्य मीमांसा एवं क्रियते –

1. या संसारकारणभूताम् अविद्यां नाशयति, 2. यया ब्रह्मज्ञानं ब्रह्मप्राप्तिर्वा जायते, 3. यया च मानवदुःखोच्छेदो भवति सा विद्या उपनिषत्।

जगद्गुरुः शंकराचार्यः अविद्यानाशनं दुःखोच्छेदनं ब्रह्मणोपलब्धिः चेत्यर्थत्रयम् आश्रित्य उपनिषच्छब्दस्य ब्रह्मविद्योतकतां प्रतिपाद्यति। ।।1।।

मुक्तिकोपनिषदि कथितमस्ति– 'सर्वोपनिशदां मध्ये सारमष्टोत्तरं शतम्। अनेन वाक्येन ज्ञायते यद् उपनिषदः अष्टोत्तरशततोऽप्यधिकाः। सम्प्रति विद्वांस उपनिषदां संख्या शतद्वयर्प्यन्तं कथयन्ति। अत्रापि च एकादशोपनिषद् एव प्रामाणिकाः मताः। ताः ईश–केन–कथ–प्रश्न–मुण्डक–माण्डूक्य–तैत्तरीय–एतरेय–छान्दोग्य–बृहदारण्यक–श्वेताश्वतराः। आचार्यः शंकरोऽपि एतासामेव भाष्यं लिलेख। एताः उपनिषदः केनापि वेदेन सह सम्बद्धाः सन्ति। तत्र ऋग्वेदीयोपनिषत्सु ऐतरेयकौषीतकी, कृष्णयजुर्वेदीयोपनिषत्सु तैत्तिरीय–महानारायण– कठश्वेताश्वतरमैत्रायण्युपनिषदः, शुक्लयजुर्वेदीयोपनिषत्सु ईशावास्योपनिषद् बृहदारण्यकं च, सामवेदीयोपनिषत्सु छान्दोग्यकेनोपनिषदौ एवमेवाथर्ववेदीयोपनिशत्सु च मुण्डकमाण्डूक्यप्रश्नोपनिषदः प्रथिताः सन्ति।

शङ्कराचार्यभाष्यविभूषिता उपनिषदो हि भृशं महत्त्वं भजन्ते। ।।2।।

उपनिषदां प्रतिपाद्यो विषयोऽस्त्यात्मा। संहितात आरण्यकं यावद् ब्रह्म आत्मनो भिन्नत्वेन प्रतिपादितमस्ति। उपनिषत्सु पुनः तयोरैक्यं प्रतिपादितमस्ति। अत्रात्मतत्त्वस्य परिपूर्णता वर्णितास्ति। एष आत्मा सर्वव्यापी वर्तते। तस्य सर्वत्र सत्ता वर्तते। तस्मिन्नेव समस्तजगत्प्रपञ्चस्य लयो भवति। ततो व्यतिरिक्तं किमपि वस्तु नास्ति।

''स वा अयमात्मा ब्रह्मविज्ञानमयो मनोमयः प्राणमयश्चक्षुर्मयः पृथिवीमयः श्रोत्रमय आपोमयो वायुमय आकाशमयस्तेजोमयोऽतेजोमयः काममयोऽकाममयः क्रोधमयोऽक्रोधमयः धर्ममयोऽधर्ममयः सर्वमयः....'' ।।3।।

इशावास्योपनिषद् आत्मतत्त्व विश्लेषणं कृतमस्ति। तत्र आत्मतत्त्व विषय कथितमस्त –

अनेजदेकं मनसो जवीयोनैनदेव आप्नुवन् पूर्वमर्शत्।

तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत् तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति। ।।4।।

मुण्डकोपनिशद् आत्मनः साक्षात्काराय (ऊँ) इत्यस्य ध्यानस्य संस्तुति कृतास्ति। आत्मा सत्यरूपेण विराजते। अस्य दर्शनं सिद्धयोगिना एव कर्तुमर्हन्ति। अयं ज्योतिर्मया शुभ्रात्मा शरीरे विराजते। एष आत्मा इन्द्रियेरग्राह्यः। अयं न इन्द्रिये न तपसः नाऽपि कर्मणा च ग्राह्यः। ज्ञान प्रसादेन पुरुषः विशुद्ध चित्तो जायते। तदैव सः ध्यान योगेन निष्कलस्य आत्मतत्त्वस्य साक्षात्कारं कर्तुशक्नोति।

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा

नान्यै देवैरत्तपसा कर्मणा वा।

ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्व

स्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः।। ।।5।।

अत्र जीवात्मनः नैकाः विशेषताः वर्णितः सन्ति। अयं जीवात्मादिव्याः अमूर्तश्चं। अयं प्राणमनोवुद्धिभि परोवर्तते। जीवात्मा लोके स्थितोऽपिअसगः।

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषाः सवाह्यभ्यन्तरो ह्यजः।

अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः।। ।।6।।

श्वेताश्वतरोपनिषदि आत्मा नित्य स्वरूपेण स्वीकृतः। तस्य कदापि जन्म न भवति सः अजा शाश्वतः नित्यश्च अयं अजः जीवात्मा त्रिगुणात्मिकायाः प्रकृतेः यया जगत् सर्वमिदं प्रसूयते तत्र निर्मित पदार्थानाम् उपभोगं करोति। अत्र स्फुटीक्रीयते यत् ईश्वरः सर्वज्ञः जीवश्च अल्पज्ञः। इमौ उभौ अजौ अतएव विकारौ न स्तः। आभ्यां भिन्नः प्रकृतिरेव पुरुषस्य उपभोगं साधनमस्ति।

ज्ञाज्ञौ द्वावजावोशनीश वैव ह्येका भोकतृभोग्यार्थ युक्ता। ।।7।।

प्रश्नोपनिषदि यत्र जीवात्मा दृष्टा स्पृष्टा च इति उपाधिभ्यां विभूषिता कृताः। तत्रैव अयं श्रोत्र, घ्रात्र, रसयितृ प्रभृति रूपैरभिहितः। संस्कारवत्तवाच्च कृर्त्ता इत्यभिधीयते।

एष हि द्रष्टा, स्प्रष्टा श्रोता ध्रातारसयिता मन्ता। ।।8।।

माण्डूक्योपनिषद् आत्मा स्वभावतः बोधस्वरूपैण प्रतिपादितोऽस्ति। अयम् आत्मा नित्य शान्त प्रभृति रूपैः स्थितोऽपि अजः विशुद्धश्च अस्ति।

आदि बुद्धा प्रकृत्यैव सर्वे धर्माः सुनिश्चिता।

यस्यैव भवन्ति क्षान्ति सोऽमृतं वाच्यकल्पयते। ।।9।।

ऐतरेयोपनिषद अस्मिन् विषये विविधा प्रश्ना कृता सन्ति। अस्मिन् विषये कथिमस्ति यत् प्रज्ञा संज्ञकस्य मनसाः नैकानि नामानि सन्ति।

यदेतद्धृदयं मनश्चैतत्। संज्ञानमाज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं मेधा दृष्टिर्धृतिर्मतिर्मनीष। जतिः स्मृतिः संकल्पः क्रतुरसुः कामो वष रति सर्वाण्यैवैतानि प्रज्ञानस्ये नामधेयानि भवन्ति। ।।10।।

अत्र ईश्वरेव उपास्यरूपेण निरूपितः अनेन स्फुटी भवति। आत्मा ब्रह्मणि समाहितोऽस्ति। अयं प्रज्ञान रूप आत्मेन ब्रह्म कथ्यते। अयमेव इन्द्रं अयमेव प्रजापति अयमेव समस्त देवाः पृथ्वी–जल–तेजो–वायु–आकाश रूपेण विराजते। एष ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वे देवा इमानि च पञ्च महाभूतानि पृथिवी .... तत्प्रज्ञानेत्रम् प्रज्ञाने प्रतिष्ठित प्रज्ञा–नेत्रो लोकः प्रज्ञा प्रतिष्ठां प्रज्ञानं ब्रह्म। ।।11।।

केनोपनिषद आत्मज्ञानाय प्रश्नोऽयं प्रस्तुतः यत् इदं मनः केन प्रेषितं विषयान प्रति प्रवर्तते। श्रोत्र, वाक्, चक्षु प्राण प्रभृतयः केन प्रेरितः स्वकार्येषु प्रवृत्तः भवन्ति। अस्य प्रश्नस्य एवं समाधानं क्रियते यत् यः मनसोऽपि मनः

श्रोत्राणामऽपि प्राणः, चक्षुषाणाऽपि चक्षुः स एव आत्मा।

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचे ह्व वाचंस उ प्राणस्य प्राणः।

चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्मात्लोकादमृता भवन्ति। ।।12।।

कठोपनिषदि आत्मतत्त्वस्य सुन्दरं विश्लेषणं कृतमस्ति। आचार्येस्यम् गतिहीनः उपदिष्टाः। अयम् अतिसूक्ष्मः दुर्विज्ञेयष्श्च –

न नरेणावरेण प्रोक्त एष

सविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः।

अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति,

अर्णायान्ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात्। ।।13।।

तत्र कथिमस्ति यद्ऽयम आत्मा अज' नित्यः, पुराणाः शाश्वतः च अस्ति।

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं

कृतश्चिन्न बभूव कश्चित्।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो

न हन्यते हन्यमाने शरीरे। ।।14।।

अयं आत्मा अणोरणीयान महतो महीयान। आत्मा जन्तोः गुहायां निहिता। निष्काम पुरुषः इन्द्रियाणां प्रसादेन आत्मनो महिमान पश्यति। शोकरहितश्च जायते।

अणीरणीयानन्महत्तो महीयानात्मास्य

जन्तोर्निहितो जुहायाम्।

तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमा नभात्मनः ।।15।।

अस्मिन् विषये बृहदारण्यकोपनिषदि एवं कथयति यद् आत्मा दिव्य दिव्यः अमूर्तश्च सः प्राण मनो बुद्धिभि परः लोकेस्थितोऽपि असंगो वर्तते।

स वा एष एतस्मिन्संप्रसादे रत्वा चरित्वा

दृष्ट्वैव पुण्यं च पापं च।

पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्याद्वति स्वप्नायैव

स यन्तत्र किंचित्पश्यत्यनन्वागतस्तेन

भगत्यसङगने ह्ययं पुरुश। ।।16।।

एवं दृश्यते यद् उपनिशत्सु आत्मतत्वस्य निरूपणं बहुधा कृतमस्ति। उपनिषदः विविध दार्शनिक तत्त्वानां विवेचनं कृतम अतः प्राच्याः पाश्चात्याश्च विद्वासः उपनिषदां बहुधा प्रशंसां कृन्तवन्तः सन्ति।

इद्मेव कारणमस्ति यत् सर्वत्र उपनिषदां समादरोऽभूत्। शाहजहांसुतो दाराशिकोह उपनिषदामनुवादः पारसीकभाषायां विद्धे एवं तस्योपनिषत्प्रेम जगति ख्यातं वर्तते। एक्वेटिल दुपेरमहोदयः आसामनुवादं लैटिनभषायामकरोत्। श्री जे0डी0 लंजईनासस्य उपनिषत्साधनां संवीक्ष्य को न खल्वाश्चर्यान्वितो भवति। बेवरमहोदस्य उद्योगेन उपनिषदां प्रचारः पाश्चात्येदेशऽभवत्। अनेन उपनिषदामनुवादः जर्मनभाषायां कृतः। मैक्समूलरमहोदयः उपनिषदः आंग्लभाषायामनुववाद। शर्मण्यदेशीयः सुप्रसिद्ध दार्शनिकः शापेनहावरमहाभागः उपनिषदां प्रशंसाम् एवं चकार –

"It has been solace of my life and will be the solace of my death."

हन्त! सम्प्रति वयं भारतीयाः ततो पराङ्मुखाः स्मः। नोचितमेतदस्माकं भारतीयानां कृते। भारतस्य गौरवरक्षणार्थ

सम्प्रति उपनिषदामध्ययनम् अपेक्षितमस्ति। अतोऽस्माभिरुपनिषदाम् अध्ययनं कर्त्तव्यम्।

उपनिषत्सु विशिष्टं आध्यात्मिकं ज्ञानं वर्धते। अत्र बहवः विद्वांसः शोधकार्यं कृतवन्तः। अत्र नास्ति सन्देहः यत् उपनिषत्सु यद् विद्यं ज्ञानं वरीवर्तु तादृशं ज्ञानं संसारे क्वचिदऽपि न दृश्यते। अत्र आत्मनः परब्रह्मणः जीवानां जगतः च यत् स्वरूपं प्रतिपादितं वर्तते। तत् निश्चयेन आश्चर्यजनक सत्यमेव कथिमस्ति तत्त्वपरिजाते एवं प्रतिपादिमस्ति–

भान्ति विद्या समस्ताश्च भावाश्च तथा
सच्चिदानन्दरूपं परब्रह्मणः।
यत् समं नास्ति ज्ञानं क्वचित् भूतले
तं विद्यां तु नत्वा प्रमोदामहे। ।।17।।

उपनिषदच्चन्द्रिकायां उपनिषदां महत्त्वं बहुधा वर्णितरस्ति। ये जनाः परं तत्वं ज्ञातु इच्छन्ति मोक्षान्ति च कामयन्ते। तेः उपनिषदाम् अध्ययनं सावधानेन मनसः करणीयम्। वस्तुतः उपनिषदः विद्यायाः दिव्यः मञ्जुषा सन्ति। यासां प्रकाशे सर्व विधं ज्ञानं दृश्टुं शक्यते। अतः ज्ञानमार्गे तत्वमार्गे च उपनिषदः विशेषं महत्त्वं भजन्ते। उपनिषिदां प्रसादं प्राप्य मानवः भ्रशं मोदते।

सन्दर्भ

1. उपनिषद् पारिजत् (2/15, 16)
2. कठोपनिषद् भूमिका – डॉ0 शिवबालक द्विवेदी, ग्रन्थम प्रकाशन, कानपुर (पृष्ठ संख्या– 4, 5)
3. बृहदारण्यकोपनिषदि
4. ईश0 उ0 मन्त्र 4 पृ0 21
5. मु0 (3/1/8)
6. मुण्ड0 उ0 (2/1/2)
7. श्वेता0 उ0 (1/9)
8. प्रश्नो उ0 (4/9)
9. माडूक्य0 उ0 अत्यन्तशान्ति प्रकरण मंत्र 92, पृष्ठ 267
10. ऐतरेयो0 उ0 (3/1/2)
11. ऐतरेयो0 उ0 (3/1/3)
12. केन0 उ0 (1/2)
13. कठ0 उ0 (1/2/8)
14. कठ0 उ0 (1/2/18)
15. कठ0 उ0 (12/20)
16. वृहदा उ0 (4/3/15)
17. तत्वपारिजातम् (3/19)

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

31

राष्ट्रवाद, प्रसाद और स्पृहणीय अवज्ञा की अवधारणा

डॉ0 ललिता यादव
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी
एन0 ए0 एस0 कॉलेज, मेरठ

आजादी के लम्बें अंतराल के बाद 'राष्ट्रवाद' एक व्यापक बहस का विषय बना हुआ है। तमाम राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठियां, अखबारों के संपादकीय और पत्र–पत्रिकाओं के आलेख इस मुहिम में शामिल हैं। 'प्रसाद के साहित्य में राष्ट्रीय स्वर' विषयक एक राष्ट्रीय संगोष्ठी को राष्ट्रवादी बहस की श्रृखंला की एक कड़ी के रूप में देखते हुए, प्रसाद के नाट्य साहित्य के पृष्ठों को पलटने के क्रम में कुछ ऐसे सूत्र हाथ लगे कि वर्तमान संदर्भों में प्रसाद के नाटकों में निहित राष्ट्रवाद की प्रासंगिकता का विश्लेषण एवं विवेचन एक जरूरी विमर्ष प्रतीत होने लगा। ''राष्ट्रनीति दार्शनिकता और कल्पना का लोक नहीं है। इस कठोर प्रत्यक्षवाद की समस्या बड़ी कठोर होती है।''[1] इस सूत्र वाक्य के रचयिता जयशंकर प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों में देश प्रेम अथवा राष्ट्रवाद की धारा अविरल रूप से प्रवाहित है। न कोई शोर गुल, न रुदन। जिस शाइस्तगी से प्रसाद राष्ट्र के मुद्दों पर अपनी बात कहते हैं, आज के गलाकाट भौंपू राष्ट्रीयता के दौर में अर्थपूर्ण एवं प्रासंगिक हो उठती है। हालांकि यह भी सच है कि प्रसाद के नाटक पराधीनता की जिस कालावधि (1907–1933) में लिखे गए, उस समय राष्ट्रवाद की परिकल्पना आज के प्रचलित अर्थों में नहीं थी। फिर भी वह अपने नाटकों में इतिहास के माध्यम से आधुनिक युग की समस्याएं, राष्ट्रीय चिंतन एवं स्वातंत्र्य के प्रश्नों को गम्भीरता से उठाती हैं। ''धार्मिक मतवाद, जाति–उपजातियों के झगड़े, सांप्रदायिक समस्याएं, धर्मोन्माद, देश के छोटे–छोटे टुकड़ों में विभाजन की प्रवृतियों के बहुपक्षीय समाधान नाटकों में खोजने का प्रयत्न उनकी विशेषता है।''[2] आपने लिखा है–'' इतिहास में प्रायः घटनाओं की पुनरावृत्ति होते देखी जाती है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि इसमें कोई नयी घटना होती ही नहीं किन्तु असाधारण नयी घटना भी भविष्य में फिर होने की आशा रखती है।''[3] प्रसाद के समय का भारत विषम सांस्कृतिक राजनीतिक संकट का काल था। आज उसके विपरीत भारत सांस्कृतिक राजनीतिक वर्चस्व स्थापित करने की जद्दोजहद के दौर में है। डॉ0 मंजुला दास कहती हैं– ''वैचारिक क्रांति की सतत जागरूकता उनके नाटकों की अंतश्चेतना कही जाने योग्य है, जो क्रांति के तत्व का अग्रभाव है।''[4] हजारी प्रसाद द्विवेदी अनुसार ''प्रसाद के नाटकों से भारतवर्ष की अंतश्चेतना के दर्शन का सिंहद्वार अनावृत हो गया है।'' इस दृष्टि से वर्तमान संदर्भों में प्रसाद का मार्गदर्शन अवश्य कुछ मार्ग प्रशस्त करता है।

''भारत की राष्ट्रीयता उदार भावों से युक्त रही है तथा विदेशी आक्रान्ताओं की संस्कृति के सद्‌गुणों को भी इसने प्रारम्भ से ही ग्रहण किया है। यह गर्व की बात है कि आधुनिक युग में आकर भी भारतीय राष्ट्रीयता का यह रूप विकृत नहीं हुआ है।''[5] विगत कुछ वर्षो में यह परम्परा विछिन्न हुई दिखती है। ''आज राष्ट्रवाद का प्रश्न नए सिरे से बहस के केन्द्र में है। राष्ट्र की पहचान के विविध रूपों में से केवल राष्ट्र के प्रतीकात्मक रूपों को चुन कर उस पर बहस हो रही है। जो लोग इन प्रतीकों से बाहर के दायरे में आते हैं उन्हें राष्ट्र की परिसीमा से बाहर

माने जाने पर जोर दिया जा रहा है।''[6] प्रतीक पूजा के इस दौर में राष्ट्रवाद का अर्थ संकुचित होता जा रहा है। वस्तुतः राष्ट्र की संकल्पना राष्ट्र की जनता के लगाव पर आधारित होती है। 'जिस मानवतावाद का शाश्वत आदर्श' प्रसाद के नाटक प्रस्तुत करते हैं आज के समय में भी हमारी चेतना का हिस्सा नहीं बन सका है। 'भारत समग्र विश्व का है और सम्पूर्ण वसुधंरा इसके प्रेम–पाश में आबद्ध है। अनादि काल से ज्ञान की मानवता की ज्योति यह विकीर्ण कर रहा है।' ऐसी विराट, उदात्त और भव्य कल्पना हमारे संकुचित राष्ट्रवाद में अटती नहीं दिखती।

''यूनानी इतिहास में चन्द्रगुप्त को शूद्र समझने की भूल का निराकरण पहली बार प्रसाद करते हैं। उन्होंने सबल प्रमाणों द्वारा नन्द को शूद्र और चन्द्रगुप्त को क्षत्रिय सिद्ध किया है।''[7] वस्तुतः प्रसाद 'इतिहास के गौरवशाली खंड़ों की ऐतिहासिकता को नकारने वाली इस मान्यता को लेकर बहुत दुखी थे कि 'भारतियों का कोई राजनैतिक या सांस्कृतिक इतिहास नहीं है बस किस्से कहानियाँ ही हैं।' वह भारतीय वैभव और वीरत्व से ओत–प्रोत इतिहास के कालखंड़ों के माध्यम से भारतीय संस्कृति की पुनप्रर्तिष्ठा करना चाहते थे। वह सबल प्रमाणों के द्वारा चन्द्रगुप्त को क्षत्रिय और नन्द को शूद्र सिद्ध करते हैं। यद्यपि प्रसाद का यह प्रयास 'जन्मना जायते शूद्रः/संस्कारात् भवेत द्विजः।' जैसी महत उक्ति के संदर्भ में अर्थपूर्ण नहीं रह जाता है। बचाव में भारतीय नाट्य शास्त्र की नायक विषयक रूढ़ि के निर्वाह का प्रश्न भी उठाया जा सकता है। वर्तमान समय में हम अस्तित्ववादी विमर्शों के स्वर्णिम दौर में है, इसके विपरीत आज भी प्रत्येक महत चरित्र के संदर्भ में कुलीनता सिद्धि की यह प्रवृति देखी जा सकती है। किन्तु इस तरह की धारणाओं के खंडन मंडन में प्रसाद जिस तरह तर्को का सहारा लेते हैं, गहन शोध और अन्वेषण करते हैं, आज के समय के वाक्‌वीरों और लट्‌ठवीरों के लिए प्रेरणास्पद है।

''राज्य किसी का नहीं! सुशासन का है।'' वे हम भारतीयों के ही युद्ध थे, जिनमें रणभूमि के पास ही कृषक–स्वच्छन्दता से हल चलाता था। आजादी के सत्तर वर्ष बाद भी यदि कर्ज और कंगाली से बड़ी संख्या में अन्नदाता किसान आत्महत्याएं कर रहे हैं, तब हमें सोचने की जरूरत अवश्य है कि क्यों हम उनके हित संरक्षित नहीं कर सके। ''अन्न पर स्वत्व है भूखों का और धन पर स्वत्व है देशवासियों का।....विलास के लिए उनके पास पुश्कल धन है और द्ररिद्रों के लिए नहीं?''[8] गरीबी, बेरोजगारी तो है ही, भारत में भुखमरी की स्थिति भी अत्यन्त गंभीर है। अंतरराष्ट्रीय खाद्य अनुसंधान संस्थान के ग्लोबल हंगर इंडेक्स में भारत 100वें स्थान पर पहुंच गया है। वर्ष 2016 में भारत की रैंकिंग 97वें स्थान पर थी। इस स्थिति में आजादी से पहले और बाद के भारत का क्या अर्थ रह जाता है? कौन से 'राष्ट्रोदय' की तैयारी में हम निमग्न हैं? 'सच्चे क्षत्रिय मूर्धाभिशिक्त हैं' फिर 'जनता की आर्तत्राण परायण' आवाजें क्यों सुनाई पड़ रहीं हैं। ''ब्राह्मण न किसी के राज्य में रहता है और न किसी के अन्न से पलता है। स्वराज्य में विचरता है और अमृत होकर जीता है।'' स्वराज्य ही काफी नहीं है, स्वराज्य में विचरने का संकल्प भी अहम है। ब्राह्मण अर्थात प्रबुद्ध वर्ग के संदर्भ में यह संकल्प विचारने और अभिव्यक्त करने की स्वतन्त्रता के अलावा और क्या है? ''मौजूदा लोकतंत्र में प्रतिपक्ष की अवधारणा निरंतर छीजती चली जा रही है, जबकि सशक्त प्रतिपक्ष जनतंत्र की प्राथमिक शर्त है।''[9] सत्ताधारी दल बौद्धिक और मजे हुए प्रतिपक्ष को खत्म करने में सारी ऊर्जा लगा देते हैं। प्रतिपक्षी होना देशद्रोह की श्रेणी में ला दिया गया है। सरकार की कार्यप्रणाली पर प्रश्न करने वाले लोग चाहे वे पत्रकार, देश के नागरिक अथवा विद्यार्थी कोई भी हो सकते हैं, देश के दुश्मन हैं, ऐसा प्रमाद फैलाया जा रहा है।

''विद्यार्थी और कुचक्र! असम्भव ये तो वे ही कर सकते हैं जिनके हाथ में अधिकार हो– जिनका स्वार्थ समुद्र से भी विशाल और सुमेरु से भी कठोर हो, जो यवनों की मित्रता के लिए स्वयं वाल्हीक तक.....''[10] अभी हाल में देश के प्रतिष्ठित शिक्षा संस्थानों के विद्यार्थियों के संदर्भ में सिंहरण की इन पंक्तियों को पढ़ना पीड़क आन्नद से

भर देता है। तक्षशिला गुरुकुल के छात्र के रूप में गर्व से परिचय देने वाला सिंहरण राजकुमार आंभीक को दुर्विनीत लगता है। राजकुमार आंभीक के क्रुद्ध होने पर अलका कह उठती है – ''वन्य निर्झर के समान स्वच्छ और स्वच्छन्द हृदय में कितना बलवान वेग है। यह अवज्ञा भी स्पृहणीय है। जाने दो।'' गांधी जी की सविनय अवज्ञा से हमारा साक्षात्कार पुराना है पर यह 'स्पृहणीय अवज्ञा' क्या चीज है? राज्य या प्रधान अधिकारी की किसी ऐसी व्यवस्था या आज्ञा को न मानना जो अन्याय मूलक प्रतीत हो अवज्ञा है। जब यह न मानना भद्रतापूर्वक हो तो सविनय और इसका विपरीत या इतर पक्ष ही स्पृहणीय अवज्ञा है। स्पृहणीय अवज्ञा हंसी में उड़ा देने वाली बात नहीं हुआ करतीं, हम ऐसी स्पृहणीय अवज्ञाओं का संज्ञान अब जरूरत से ज्यादा लेने लगे हैं। गत वर्ष एक ऐसी ही स्पृहणीय अवज्ञा का आनंद देश के तमाम लोगों ने अवश्य लिया, जब चर्चित छात्र नेता के भाषणों को सुना होगा। उद्धत, राष्ट्र हित में कुछ भी करने को तत्पर उत्साही वीर युवकों के साथ प्रसाद दायित्व एवं दिशाविहीन युवक युवतियों के चित्र भी प्रस्तुत करते हैं। ज्योतिषी मुद्गल कहता है ''जहां देखो वही ये प्रश्न होता है; मुझे उन बातों को सुनने में भी संकोच होता है– मुझसे रूठे हुए हैं? किसी दूसरे पर उनका स्नेह है? वह सुन्दरी कब मिलेगी? मिलेगी या नहीं? – इस देश के छबीले छैल और रसीली छोकरियों ने यही प्रश्न गुरुजी से पाठ में पढ़ा है। अभिसार के लिए मुहूर्त पूछे जाते हैं।'' जगत गति से असमपृक्त देश के छबीले छैल और रसीली छोकरियों के समानान्तर जब देश की समस्याओं के प्रति जागरूक प्रतिक्रियाशील युवाओं को रखते हैं तब स्पृहणीय अवज्ञा का महत्व स्पष्ट होता है। 'जड़ता में आछन्न, निर्मम उदासीनता में किसी तरह की बौद्धिक उत्तेजना को देखकर' किसे प्रसन्नता नहीं होगी? आत्म सम्मान के लिए मर मिटने वाले, स्वावलम्बी, कर्मण्य वीर जो दिन रात 'युद्धस्व विगतज्वरः' का शंखनाद सुना करते हैं, प्रसाद की श्रद्धा के पात्र हैं। जिस देश में ऐसे वीर युवक हों उसका पतन असम्भव है। दूसरी ओर नीच, दुरात्मा, निराली धज वाले विलास के नारकीय कीड़े जो कुल वधुओं का अपमान देखकर भी अकड़ कर चलते हों के संदर्भ में कह उठते हैं– ''जिस देश के नव युवक ऐसे हों उसे अवश्य दूसरे के अधिकार में जाना चाहिए।'' किसी 'राष्ट्र के लिए जैसे नृशंसता स्पृहणीय नहीं वैसे ही कायरता भी अभीष्ट नहीं हो सकती।' प्रसाद जी अपने नाटकों में उग्र युवाओं की क्षमताओं का जैसा उपयोग देशोत्थान में करते दिखते हैं श्लाघनीय और अनुकरणीय अवश्य है।

''जिसका जो मार्ग है उस पर वह चलेगा। ....देखती हूं प्रायः मनुष्य, दूसरों को अपने मार्ग पर चलाने के लिए रुक जाता है, और अपना चलना बंद कर देता है।'' कब वह दुर्दन्त, पशु से भी बर्बर और पत्थर से भी कठोर, करुणा के लिए निरवकास हृदय वाला हो जाएगा, नहीं जाना जा सकता।'' अथवा ''क्या इसी लिए राष्ट्र की शीतल छाया का संगठन मनुष्य ने किया था!'' विद्या और परिष्कृत विचारो' की आवश्यकता आज भी राष्ट्र की प्राथमिकता नहीं। 'राजकोश का रुपया व्यर्थ ही स्नातकों को शिक्षित करने में लगता है या उसका सदुपयोग होता है।' आज भी हम इसका निर्णय कैसे हो? जैसे प्रश्न से हम जूझ रहे हैं। प्रतिउत्तर में कोई राक्षस कह उठता है– ''केवल सद्धर्म की शिक्षा ही मनुष्यों के लिए र्प्याप्त है।'' उच्च शिक्षा की दुर्दशा इसका प्रमाण है। 'प्रचंड शासन' के इस दौर में भयभीत 'मूर्ख जनता धर्म की ओट में' एक बार फिर नचायी जा रही है। धर्मान्धता से प्रेरित राजनीति आंधी की तरह चल रही है। धर्मान्धता में प्राण ले लेना आम बात हो चली है। 'जिस वस्तु को मनुष्य दे नहीं सकता, उसे ले लेने की स्पर्धा'। ''लूट के लोभ से हत्या व्यवसायियों को एकत्र करके उन्हें वीर सेना कहना, रणकला का उपहास करना है।'' क्या ये बातें किसी सुदूर अतीत के ऐतिहासिक नाटक के संवाद मात्र हैं?

''राजनीति ही मनुष्यों के लिए सब कुछ नहीं होती है। राजनीति के पीछे नीति से भी हाथ न धो बैठो, जिसका विश्व मानव के साथ व्यापक से संबंध है।''[11] नीति की बात कौन करे, जब राजसत्ता के लिए सुव्यवस्था नहीं–

हत्या, रक्तपात और अग्निकाण्ड जैसे उपकरण जुटाने में राजनेताओं को आनन्द आता हो। कर्म में प्रगााढ़ आस्था के कारण ही वह बौद्ध धर्म की करुणा को गृहीत करते हुए भी प्रवज्या का विरोध करते हैं। बौद्ध भिक्षुणी इरावती के संदर्भ में एक सैनिक कहता है–''यह किस क्रूर कर्मा का विधान है जिसे उशा की उल्लसित लालिमा में विकसित होना चाहिए, उसे तुम – नहीं तुम्हारे धर्म – दम्भ ने दिनान्त की सन्ध्या के पीलेपन में डूबने की आज्ञा दी है।'' वह जीवन के सहज विकास की बात करते हैं। 'संघ की मृत्यु शीतल छाया' हो या 'वह धर्म जिसके आचरण के लिए पुश्कल स्वर्ण चाहिए जन– साधारण की सम्पत्ति नहीं हो सकता।' धर्म के आड़बर पर कहते हैं–''जो पारस्य देश की मूल्यवान मदिरा रात में पी सकता है, वह धार्मिक बने रहने के लिए प्रभात में एक गो– निश्क्रिय भी कर सकता है। 'धर्म को बचाने के लिए किसी राज्य शक्ति की आवश्यकता नहीं' है। धर्म इतना निर्बल नहीं कि वह पाशव बल के द्वारा सुरक्षित होगा। एक युद्ध करने वाली मनोवृत्ति की प्रेरणा से उत्तेजित होकर अधर्म करने एवं धर्माचरण की दुन्दुभी बजाने वालों से कहते हैं– ''हम लोग व्यर्थ आपस में झगड़ते हैं और आत्तायियों को देखकर घर में घुस जाते हैं। हूणों (विदेशी आक्रान्ताओं) के सामने तलवारें लेकर इसी तरह क्यों नहीं अड़ जाते?'' 'चन्द्रगुप्त' नाटक में चाणक्य कहता है– ''परिणाम में भलाई ही मेरे कामों की कसौटी है।'' प्रजातांत्रिक व्यवस्था में यह आम नागरिकों पर भारी है। 'श्रेय के लिए सब कुछ त्याग की दरकार भी आम आदमी से।

सिंहरण और अलका, 'मालव' और 'तक्षशिला' से ऊपर उठ ंकर 'आर्यावर्त' के बालक बालिका के रूप में एक दूसरे को चीन्हते हैं। प्रसाद अनार्य कन्या कार्नेलिया को आर्यावर्त की साम्राज्ञी सहज रूप में स्वीकारते कहते हैं– ''दो बालुकापूर्ण कगारों के बीच में एक निर्मल–स्रोतस्विनी का रहना आवश्यक है।'' लव जिहाद, हॉरर किलिंग और वेलेन्टाइन वीक की गुत्थियों में उलझे हम अपने बच्चों के 'प्रणय के साथ अत्याचार' करते, उन्हें भारत के बालक–बालिका के रूप में देखने की तमीज विकसित नहीं कर सके। मालव और मगध को भूल कर केवल 'आर्यावर्त' का नाम लेने की बात है वहां प्रान्तीयता को भूल कर अखंड भारत के हित की कामना है। देश की मर्यादा के साथ प्रसाद जी कोई समझोता नहीं करते। सिकंदर से 'भूपालों का – सा व्यवहार' मांगने वाले कुलीन, बहुप्रशंसित पर्वतेश्वर या पोरस को वह खल पात्र के रूप में प्रस्तुत करते हैं। प्रसाद राष्ट्रीयता तक ही नहीं रुके रहते वह विश्व प्रेम तक पहुंचते हैं।

पुष्यमित्र के प्रश्न के उत्तर में पतंजलि कहते हैं–''यही तो संसार सबसे बड़ा प्रश्न है। मैं क्या करूं? इस पर विचार और कर्म से पहले मनुष्य अपना शरीर, मन और वाणी शुद्ध कर ले।''[12] चाणक्य कहता– ''भाषा ठीक करने से पहले मैं मनुष्यों को ठीक करना चाहता हूं।'' मनुष्य के ठीक होने पर भाषा का ठीक हो जाना कठिन कार्य नहीं। देश में सार्वजनिक संवाद की हालत इतनी दयनीय हो गई है कि शीर्ष राजनेताओं तक के उपचार के लिए किसी चाणक्य की आवश्यकता है। कौन करेगा ये उपचार ? जब प्रबुद्ध वर्ग को 'लोहे और सोने के सामने सिर झुकाने में ही जीवन का चरम सुख प्राप्त हो रहा है। लोभ से, सम्मान से या भय से किसी के पास न जाने वाले दाण्ड्यायन अदृश्य हैं। आज की अलकाएं राजभवनों से भयभीत नहीं दिखती। 'कोमल शय्या पर लेटे रहने की प्रत्याशा में स्वतंत्रता का विसर्जन' और 'मानसिक कारावास' घाटे का सौदा नहीं रहा। ''राजनीति महलों में नहीं रहती, इसे हम लोगों के लिए छोड़ देना चाहिए।'' राक्षस की यह उक्ति आज भी आत्म सजग, स्वतन्त्र, चेतना संपन्न स्त्रियां को राजनीति के खेल में हिस्सेदारी से रोक लेती है। राजनीति में महिलाओं को हिस्सेदारी देने के नाम पर चुनावी रणनीति का हिस्सा बन चुका 'संसद में 33 फीसदी आरक्षण विधेयक' सालों से लटका पड़ा है।

भ्रष्टाचार और बेरोजगारी झेलते, निकम्मे और नाकारा होते बच्चे के जीवन का सहज विकास अवरुद्ध है।

नागरिकों के 'जीवन के सहज विकास को रोकने वाले नियम राष्ट्र की उन्नति को भी रोकते हैं।' बच्चे, बड़े और युवकों को देश की भलाई में प्रस्तुत करने की क्षमता विकसित करने में अक्षम हम, उन्हें स्वच्छता का ककहरा पढ़ाने में ऐसे जुते हैं कि देश की ज्वलन्त समस्याएं हमें अधीर नहीं करतीं। 'हम देश की प्रत्येक गली को झाड़ू देकर ही इतना स्वच्छ कर' दे रहे हैं कि उस पर चलने वाले राजमार्ग का सुख पाएं। ''चाणक्य सिद्धि देखता है साधन चाहे कैसे ही हों।'' चाणक्य की सिद्धि का लक्ष्य बड़ा था। आज सत्ता में बने रहना के समीकरण साध लेना ही अंतिम लक्ष्य दिखता है। ऐसे विकट समय में प्रसाद के नाटकों में निहित राष्ट्रवाद पर चर्चा की अत्यन्त आवश्यकता है ताकि राष्ट्रवाद की संकीर्ण धारणाओं से राष्ट्र के विकास को अवरुद्ध होने से बचाया जा सके।

सन्दर्भ

1. 'स्कन्दगुप्त' 'प्रसाद के सम्पूर्ण नाटक एवं एकांकी' सम्पा0 सत्य प्रकाश मिश्र', पृ0 462 लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
2. प्राक्कथन, सत्य प्रकाश मिश्र 'प्रसाद के सम्पूर्ण नाटक एवं एकांकी', पृ0 462 लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
3. अजातशत्रु कथा–प्रसंग, पृ0 199
4. प्रसाद के नाटक और भारतीय अस्मिता, संपादक सुरेशचन्द्र गुप्त, पृ0 71 पराग प्रकाशन दिल्ली, 1990
5. वही, पृ0 67
6. सुधा सिंह, 'राजनीतिः समावेशी राष्ट्रवाद बनाम प्रतीकवाद', 'जनसत्ता', 14 मार्च 2016
7. गिरीश रस्तोगी, 'हिन्दी नाटक का आत्मसंघर्ष', पृ0 31 लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
8. 'स्कन्दगुप्त', पृ0 545
9. 'अमर उजाला', दैनिक पत्र, संपादकीय, 13 दिसम्बर 2016
10. 'चन्द्रगुप्त', पृ0 622
11. वही, 'ध्रुवस्वामिनी', पृ0 76
12. वही, 'अग्निमित्र' पृ0 790

❑❑

बौद्ध धर्म एवं संस्कृति

डॉ0 उत्तरा यादव
एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
महिला पी0जी0 कॉलेज, अमीनाबाद, लखनऊ

''धर्मो रक्षति रक्षितः'' अर्थात् ''जो धर्म की रक्षा करता है उसकी रक्षा धर्म करता है।''

लगभग 5000 वर्ष पूर्व भगवान् कृष्ण का अवतरण धरती पर हुआ जिन्होंने पवित्र ग्रन्थ गीता में आत्मा को शाश्वत सनातन धर्म कहा। ''न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दण्ड देना धर्म है।'' आज से लगभग 2500 वर्ष पूर्व महात्मा बुद्ध का अवतरण हुआ जिन्होंने सम्यक् ज्ञान पर प्रकाश डाला और कहा कि, ''वर्ण व्यवस्था ईश्वरीय नहीं है। समता ईश्वरीय आज्ञा है।'' बुद्ध ने बौद्ध धर्म की स्थापना की तथा उनके नियमों को पवित्र 'तिपटक' में संकलित किया गया। आज से लगभग 2000 वर्ष पूर्व ईसा मसीह का जन्म हुआ जिन्होंने ईसाई धर्म की स्थापना की। उन्होंने कहा कि करुणा, क्षमा ईश्वरीय आज्ञायें हैं, घृणा नहीं। 'बाईबिल' ईसाइयों का पवित्र ग्रन्थ है। लगभग 1400 वर्ष पूर्व हजरत मुहम्मद साहब का जन्म हुआ। उन्होंने इस्लाम धर्म की स्थापना की और पवित्र ग्रन्थ 'कुरान' में सन्देश दिया कि सभी इंसान अल्लाह की संतान हैं और आपस में भाई–भाई हैं।

आज से लगभग 500 वर्ष पूर्व गुरु नानक का जन्म हुआ। उन्होंने 'गुरु ग्रन्थ साहिब' के माध्यम से सन्देश दिया कि व्यक्ति, परिवार और समाज सच्चे त्याग से सुखी हो सकता है। अन्त में आज से 200 वर्ष पूर्व महान् आत्मा वहाउल्लाह ने पवित्र ग्रन्थ 'अकदास' में वचन दिया कि ह्रदयों की एकता ही मानव जाति को सुखी बना सकता है।

गौतम बुद्ध का नाम सिद्धार्थ था। वे संसार में महान कार्य करेंगे ऐसी भविष्यवाणी विद्धानों ने उनके जन्म काल में ही कर दी थी। इन्होंने यथाविधि गुरूकुल में रहकर शिक्षा प्राप्त की। अपनी प्रखर प्रतिभा के कारण शीघ्र ही वे सभी शास्त्रों के ज्ञाता हो गए। राजकुमार की संसार से विरक्ति एवं ध्यान में मग्न रहने की प्रवृत्ति के कारण पिता ने उनका विवाह करा दिया, जिससे एक पुत्र रत्न की प्राप्ति भी हुई, परंतु पत्नी एवं पुत्र का मोह भी उन्हें सांसारिक बंधनों में बांधकर न रख सका, और उन्होंने एक दिन अपने नवजात शिशु और पत्नी तथा समस्त राजकीय वैभव त्याग कर ब्रह्मचारी के वेष में गृह त्याग कर दिया।

बौद्ध धर्म एवं संस्कृति का आधार

बौद्ध संस्कृति का मुख्य आधार बौद्ध धर्म है और बौद्ध धर्म के प्रवर्तक गौतम बुद्ध हैं। भारत में हिन्दू धर्म की जटिलता के विरोध स्वरूप उपजा ये धर्म भारत में सर्वमान्य नहीं हो सका, परंतु वहीं ये धर्म जापान, मलेशिया, थाइलैंड, श्रीलंका एवं चीन में व्यापक रूप से मान्य हुआ और इन देशों की संस्कृति भी बौद्ध धर्म आधारित हो गयी।

सर्वप्रथम गौतम ने तत्कालीन समय में प्रचलित तपस्या को अपने ज्ञान का साधन बनाया। उन्होंने (बोध गया के निकट) अपने पांच साथियों के साथ घोर तपस्या की। कई वर्षों तक कठोर तपस्या करने के कारण उनका शरीर काफी दुर्बल हो गया था। इस शारीरिक दुर्बलता के कारण उन्होंने तपस्या त्याग दी। इस कारण इनके साथियों ने भी इनसे किनारा कर लिया। गौतम इस सबसे बेपरवाह होकर बोधिवृक्ष के नीचे विचारमग्न होकर समाधि में लीन हो गये। अंत में उन्हें बैशाख पूर्णिमा के दिन उन्हें बुद्धत्व (ज्ञान) प्राप्त हुआ। संसार में दुःख का कारण उनके निवारण के उपाय का ज्ञान उन्हें प्राप्त हो गया। गौतम ने यह समझ लिया कि पवित्र जीवन, प्रेम और दया का भाव ही सर्वोत्तम मार्ग है। ये नई बात गौतम ने मालूम की और अपने आप को बुद्ध के नाम से प्रकट किया।

बुद्धत्व प्राप्त करने के पश्चात गौतम बुद्ध अपने पांच साथियों की तलाश करते हुए काशी पहुंचे। काशी के निकट सारनाथ में वे अपने साथियों से मिले और अपना नया सिद्धांत बताया। बुद्ध के अनुसार जिन्होंने संसार का त्याग कर दिया गया है, उन्हें दो बातें कभी नहीं करना चाहिए। प्रथम, जिन बातों से मनोविकार उत्पन्न होते हों और दूसरी तपस्या जो केवल दुःख देने वाली है और जिनसे कोई लाभ नहीं। इन दोनों को छोड़कर बीच का मार्ग ग्रहण करना चाहिए जिससे मन की शांति और पूर्ण आनंद प्राप्त होता है।

सारनाथ में बुद्ध पांच महीने रहे। इस दौरान उन्होंने 70 शिष्य बनाये और उन्हें मनुष्य को मुक्ति मार्ग बताने के लिए भिन्न–भिन्न दिशाओं में भेज दिया। 80 वर्ष की अवस्था में बुद्ध ने अपना शरीर त्याग दिया। उनकी मृत्यु के पूर्व ही बौद्ध धर्म ने संसार में बड़ी प्रबलता और दृढ़ता स्थापित कर ली थी। बुद्ध ने अंत में एक बार शिष्यों को फिर उपदेश दिया, धर्म का तत्व समझाया और अपने धर्म पर दृढ़ रहने की आज्ञा दी। बुद्ध ने उपदेश दिया कि– ''यदि मनुष्य मन में निश्चय कर ले कि उसे बुद्ध में, संघ में और धर्म में विश्वास है, तो उसकी मुक्ति हो गई। बुद्धं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि'' यह इस धर्म का मूल मंत्र है।

बौद्ध संस्कृति की विशेषताएँ

बौद्ध संस्कृति की विशेषता बुद्ध के उपदेश में ही निहित है। बुद्ध ने जिन दार्शनिक सिद्धांतों की स्थापना की वे ही इस संस्कृति की विशेषताएं हैं जो निम्नलिखित है –

संसार में बुद्ध का जन्म इसलिए हुआ कि वे संसार को वास्तविक दुःख का कारण बतायें और उनके निवारण के उपाय भी। इस धर्म का सारांश आत्मोन्नति और आत्म निरोध है। बुद्ध ने कहा है कि दुःख का अनुभव सभी करते है किन्तु दुःख को जानने वाले थोड़े ही है। दुःख के अनुभव से दुःख की निवृत्ति नहीं होती वरन दुःख के कारण के ज्ञान से निवृत्ति होती है। जन्म से मृत्युपर्यंत संसार दुःख रूप है। संसार में सुख स्थापना करने की चाहे जितनी भी चेष्टा की जाए, आनंद एवं विलास की सामग्री चाहे जितनी भी एकत्र की जाए, किन्तु दुःख से निवृत्ति नहीं हो सकती। संसार के सभी पदार्थ क्षणभंगुर है और दुःख इसी का फल है। बुद्ध का सिद्धांत है कि तृष्णा का सर्वतोभाव से परित्याग करने से दुःख का निरोध होता है और उस तृष्णा का नाश का ही निर्वाण है। बुद्ध ने दुःख निवारण के आठ मार्ग बताए हैं जो आष्टांगिक मार्ग के नाम प्रसिद्ध हैं। वे आठ मार्ग निम्नलिखत हैं –

1. सम्मा दिट्टी (सम्यक दृष्टि)– दुःख समुदाय का और दुःख निरोध का ज्ञान ही सम्यक दृष्टि है। जब तक हम इस संसार को दुःख रूप नहीं मानेंगे तब तक हमारे कर्तव्य का लक्ष्य उससे भागने की ओर न होगा। सच्चे ज्ञान के बाद ही सच्चा संकल्प आता है।

2. सम्मा संकल्प (सम्यक संकल्प)– दुःख समुदाय के ज्ञान से निश्चय हो जाता है कि तृष्णा त्याग के बिना दुःख से छुटकारा नहीं हो सकता। जब हमारा सबके साथ अद्वेष, अहिंसा और मैत्री का भाव होगा, तभी हमारी तृष्णा का नाश हो सकेगा। अतः हमे ऐसा भाव बना लेना चाहिए, जिससे किसी के प्रति हिंसा और द्वेष का व्यवहार न हो। यही विचार सम्यक् संकल्प है।

3. सम्मा वाचा(सम्यक वाचा)– सब प्रकार के झूठ, दूसरों की निंदा, अपमान, चुगली, झूठी गवाही आदि से विमुख रहना चाहिए। निरर्थक वार्तालाप भी दूषित समझा जाता है। सम्यक वार्तालाप मनुष्यों में परस्पर प्रेम उत्पन्न करने में सहायक होता है। ऐसी कोई बात नहीं कहनी चाहिए जिससे दूसरों का दिल दुःखी हो। यहां तक की अपराधी को दंड देते समय भी आदर का व्यवहार होना चाहिए और उसमें व्यक्तिगत वैर–भार और रोष की गंध नहीं आनी चाहिए।

4. सम्मा कम्मान्त (सम्यक कर्मान्त)– सम्यक कर्मान्त का तात्पर्य कर्म और पुनर्जन्म से है। बौद्ध धर्म में हिन्दु धर्म की भांति ही आवागमन माना गया है। लोग के अपने कर्म के अनुरूप अच्छा या बुरा जन्म प्राप्त करने हैं। बौद्ध धर्म आत्मा के अनुसार प्राणी का पुनर्जन्म नहीं होता, किन्तु उसका संस्कार और अंतिम विचार एक नया रूप धारण

कर लेता है। जातक कथाओं के अनुसार स्वयं बुद्ध ने अनेक बार जन्म लिया था। अर्थात् पांच आज्ञाएं सभी बौद्ध गृहस्थों एवं भिक्षुओं के लिए है। वे इस प्रकार हैं:–

- ❖ कोई किसी को न मारे।
- ❖ चोरी न करे, अर्थात् जो वस्तु न दी गई हो उसे न लें।
- ❖ झूठ न बोलें।
- ❖ नशीली चीजों का सेवन न करें।
- ❖ व्यभिचार न करें।

भिक्षुओं के पांच अन्य नियम हैं, जो इस प्रकार हैं–

- ❖ रात्रि में देर में भोजन न करना।
- ❖ माला न पहनना और सुगन्धित द्रव्य का प्रयोग न करना।
- ❖ भूमि पर सोना।
- ❖ नृत्य, गीत में आसक्त न होना।
- ❖ सोना–चांदी को व्यवहार में न लाना।

उपर्युक्त दसों आज्ञाएं भिक्षुओं के लिए अनिवार्य हैं। जबकि पंचशील गृहस्थों के लिए अनिवार्य हैं।

5. सम्मा जीव (सम्यक जीविका)– बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों के प्रतिकूल कोई जीविका नहीं करनी चाहिए। अर्थात् ऐसी आजीविका का आश्रय नहीं लेना चाहिए जिसमें हिंसा, चोरी और व्यभिचार करना पड़े तथा झूठ बोलना पड़े। अर्थात् बौद्ध धर्म का यह उपदेश है कि मनुष्यों की आजीविका शुद्ध होना चाहिए।

6. सम्मा व्यायाम (सम्यक व्यायाम)– सम्यक व्यायाम का तात्पर्य कसरत या नाना प्रकार के योग, आसन आदि से शरीर को कष्ट देना नहीं परंतु इस तात्पर्य है शुभोद्योग। सच्चे उद्योग में चार बातें आती हैं:–

- ❖ अवगुणों के नाश का उद्योग करना।
- ❖ नये अवगुणों से बचने का उद्योग करना।
- ❖ गुणों को प्राप्त करने का उद्योग करना।
- ❖ गुणों की वृद्धि आचार–विचार के द्वारा करना।

7. सम्मा स्मृति (सम्यक स्मृति)– स्मृति से स्मरण और निरंतर विचार करने का अर्थ लिया जाता है। मन सदैव शुद्ध होना चाहिए क्योंकि जब मन शुद्ध होगा तभी कर्म निर्दोष होगा। कर्म से आशय कायिक, वाचिक तथा मानसिक तीनों प्रकार के कर्मों से है। इस प्रकार मन को सम्यक् रूप से शुद्ध रखते हुए कर्म में लीन रहना चाहिए। शील के अनुशीलन से हमारी मानसिक कियाएं नियमित हो जाती है। शील समाधि की सीढ़ी है। सत्कर्म के लिए जो चित्त की एकाग्रता सम्पादित की जाती है वह समाधि है। समाधि की इच्छा रखने वाले को भोजन व्यसन में आसक्ति का वर्जन कर उसके प्रति वैराग्य रखने का प्रयत्न करना पड़ता है। दुःख का नाश करने के उद्देश्य से शरीर धारण रखने के निमित्त ही भोजन ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार भोजन से विराग उत्पन्न कर लेने पर निर्वाण पथ के यात्री को शरीर की नश्वरता पर विचार करना चाहिए। निर्वाण की इच्छा रखने वाले मनुष्य को अपना भाव ऐसा बना लेना चाहिए कि वह समस्त संसार का मित्र है।

बौद्ध धर्म एवं संस्कृति का प्रभाव

बौद्ध धर्म की स्थापना सिद्धार्थ गौतम बुद्ध ने छठी शताब्दी ई0पू0 के उत्तरार्ध में की थी। इस समय तक धर्म के क्षेत्र में ब्राह्मणों का एकाधिकार हो चुका थ। कर्मकांड की प्रधानता थी और उसमें बड़ी जटिलताएं आ गयी थी। संपूर्ण धार्मिक साहित्य संस्कृत भाषा में होने के कारण जन साधारण की पहुंच से बाहर था। गौतम बुद्ध ने जिस धर्म का प्रवर्तन किया उसमें जटिलता नहीं थी। उन्होंने जन भाषा में अपनी बात कही और लोंगों को मध्यम

मार्ग अपनाने का उपदेश दिया। बौद्ध धर्म का मानना है कि न तो अधिक आसक्ति हो और न ही शरीर को तपस्या के द्वारा अधिक कष्ट दिया जाए।

बुद्ध के उदान (उपदेश)

भावातिरेक में कभी–कभी जो महापुरूषों के मुँह से वाक्य निकलता है उसे उदान कहते हैं। भिक्षु जगदीश कश्यप ने बुद्ध के उदान का अनुवाद हिन्दी में लिपिबद्ध किया है। कुछ प्रमुख उदान निम्नलिखित है –

❖ मनुष्य अपने वंश अथवा जन्म से ब्राह्मण नहीं होता परंतु जिसमें सत्य और पुण्य है वहीं ब्राह्मण है और वही सत्य है। जिसने पाप को मन से बाहर कर लिया है, राग–द्वेष से रहित और संयमशील है, जो निर्वाण पद का ज्ञाता है, सफल ब्रह्मचर्य वाला है वही अपने का ब्राह्मण कह सकता है।

❖ जो प्रपंच को पार कर चुका, काम के कांटों को तोड़ चुका, मोह का क्षय कर चुका और सुख दुःख से लिप्त नहीं होता वही सच्चा भिक्षु है।

❖ जितनी हानि शत्रु द्वारा शत्रु की होती है, झूठ के मार्ग पर लगा चित्त उससे अधिक हानी करता है।

❖ जिसका चित्त शिला की तरह अचल रहता है, राग उत्पन्न करने वाले विषयों में अनुरक्त नहीं होता है, क्रोध करने वाले विषयों से क्रोध नहीं करता है, जो ध्यान लगाना जान चुका है–उसे दुःख नहीं हो सकता।

❖ स्थिर शरीर और स्थिर चित्त से जाग्रत अथवा सुसुप्तावस्था में जो भिक्षु अपनी स्मृति को बनाए रखता है, वह ऊंची से ऊंची अवस्था को प्राप्त कर सकता है।

❖ जिसने इसे अपना लिया है वह अरूपसंज्ञी योगी सांसारिक आसक्ति को छोड़ चारों योगों (कामयोग, भवयोग, दृष्टियोग और अविद्यायोग) के परे हो जाता है। उसका फिर संसार में जन्म नहीं होगा।

❖ कामों में आसक्त, बंधनों के दोष को नहीं देखने वाला बल्कि उन बंधनों में और भी संलग्न रहने वाला इस अपार भवसागर को पार नहीं कर सकता।

❖ मोह के बंधन में पड़ा हुआ संसार ऊपर से देखने में बड़ा अच्छा मालूम होता है। सांसारिक मूर्ख जन उपाधि के बंधन में बंधे हुए हैं। अंधकार से सभी ओर घिरे पड़े हैं। समझते हैं यह सदा ही रहने वाला है ज्ञानी पुरूष के लिए रागादि कुछ नहीं है।

❖ दान देने से पुण्य बढ़ता है। संयम करने से बैर बढ़ने नहीं पाता। पुण्यवान पाप को छोड़ देता है। राग द्वेष और मोह के क्षय होने से परिनिर्वाण पाता है।

❖ शोक करना, रोना–पीटना तथा और भी संसार में होने वाले अनेक प्रकार के दुःख प्रेम करने से ही होते हैं। जो प्रेम नहीं करता उसे कोई दुःख नहीं होता। जिनके मन में कभी प्रेम की भावना नहीं उठी है वे ही सुखी और शोक रहित होते हैं। इसलिए संसार में प्रेम (मोह माया) न बढ़ाते हुए विरक्त रहने का यत्न करना चाहिए।

सन्दर्भ

1. भगवान् बुद्ध धम्म–सार व धम्म–चर्या, आनन्द कृष्ण।
2. डॉ0 भीमराव अम्बेडकर, ''भगवान् बुद्ध और उनका धम्म''।
3. आचार्य सत्यनारायण गोयनका, ''क्या बुद्ध दुक्खवादी थे?''
4. आचार्य सत्यनारायण गोयनका, ''आत्मकथन''
5. श्रीमद् भगवतमहापुराणम्, गीता प्रेस।
6. जहं जहं चरन परे संतन के, तिक न्यात द्वन्द्व।

❑❑

33

नवधा भक्ति एवं मोक्ष

डॉ0 ज्योति वर्मा
एसो0प्रो0 एवं विभागाध्यक्ष –संस्कृत
बुन्देलखण्ड कॉलेज, झांसी

ईश्वर की उपासना के अनेक मार्ग हैं। जैसे नदी में उतरने के किये कई घाट होते हैं, वैसे ही आनन्द–सागर परमात्मा के पास पहुँचने के लिये भी कई घाट हैं। इनमें से किसी भी घाट में उतरकर हम आराम से उस सागर में नहा सकते हैं। शुद्ध अन्तःकरण से और श्रद्धा भक्ति के साथ पालन किया हुआ कोई भी धर्म हमें परमात्मा के पास पहुंचा सकता है ,उससे मेल करा सकता है। शांडिल्य सूत्र में भक्ति का लक्षण करते हुये ग्रन्थकार ने कहा है कि ईश्वर के प्रति परं अर्थात निरतिशय प्रेम ही भक्ति है– ''सा भक्तिः परानुरक्तिरीश्वेर'' शांडिल्य सूत्र 2। इसी बात को भागवतकार और गहराई में उतरकर कहते हैं कि ईश्वर के प्रति निरतिशय प्रेम ही भक्ति नहीं है अपितु ऐसा प्रेम जो प्रगाढ़ता के साथ–साथ निर्हेतुक हो, निष्काम हो और निरन्तर हो वह भक्ति है। क्योंकि जब भक्ति इस हेतु से की जाती कि हे परमात्मा! मेरी मनोकामना पूर्ण कर दो , मुझे धन, बल इत्यादि प्रदान करो तो वह भक्ति नहीं व्यापार होती है। ऐसी भक्ति में चित्त की शुद्धि नहीं होती और जब चित्त ही शुद्ध न हुआ तो मोक्ष की प्राप्ति या परमेश्वर से साक्षात्कार कैसे हो सकता है?

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने भगवद्भक्तों की चार श्रेणियॉ बतलाई है–

चतुर्विध भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्शभ ।। गीता 7/16

अर्थात है अर्जुन! लोग चार प्रकार से मेरी भक्ति करते है– आर्त अर्थात रोग से पीड़ित, जिज्ञासु ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा करने वाले, अर्थार्थी अर्थात द्रव्य आदि काम्य वासनाओं की पूर्ति के लिये और ज्ञानी अर्थात परमेश्वर का साक्षात्कार करने के लिये ज्ञान प्राप्त कृतज्ञ जन। इनमें से जो अर्थार्थी हैं यानि कुछ पाने की इच्छा से परमेश्वर की भक्ति करते हैं– वे निकृष्ट श्रेणी के भक्त हैं और जो निष्काम भावना से अनन्य भाव से परमात्मा की भक्ति करते हैं उनकी भक्ति श्रेष्ठ हैं। ऐसे भक्त जिन्हें इस संसार में करने अथवा पाने के लिये कुछ भी शेश नही है, ऐसे ज्ञानी पुरूश जो निश्काम बुसि भक्ति करते हैं वही श्रेश्ठ है। प्रल्हाद, नारद, मीरा, शबरी आदि की भक्ति इसी श्रेणी की है। इसीलिये भागवत पुराण में भक्ति का लक्षण ''अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरूशोत्तमे'' अर्थात परमात्मा की अहैतुकी निष्काम निरन्तर भक्ति सच्ची भक्ति है। इसी से चित्त की शुद्धि और मोक्ष की प्राप्ति संभव है। यह भक्ति 9 प्रकार की है–

श्रवणं कीर्तनं विश्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम्।। भाग0पु0 7/5/23

भक्ति किसी भी प्रकार की हो, परमेश्वर में अतिशय और अहैतुक प्रेम रखकर अपनी वृत्ति को तदाकार करने का काम प्रत्येक मनुष्य को अपने मन से ही करना पड़ता है। किन्तु मनुष्य के मन की स्वाभाविक रचना ऐसी है कि वह इन्द्रिय अगोचर वस्तु से प्रेम करने या उसका चिंतन कर मन को उसी में स्थिर कर के अपनी वृत्ति को तदाकार करना मनुश्य के लिये अत्यन्त दुःसाध्य है । क्योंकि मन स्वभाव से ही चंचल है, जब तक मन के सामने आधार के लिये कोई इंद्रियगोचर स्थिर वस्तु न हो, तब तक मन बार बार भूल जाया करता है कि उसे कहां स्थिर होना है। चित्त की स्थिरता का यह मानसिक कार्य बड़े–बड़े दुष्कर योगियों के लिये भी दुष्कर होता है, तो फिर

साधारण मनुष्य की तो बात ही क्या है। इसलिये भक्ति को साधने के लिये अध्यात्म रामायण में महर्षि वेदव्यास ने अरण्य काण्ड में शबरी प्रसंग में प्रभु श्री राम के मुख से नवघा भक्ति के स्वरूप का अत्यन्त सहज एवं सरल मार्ग बतलाया हैं–

भक्ति में प्रेम मुख्य है। प्रभु में प्रेम जाग्रत करने के लिये प्रभु श्री राम ने शबरी को नौ साधन बताये है पहला साधन है सत्संग –

''सतां संगतिरेवात्र साधनं प्रथमं स्मृतम्।''   अरण्य का0 10/ 22

सत्संग के बिना ज्ञान प्राप्त नही होता है। प्रभु के प्रति प्रेम जाग्रत करने के लिये उन महापुरुषों का संग करना चाहिये जो परमात्मा से प्रेम करते हैं। विलासी लोगों का संग नही करना चाहिये, 'यह मन में विकार उत्पन्न करता है। ज्ञान में' सदाचरण में, भक्ति में, वैराग्य में जैसी इच्छा हो वैसे महापुरुषों को आदर्श बनाकर दृष्टि में रखना चाहिये। भक्ति का दूसरा साधन है– कथाश्रवण।

''द्वितीयं मत्कथालापः''   अरण्य का0 10/23

परमात्मा की कथा सुनने से मन शान्त होता है। प्रभु में प्रेम जागता है। पाप से विरति होती है। भक्ति की भावना दृढ़ होती है। प्रभु की कथा जगत का स्वरूप दिखाती है, भय, शोक, मोह का बंधन शिथिल हो जाता है।

भक्ति का तीसरा साधन है– परमात्मा की स्तुति।

''तृतीयं मद्गुणेरणम्''   अरण्य का0 10/23

मनुश्य जब खाली बैठता है तब अधिकांश समय या तो किसी की निंदा करता है या फिर किसी की प्रशंसा करता है। मनुष्य कदाचित् जिह्वा से न भी बोले परन्तु मन से बोलता ही है। यह सही है, यह गलत है, अच्छा, बुरा आदि मन के भाव बदलते रहते हैं। इस संसार में ईश्वर के बिना कुछ भी अच्छा नहीं है। अतः जगत् की निंदा या प्रशंसा के स्थान पर परमात्मा का गुण कीर्तन करना चाहिये। भगवद् गुण गान से मन सुधरता है। प्रभु में प्रेम जागता है।

गीता, उपनिशद् तथा वेदादि में प्रभु के संदेशो की व्याख्या भक्ति का चतुर्थ सोपान है।

''व्याख्यातृत्वं मद्वचसां चतुर्थं साधनं भवेत्''   अरण्य का0 10/23

परमात्मा की आज्ञाओं का चिंतन मनन करके उनको योग्य रीति से समझने की और जीवन में उतारने की आज्ञा चौथी भक्ति के रूप में श्री राम देते हैं। अतः प्रभु के प्रति कृतज्ञ भाव रखना चाहिये। उसके उपकारों का सदैव स्मरण करना चाहिये। इससे वाणी शुद्ध होती है। वाणी का दुरूपयोग महापाप है। अतः वाणी का हमेशा सदुपयोग करना चाहिये।

आचार्योपासना नवघा भक्ति का पंचम सोपान है। अपने गुरू की शु अन्तःकरण से सेवा करने से भक्ति दृढ़ होती है। मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होता है।

यम–नियम, आसन , प्राणायाम, प्रत्याहारादि का पालन करना भक्ति का छठा सोपान है।

''निष्ठा मत्पूजने नित्यं''।

सेवा का मार्ग अति दिव्य है। सेवा में प्रेम मुख्य है। प्रेम भाव से की गई सेवा से प्रभु प्रसन्न होते हैं। सेव्य में मन को पिरोकर रखना यही सेवा है। जैसा प्रेम हम अपने शरीर से करते हैं। ऐसा ही प्रेम अपने आराध्य से करने से भक्ति भाव दृढ़ होता है।

किसी संत द्वारा मंत्र की दीक्षा ग्रहण करके उस मंत्र की सांगोपांग उपासना करना भक्ति का सातवॉ साधन है।

''मम मन्त्रोपासकत्वं सा सप्तमुच्यते'' 10/25

मेरे भक्तों की मुझसे भी अधिक पूजा करना, समस्त प्राणियों में मेरी भावना करना, बाह्य पदार्थों में वैराग्य करना और शम दमादि सम्पन्न होना यह भक्ति का आठवॉ साधन है–

मद्भक्तेश्वधिका पूजा सर्वभूतेशु मन्मतिः।

वार्थेशु विरागित्वं शमादि सहितं तथा।।

इसी भाव को तुलसी ने इस प्रकार कहा है–

''मोरे मन प्रभु अस विश्वाशा। राम ते अधिक राम कर दासा''

नवम् भक्ति के साधन में तत्व विचार करना है।

''नवम् तत्वविचारः''।

इस प्रकार नवम सोपान तक आकर शरणागत शिष्य की भी संत वृत्ति बन जाती हैं। व्यक्ति स्वभाव से सरल हो जाता है, कठोर व्यवहार तिरोहित हो जाता है, मन निश्छल हो जाता है एवं प्राणी मात्र में सम भाव से स्थिर हो जाता है और वह मोक्ष करने प्राप्त कर लेता है। नवधा भक्ति के प्रथम चार चरण सत्संगति, कथाश्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि से मनुष्य स्वयं को भक्ति मार्ग का अधिकारी स्थिर कर, आचार्य से दीक्षित होकर अन्तिम चार चरणों में ज्ञान और शास्त्र सम्मत कर्म से चित्त को शुद्ध कर मनुष्य भक्ति के शीर्ष पर पहुंच जाता है। मानस में तुलसी भी भक्ति के इन्ही नव सोपनों में क्रमशः चढ़ते हुये मनुष्य को तत्व ज्ञान से आलोकित कर देते हैं–

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा, दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।
गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान,
चौथी भगति मम गुन मन करई कपट तजिगान।
मन्त्रजाप मम दृढ़ विश्वासा, पंचम भजन सो वेद प्रकासा।
छठ दम सील बिरति बहु करमा,
सातॅव सम मोहि मय जग देखा, मोते संत अधिक करि लेखा।।
आठॅव जथा लाभ संतोशा, सपनेहुॅ नहिं देखई परदोशा।
नवम सरल सब सन छल हीना, मम भरोस, हियॅ हरस न दीना

नवधा भक्ति ज्ञान का साधन है। वस्तुतः संसार के सारे व्यवहार प्रेम से चल रहे है। बुगिम्य ज्ञान को हमेशा, श्रद्धा, दया, वात्सल्य, कर्तव्यप्रेम आदि नैसर्गिक मनोवृत्तियों की आवश्यकता होती है। नवधा भक्ति से मनुष्य में नैसर्गिक मनोवृत्तियॉ जाग्रत होती हैं। भक्ति से रहित कोरा 'बुगिम्य ज्ञान सूखा, कर्कश, अधूरा एवं बॉझ होता है। ऐसा ज्ञान किसी को मोक्ष नही दिला सकता। जो ज्ञान मनुष्य की नैसर्गिक मनोवृत्तियों को जाग्रत नहीं करता और जिसे नैसर्गिक मनोवृत्तियों की सहायता अपेक्षित नहीं होती वह व्यर्थ हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान कृष्ण ने स्पष्ट रूप से कहा है – कि जो न तो ज्ञानवान और न श्रद्धावान है ऐसा संशय युक्त व्यक्ति का सर्वथा नाश हो जाता है।

''अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति'' गीता 4/40

वाल्मीकि रामायण में महर्षि वाल्मीकि शबरी को सिद्धा और सिसम्मता की उपाधि से अलंकृत कर रहे हैं। अपनी भक्ति से श्री राम का दर्शन कर वह स्वयं सिद्धा हो गई है। जितने भी सिद्ध मुनि महर्षि थे उन सबसे श्रेष्ठ हो गई है। 3/74/10

मतंग ऋषि की सेवा में तत्पर परिचारिका शबरी को महर्षि ने बता दिया था कि इस परम पवित्र आश्रम में राम अपने भाई लक्ष्मण के साथ एक दिन जरूर पधारेंगे। बस ऋषि के इसी अमोघ आदेश को शिरसा धारणकर आश्रमवासिनी शबरी अनिमीलित नेत्रों से राम की पल–पल प्रतीक्षा कर रही थी। शबरी जीवन भर नियम निष्ठा

और तत्परता के साथ मतंग वन मे राम की प्रतीक्षा कर रही थी। नियमित रूप से चारों दिशाओं में बुहारी देती, प्रभु श्री राम के लिये सुन्दर–सुन्दर फल लेकर आती कि आज प्रभु आयेंगे। सुबह से शाम तक प्रतीक्षा करती और दूसरे दिन पुनः उसी क्रम में लग जाती। अपनी दिव्य तपश्चर्या से ही चारूभाशिणी शबरी प्रभु श्री राम तक को आश्चर्य चकित कर देती है। और यथा काम्य पद प्राप्त करती है।

तामुवाच ततो रामः शबरीं संशितव्रताम्
अर्चितोहं त्वया भद्रं गच्छ कामं यथा सुखम्। वाल्मीकि राम0 3/74/31

राम उस अति तीक्ष्णव्रतशीला, आचार्य परिचर्या निश्ठा शबरी से कहते हैं – हे भद्रे! तुमने मेरा भावपूर्ण आतिथ्य किया है। बड़े सुस्वादु अमृत के स्वाद को भी फीका करने वाले फलों के द्वारा मेरा अर्चन किया हैं– मुझे तृप्त किया है अब तुम अपनी अभिलाशा के अनुरूप यथा काम्य मोक्ष की यात्रा का आनन्द करो।

राम के श्री मुख से प्रकट यह काम शब्द कितना निश्काम है, यह तो सच्चा भक्त ही जान सकता है। राम की आज्ञा से प्राप्त काम भी राममय बन जाता है। इसी राम भावना से शबरी अपनी ही आत्मा की अनंत ज्योति में आत्मयोग से अपने को विलीन कर देती है।

वाल्मीकि की निम्नवर्णा शबरी अपनी भक्ति से अग्नि के समान तेजस्वी शरीर को प्राप्त करती है। वह भीलनी दिव्य वस्त्र, दिव्य आभूशण, दिव्य, फूलों की माला, दिव्य अनुलेपन को धारण किये हुये अपने तेज से सम्पूर्ण मतंग वन को प्रकाशित कर पवित्र बना देती है। जहां उसके आराध्य प्रभु श्री राम तक को शान्ति एवं विश्राम प्राप्त हो जाता है वा0रा0 3/75/15।

❑❑

डॉ0 अम्बेडकर के धम्म की अवधारणा

डॉ0 रिपुसूदन सिंह
प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष, लोक प्रशासन
डीन, स्कूल फॉर अम्बेडकर स्टडीज फॉर सोसल साइन्स,
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ

डा0 अम्बेडकर अपने समकालीन चिन्तकों से मौलिक रूप से भिन्न थे। प्रश्न उठता है कि घोषित अनीश्वरवादी और अनात्मवादी होने के बावजूद उन्होंने धर्म को इतना महत्व क्यों दिया? उनके समकालीनों में दो ऐसे व्यक्ति थे जो अनिश्वरवादी थे। वह थे – मो0 अली जिन्ना और जवाहरलाल नेहरू। नेहरू अन्त तक धर्म, धार्मिक अनुष्ठानों–प्रपंचों से परहेज करते रहे। जिन्ना ने धर्म का प्रयोग एक अलग पाकिस्तानी राज्य की माँग के लिए तो किया पर व्यक्तिगत जीवन पर उनका धर्म या मजहब से कोई लेना देना नहीं था। अब प्रश्न उठता है कि बावजूद इसके डा0 अम्बेडकर ने धर्म को इतना महत्व क्यों दिया और अपने मृत्यु के दो माह पूर्व ही 14 अक्टूबर 1956 को पाँच लाख के विशाल समूह के साथ नागपुर में बौद्ध धर्म अंगीकार किया? उनके लेखन की महत्वपूर्ण विशेषता है कि उसका एक बड़ा हिस्सा जहां धार्मिक विश्वासों के खण्डन–मंडन का है तो 1956 में लिखित उनकी अंतिम कृति 'द बुद्धा एंड धम्मा' धम्म की प्रशंसा और अनुशंसा पर आधारित है।

डा0 अम्बेडकर का धम्म मुक्तिकामना है, यह विस्तृत, वैश्विक, प्रगतिशील, परिवर्तनवादी और समावेशी है पर उनका धम्म, धर्म व अन्य धर्मो से रूप, रंग और सार में नितान्त भिन्न है। इसमें जगत ही सत्य है, ब्रहम मिथ्या। यह जीवन केन्द्रित है, मृत्यु केन्द्रित नहीं। यह सकारात्मक है, नकारात्मक नहीं। यह जीवन की अनन्त चुनौतियों को स्वीकार करने वाला है, पलायनवादी नहीं। यह पहाड़ों, घाटियों, कन्दराओं और जंगलों में शरण लेने वाला नहीं है वरन् बुद्धं, धम्मम और संघम की शरण में ले जाने वाला है। बुद्धम् शरणम् अर्थात बुद्धि, विवेक और ज्ञान के शरण में जाना, धम्मम् अर्थात श्रेष्ठ और नैतिक जीवन के आलोक में जीवन जीना और संघम् अर्थात समाज, लोगों, समुदायों के बीच जाना जहाँ यदि समस्याएँ हैं तो उनका समाधान भी वहीं है। आश्चर्य है कि डा0 अम्बेडकर गाँधी की तरह ही धर्म को राजनीति से अलग नहीं करना चाहते हैं वरन् 'संसार को एक धर्म राज्य' बनाना चाहते हैं। पर उनके धर्म में सत्ता किसी दैवीय शक्ति के हाथ में न होकर मनुष्य के हाथों में हैं जो बुद्धि, विवेक, तर्क, ज्ञान का प्रयोग करके मानव कल्याण में एक समतामूलक, शोषणविहीन, जाति–वर्णविहीन समाज की स्थापना करना है।

डा0 अम्बेडकर धम्म की एक ऐसी परम्परा को आगे बढ़ाते हैं जो बिल्कुल नया है। वह धम्म को ही धर्म से मुक्त करते हैं। उसे (धम्म) धार्मिक प्रवंचना, आडम्बर, पांखण्ड, हठधर्मिता, संकीर्णता और अहंकार से मुक्त कर देते है। उनका धर्म न तो हिन्दू है, न मुसलमान, न सिख, न ही इसाई और न ही तथाकथित बौद्ध। वह धम्म को ईश्वर, आत्मा, स्वर्ग–नर्क, जाति, वर्ण, क्षेत्र, नस्ल से आजाद करते हैं। उनका धम्म साधन है न कि साध्य। वह नित परिवर्तित होता हुआ नया बना रहता है। उसमें जीवन्तता, आशा, उम्मीद, जीजिविषा है। उनका धम्म इसी जीवन में मुक्ति का मार्ग है। यह जीते जी मनुष्य के मुक्ति की न सिर्फ कामना करता है बल्कि उसके लिए रास्ते भी बताता है। यह काल्पनिक या वैचारिक मात्र नही है। यह व्यावहारिक और इसी दुनिया में अर्जित करने वाला है। इसके रास्ते पर चल कर मानव अपने और अपने आस–पास के समाज में होते हुए परिवर्तनों को बहुत ही आसानी से समझ सकता है।

डा0 अम्बेडकर का धम्म मनुष्य केन्द्रित है। यह जीवन का वरण करता है पर मृत्यु को भी सरल और सहज

प्रक्रिया मानता है। यहाँ मरने के बाद भी जीवन है। किन्तु यहाँ आत्मा का प्रस्थान या विचरण नही है। जीवन पदार्थ के रूप में परिवर्तित होकर विभिन्न रूपों और रंगों को ग्रहण करके इस कभी न खत्म होने वाले और लगातार विकसित होने वाले ब्रह्मांड का एक अभिन्न हिस्सा बन जाता है। वापस उस मूल प्रश्न पर आना होगा कि क्या कारण था कि तमाम आधुनिक और वस्तुनिष्ठ–वैज्ञानिक विचारों के बावजूद अम्बेडकर जीवन के अन्त में न सिर्फ बौद्ध धम्म को स्वीकार करते हैं बल्कि इसका पूर्वाभास 1935 में ही कर देते हैं जब वे कहते हैं कि 'मैं हिन्दू पैदा हुआ हूँ पर हिन्दू बन कर नहीं मरुंगा'।

डा0 अम्बेडकर के उक्त कथन से यह अर्थ निकाला गया कि हिन्दू धर्म बहुत ही बुरा था लेकिन इस्लाम, ईसाई, सिक्ख व अन्य स्थापित धर्म इससे कहीं बेहतर हैं। पर यदि डा0 अम्बेडकर की पुस्तक बुद्ध और उनका धर्म और उनके अनेक लेख जैसे बुद्ध या कार्ल मार्क्स, फिलॉसफी ऑफ हिन्दुयिज्म इत्यादि पढ़ा जाये तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वह एक ऐसे धर्म की स्थापना करते हैं जो तमाम स्थापित धर्मों की मूल स्थापनाओं की दार्शनिक और बौद्धिक जड़ों को ही हिला कर रख देता है। वह धर्म की एक ऐसी मीमांसा प्रस्तुत करते हैं जो सभी के लिए चुनौती है। इस संदर्भ में डा0 अम्बेडकर धर्म की अवधारणा एक विश्वव्यापी दृष्टिकोण प्रदान करता है।

डा0 अम्बेडकर ने जिस धम्म का प्रतिपादन किया है वह बुद्ध के विचारों के आलोक में है। 1957 में 'बुद्ध और उनका धर्म' प्रकाशन के बाद बौद्ध धर्म के अनेक सम्प्रदायों ने उसका विरोध किया और कहा कि यह बौद्ध धर्म बुद्ध का नहीं वरन् डा0 अम्बेडकर का है। देखा जाए तो आलोचकों के उक्त कथन में सच्चाई भी है। डा0 अम्बेडकर बुद्ध के ही विचारों के आलोक में बुद्ध के धम्म को आधुनिक–वैज्ञानिक संदर्भो में व्याख्यायित करते हैं। उसे नवीनीकृत कर एक नितान्त नया रूप रच डालते हैं। उनके लिए बुद्ध ईश्वर नहीं थे। वह मनुष्य या फिर श्रेष्ठ मानव थे। बुद्ध के विचारों में ऐसे मौलिक बातों को डा0 अम्बेडकर पिरोते हैं कि धर्म की पूरी धारणा ही बदल जाती है। शायद यही कारण है कि आधुनिकतावादियों, वैज्ञानिकों और साम्यवादियों के लिए जहां धर्म एक संशय और अविश्वास की चीज बना रहा वहीं डा0 अम्बेडकर स्वयं अनीश्वरवादी, अनात्मवादी और अनित्तवादी होने के बावजूद भी न सिर्फ धर्म पर लिखते हैं बल्कि एक नये धम्म को स्वीकार कर उसका सूत्रपात भी करते हैं।

जहाँ धर्म, मजहब, रिलीजन लगभग एक अर्थ और भाव को लेकर चलते हैं, धम्म का अर्थ और भाव नितान्त भिन्न है। जहाँ उक्त तीनों (धर्म, मजहब, रिलीजन) के लिए यह (धर्म) एक पूर्ण, सर्वशक्तिमान, सर्वत्र, सर्वज्ञ और शाश्वत अदृश्य सत्ता का प्रतीक है वहीं धम्म सिर्फ धारण करने की चीज है जिसमें इस प्रकार की कोई अदृश्य सत्ता उपस्थित नहीं है। जहाँ धर्म या मजहब में आत्मा, रूह या सोल उपस्थित है वहीं धम्म में ऐसी किसी काल्पनिक धारणा के लिए कोई स्थान नहीं है। जहाँ धर्म या मजहब के लिए सब कुछ नित्य और अपरिवर्तनशील है वहीं धम्म के लिए यह अनेक चीजों से निर्मित, सदा परिवर्तित होते हुए अनित्य है। धर्म साध्य है, लक्ष्य है, मुक्ति है, मोक्ष है, ईश्वर प्राप्ति है वहीं धम्म स्वयं में साध्य है, लक्ष्य है, मुक्ति और निर्वाण है। धर्म, मजहब या रिलीजन के लिए दो दुनिया का अस्तित्व है, जिसमें मनुष्य एक अदृश्य, अनजान, अगम्य दुनिया से आता है या भेजा जाता है और अपने कर्मों के लेखा–जोखा के साथ मृत्यु को आत्मसात करता है और अपने कर्मो के अनुसार ही दूसरी दुनिया अर्थात स्वर्ग या नर्क जाने के लिए प्रतीक्षा करता है।

डा0 अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक बुद्ध और उनका धम्म के तृतीय खण्ड के तीसरे भाग में धम्म क्या है के शीर्षक के अन्तर्गत धम्म को समझाते हुए लिखा है कि धम्मय

- जीवन अर्थात मन, वचन एवं शरीर की पवित्रता बनाये रखना धम्म है। ?
- जीवन की अर्थात मन, वचन एवं शरीर की पूर्णता प्राप्त करना धम्म है
- निर्वाण प्राप्त करना धम्म है। राग, द्वेष और मोह से मुक्त होना निर्वाण प्राप्ति है।
- तृष्णा (लोभ और लालच) का त्याग धम्म है।

- यह मानना कि सभी संस्कार अनित्य है, धम्म है। इसका यह तात्पर्य जीवन अनेक चीजों से निर्मि त है और वह अकार नहीं है। यह नित परिवर्तनशील और निरन्तर संवर्धनशील है।
- कर्म को मानवजीवन के नैतिक संस्थान का आधार मानना धम्म है।

उक्त धम्म की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए डा0 अम्बेडकर चौथे भाग में अधम्म क्या है समझाने का प्रयास करते हैं।

- परा प्राकृतिक में विश्वास करना अधम्म है।
- ईश्वर में विश्वास करना अधम्म है।
- ब्रहम और आत्मा आधारित धर्म मिथ्या है।
- यज्ञ (बलि कर्म) में विश्वास करनाा अधम्म है।
- कल्पन्नश्रित विश्वास अधम्म है।
- धर्म की पुस्तकों का वाचन मात्र अधम्म है।
- धर्म की पुस्तकों को गलती की सम्भावना से परे मानना अधम्म है।

धर्म और अधर्म के बीच के अन्तर को स्पष्ट करते हुए डा0 अम्बेडकर इस बात की भी बखूबी चर्चा करते हैं कि सधम्म क्या है?

- मन के मैल को दूर कर उसे निर्मल बनाना सधम्म है।
- संसार को धम्म राज्य बनाना सधम्म है।
- धर्म तभी सधम्म है जब वह सभी के लिए ज्ञान का द्वार खोल दे।
- धर्म तभी सधम्म है ज बवह यह शिक्षा देता है कि केवल विद्वान होना पर्याप्त नहीं है। इससे आदमी पंडताउपन की ओर अग्रसर हो सकता है
- धर्म तभी सधम्म बनेगा जब वह प्रज्ञा के साथ शील और शील के साथ करूणा उत्पन्न करे।?
- धर्म तभी सधम्म बनेगा जब यह यह भी शिक्षा दे कि करूणा से भी अधिक आवश्यकता मैत्री की होती है और मनुष्यों के बीच समानता का भाव हो।
- धर्म तभी सघम्म होगा जब एकआदमी दूसरे आदमी के बीच की सारी दीवारों को गिरा दे और सारे सामाजिद भेदों को मिटा दे।
- धर्म तभी सधम्म होगा ज बवह यह शिक्षा दे कि कभी भी किसी आदमी का मूल्यांकन उसके जन्म के आधार पर न करके उसके कर्म के आधार पर किया जायेगा।

डा0 अम्बेडकर ने धर्म, अधर्म और सधर्म को बहुत ही सहजता, सरलता और आसान बनाकर व्याख्ति किया है कि एक सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी उसे समझ सकता है। इसके साथ ह ीवह धर्म, मजहब, रिलीजन और धम्म के बीच अंतर को स्पष्ट रूप से रेखांकित करते हैं। कहते है कि जहॉ धर्म, मजहब, रिलीजन लगभग एक अर्थ और भाव को लेकर चलता है धम्म का अर्थ और भाव नितान्त भिन्न है। जहा पर उक्त तीनों के लिए यह एक पूर्ण, सर्वशक्तिमान, सर्वत्र, सर्वज्ञ और शाश्वत अदृश्य सत्ता का प्रतीक है वहीं पर धम्म सिर्फ धारण करने की चीज है जिसमें कोई इस प्रकार की सत्ता उपस्थित नहीं है। जहा उक्त तीनों में आत्मा, रूह या सोल उपस्थित है वहीं पर धम्म में ऐसी कोई की काल्पनिक धारणा के लिए कोई स्थान नहीं है। जहा उक्त तीनों के लिए सब कुछ नित्य और अपरिवर्तनशील है वहीं पर धम्म के लिए यह अनेक चीजों से निर्मित, सदा परिवर्तित होते हुए अनित्य है।

हिन्दुओं के अनुसार 84 लाख योनियों में सफर तय करने के बाद मोक्ष की प्राप्ति की संभावना होती है तो इस्लाम और ईसाइयत में कयामत और फाइनल जजमेन्ट के दिन सब कुछ तय होता है। पर धम्म को किसी भी

प्रकार के आत्मा, रूह और सोल की न तो जरूरत है और न ही उनका उसमें कोई स्थान ही है। यहाँ पुनर्जन्म तो है पर यह आत्मा का पुनर्जन्म न होकर वस्तु का पुनर्जन्म है जिसमें मृत्यु के पश्चात भी मनुष्य समाप्त नहीं होता बल्कि पदार्थ के रूप में शरीर के बदलाव के साथ ही इस अनन्त और कभी न खत्म होने वाले ब्रहमांड का एक अभिन्न हिस्सा बन जाता है। जहाँ धर्म के लिए मृत्य दुख, शोक, संताप और विलाप का विषय है वहीं धम्म के लिए मृत्यु जीवन का एक नया संस्करण है, यह उसका रूपान्तरण मात्र है जो बहुत ही स्वाभाविक है। इसलिए यह दुख, भय, पीड़ा या संताप का कारण नहीं। उनका धर्म ज्ञानोदय की प्राप्ति है।

डा0 अम्बेडकर का धर्म एक ऐसा सिद्धान्त है, जिससे एक सुखी, अच्छा और न्यायोचित जीवन जीया जा सकता है। यह एक ऐसी धारणा है जो मनुष्य को भय, अंधविश्वास, घृणा और किसी भी हीन भावना से मुक्त करता है। यह आपको अन्दर से इतना शक्तिशाली बनाता है कि बिना किसी के समक्ष झुके आप अपना जीवनयापन कर सकते हैं। इसके साथ ही धम्म न तो नया होता है और न ही पुराना। यह सर्वदा तरोताजा है, जीवन्त है, उर्जा से भरा है, उम्मीदों, अभिलाषाओं और विश्वासों से लबरेज है। इसमें किसी प्रकार का अवसाद नहीं, निराशा का कोई भाव नहीं, किसी चीज के खोने का कोई गमध नहीं। इसमें सम्पूर्णता का बोध है और सापेक्षता का भाव है। इसमें प्रेम, लगाव, काम, प्रकृति के प्रति सामीप्य का एहसास और स्वयं और दूसरे के प्रति एक निरन्तर प्रवाहमान चिन्ता का भाव है। यह आपके अन्दर उत्सुकता और ज्ञान के प्रति अनुराग पैदा करता है। यह निरन्तर जलने वाली उस ज्योति के समान है जो इस जीवन के लक्ष्यों को खोजने में सहायक होगी। यह जीवन को अर्थ देती है और सकारात्मक परिणामों की ओर ले जाती है। यही जीवन को सपने के पंख देता है जिसके चलते आप इस अनन्त ब्रहमांड में उड़ सकते हैं।

डा0 अम्बेडकर यह स्पष्ट करते है कि बुद्ध का धम्म इहलौकिक है, उनके स्वयं के द्वारा आविष्कृत है, उनके स्वयं के अनुभव, ज्ञान और सामाजिक अन्तर्सम्बंधों से उत्पन्न हुआ है। डा0 अम्बेडकर के बारे में भी यही कहा जा सकता है कि उनके द्वारा जिस प्रकार से धम्म की व्याख्या की गयी है उसमें उनकी मौलिकता है। वह तार्किक, विवेकसंगत, वैज्ञानिक–आध्यात्मिक चेतना से लैश है और एक एक शब्द में मानव मुक्ति और कल्याण भरा पड़ा है। वह जन्म से अधिक कर्म पर बल देते हैं। डा0 अम्बेडकर ने 'बुद्ध और धम्म' पुस्तक में स्पष्ट किया है कि बुद्ध ने अपने धर्म में स्वयं के लिए कोई भी स्थान नहीं रखा। उसी तरह डा0 अम्बेडकर ने अपने समूचे चिन्तन में अपने लिए कोई भी स्थान नहीं रखा है। इस अर्थ में वे सही मायने में एक बोद्धिसत्व थे। उनकी धर्म की मीमांसा और वर्तमान सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि डा0 अम्बेडकर आज भी इस ब्रहमांड में अपने विचारों एवं भावों के साथ उपस्थित हैं और निरन्तर प्रेरणा बन कर एक पथप्रदर्शक की भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं। 20वीं सदी मे डॉ आंबेडकर की बौध दर्शन मे सबसे बड़ा योगदान था पूर्व मे चले आ रहे महायान और हीनयान नवयान (न्यू वेहिकल ऑफ नॉलेज) के दृष्टिकोण का विकास। 21वी और आने वाली सदियो मे यह धृष्टिकोण दर्शन और विचारधाराओं की विभिन्न धारायों को एक सूत्र मे बांधने और उसे मानव कल्याण मे लगाने का काम करेगा। महायान और हीनयान से हटकर नवयान (न्यू वेहिकल ऑफ नॉलेज) का दृष्टिकोण प्रतिपादति करना

संदर्भ संकेत

1. बोधिसत्व डॉ भीमराओ रामजी अंबेडकर, भगवान बुद्ध और उनका धर्म, पृष्ठ 222 (अनुवाद–डॉ भदंत आनंद कौसलयायन)
2. वही पृष्ठ177–192
3. वही पृष्ठ 193–220
4. वही पृष्ठ 221–245

❑❑

समावेशी भारत, समावेशी शिक्षा और सांकेतिक भाषा

डॉ0 हेमांशु सेन
सह आचार्य, हिन्दी विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

'समावेशी भारत' से अभिप्राय भारत के उस स्वरूप से है जिसमें भारत का प्रत्येक नागरिक, उसके विकासात्मक निर्माण में सक्रिय और सकारात्मक रूप से सहभागिता करता हो। समावेशी भारत की संकल्पना तभी साकार होगी जब शिक्षा, रोजगार, अवसर और समाज की प्रवृत्ति समावेशी हो। समावेशी शब्द अंग्रेजी के enclusive शब्द का हिन्दी रूप है। 'समावेशी' शब्द का कोशगत अर्थ है – 'साथ रहना, मिलना, प्रवेश, अन्तर्भाव, शामिल होना, साथ–साथ होना, व्याप्त होना, घुसना या घटित होना।''[1]

'समावेशी भारत' की संकल्पना का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि भारत के विकास में सबकी सहभागिता आवश्यक है। इसमें भारत के नागरिक की अवस्था, स्थिति और परिस्थिति से उसकी सकारात्मक सहभागिता बाधित नहीं हो सकती। इस दृष्टि से सवैधानिक धरातल पर भी शिक्षा और अवसर के समानता का अधिकार प्रत्येक भारतवासी को प्राप्त है। संविधान के अनुसार जाति, धर्म, अथवा लिंग के आधार पर समाज में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जा सकता, परन्तु जब व्यक्ति किसी प्रकार की ऐसी समस्या से ग्रस्त हो कि वह अपने समकालीन परिवेश, परिस्थिति और हमउम्र व्यक्तियों से तालमेल नहीं बिठा सकता तब वहाँ स्थिति भिन्न हो जाती है। ऐसे व्यक्ति समान अवसर, समान शिक्षा, समान अधिकार के लाभ से वंचित रह जाते है। निःसन्देह यह वर्ग शारिरिक और मानसिक रूप से असमान्य वर्ग दिव्यांगजनों का है।

समाज की मुख्य धारा में दिव्यांगजनों की सहभागिता का मुद्दा उठता रहा, चलता रहा और अन्ततः सन् 2006 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा एक घोषणा पत्र जारी किया गया जिसका उद्देश्य शारीरिक और बौद्धिक दिव्यांग जनों की समाज के हर क्षेत्र में बराबर की सहभागिता सुनिश्चित कराना था। भारत में भी इस दिशा में अनेक प्रयास हुए। परिणाम स्वरूप 'समावेशी भारत' की संकल्पना का उद्भव हुआ।

'समावेशी भारत' राष्ट्रीय न्यॉस भारत सरकार द्वारा की गई एक सार्थक पहल है। 'समावेशी भारत' की संकल्पना में सब शामिल हैं वृद्ध, युवा, बालक, स्त्री, पुरुष, सामान्य दिव्यांग, और विशिष्ट जन। इन सबको मिलाकर, संयुक्त रूप से समावेशी भारत का निर्माण होता है। भारत के विकास और निर्माण में इन सबकी भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए कुछ निश्चित बिन्दुओं पर ध्यान दिया गया। जैसे –

(1) शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसार प्रदान किया जाए।
(2) जाति, वर्ग, धर्म, आयु, लिंग और शारिरिक मानसिक क्षमता के आधार पर कोई भेदभाव न किया जाए।
(3) इस हेतु खेलकूद, सांस्कृतिक आयोजनों द्वारा आपसी सहभागिता बढ़ाना जिससे विशिष्ट बच्चों में भी सामान्य के साथ कार्य करने का संतोष प्राप्त हो।
(4) शिक्षकों को इसके लिए प्रशिक्षण दिया गया और इसके लिए अनेक योजनायें भी बनायी गयीं।

वस्तुतः समावेशी भारत के वास्तविक निर्माण के लिए महत्वपूर्ण घटक हैं –

1. समावेशी शिक्षा
2. समावेशी भाषा
3. समान अवसर

समावेशी शिक्षा से समाज के हर वर्ग और विशेष रूप से दिव्यांगजनों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ा जा सकता है। यद्यपि हमारे संविधान में पिछड़ी जाति, जनजाति, अनुसूचित जाति और शारीरिक रूप से अशक्त व्यक्तियों को आरक्षण प्रदान कर तथा शिक्षा और रोजगार की दृष्टि से समान अवसर उपलब्ध करा कर, समाज की मुख्य धारा में जोड़ने की कोशिश की गई। समाज पर इसका बहुत व्यापक प्रभाव भी पड़ा है। आज इन समुदायों में भी उच्चाधिकारी, उच्च आय स्तर, धनाढ्य व्यक्ति सामान्य रूप से पाये जाते हैं तथापि शारीरिक और मानसिक रूप से विशिष्ट अशक्त लोगों की स्थिति में बहुत सुधार नहीं हुआ। इसका मूल कारण सम्भवतः यह था कि आरक्षण प्रदान करने पर भी वे सामान्य सामाजिक व्यक्ति के साथ सहजता से तालमेल नहीं बिठा पाते थे। अतः उनको शिक्षित करने हेतु 'समावेशी शिक्षा' की संकल्पना की गई जिसके तहत दिव्यांगजनों के लिए सांकेतिक भाषा, ब्रेल लिपि जैसी विशिष्ट प्रशिक्षण की व्यवस्था बनाई गयी। इसी दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक प्रकार की योजनाओं का क्रियान्वयन हुआ। भारत सरकार ने भी इस दिशा में सार्थक कदम उठाते हुए दिव्यांगजनों की आवश्यकतानुरूप अनेक संस्थान, अध्ययन केन्द्र और विश्वविद्यालयों की स्थापना की। ऐसे संस्थानों में दिव्यांगजनों को प्रशिक्षित कर उनको सामाजिक, आर्थिक और मानसिक रूप से आत्मनिर्भर और सामान्य बनाकर, देश के विकास की मुख्य धारा में जोड़ने की सार्थक और व्यापक परिकल्पना की गयी। इसी कड़ी में उ0 प्र0 सरकार द्वारा सन् 2008 में डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय की स्थापना की गई। इस विश्वविद्यालय का मुख्य लक्ष्य 'समावेशी शिक्षा' द्वारा दिव्यांगजनों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ना है।

'सन् 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में दिव्यांगजनों की जनसंख्या लगभग 2 करोड़ 19 लाख थी, जबकि कुल जनसंख्या 1 अरब 2 करोड़ थी। इस प्रकार लगभग दिव्यांगजनों की जनसंख्या लगभग 2.1 प्रतिशत थी। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार दिव्यांगजनों का यह प्रतिशत बढ़ कर 2.21 प्रतिशत हो गया। इस बार यह संख्या लगभग 2 करोड़ 68 लाख की हो गयी थी।'[2] निसन्देह शारीरिक और मानसिक रूप से दिव्यांगजनों की संख्या भारत की आबादी का बहुत बड़ा भाग है। भारत की इतनी बड़ी शक्ति का अनुप्रयोग न होना अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। सामान्य तौर पर यह देखा गया है कि दिव्यांगजनों का छठी ज्ञानेन्द्रीय (6जी sense) प्रभावी रूप से सक्रिय होती है। मूक–बधिर, दृष्टिबाधित, अपंग तथा अन्य शारीरिक समस्याओं के अतिरिक्त कुछ बीमारियाँ भी ऐसी हैं जैसे – ऑटिज्म, सेरेब्रल पाल्सी आदि, जो व्यक्ति को असामान्य बना देती हैं।

इन विशिष्ट समस्याओं की ओर भी सरकार ने विशेष ध्यान दिया है। इस हेतु विशिष्टि प्रशिक्षण द्वारा 'समावेशी शिक्षा' का विस्तार किया रहा है। 'समावेशी शिक्षा' को सुलभ बनाने हेतु सांकेतिक भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका है। अतः समावेशी भारत हेतु समावेशी शिक्षा जितनी महत्वपूर्ण है उतना ही आवश्यक है सांकेतिक भाषा का ज्ञान। इसके लिए सामान्य भाषा के अतिरिक्त सांकेतिक भाषा के विभिन्न रूपों का प्रशिक्षण दिया जाता है।

सांकेतिक भाषा – भाषा का वह रूप है जो आँगिक संकेतों (हाथ, चेहरा और भावों आदि) द्वारा संप्रेशित होती हैं। सांकेतिक भाषा की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह दृश्य होती है। भाषा के स्वरूप को विवेचित करते हुए त्रुवेत्स्कर्ाय, येल्मस्लव तथा चाम्स्की आदि विद्वानों ने भाषा के दो रूपों को स्वीकार किया है– भाषा और वाक्। भाषा और वाक् के मूल अन्तर को स्पष्ट करते हुए डॉ0 भोलानाथ तिवारी लिखते हैं– (क) भाषा एक व्यवस्था है जो किसी भाषा के सभी बोलने वालों के मस्तिक में भाषिक क्षमता के रूप में होती है, किन्तु वाक् उस भाषा का व्यवहृत या प्रयुक्त रूप है। (ख) भाषा की सत्ता मानसिक होती है तथा वह अमूर्त होती है, तो वाक् की सत्ता भौतिक होती है, वह मूर्त होती है।''[3] भाषा और वाक् के अन्तर से यह स्पष्ट हो जाता है कि भाषा के लिए सजग और प्रबुद्ध मानस की आवश्यकता होती है। भाषा के लिए वाणी की आवश्यकता नहीं होती वरन वाक् के लिए वाणी की आवश्यकता होती है। सम्भवतः इसी कारण सांकेतिक भाषा का सर्वाधिक प्रयोग और विकास मूक–वधिर दिव्यांगजनो के लिए उपादेय सिद्ध हुआ। 'सांकेतिक भाषा' शब्द का व्यवहार करते ही यह विशिष्ट,

पारिभाषिक अर्थ देने लगता है– दिव्यांगजनों की भाषा। इसमें सन्देह नहीं है कि आज समाज में दिव्यांगजनों की सहभागिता सांकेतिक भाषा के विशिष्ट प्रशिक्षण के कारण बढ़ी है। सांकेतिक भाषा के प्रयोग से न केवल मानसिक अपितु सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से भी वे सक्षम और सबल हुए है।

सांकेतिक भाषा के ऐतिहासिक स्वरूप का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि अपने प्रारम्भिक रूप में सामान्य भाषा का स्वरूप भी आँगिक था, जिसे 'संकेत सिद्धान्त' कहा जाता है। डॉ0 देवेन्द्रनाथ शर्मा अपनी पुस्तक 'भाषा विज्ञान की भूमिका' में भाषा की उत्पत्ति का 'संकेत सिद्धाँत' की अवधारणा को व्याख्यायित करते हुऐ लिखते हैं– ''कुछ विद्वानों का मत है कि आरम्भ में मनुष्य भी पशुओं के समान सिर, आँख, हाथ, पैर आदि अंगो को चलाकर अपना अभिप्राय व्यक्त किया करता था''[4]

सांकेतिक भाषा का सबसे प्रारम्भिक रूप महान चिंतक प्लेटो की पुस्तक 'क्रेटीलस' में मिलता है। इसकें पश्चात् सन् 1620 में जुआन पाब्लो बमेट ने मैड्रिड में Reduccion de las letras yarte para ensenar a hablas a los mundos (अक्षरों का न्यूनीकरण और मूक लोगों को बोलना सिखाने की कला) स्वर विज्ञान, लोगो पीडिया के साथ मूक–बधिर लोगों के लिए संप्रेषण में सुधार के लिए हस्तचलित वर्णमाला और हस्तचलित संकेतों द्वारा शिक्षण पद्धति का उल्लेख किया है। इसे स्वर – विज्ञान और लोगोपीडिया का प्रथम ग्रन्थ माना जाता है। सांकेतिक भाषा के विकास की प्रक्रिया अनवरत चलती रही। इसके बाद वर्ण संकेत बने और इस दिशा में शोध कार्य होता रहा और अन्ततः सन 1857 में वाशिंगटन डी.सी. में एक विद्यालय की स्थापना हुई जो सन् 1864 में नेशनल डेफ–म्यूट कॉलेज बना। आज यह विश्वविद्यालय पूरी दुनियाँ में अपनी तरह का एकमात्र विश्वविद्यालय है।

सांकेतिक भाषा के मुख्य तत्व इस प्रकार हैं –

(1) हाथ का आकार (Handshape)

(2) दिग्विन्यास (या हथेली का विचार) (Orientation)

(3) स्थान (अभिव्यक्ति का स्तर) (Location)

(4) गति (Movement)

(5) चेहरे का हावभाव (या बिना हस्तचालन के अंकक) (Enprersion)

जिसे प्रत्येक तत्व का प्रथम वर्ण लेकर (HOLME) परिवर्णी शब्द के रूप में स्वीकृति किया गया। इन सबको मिलाकर बनती है– सांकेतिक भाषा। इस प्रकार सांकेतिक भाषा, भाषा का वह रूप है जो मौखिक तथा लिखित भाषा से इतर आँगिक होती है। आंगिक और शारिरिक भाषा के रूप में स्वीकृत सांकेतिक भाषा अपने व्यापक रूप से बहुत प्रभावी और व्यापक होती है सामान्य तौर पर सांकेतिक भाषा को मूक–वधिर अथवा दिव्यांग जनों से जोड़कर देखे जाने की प्रवृत्ति मिलती है। जबकि आज परमाणु बम और हाइड्रोजन बम की ढ़ेरी पर बैठे, परमाणु युद्ध की भयाशंका से डरे–सहमे समाज में सांकेतिक भाषा की उपादेयता और आवश्यकता बहुत बढ़ जाती है। दिव्यांगजन जो इस भाषा में प्रशिक्षित और दक्ष होते है उनको सेना और सुरक्षा एजेन्सियों से जोड़कर जहाँ उनको समाज की मुख्य धारा में शामिल कर एक सहज, सामान्य जीवन के रूप में हिस्सा बनाया जा सकता है वहीं इन दिव्यांगजनों की शक्ति की समस्त संकलित उर्जा का सकारात्मक प्रयोग किया जा सकता है। हिन्दी के प्रख्यात कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' ने सुखद और विकसित भारत के लिए शान्त समाज की कल्पना की है। शान्त समाज तभी हो सकता है जब समाज सबके पास बराबर के अवसर, बराबर का सुख उपलब्ध हो। अपनी पुस्तक 'कुरूक्षेत्र' में वह लिखते है–

शान्ति नहीं तब तक जब तक, सुख भाग न नर का सम हो,
नहीं किसी को बहुत अधिक हो, नहीं किसी को कम हो।

जब तक मनुज मनुज का यह, सुख भाग नहीं सम होगा,
शमित न होगा कोलाहल, संघर्ष नहीं कम होगा।'[5]

वस्तुतः सांकेतिक भाषा के प्रशिक्षण के साथ भाषा का स्वरूप और भी समावेशी मूलक बनता है। हिन्दी को राजभाषा बनाने की प्रक्रिया में 5 सितम्बर, सन् 1949 को सर्वदलीय बैठक चल रही थी जिसकी अध्यक्षता पट्टाभि सीतारमैया कर रहे थे उसमें भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं0 जवाहर लाल नेहरु ने राजभाषा के सन्दर्भ में कहा था कि 'उसे परित्यागमूलक (एक्सक्लूसिव) के बदले समावेशमूलक (इनक्लूसिव) बनाये और उसमें भारत के सभी भाषायी तत्वों को शामिल करें।'[6] आज हिन्दी भाषा में सांकेतिक भाषा को समाहित कर उसे वास्तविक रूप से समावेशीमूलक बनाने की आवश्यकता है।

सांकेतिक भाषाओं को प्रायः सभी देशों ने आत्मसात किया है। दक्षिण अफ्रीकन, फ्रांसिसी, इजरायली, अमेरिकन सांकेतिक भाषा तथा इसी प्रकार भारतीय सांकेतिक भाषा। सामान्य भाषा के समान सांकेतिक भाषा भी ध्वनिग्राम और रूपग्राम से वहन होती हैं जिसका उत्तरोत्तर विकास विशिष्ट भाषाविदों ने किया है। वस्तुतः सांकेतिक भाषा के प्रशिक्षण में कुछ विशिष्ट सुधार कर इसे सहज बनाने और प्रसारित करने की आवश्यकता है। ब्रेल लिपि तथा अन्य सांकेतिक भाषाओं के समावेश से समाज का बड़ा हिस्सा अपनी विशिष्ट शारिरिक और मानसिक स्थिति के बावजूद समाज के मुख्य धारा से जुड रहा है यह उनका अधिकार है और हमारी आवश्यकता भी। सांकेतिक भाषा के प्रशिक्षण और प्रयोग से समावेशी शिक्षा का विस्तार सम्भव है और समावेशी शिक्षा से समावेशी भारत की परिकल्पना साकार हो सकती है। समावेशी भारत का मुख्य लक्ष्य देश के सभी दिव्यांगजनों को पूर्ण अधिकारों के साथ, सक्षम और सबल बनाकर समाज की प्रत्येक गतिविधि में समभाव से सहभागिता कराना है। तात्पर्य यह है कि सभी दिव्यांगजन अपने सामर्थ्य और वैशिष्ट्य के आधार पर समाज में अपनी सार्थक भूमिका निभा सकें। राजनीति, संस्कृति, अर्थशास्त्र, व्यवसाय और अध्ययन–अध्यापन आदि से जुड़े प्रत्येक क्षेत्र हेतु दिव्यांगजन स्वयं को उपयुक्त समझें। इस प्रकार एक ऐसे समावेशी मूलक समाज का निर्माण हो जहाँ सामान्य और विशिष्ट, दिव्यांग और गैर दिव्यांग, हर धर्म, हर जाति, हर आयु और लिंग के सभी व्यक्ति समभाव से देश के विकास में अपना सक्रिय योगदान दे सके। इसके लिए आवश्यक है कि सभी को शिक्षा और रोजगार के समान अवसर आधिकारिक रूप से उपलब्ध हों और तब निर्माण होगा 'समावेशी भारत' का। सम्भवतः इसी समावेशी भारत की परिकल्पना करते हुए प्रख्यात कवि रामधारी सिंह दिनकर लिखते है –

''जो कुछ न्यस्त प्रकृति में हैं, वह मनुज मात्र का धन है,
धर्मराज, उसके कण–कण का अधिकारी जन–जन है।''[7]

सन्दर्भ

1. संपा– मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, ज्ञान शब्द कोश, पृष्ठ – 819
2. www.censusindia.gov.in भारत सरकार की वेबसाइट
3. डॉ0 भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान और हिन्दी भाषा, पृष्ठ – 21
4. डॉ0 देवेन्द्रनाथ शर्मा, दीप्ति शर्मा, भाषा विज्ञान की भूमिका, पृष्ठ – 67
5. रामधारी सिंह दिनकर, कुरूक्षेत्र, पृष्ठ – 77
6. 5 सितम्बर, 1949, काँग्रेस अधिवेशन में पँडित जवाहर लाल नेहरू का वक्तव्य, उद्धृत, डॉ0 कैलाशचन्द्र भाटिया, हिन्दी भाषा का प्रयोजन मूलक स्वरूप, पृष्ठ – 23
7. रामधारी सिंह दिनकर, कुरूक्षेत्र, पृष्ठ – 81

❑❑

36

ब्रेल का भविष्य एवम् आधुनिक युग में इसकी उपयोगिता

श्रीमती पूजा
विशेष शिक्षक, दृष्टिबाधितार्थ विभाग, विशेष शिक्षा संकाय
डी0एस0एम0एन0आर0 विश्वविद्यालय

ब्रेल लिपि का आविष्कार हुये आज लगभग दौ सौ वर्ष हो चुके हैं। इस अवधि में पूर्व के अथक प्रयास के उपरान्त पूरे विश्व में इसे मान्यता मिल चुकी है। आज के इस आधुनिक युग में दिन–प्रतिदिन अनेक प्रकार के विद्युतीय उपकरण व सॉफ्टवेयर उपलब्ध हो रहे है जिसके कारण विविध प्रकार की आशंकाए शैक्षणिक क्षेत्र में अस्थिरता लाने लगती हैं कि ब्रेल सीखने का क्या औचित्य है। कृत्रिम आवाज की विविध वाचन मशीनें, बोलती पुस्तकें आदि दृष्टिहीन दिव्यांगजन की पहुँच लिखित शब्द तक करा रही है।

इस दौर में कुछ बुद्धिजीवी, शैक्षिक वर्ग, विज्ञान जगत, शोधकर्ता व दृष्टिबाधित स्वयं सोचने पर मजबूर हो गये कि अब उनके जीवन व शिक्षण कार्य हेतु ब्रेल की आवश्कता नहीं है। इस धारणा की वजह से खास तौर पश्चिमी जगत में ब्रेल का औचित्य कम दिखने लगा व उसके स्थान पर वाचन व लेखन की विविध मशीनें एवम् सॉफ्टवेयर प्रयोग होने लगा। ऐसी स्थिति मे ब्रेल के भविष्य पर प्रश्न चिन्ह लगने लगा। इसके उपयोग व प्रभाविकता और महत्व पर प्रश्न चिह्न लगने लगा।

ब्रेल लिपि – 'ब्रेल' लिपि का नाम इसके अविष्कार कर्ता लुई ब्रेल के नाम पर है। ब्रेल उभरी हुई छः बिन्दुओं की एक ऐसी लिपि है जिसे पढ़ने व लिखने के लिए दृष्टि की आवश्यकता नहीं होती है, इसे स्पर्श के द्वारा पढ़ा और लिखा जाता है। इस लिपि का स्वरूप इस प्रकार है–

1 • • 4	4 • • 1
2 • • 5	5 • • 2
3 • • 6	6 • • 3
पढ़ते समय	लिखते समय

इन छः बिन्दुओं के विभिन्न संयोग से आप संसार की कोई भी भाषा लिख– पढ़ सकते है। इन्हीं छः बिन्दुओ की संयोग से विभिन्न प्रकार के विराम चिन्ह, गणित की संख्या, चिन्ह आदि का भी दर्शाया जा सकता है। भारती ब्रेल भी इन्हीं छः बिन्दुओं पर आधारित है जिसके माध्यम से हम हिन्दी व भारत की विभिन्न भाषाएँ भी लिख–पढ़ सकते हैं।

ब्रेल शिक्षण – ब्रेल वाचन के लिए आवश्यक स्पर्शीय प्रत्यक्षीकरण संबंधी कौशलों का पूर्ण विकास बच्चे के 10–11 वर्ष की आयु तक पहुँचने पर हो जाता है – (नोलन, 1975), अतः आवश्यक है कि ब्रेल शिक्षण जितना शीघ्र हो सके आरम्भ कर देना चाहिए। वरना इस आयु के उपरान्त पर्याप्त उत्प्रेरकों के अभाव में स्पर्श शक्ति के कुंठित हो जाने का भय भी रहता है – (फ्रैम्पटन, 1955)। अतः बालक के स्पर्श शक्ति के उत्तम विकास के लिये विभिन्न प्रकारके आवश्यकत पठन सामग्री उपलब्ध कराते रहना चाहिए।

ब्रेल वाचन तत्परता – ब्रेल वाचन तत्परता से अभिप्राय है स्पर्श शक्ति का सर्वोत्तम विकास करना, जिससे छोटे–छोटे ब्रेल बिन्दुओं की पहचान कर सके एवम् विभिन्न बिन्दु संयोग को समझ सके। वाचन की पूर्व की तैयारी

में बालक को वाचन के लिये तैयार किया जाता है जिसके अन्तर्गत बालक में स्पर्श शक्ति का विकास, शब्द कोश में वृद्धि, विविधि प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष अनुभव, शारीरिक क्रियाएँ, मांस पेशियों पर आपेक्षित नियंत्रण, गतिविधियों में रूचि लेना, श्रवणीय व स्पर्शीय विभेदीकरण, स्पष्ट रूप से बोलना, अधिगम व इसके संबंधित गतिविधियों में रूचि लेना, अपने वातावरण की अनुस्थिति ज्ञान होना, सामान्य वस्तुओं की जानकारी होना, क्रम को समझना, अनुसरण करना, पर्याप्त स्मृति होना, पढ़ाई के प्रति जागरूक होना आदि।

स्पर्श शक्ति के अधिकाधिक विकास के लिये विभिन्न प्रकार के कार्य जैसे–क्रम में लगाना, तुलनात्मक शब्दों का अनुभव प्रदान कराना, विभिन्न आकृतियों, आकारों, तलों का अनुभव कराना, दिशा व स्थानिक ज्ञान दिलाना, पुस्तक व पृष्ठ की पहचान कराना आदि। इन सभी प्रकार की क्रियाओं को कराने से बालक के अंदर अपनी स्पर्श शक्ति के प्रति आत्मविश्वास बढ़ता है अतः वह ब्रेल सीखने के लिये अभिप्रेरित होता है।

ब्रेल वाचन – सामान्य वाचन शिक्षण के जैसा, ब्रेल–वाचन सीखने के लिये भी बालक में भाषा ज्ञान का एक विशिष्ट मानक स्तर होना अनिवार्य है। वाचन सीखने से पूर्व बालक अपने संबंधित वातावरण में उपस्थित लोगों से खुलकर बातचीत करने की आदत होनी चाहिए। यहाँ बालक का शब्दकोश भंडार समान उम्र के बच्चों की भाँति होना चाहिए। ब्रेल वाचन सीखने की प्रक्रिया में शिक्षक की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है अतः उन्हें बालक के उत्साहवर्धन के लिये एक उचित वातावरण का निर्माण करना चाहिए। जो इस प्रकार का हो– बालक से संबंधित वस्तुओं पर ब्रेल में लिखित लेबल लगाना, कक्षा व विद्यालय में ब्रेल का वातावरण निर्माण करना, ब्रेल में लिखित रोचक पुस्तकों का संग्रह तैयार करना व जरूरत के अनुसार उनमें से रोचक कहानियाँ पढ़ कर सुनाना, उसके पसंदीदा वस्तुओं पर ब्रेल लेबलिंग करना आदि।

इसके उपरान्त ब्रेल बिन्दुओं का प्रयोग करके अलग–अलग कार्य पत्रक बनाकर बालक के समक्ष प्रस्तुत करना व क्रमानुसार अर्थात् सुगमता से जटिलता की ओर उनका अभ्यास कराना जिससे कि ब्रेल बिन्दुओं को स्पर्श के माध्यम से समझाते समय उन्हें उनकी दोनों भुजाओं व दोनों भुजाओं की तर्जनी उंगली का इस्तेमाल तथा इसकी उचित स्थिति का ज्ञान देना जैसे कि–वाचन सामग्री समतल सतह पर रखी होनी चाहिए, उगंलिया ढीली हो, बिन्दुओं पर अधिक दबाव न देना,उंगलियाँ कागज की ओर कुछ मुड़ी हो, उंगलियों को हल्के से बाई से दाईं की ओर ले जाना आदि।

ब्रेल लेखन – ब्रेल लेखन हेतु अनेक उपकरणों का प्रयोग किया जाता है अन्तः पंक्तिक ब्रेल स्लेट, अन्तः बिन्दु ब्रेल स्लेट, जेब में रखने वाला ब्रेल लेखन फ्रेम (पॉकेट फ्रेम), गाईड, स्टाइलस, ब्रेलर, थर्मोफार्म मशीन, ब्रेल प्रिन्टर आदि। ब्रेल लेखन शिक्षण के पूर्व मुख्यतः तीन महत्वपूर्ण तथ्यों पर विचार करना चाहिए– लेखन कब आरभ करें, किन लेखन उपकरणों का चुनाव करें तथा किस प्रकार लेखन का शिक्षण करें। इसके साथ–साथ जब शिक्षक बालक की ब्रेल वाचन की योग्यता से पूर्णतः संतुश्ट हों तभी लिखना आरम्भ करवायें।

सर्वप्रथम ब्रेल लेखन उपकरण से बालक को अवगत करायें, इसके विभिन्न भागों से बालक का परिचय करायें। फिर पेज लगाने की प्रक्रिया समझाएँ, इसके उपरान्त स्टाइलस को उचित तरिके से पकड़ना सि खायें। अब शिक्षक पहले स्वयं बिन्दु को उभार कर उस कृति से बालक को महसूस करायें। ब्रेल पाटी पर हम दायें से बाँये की ओर लिखते है और इसका कारण भी समझाएं क्यों लिखते है। ब्रेल बिन्दु उभारते समय उसे दूसरे हाथ की सहायता लेने के लिये प्रोत्साहित करें जिससे बालक सही स्थान पर बिन्दु को उभार सके। बिन्दु बनाते समय जो आवाज होती है उससे अवगत करायें, कितना जोर लगाना चाहिए यह भी बताया आवश्यक है। इन सब के उपरान्त उसे निरन्तर अभ्यास करायें ताकि वह उचित तरीके से ब्रेल लिख सके।

ब्रेल की उपयोगिता – ब्रेल लिपि की उपयोगिता दृष्टिहीन दिव्यांगजनों के लिये सर्वोपरि है। ब्रेल वाचन व लेखन के माध्यम से ही वह शब्दों का चयन, वर्तनी, उच्चारण, समझ आदि अर्जित करते हैं।

रोजगार में ब्रेल–पूरे विश्व में लगभग 26 प्रतिशत दृष्टिबाधित व्यक्ति रोजगार कर रहे हैं जिनमें से अधिकतर लोग ब्रेल के माध्यम से कार्य करते हैं। जिससे यह आसानी ने अनुमान लगाया जा सकता है कि दृष्टिहीनों में साक्षरता दर, रोजगार दर की वृद्धि के लिये ब्रेल अनिवार्य है।

जिस प्रकार से टंकण साक्षरता दृष्टिवान व्यक्तियों के रोजगार आदि का वृद्धि करता है ठीक उसी प्रकार ब्रेल लिपि उनके लिये अनेकों द्वार खोलने में मदद करती है। कई शोध कार्य ये दर्शाता है कि ब्रेल साक्षरता दृष्टिहीन व्यक्ति के शैक्षणिक उपलब्धि व रोजगार से सीधा संबंध रखता हैं।

शिक्षा में ब्रेल – कल्पना करते हैं कि शिक्षक विद्यार्थियों से कहे कि अब आपको लिखने व पढ़ने की कोई जरूरत नहीं है अब हम आपको दूरदर्शन, कम्प्यूटर, टेंप रिकार्डर आदि दे रहे हैं आप उनसे देख व सुनकर पढ़ाई करें। क्या ये स्थिति वास्तविक जीवन में संभव है। क्या हम–आप बिना लिखे पढ़े इन तकनीक, मशीनों व उपकरणों के माध्यम से अधिगम कर सकते हैं। यह संभव नहीं है ठीक उसी प्रकार से दृष्टिबाधित व्यक्तियों की शिक्षा ब्रेल लिपि के बिना सार्थक नही है।ब्रेल दृष्टिबाधितों की साक्षरता के लिये अति आवश्यक है। ब्रेल की जानकारी उनके शिक्षा के विभिन्न आयामों में लाभप्रद है। इससे उनका संपूर्ण व बेहतर विकास संभव है।

एक शोध लुईसीआना टेक विश्वविद्यालय में, किया गया था जिसमें यह सामने आया कि जो दृष्टिबाधित व्यक्ति ब्रेल पढ़ व लिख सकते थे, उन्हें रोजगार हासिल करने में कम समस्याएं आई (ट्रासफार्मिंग ब्रेल प्रोजेक्ट चार्टर, जून 2012)। हेलन केलर (विश्व की सर्वप्रथम दृष्टिबाधित व श्रवणबाधित महिला जो ग्रेजुएट हुई) ने कहा था– हम दृष्टिहीन लुई ब्रेल के कृतज्ञ हैं जिस प्रकार मानवता के लिये गटनबर्ग।

दिन–प्रतिदिन के जीवन में ब्रेल – जो दृष्टिबाधित व्यक्ति ब्रेल पढ़ सकता है वह स्वतंत्रता पूर्वक अपने समाज में भ्रमण कर सकता है। 2008 के अधिवेशन यू0एन0सी0आर0पी0डी0, जिसमें यह उल्लेख है कि पूरे संसार में दिव्यांगजनों को सामान अवसर, सहभागिता आदि दिया जाएगा। जिसके वजह से अब समाज में इन्हें स्वीकार्य किया जा रहा है। अब आप कई सार्वजनिक स्थानों जैसे – रेलवे स्टेशन, बैंक नोट, लिफ्ट, हवाई अड्डा आदि पर ब्रेल में सूचना लिखी होती है जो उन्हें आत्मनिर्भर बनाने में प्रेरित करती है।

ब्रेल दृश्टिबाधित व्यक्ति को संम्प्रेषण आदि में भी मदद करता है। आप बिना ब्रेल के ज्ञान के सामाज में स्वतंत्रापूर्वक नहीं आ–जा सकते हैं। सिर्फ वाणी जो विभिन्न उपकरणों के माध्यम से मिलता है उसके आधार पर स्वतंत्र महसूस नहीं कर सकते हैं। क्योंकि सुनना ही सब कुछ नहीं हो सकता है। ब्रेल दृष्टिबाधित व्यक्ति के जीवन में प्रकाश लाती है।

ब्रेल दृष्टिबाधितों के अधिकार – ब्रेल दृष्टिबाधित व्यक्ति के सूचना के अधिकार को समर्थन करता है। इसके तहत विश्व या स्थानिक स्तर पर कोई कार्यक्रम, प्रतियोगिता, घटना, वारदात आदि होता हैं तो उन्हें भी इस लिपि के माध्यम से अवगत कराया जाता है। विश्व के अधितर देशों में ब्रेल अंकित समाचार पत्र व पत्रिकाएँ प्रकाशित होती है। जिनके माध्यम से वे सूचनाएँ एकत्रित करते हैं। जिससे वे देश–विदेश, शहर–कस्बा में हो रही घटनाओं से अवगत होते रहते हैं।

सांस्कृतिक एवं मनोरंजन में ब्रेल – ब्रेल इन्हें पुस्तक व अन्य प्रकाशन पढ़ने में बेहतर विकल्प देती है। ये इन पुस्तकों के माध्यम से अनेकों प्रकार की जानकारी हासिल करते हैं, जिससे वे समाज में हो रही गतिविधियों एवम् बदलाव से अवगत होते रहते हैं। ये पुस्तकें उनके खाली समय में मनोरंजन भी प्रदान करती है। पुस्तकों का साथ एक अच्छा अहसास दिलाता है– उसपर लिखे शब्द पृष्ठ की आवाज, शब्दों को या लेखन को अपने से जोड़ना आदि।

ब्रेल–एकांतता व स्वतंत्रता का अहसास – ये लिपि इन्हें स्वतंत्रता व एकांतता का अहसास भी दिलाती है। ब्रेल के माध्यम से ये अपने विचारों को अभिव्यक्त कर सकते हैं। अपनी गोपनियता भी कायम रख सकते हैं। वे स्वतंत्र रूप से अपने लिखित आदि कार्यों को कर सकते हैं।

कार्यस्थल पर ब्रेल – कई दृष्टिबाधित व्यक्ति ब्रेल को अपने कार्य स्थल पर बखूबी इस्तेमाल करते हैं। मीटिंग के दौरान छोटे–छोटे नोट तैयार करना और फिर उसकी समीक्षा कर दस्तावेज तैयार करना। पेपर व डिजीटल ब्रेल का मेल, कार्य स्थल पर कार्य करना बेहतर, सुदृढ़ व प्रभावशाली बनाता है। जिससे उनकी कार्य क्षमता व कार्य दक्षता दोनों में विकास होता है।

इनके अलावा ब्रेल लिपि उन्हें कई वस्तुओं को समझने एवं सुव्यवस्थित करने में मदद करती हैं जैसे–

- ब्रेल लेबल (वस्तुओं, दवाओं, घर के सामान, किताब आदि) बिल, स्पर्शीय चित्र / मानचित्र / ग्लोब
- कानूनी दस्तावेज सुव्यवस्थित करने में
- प्रोजेक्ट व असाइनमेंट करने में
- ब्रेल संबंधी प्रतियोगिताओं के सहभागिता में
- अनेक प्रसिद्ध खेल जैसे– ताश, बिंगो, उनों आदि खेलने में
- अपनी डायरी व किताब आदि बना सकते है

ब्रेल लिपि का भविष्य – दृष्टिबाधित दिव्यांगजन शिक्षण का विकास जो अब तक हुआ है, हो रहा है और आगे भी होता रहेगा, इसका आधार निःसंदेह ब्रेल लिपि है। ये सर्वमान्य है कि दृष्टिबाधित के शिक्षण में ब्रेल लिपि का स्थान अतुलनीय व अद्वितीय है।

अन्य स्पशीर्य लिपियाँ – ब्रेल लिपि से पूर्व भी कई प्रकार की स्पर्श लिपियाँ दृष्टिबाधित व्यक्तियों के शिक्षण के लिये इस्तेमाल होती थी। स्पर्श लिपियों में सबसे प्राचीन लिपि जिसका उल्लेख इतिहास में मिलता है और प्रमाण संग्रहालयों में उपलब्ध हैं या थीं– वह थी : डोरी की लिपि – इसके तहत डोरी में विभिन्न प्रकार की गाँठे तथा छेद बना कर पूरी वर्णमाला तैयार की गई थी। हाउई टाईप – वेलन्टाइन हाऊई स्पर्शीय लिपि का विकास करने के लिये रोमन लिपि के साधारण तिरपे अक्षरो का प्रयोग किये थें जैसे Education – Education अर्थात् इन सामान्य अक्षरों को तिरपा कर स्याही से लिखने की बजाये उभार कर बनाया गया था कि जिससे दृश्टिबाधित स्पर्श के माध्यम से पढ़ सकें। फ्राय / ऍलस्टन टाईप– लंदन के डॉ0 फ्रायड ने जो स्पर्श लिपि बनाया था उसमें उन्होंने अंग्रेजी भाशा के बड़े अक्षरों को उभरा स्वरूप दिया था इस लिपि के प्रचार–प्रसार में जॉन ऍलस्टन ने अथक प्रयत्न किये थें, इसलिए यह स्पर्शीय लिपि फ्राय टाईप के साथ–साथ 'ऍलेस्टन टाइप' के नाम से भी जानी गई। गॉल टाइप–जेम्स गॉल ने सामान्य लिपि पर आधरित एक स्पर्शीय लिपि का विकास किया था। उन्होंने रोमन लिपि के अक्षरों को कोणाकार आकृति देकर उभार दिया था। ल्युकस टाइप – थॉमस ल्युकस ने जो स्पर्श लिपि बनाई थी उसमें उन्होंने तीन चिन्हों का सीधी रेखा, बिन्दु तथा चंद्राकार का प्रयोग किया था। इन्हीं तीनों आकृतियों से पूरी वर्णमाला स्पर्शीय रूप में तैयार किये थे। फ्रेयर टाइप–जेम्स हैटली फ्रेचर ने जिस स्पर्श–लिपि का विकास किया था वह अक्षरों के उच्चारण ध्वनि पर आधारित था। बॉस्टन लाईन टाइप– डॉ0 एस0जी0 हाओ ने भी एक लाईन टाइप की स्पर्श–लिपि का विकास किया। इन्होंने रोमन लिपि के अक्षरों को कोणाकार स्वरूप देकर उभारा था। मून टाइप – इस लिपि का आविष्कार डॉ0 विलियम मून ने किया था। इस स्पर्शीय लिपि में ज्यादातर अक्षर तो सामान्य अंग्रेजी के वर्णमाला के थे और कुछ अक्षरो में संशोधन कर उन्हें बेहतर व सुगम स्पर्श योग्य बनाया गया था । इस लिपि का अस्तित्व आज भी कुछ मात्रा में है।

दृष्टिबाधित दिव्यांगजन के शिक्षा–माध्यम की खोज में कई प्रकार की लिपियाँ पूरे संसार में बनाई गई परन्तु जो महत्व ब्रेल लिपि का है वह अद्वितीय है, इसका महत्व व उपयोगिता एक दृष्टिबाधित व्यक्ति भली–भाँति जानता है।

ब्रेल लिपि के प्रति शंकाएँ – आज के इस आधुनिक युग में दिन–प्रतिदिन नई–नई तकनीकियाँ लगभग हर

क्षेत्र में विकसित हो रही है। इन तकनीकियों का प्रभाव हमारे जीवन के हरेक क्षेत्र पर हो रहा है। कई बार ये नकारात्मक प्रभाव भी डाल रहा हैं अगर हम दृष्टिबाधितों के शिक्षण की बात करें तो, उनके स्पर्श लिपि अर्थात् ब्रेल लिपि की उपयोगिता पर प्रश्न चिह्न लग रहा है। परिणामतः, इन वर्षो में कुछ शोधकर्ता, वैज्ञानिक, शिक्षक वर्ग, बुद्धिजीवी एंवम स्वयं दृष्टिबाधित दिव्यांगजन भी ऐसा सोचने लगे की उनके जीवन और शिक्षण में ब्रेल की विशेष आवश्यकता नहीं है।

अपितु आज ब्रेल का अविष्कार हुये लगभग 200 वर्ष हो गये, इस अवधि में ब्रेल को पूरे संसार में मान्यता मिल चुकी है, फिर भी विविध प्रकार की आशंकाएँ दिन–प्रतिदिन ब्रेल के उपयोगिता के प्रति आती रहती हैं। आज के इस मशीनी युग में दृष्टिबाधित व्यक्तियों के शिक्षण कार्य हेतु कई अति आधुनिक उपकरण, साफ्टवेयर आदि इस्तेमाल किये जा रहे हैं। जिसकी वजह से ब्रेल के प्रति रूझान कम हो रहा है। ऐसे संशय के वातावरण में इस ब्रेल लिपि से संबंधित अनेक प्रश्न उठने लगे हैं – इसका भविष्य क्या होगा? इसकी क्या अनिवार्यता है?, इसका शिक्षा के क्षेत्र में क्या स्थान है? आदि। ये प्रश्न इसलिए भी उठ रहा है क्योंकि ब्रेल की भी अपनी कई सीमाएँ है– जैसे कि ब्रेल–पुस्तक काफी बड़े एवम् भारी होते हैं, इनके रख–रखाव में समस्या होती है। एक टंकण पुस्तक को ब्रेल में लिखा जाये तो उसके कई वाल्यूम/भाग बनाना पड़ता है। ब्रेल पढ़ने के लिये स्पर्षीय क्षमता काफी तीक्ष्ण होनी चाहिए। कई बार ब्रेल–बिन्दुओं को पढ़ने में कठिनाई होती है खासकर ठंड के मौसम में और उन लोगों को जिनकी ऊगलियाँ कार्य–कर–कर के धिस गयी होती हैं। इसे पढ़ने व लिखने में काफी समय व ऊर्जा लगती है। ब्रेल शिक्षण अर्थात् वाचन व लेखन सिखाना भी एक जटिल समस्या है। कई बार जिन बच्चों में स्थानीय संबंधित ज्ञान कम होता है उन्हें ब्रेल लेखन में बहुत समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इस लिपि में वाचन व लेखन दोनों की ही धीमी प्रक्रिया होती है।

इन सभी कारणों से आज कल ज्यादातर दृष्टिबाधित दिव्यांजन प्राथमिक तौर पर सूचना एकत्रित करने हेतु बोलती किताबें, स्पीच सिनथेसाइजर का उपयोग आदि करते हैं। इसके साथ पहले की अपेक्षा आजकल पूर्ण रूप से दृष्टिबाधित की तुलना में अल्पदृष्टिबाधित लोगों की संख्या अधिक है। जो व्यक्ति 40–50 वर्ष की आयु में अपनी दृष्टि खोते हैं या कम होती है वो या तो आवर्धक लेंस या अन्य दृष्टिबाधित यंत्र लगाकर अपना पठन व लेखन कार्य करते है इसलिए ब्रेल सीखने की इच्छा नहीं दिखाते हैं। एवम कई अल्प दृष्टिबाधित दिव्यांजन यही नहीं पता लगा पाते है कि उन्हें शिक्षण के लिये कौन सा माध्यम चुनना चाहिए। इस वजह से कई बार वह भी ब्रेल से अनभिग्ग रह जाते है।

ब्रेल सीखने की दर में गिरावट होने का कारण –

- नई–नई तकनीकों का इस्तेमाल।
- समय व ऊर्जा बचाने के कारण।
- शिक्षक की कमी।
- अल्प दृष्टिबाधित लोगों की संख्या पूर्ण दृष्टिबाधित की तुलना में अधिक।
- अल्प दृष्टिबाधित के अधिगम के माध्यम के चयन में कठिनाई।
- अभिभावक का दबाव–टंकण के माध्यम से सीखे ।
- तकनीकियों का हावी होना।
- ब्रेल लिपि के प्रति गलतफहमी।

ब्रेल का वर्चस्व – इसके वर्चस्व के कई कारण हैं वाचन मशीनें व अन्य उपकरण आर्थिक दृष्टिकोण से एक साधारण व्यक्ति के पहुँच के बाहर होने के कारण प्रभावी होते हुये भी अर्थहीन प्रतीत होते है। खासकर हमारे जैसे

विकासशील देशों में जहाँ दिव्यांगजनों की हालत–शिक्षा दर, साक्षरता दर, रोजगार दर आदि में अत्यंत दयनीय है। ब्रेल–लिपि की ओर और दुर्लभता बढ़ी तो शिक्षण की आधारशिला अर्थात् भाषा संबंधित कठिनाईयाँ आने लगेगी। उसमें अशुद्धियाँ बढ़ने लगेगी। पठन व लेखन कौशल प्रभावित होने लगेगा। उच्चारण कौशल आदि भी प्रभावित होने लगेगा। भाषा पर पकड़ कम होने लगेगी। दृष्टिबाधित व्यक्ति दृष्टिवान की तुलना में और अधिक अक्षम महसूस करने लगेगे। ऐसी गिरती–पड़ती नींव पर शिक्षण का भव्य निर्माण करना कठिन होने लगा।

इस प्रकार की स्थिति शिक्षक व स्वंय दृष्टिबाधित विद्यार्थी में संशय उत्पन्न करने लगा। उन्हें यह समझ आने लगा कि ये बोलती पुस्तके, विद्युतीय उपकरण, वाचन–मशीने आदि उनके कार्य को आसान तो बना सकती है परन्तु ब्रेल का स्थान नहीं ले सकती। जिस प्रकार से दृष्टिवान व्यक्ति के जीवन में सामान्य देवनागरी, रोमन, अंगा, अरबी आदि लिपियों का महत्वपूर्ण स्थान है ठीक उसी प्रकार दृष्टिबाधितों के लिये ब्रेल लिपि। क्या हम और आप ऐसी कल्पना कर सकते हैं कि एक शिक्षित व्यक्ति स्वयं ठीक से पढ़–लिख न सके? तो हम दृष्टिबाधित व्यक्तियों के लिए कैसे सोच सकते हैं कि वह सब मशीन / उपकरण के माध्यम से अपनी पूरी पढ़ाई–लिखाई करें। यदि साक्षरता को–कुशलता से पढ़–लिख सकने को शिक्षण का मूलाधार माना जाता है, तो दृष्टिबाधित दिव्यांजन के लिये यह केवल ब्रेल द्वारा ही संभंव है इसका कोई और विकल्प नहीं हो सकता है और ऐसा प्रतीत भी नहीं होता।

समाज में अपने आप को खड़ा करने के लिये, इसके अभिन्न घटक बनने के लिये ब्रेल एक प्रभावी माध्यम है। दृष्टिबाधित के सम्पूर्ण विकास में इसका महत्वपूर्ण योगदान ब्रेल की उपयोगिता और महत्व को पहचानते हुये पिछले कुछ वर्षो में ब्रेल साहित्य के उत्पादन में वैज्ञानिक विकास का असीम लाभ उठाया जा रहा है। दिन–प्रतिदिन जगह–जगह ब्रेल–प्रेस का निर्माण हो रहा हैं कई ऐसे छपाई उपकरण आ गये है जो कम–से–कम समय में अधिक से अधिक ब्रेल साहित्य तैयार कर रहे हैं। इसके अलावा कई ऐसे उपकरण बनाये गये हैं जिसमे आप अपनी जरूरत के अनुसार एक कैसेट या सीडी में ब्रेल के कई पृष्ठ भर सकते हैं व आवश्यकतानुसार उनका स्पर्श वाचन कर सकते है। जिससे आपको ब्रेल–पुस्तकों की विशाल काया संभालने की आवश्यकता भी नहीं है। ब्रेल लेखन हेतु भी कई उपकरण आ गये है जैसे पर्किन्स ब्रेलर का नया मॉडल जिसमें आप आसानी से ब्रेल बिन्दु का निर्माण कर सकते हैं, इसमें दृश्य व श्रृव्य की भी सुविधा है अर्थात् जो शब्द या अक्षर आप उस पर लिखेगें उसे यह मशीन टंकण में दर्शाने के साथ उसे बोल कर भी सुनाएगा। जिससे कोई दृष्टिवान शिक्षक आवश्यकतानुसार तुरन्त सुधार ला सकता है और दृष्टिबाधित विद्यार्थी अपनी लिखी हुई को आवश्यकतानुसार तुरन्त पेज बिना निकाले ही सुन सकता है इसे आसानी से आप अपने कार्य–स्थल भी ले जा सकते है।

कई देश दृष्टिबाधित व्यक्तियों के जीवन में ब्रेल का महत्व पहचानते हुये, उन्हें समान अवसर, समान अधिकार आदि दिलवाने के लिये अधिवेशन आदिकरा रहे हैं ताकि भविष्य में कभी भी ब्रेल शिक्षण के प्रति गलत आशंकाएँ या भ्रांतियाँ पैदा न किया जा सके।

निष्कर्ष – अतः ब्रेल लिपि के विकास एवं उत्थान के लिये आवश्यक है कि दृष्टिबाधिता के क्षेत्र में कार्य करने वाले वर्तमान / भावी व्यावसायिकों को ब्रेल संबंधी अधिकाधिक जानकारी दी जाये। वस्तुतः ब्रेल जहाँ एक सशक्त स्पर्षीय लिपि है जिसका विकल्प संभव नहीं है परन्तु यह भी सत्य है कि यह लिपि भी दोष से मुक्त नहीं है। इसके बावजूद भी इसकी उपयोगिता अतुल्यनीय है। इस लिपि का प्रचार–प्रसार भी अति आवश्यक है। साथ ही सीखने के प्रति अगर उनमें रूचि है तो ऐसे लोगों के लिये ब्रेल संबंध बुनियादी ज्ञान सुलभ कराया जाए। जिसकी पहल एन0सी0इ0आर0टी0 के पुस्तकों के द्वारा किया जा चुका है और सरकारी व गैर सरकारी संस्थायें इसमें अग्रसर है।

एक दृष्टिबाधित व्यक्ति के मतानुसार : "मेरी ब्रेल के प्रति गहन निष्ठा केवल इस लिए नही कि इसने मुझे पढ़ने–लिखने की क्षमता दी है। ब्रेल के कारण मैं अपने दिनभर के कार्य में व्यवस्था ला सकता हूँ– संयोजन ला

पाता हूँ। पहचान के लिए विविध वस्तुओ पर ब्रेल लेबल लगाकर स्वावलम्बी हो गया हूँ। निजी जीवन में पत्र–व्यवहार आदि की गुप्तता रख पाया हूँ। साहित्य–सागर मे ंविचरने का आनन्द उठा रहा हूँ। व्यवसाय प्राप्ति और व्यवसायिक जिम्मेदारियाँ निभाने में तो इसके महत्व की सीमा नही। धीरे–धीरे मुझे स्पष्ट होने लगा है कि मेरी कार्यक्षमता की मर्यादाओं का कारण दृष्टिहीनता नहीं, अपितु प्रशिक्षण की कमी थी। ब्रेल के कारण मेरा जीवन के प्रति दृष्टिकोण ही बदल गया है। सच पूछिए तो ब्रेल की सहायता से मैं अपने लिए कितने ही बंद दरवाजे खोल सका हूँ।

मेरे लिए ब्रेल ने निराशा, अक्षमता और परावलम्बन की बेड़ियाँ तोड़ कर मुझे सुखद आशा से भरे स्वालम्बन के पथ पर खड़ा किया है। स्वाभिमान और आत्मविश्वास के साथ जीना सिखाया है। मेरे लिए ब्रेल मुक्ति का प्रतीक है।"

दृष्टिबाधित दिव्यांगजनों के सामाजिक, शैक्षिक एवं आर्थिक उत्थान एवम् विकास में यदि कोई महत्वपूर्ण पहलू है तो वह है ब्रेल लिपि। इस सशक्त स्पर्श लिपि का योगदान सार्वभौमिक है। दृष्टिहीन दिव्यांजनों के अपने अनुभव, इस क्षेत्र में विविध प्रकार के विकास और प्रयास हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचने की प्रेरणा दे रहें है कि ब्रेल का भविष्य उज्जवल है और ये उनके लिये वरदान है। ब्रेल लिपि व दृष्टिबाधित व्यक्तियों का साथ युग–युगान्तर तक बना रहेगा।

सन्दर्भ

Ahuja, S. (1995). Drishtiheeno ka Sikshan tatha Punarvasan- Prarambh ve Vikas. Mumbai: National Association for the Blind.

Ahuja, S. (2009). Braille Gyankosh Bhag-1. Dehradun: National Institute for the Visually Handicapped.

Ahuja, S. (2009). Braille Gyankosh Bhag-2. Dehradun: National Institute for the Visually Handicapped.

Mittal, A. (2012). Drishtibadha-Shikshan. Delhi: AICB, Capital Printers.

Mittal,D. S. et.al, (2004). Shikshan Prasikshan Lekhmala. Delhi: All India Confederation for the Blind.

Singh, V. (2003). Hindi Braille Gyan Sarovar. Dehradun: National Institute for the Visually Handicapped.

❑❑

भारत में दिव्यांगजन रोजगार–मुद्दे एंव चुनौतियाँ

श्रीमती हेमा सिंह
विशेष शिक्षा संकाय
डॉ0 श0मि0रा0पु0 विश्वविद्यालय, लखनऊ

समाज में हर व्यक्ति को जीवनयापन करने तथा अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किसी न किसी रोजगार की आवश्यकता अवश्य होती है, उसी प्रकार दिव्यांगजन के लिए भी रोजगार महत्वपूर्ण स्थान रखता है। जिससे वह आत्मनिर्भर तथा सशक्त बनकर समाज की मुख्यधारा से जुड़ सके। रोजगार किसी भी व्यक्ति के जीवन में न सिर्फ आय का एक मुख्य स्रोत होता है बल्कि उसकी अन्य आर्थिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने का साधन भी है। बेहतर रोजगार आर्थिक सम्पन्नता के साथ समाज में आदर भी दिलाता है। हालाँकि देखा जाए तो वर्तमान में भी दिव्यांगजनों में रोजगार की प्राप्ति दर बहुत कम है। जिसके कई कारण है जैसे–उच्च शैक्षणिक योग्यताओं का अभाव, व्यवसायिक कौशलों की कमी, शारीरिक अक्षमता के कारण होने वाली कठिनाइया और कार्य स्थलों में बाधारहित वातावरण का न होना आदि।

जनगणना (2011) के अनुसार, भारत की कुल आबादी 121 करोड़ है जिसमें 2.68 करोड व्यक्ति दिव्यांग है जो कि कुल जनसंख्या का 2.21 प्रतिशत हिस्सा है। यदि रोजगार के संदर्भ में देखा जाये तो केवल एक तिहाई दिव्यांगजन कार्यरत है तथा 1.7 करोड़ दिव्यांगजन बेरोजगार है जिनमें 46 प्रतिशत पुरूश तथा 54 प्रतिशत महिलाएं शामिल है।

भारत सरकार सभी देशवासियों को समान अधिकार, अवसर तथा सहभागिता प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है। भारतीय संविधान में अनुच्छेद 39 एवं 41 सभी नागरिकों को जाति, लिंग और अक्षमता का भेद किये बिना एक समावेशी समाज की स्थापना सुनिश्चित करता है, जिसके लिए सभी की सहभागिता आवश्यक है। दिव्यांगजनों को मुख्यधारा से जोडने के लिए स्वतंत्रता के बाद निरन्तर सुधार किये जा रहे है जैसे– नयें नियमों, कल्याणकारी नीतियों तथा समितियों का गठन किया जा रहा है। दिव्यांगजनों को बेहतर रोजगार प्राप्त कराना न केवल उन्हें आर्थिक रूप से सशक्त बनाएगा अपितु समाज में उन्हें सम्मानित स्तर प्रदान करेगा। जिससे वह देश की अर्थव्यवस्था में योगदान कर सकेगें साथ–साथ अन्य दिव्यांगजनों के लिए प्रेरणा स्रोत की तरह कार्य करेगे। परन्तु अभी भी दिव्यांगजन समाज में उपेक्षित हैं। उनकी अक्षमता को लेकर उदासीनता तथा भ्रम आज भी प्रचलित है। अधिकतर दिव्यांगजन प्रचलित शिक्षा प्रणाली में फंस कर रह जाते है, जो कि उनमें दिव्यांगता की आवश्यकता के अनुसार कौशलो का विकास करने में असमर्थ होती है। बिना अच्छी शिक्षा प्राप्त किए बेहतर रोजगार प्राप्त करना और भी कठिन हो जाता है।

राश्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दिव्यांगजन के सशक्तिकरण विशेषकर आर्थिक सशक्तिकरण के लिए अधिनियम तथा नीतियाँ बनाई गयी है जैसे– निशक्तजन अधिनियम (1995), राष्ट्रीय न्यास अधिनियम (1999) तथा यू0एन0सी0आर0पी0डी0 अधिवेशन (2008) उनमें से मुख्य है। यू0एन0सी0आर0पी0डी0 अधिवेशन (2008) में दिव्यांगजन सशक्तिकरण से सम्बन्धित सभी मुद्दों को उठाया है, जिसमें अनुच्छेद 27 में विशेषकर दिव्यांगजन रोजगार तथा कामों से जुड़े मुद्दों को दर्शाया गया है। भारत में दिव्यांगजन रोजगार सम्बन्धित आवश्यकताएँ तथा सम्बन्धित प्रावधान निशक्तजन अधिनियम (1995) के अनुसार दिये गये है। इसके अन्तर्गत अनुच्छेद 32, 33 एवं 40 निशक्तजन रोजगार हेतु उपयुक्त पदों का सृजन, आरक्षण नीति तथा गरीबी उन्मूलन योजना के अन्तर्गत पदों में आरक्षण इत्यादि को शामिल किया गया है। यह अधिनियम दैनिक जीवन में पूर्ण सहभागिता के लिए समान

अवसर उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी समाज को सौंपता है। जीवन के हर क्षेत्र में निशक्तता के आधार पर किए जाने वाले भेद–भाव को निषिद्ध करते हुए, एक ऐसे समाज के निर्माण का प्रयास करता है जहाँ निशक्तजन समानता व सम्मान का जीवन जी सकें।

दिव्यांगजन रोजगार की स्थिति – विश्व बैक रिपोर्ट (2006–2007) में भारत में सरकारी रोजगाार से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण निम्नलिखित बिदुओं को दर्शाया है–

- इसमें यह बताया गया है कि 661000 दिव्यांगजन विशिष्ट रोजगार कार्यालय में दर्ज है, जिनमें 109,929 दिव्यांगजन गामक बाधा दिव्यांगता से सम्बन्धित है।
- मंत्रालयों, विभिन्न विभागों तथा सार्वजनिक क्षेत्रों के कुल पदों में से मात्र 10.2 प्रतिशत पद ही दिव्यागजन हेतु उपयुक्त पाए गये अर्थात दिव्यांगजन हेतु सृजित पद 281398 है, जिनमें से केवल 3.54 प्रतिशत पदों पर ही नियुक्तियाँ हुई है।
- सार्वजनिक क्षेत्रों में दिव्यांगजन हेतु सृजित पद 460396 है, उन पर केवल 4.46 प्रतिशत पदों पर ही नियुक्तियाँ की गयी हैं।

इप्लॉयमेन्ट ऑफ डिसएबल्ड पीपल इन इण्डिया (2009) के अनुसार, सरकारी विभाग तथा सार्वजनिक क्षेत्र (सरकार अधिकृत) दिव्यांगजनो के रोजगार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। श्रम एवं रोजगार मंत्रालय 2007–08 की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार, देश में दिसम्बर 2005 तक 43 विशिष्ट रोजगार कार्यालय स्थापित किये है तथा 2005 तक 3.2 हजार दिव्यांगजनों को रोजगार प्राप्त हुआ हैं।

कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय 2007–2008 की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार, सरकार की आरक्षण नीति के तहत गत 2 वर्शों से ही दृष्टि बाधित तथा श्रवण बाधित दिव्यांगजनों को देश की प्रतिष्ठित सेवाओं जैसे–सिविल सर्विसेज सेवाओं में नियुक्ति लेने के अवसर प्राप्त हुए हैं। इसके अलावा दिव्यांगजनों के लिए कई विशेष छूट जैसे अधिकतम आयु सीमा में छूट (समूह ग और घ के पदों पर होने वाली सीधी भर्तियों में 10 वर्ष, जिसमें 15 वर्ष अनुसूचित जाति एवं जनजाति तथा 13 वर्ष अन्य पिछड़ी जाति के दिव्यांगजनों के लिए है), समूह क तथा ख के पदों पर 5 वर्ष सीधी भर्ती में, 10 वर्ष प्रतिस्पर्धात्मक परीक्षाओं मे दी जाती है जिसमें हर प्रक्रिया में 05 तथा 03 वर्ष अनुसूचित जाति और जनजाति तथा अन्य पिछड़ा वर्ग के दिव्यांगजनों के लिए प्रवधान किया गया है।

भारत में लंबे समय से स्वरोजगार दिव्यांजनों के लिए एक मात्र उपलब्ध एवं उपयुक्त विकल्प माना जाता है। कई गैर सरकारी संगठन दिव्यांगजन को स्व रोजगार के लिए तैयार करने में सक्रिय भूमिका निभा रहे है। सरकार की तरफ से दिव्यांगजनों को निम्नलिखत योजनाओं के अन्तर्गत स्वरोजगार को बढावा देने के अवसर प्रदान किए जा रहे है–

राष्ट्रीय विकलांग वित्त और विकास निगम, इसके अन्तर्गत छोटे व्यवसाय स्थापित करने हेतु ऋण की सुविधा दिव्यागजनों को प्रदान गयी है।

राष्ट्रीय न्यास अधिनियम की पहल पर ऐसी संस्थाओं का गठन जो कि ऑटिज्म, पक्षाघात तथा मानसिक मंदित दिव्यांग के लिए व्यवसायिक तथा अर्थिक लाभ से जुड़ी गतिविधियों को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। इण्टरनेशनल लेबर संगठन (2011) की रिपोर्ट यह दर्शाती है कि भारत में 73.6 प्रतिशत दिव्यांगजन कार्यरत नही है, विशेषकर मानसिक मंदितार्थ, दिव्यांग महिलाएँ तथा ग्रामीण क्षेत्रों से जुड़े दिव्यांगजन सर्वाधिक उपेक्षित है।

निजी क्षेत्र में प्रोत्साहन– यदि निजी क्षेत्र में रोजगार दर को देखा जाए तो स्थिति थोड़ी बेहतर हुई है। निजी क्षेत्र की वृद्धि पिछले कुछ सालों में हमारे देश में हुई है जिससे रोजगार सम्भावनाएं बढ़ी है। एन0 सी0 पी0 ई0 डी0 पी0 के अनुसार, किए गये सर्वेक्षण में यह बताया गया है कि 1999 में दिव्यांगजन रोजगार दर 0.28 प्रतिशत प्राप्त हुई थी तथा बहुराष्ट्रीय कपंनियों में यह दर 0.05 प्रतिशत पाई गयी थी जबकि 2007 के आंकडों में यह दर

बढ़कर 0.58 प्रतिशत हुई है।

निशक्तजन अधिनियम में दिव्यागजनों को रोजगार उपलब्ध कराने के लिए – निजी कम्पनी द्वारा अपने दिव्यांगजन कर्मचारियों के भविष्य निधि व कर्मचारी राज्य बीमा में प्रथम तीन वर्षों मे किये गये अंशदान की क्षतिपूर्ती सरकार द्वारा की जायेगी।

जनगणना (2011) के अनुसार देश में 1.7 करोड दिव्यांग रोजगार से वंचित है। हालांकि सभी सरकारी तथा सर्वाजनिक प्रतिष्ठानों में सृजित पदों में से 3 प्रतिशत आरक्षण दिव्यांगजन को दिये जाने का प्रावधान है। उपुयक्त सभी पदों को (समूह क, ख, ग, तथा घ) को दिव्यांगजनों की नियुक्तियों से भरा जाएगा तथा निजी संगठनों को भी दिव्यांगजन को रोजगार दिये जाने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। अभी भी देश में लाखों दिव्यांग बेरोजगार और अपने जीवनयापन के लिए अपने परिवार पर निर्भर है तथा गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने के लिए बाध्य है। दिव्यांगजन आर्थिक सशक्तीकरण से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं की ओर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है।

1. सामाजिक पहलू – समाज में दिव्यांगों के प्रति उदासीनता एंव भेदभाव यद्यपि सरकार द्वारा लागू की गयी नीतियों तथा प्रोग्राम द्वारा समाज में दिव्यांग व्यक्तियों की सहभागिता बढ़ी है परन्तु अभी भी समाज में विकलांगता से जुड़ी भ्रातियाँ प्रचलित है। दिव्यांगों की शारीरिक अक्षमता को उनकी कार्य अक्षमता के रूप में देखा जाता है। साथ ही साथ कार्यस्थल पर सहकार्मिकों तथा नियोक्ता द्वारा किया जाने वाला भेदभाव अत्यधिक निराशपूर्ण होता है। समाज में जागरूकता का आभाव दिव्यांगजनों को मुख्यधारा से जोड़ने तथा रोजगार हेतु नीतियों को लागू करने में बाधा उत्पन्न कर रहा है।

2. शैक्षणिक पहलू – किसी भी व्यक्ति की सफलता में शिक्षा का योगदान अतुल्य है। यही बात दिव्यांगजनों के लिए भी मान्य है। परन्तु देश भर में इनके अनुकूल शिक्षण संस्थानों का अभाव ना सिर्फ स्कूल स्तर तक है बल्कि उच्च शिक्षण संस्थान, व्यवसायिक तथा तकनीकि शिक्षण संस्थानों की भारी कमी है। अच्छी शिक्षा तथा तकनीकि कौशलो की कमी होने के कारण इनके लिए आरक्षित पद रिक्त रह जाते है।

3. आर्थिक पहलू – बेहतर शिक्षा तथा रोजागर के अभाव के कारण दिव्यांगजनों को आर्थिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। अधिकतर दिव्यांगों की नियुक्तियाँ निम्नस्तर के पदों पर की जाती है, जिससे इन्हे आर्थिक लाभ तो मिलता है परन्तु आर्थिक स्तर में अत्यधिक बदलाव नही आ पाते। ऐसे में जिन दिव्यांगों में उच्च शिक्षा प्राप्त कर ली है, वे छोटे पदों पर नियुक्ति लेने के इच्छुक नहीं होते।

4. बाधारहित वातावरण की कमी – शारीरिक अक्षमताओं के कारण सभी स्थलों जैसे– दफ्तर, स्कूल, अस्पताल पर सभी दिव्यांगजनों के लिए पहुँचना कठिन होता है। जो कि उनकी कार्यक्षमता को अत्यधिक प्रभावित करता है।

5. सहायक यंत्रों का अभाव – सरकार द्वारा ए डी आई पी योजना के अर्न्तगत दिये जाने वाले यंत्र जैसे ब्रेल उपकरण, हियरिगं यंत्र, व्हीलचेयर आदि सीमित संख्या में दिये जाते है तथा बहुत उच्चस्तरीय गुणवत्ता के नही होते। बाजारों में उपलब्ध यंत्र काफी महंगे होते है जिन्हें खरीदना सभी के लिए संभव नही होता। इस कारण ज्यादातर दिव्यांगजन सहायक यंत्रों से लाभांवित नही है। सहायक यंत्रो का अभाव दिव्यांगजनो कि कार्यक्षमता को प्रभावित करता है।

सुझाव –

1. उपयुक्त पदों का सृजन – दिव्यांगजनों के लिए उपयुक्त पदों का सृजन व्यवस्थित तरीके से हो। हांलाकि सरकारी पहल से यह स्थिति अब बेहतर हुई है। निजी तथा सरकारी सभी रोजगार क्षेत्रों में दिव्यांगजन हेतु उपयुक्त

पदों की पहचान कर, पदों का सृजन होना चाहिए तथा उनके प्रति भेद भाव की भावना को ना रखते हुए एक समावेशी समाज की ओर बढ़ना चाहिए।

2. बैकलॉग पदों पर नियुक्तियाँ – बैकलॉग पदों पर अभी तक सरकारी तथा और सार्वजनिक क्षेत्रों मे दिव्यागजनों को नियुक्तियाँ ना के बराबर दी गयी है। सरकार मुहिम चलाकर दिव्यांगजन हेतु रिक्त पदों को शीघ्र अति शीघ्र नियुक्तियों से भरे।

3. बाधा रहित वातावरण का निर्माण – प्रत्येक सरकारी दफ्तर आवश्यक रूप से दिव्यांगजनों के लिए बाध ाा रहित बनवाया जाए जेसे लिफ्ट, रैम्प, ब्रेल लिपि, संकेतिक भाषा तथा चिन्हों का प्रयोग कर वातावरण को दिव्यांगजनों की आवश्यकता के अनुरूप अनुकूल बनाने के प्रयास किये जाए। सभी कार्यलयों में कार्यारत अधिकारियों तथा कर्मचारियों को दिव्यांगता के प्रति सवेदनशील बनाने के लिए प्रशिक्षण दिया जाए।

4. दिव्यांगजन कर्मचारी यूनियन का गठन – दिव्यांग जन कर्मचारियों के हितों के संरक्षण हेतु सभी सरकारी दफ्तरों में कर्मचारी यूनियन का गठन किया जाये।

5. उच्च स्तरीय शिक्षण सुविधाएँ – देश में दिव्यांगजन हेतु उच्च शिक्षा प्राप्त करने के अवसरों की कमी के साथ–साथ शिक्षण सस्थानों की संख्या में भी अत्याधिक कमी है, अपनी उच्च शिक्षा बेहतर ढंग से प्राप्त न कर पाने के कारण रोजगार प्राप्ति के अवसरों में भरी कमी आ जाती है। व्यवसायिक शिक्षा तथा तकनीकी शिक्षा जो कि वर्तमान में रोजगार पाने के आवश्यक होती जा रही है अधिकतर दिव्यांगजनों के लिए अपरिचित ही है। शिक्षण सस्थानों की कमी तथा व्यवसायिक कौशलों में कमी को पूर्ण करने के लिए संस्थानों का निर्माण तथा दिव्यांगजनों की अर्थिक मदद के रूप में छात्रवृतियों की उपलबधता आवश्यक है।

6. सहायक यंत्रों की उपलबधता– सरकारी ए डी आई पी योजना के अन्तर्गत सहायक यंत्रों को दिव्यागंजन को मफ्त मुहिया करना तथा जिन यंत्रों को इस योजना के तहत वितरण नहीं किया जा सकता उन पर छूट दी जायें।

वर्तमान केन्द्र सरकार द्वारा उठाये गये कदम जैसे सुगम्य भारत अभियान (2015) के अन्तर्गत बाधारहित वातावरण का निर्माण तथा निस्कत व्यक्ति अधिकार अधिनियम (2016) के अनुसार दिव्यागंजन रोजगार हेतु आरक्षण कोटा 3 प्रतिशत से बढ़ाकर 4 प्रतिशत कर दिया गया है। देश भर में दिव्यांगजन रोजगार के अवसरों में बढ़ावा देने तथा उनका सशक्तिकरण कर समाज की मुख्यधारा से जोड़ने के सराहनीय प्रयास हैं।

संदर्भ

1. Disabled Persons in India (2016). India (2016). Social Statistics Division. Ministry of Statistics & Programme Implementation. Government of India. http://www.mospi.gov.in
2. Employment of Disabled People in India (2009). National Center for Promotion of Employment for Disabled People. http:// sarthakindia.org/scheme/ Employment %20 of %20 with% 20 Disabilities.pdf
3. Employment of Person with Disabilities in Public Sector in India. Emerging Issues and Trends--- (2008). Planning Commission, Government of India. http://planningcomission.nic.in/report/sereport/ ser/ser-pdp1206.pdf
4. M isra Sushma (2017). Inclusion: Dimension & Dynamic. Lucknow: Rapid Book Service.
5. Nishaktata Evam Samekit Shikha ka Parichaya. New Delhi: IGNOU
6. Persons with Disabilities Act (1995).
7. The Rights of Persons with Disabilities Act (2016).
8. National Centre for Promotion of Employment for Disabled People . www.ncpedp.org

❑❑

संवेदनशीलता के आधार पर समावेशन

डॉ0 सुनीता शर्मा
स्हायक प्रोफेसर – संगीत एवं ललित कला संकाय
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय मोहान रोड, लखनऊ

शिक्षा का समावेशीकरण विशेष शैक्षणिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये सामान्य छात्र और दिव्यांग छात्र को एक समान शिक्षा प्राप्ति का अवसर प्रदान करना है, जिससे उनकी शिक्षा के स्तर में सुधार हो सके। पहले समावेशी शिक्षा की परिकल्पना सिर्फ विशेष छात्रों के लिये की गयी थी लेकिन आधुनिक काल में हर शिक्षक को इस सिद्धान्त के विस्तृत दृष्टिकोण को अपनी कक्षा में व्यवहार में लाना चाहिए।

समावेशी शिक्षा या एकीकरण के सिद्धान्त का ऐतिहासिक जड़े कनाड़ा और अमेरिका से जुड़ी है। जिसे अब भारत में भी अपनाया जा रहा है जो कि देश के सम्पूर्ण विकास के लिये यह आवश्यक है। जिसमें अशक्त बच्चों को सामान्य शिक्षा से अलग करना अब मान्य नहीं है उन्हें भी सामान्य बच्चों के सामान व साथ में शैक्षिक गतिविधियों में भाग लेने का सामान अधिकार है और अशक्तों के साथ सामान्य बच्चों के साथ बैठाया जाना चाहिए जिससे एक समूह दूसरे से श्रेष्ठ नही है इस भावना का विकास होता है।

समावेशी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है कि सभी सामान्य छात्र और दिव्यांग छात्र को एक सामान शिक्षा, खेल व्यवस्था, विद्यार्थियों की समस्या के सामाधान हेतु किताबों और गीत–संगीत की व्यवस्था तथा विषय से सम्बन्धित चित्रों के माध्यम से विचारों को प्रदर्शित करना है। समावेशी भारत में समावेशी शिक्षा को हम कला के विभिन्न माध्यमों से प्रचार प्रसार करके डिजिटल इण्डिया के विकास में सहयोग कर सकते है। भारत में जिस प्रकार विभिन्न धर्म जाति के लोग बिना भेदभाव के शिक्षण कार्य सम्पादित हो रहे है। उसी तरह समावेशी शिक्षा भी बिना किसी भेदभाव के सीखाने के सामान अवसर है जिसकी परिकल्पना तथा संकल्पना शिक्षा में समावेशन व उसकी प्रक्रियाओं की व्यापक समझ की इस कदर आवश्यकता है कि क्षेत्रीय, सांस्कृतिक, सामाजिक परिवेश और विस्तृत सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक प्रक्रियाओं दोनों में ही संदर्भित करके समझा जाये क्योकि हमारे देश में समता स्वतन्त्रता, सामाजिक न्याय एवं व्यक्ति की गरिमा के अनुरुप मूल्यों को निरुपित किया गया है।

एक समावेशी समाज जाति, धर्म, लिंग व आय आदि किसी प्रकार के विभेद का निषेध करता है अतः यह समाज एक आदर्श प्रस्तुत करता है। इन समावेशी शिक्षा का एक व्यापक लक्ष्य यह भी प्रतीत होता है कि एक साथ शिक्षित होने पर भविष्य में समाज के अन्दर विशिष्ट आवश्यकता वाले व्यक्तियों के सरोकारों को आम लोग बेहतर ढ़ंग से समृद्ध सके तथा उनके प्रति संवेदशीलता का विकास हो सके। इसका राजनैतिक अर्थशास्त्र भी है जो भूमण्डलीकरण और उदारीकरण की प्रक्रियाओं से प्रेरित है।

समावेशी शिक्षा से तात्पर्य – शिक्षा में समावेश की शुरूआत हमारे संविधान से ही है जिससे शिक्षा प्रत्येक बच्चे का मूल अधिकार है और आवश्यकता होती है। शिक्षा में समावेशन को हम सामान्य भाशा में समावेशित शिक्षा कहते है। प्रत्येक बच्चे की चरित्रगत विशिष्टताएं, रुचियां, योग्यताएं एवं सीखने की आवश्यकताएँ भिन्न–भिन्न होती है। अतः शिक्षा प्रणाली में इन विशेषताओं और आवश्यकताओं की व्यापक विविधता का ध्यान रखना चाहिए।

शिक्षा व्यक्ति का नैसर्गिक सामाजिक तथा संवैधानिक अधिकार है। भारतीय संविधान में समता सामाजिक न्याय एवं व्यक्ति की गरिमा को प्राप्य मूल्यों के रूप में निर्धारित किया गया है। हमारे देश का संविधान जाति–

धर्म सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, साम्प्रदायिक व लैंगिक आधार पर किसी भी प्रकार के विभेद का निषेध करता है।

सलमानका के अनुसार "बच्चों के उनके शारीरिक, बुद्धिमत्ता, सामाजिक, भावानात्मक, भाषायी या कोई अन्य परिस्थितियों पर ध्यान दिये बिना विद्यालय को सभी बच्चों को दाखिला देना चाहिए। यह सम्मिलित करता है दिव्यांग और प्रतिभावान बच्चे, गली के और कार्य करने वाले बच्चे, गाँव या बंजारे से बच्चे, भाषीय, प्रजातीय या सांस्कृतिक अल्पसंख्यक से बच्चे तथा दूसरे अलाभांवित या अधिकारहीन क्षेत्र या समूह से बच्चे।"

संवेदनशीलता की दृष्टि से कला शिक्षण – भारतीय कला और संस्कृति के गुणों को रेखाओं, वर्णों, प्रस्तरीय फलकों, स्वरों और शब्द, प्रतीकों के द्वारा अभिव्यक्ति मिलती रही है। भारतीय संस्कृति को समन्वयात्मक संस्कृति की संज्ञा दी जाती है, उसमें लचीलापन इतना रहा है कि देश से बाहर विदेश व पिछड़ी नस्लों और विभिन्न जातियों–प्रजातियों को आत्मसात करती रही है। इसी कारणवश भारतीय संस्कारों को सामाजिक मूल्यों में संस्थाओं की व्यवस्था में विकास के लिये बल मिलता रहा है।

अतः कला सदैव जीवन को साथ लेकर चली है अतएव उसमें समसामायिक जन–जीवन का प्रतिविम्ब पाया जाता है। शिक्षा का अर्थ कोई विषय या पुस्तक का पढ़ना या अवलोकन करना नही है यह व्यापक अर्थ धारण करने वाला शब्द है। इसमें विचारों और व्यवहारों को विकसित करने का सामर्थ्य है।

कलाकारअपने जीवन के संवेगों अनुभूतियों तकनीकी ज्ञान व सृजनात्मक प्रयोगों द्वारा कलाकार सदैव नवीन कलाकृतियों का निर्माण करता है। विकास की दृष्टि से समयानुसार इनके कलाकृतियों में परिवर्तन दिखायी देता है। समावेशी शिक्षा के सन्दर्भ में कला का विशेष स्थान है। कला शिक्षा के माध्यम से हम दिव्यांग व सामान्य छात्र को एक साथ शिक्षा देकर उनकी सीखने की क्षमता को बढ़ा सकते है। चित्र, शिल्प, संगीत, नाट्य, फिल्म या साहित्य सभी कलाओं के माध्यम से विशेश छात्रों से संवाद स्थापित कर सकते है तथा विषय से सम्बन्धित पुस्तकों, फोटोग्रॉफी व स्लाइड्स द्वारा इतिहास व कलाकृतियों की जानकारी दी जा सकती है। विशेष छात्रों के लिए आडियों, विडियों तथा ब्रेल लिपि की पुस्तकों की सुविधा प्रदान कर कला शिक्षा दी जा सकती है।

आज के विशेष व सामान्य कला विद्यार्थी को उसकी योग्यता के अनुसार विकसित होने के लिये अच्छे साधान व सुविधायें है। संग्राहलयों व कलाविथियों में अनेक प्रदर्शनियाँ आयोजित की जाती है जो समय समय पर उनकी संवेदनशीलता को जगाती है और प्रेरित करती है। नया उत्साह पैदा करती है कुछ करने के लिए तथा नवीन प्रयोग के लिए। बालकों को विद्यालयों में प्राथमिक स्तर से ही अपनी सृजनात्मकता को विकसित करने के लिए पर्याप्त अवसर प्राप्त होते है, इनका ज्ञान छात्रों को अवश्य ही करना चाहिए।

कला का प्रारम्भ उपयोगिता व क्रियात्मकता से हुआ और धीरे धीरे सौन्दर्यानुभूति कला का अंग बन गया। कला व्यवसायिक आवश्यकता को तो पूर्ण करती है भौतिक जगत व सांसारिक से व्यक्ति को लोकोत्तर आनन्द भी प्रदान करती है। कला ही हमें इस जगत के प्रति संवेदनशील बना सकती है। विशेष विद्यार्थी कला शिक्षा में रूचि लेते है क्योकि भिन्न–भिन्न प्रकार की रेखाए, रंग, आकृतियाँ उनको आकर्शित करते है तथा ये उनकी भावनाओं तथा संवेदनाओं से सरलता के साथ जुड़ती है। आज कलाकार ही नही बल्कि हर एक व्यक्ति की कला में सुरूचि विकसित हो रही है। अतः व्यक्ति सौन्दर्य के प्रति सजग हुआ है और अपने दैनिक जीवनोपयोगी वस्तुओं में भी कला के सौन्दर्य के मापदण्ड का प्रयोग करता है। जैसे अपने कपड़ों के चयन के प्रति, मकान साज–सज्जा के प्रति सजग हुआ है और सुरूचिपूर्ण वातावरण सौन्दर्यमय चाहता है।

कला समाज का दर्पण है। समाज के प्रवाह का उस पर भी असर होता है क्योकि कलाकार सबसे अधिक संवेदनशील होता है तथा वह समय के स्वर व लय को समझता है। आज की शिक्षा प्रणाली अनेक अंतविरोधों और अंतर्द्वन्द्वों से ग्रस्त है। यदि शिक्षा प्रणाली की गुणवत्ता व वर्तमान समय में उसकी व्यवहारिकता पर दृष्टि डालें तो

यह स्पष्ट हो जायेगा कि विशेष तथा सामान्य बच्चों की शिक्षा व्यवस्था के सम्बन्ध अत्यधिक कार्य करने की आवश्यकता है। इसके असमान और अनियमित प्रसार से विभिन्न वर्गों में अशान्ति, असंगत, मनोवेग, छवियाँ और विचार उत्पन्न होगें।

विशेष बच्चों के शिक्षा व्यवस्था में निजीकरण के माध्यम से सुधार लाने का प्रयास किया जा सकता है व इसके लिए सरकार तथा गैर सरकारी संस्थाओं से भी सहायता लेनी चाहिए जैसे छात्रवृत्ति, पुरस्कार व प्रतियोगिता आदि की व्यवस्था करा कर बच्चों में रूचि उत्पन्न कर सकते है। शिक्षा के सन्दर्भ में शिक्षक, शिक्षार्थी, अभिभावक तथा समाज को जागरूक होना अति आवश्यक है, इससे छात्रों के शिक्षा स्तर में सुधार होगा तभी समाज व देश का विकास सम्भव है।

सन्दर्भ

1. अग्रवाल, वासुदेवशरण, "भारतीय कला", वाराणसी,1987
2. गर्ग, डॉ० मुकेश, "सौन्दर्य–दृष्टि का दार्शनिक आधार", नई दिल्ली, 2002
3. गौतम, आर० बी०, "कला का मनोविज्ञान",जयपुर,1988

❑❑

समावेशी शिक्षा की उपादेयता एवं प्रासंगिकता

डॉ0 महेश सिंह यादव
प्रवक्ता : हिन्दी
आर.जी.एन.पी. कालेज, राजा का ताजपुर, बिजनौर

बिना किसी भेदभाव के दी जाने वाली शिक्षा ही समावेशी शिक्षा कहलाती है। भारत में स्वतंत्रता के बाद से अबतक समावेशी शिक्षा हेतु विभिन्न शिक्षा–शास्त्रियों ने भारत को गौरव प्रदान करने की कोशिश की, शिक्षाशास्त्री ही नहीं इस क्षेत्र में मनोवैज्ञानिकों का भी काफी योगदान रहा। भारतीय शिक्षा को सभी मनुष्यों के अनुकूल बनाने की लगातार कोशिश की जा रही है। भारतीय शिक्षा ने विभिन्न क्षेत्रीय विविधताओं और भिन्न सीमाओं के बाबजूद भी समावेशी शिक्षा के लिए उपकरण के रूप में कार्य किया है। समावेशी शिक्षा से तात्पर्य ऐसी शिक्षा से है जिसमें सभी छात्र एवं छात्राओं को बिना किसी भेदभाव के सीखने–सिखाने के समान अवसर मिलें परन्तु आज भी वह समावेशी शिक्षा उस मुकाम पर नहीं पहुॅची है, जहॉ इसे पहुँचना चाहिए। वस्तुतः समावेशी शिक्षा की परिकल्पना इस संकल्पना पर आधारित है कि सभी बच्चों के विद्यालयी शिक्षा में समावेशन व उसकी प्रक्रियाओं की व्यापक समझ की इस कदर आवश्यकता है कि उन्हें क्षेत्रीय, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं सामाजिक परिवेश का भरपूर अवसर प्रदान हो क्योंकि भारतीय संविधान में समता, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय एवं व्यक्ति की गरिमा को प्राप्य मूल्यों के रूप में निरूपित किया गया है, जिसका संकेत समावेशी शिक्षा की ओर ही है।

भारतीय संविधान काफी चिन्तन के बाद तैयार हुआ है। इस संविधान में जाति, धर्म, आय एवं लैंगिक आधार पर विभेद निषेध है। भारत का संविधान एक समावेशी समाज की स्थापना का आदर्श प्रस्तुत करता है जिसके परिपेक्ष्य में बच्चे को समाजिक, जातिगत, आर्थिक, वर्गीय, लैंगिक, शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से भिन्न देखे जाने के बजाय एक स्वतंत्र अधिगमकर्ता के रूप में देखे जाने की आवश्यकता है, जिसमें लोकतांत्रिक स्कूल में बच्चे के समुचित समावेशन हेतु समावेशी शिक्षा के वातावरण का सृजन किया जा सके, इस दृष्टि से जब हम समावेशी शिक्षा को देखते हैं तो पाते हैं कि समाज के लिए समावेशी शिक्षा की महत्वपूर्ण उपयोगिता है।

- समावेशी शिक्षा बच्चों को उनकी शिक्षा के क्षेत्र में और उनके स्थानीय स्कूलों की गतिविधियों में उनके माता–पिता को भी शामिल करने की वकालत करती है।
- समावेशी शिक्षा सम्मान और अपनेपन की स्कूल संस्कृति के साथ–साथ व्यक्तिगत मतभेदों को स्वीकार करने के लिए भी अवसर प्रदान करती है।
- समावेशी शिक्षा अन्य बच्चों, अपने स्वयं की व्यक्तिगत आवश्यकताओं और क्षमताओं के साथ प्रत्येक का एक व्यापक विविधता के साथ दोस्ती का विकास करने की क्षमता विकसित करती है।
- यह समावेशी शिक्षा समाज के सभी बच्चों को शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ने की बात का समर्थन करती है। यह सही मायने सर्वशिक्षा जैसे शब्दों का ही रूपान्तरित रूप है, जिसके कई उद्देश्यों में से एक उद्देश्य है– विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा। लेकिन दुर्भाग्यवश हम सब इसके विस्तृत अर्थ को पूर्ण तरीके से समझने की कोशिश न करते हुए इस समावेशी शिक्षा का कार्य प्रमुखता से केवल 'विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा से ही लगाते हैं जो कि सर्वथा ही अनुचित जान पड़ता है, क्योंकि समावेशी शिक्षा का एक

उद्देश्य तो विशेष आवश्यकता बाले बच्चों की शिक्षा से हो सकता है, पर समावेशी शिक्षा का सम्पूर्ण उद्देश्य मात्र विशेष आवश्यकता की बच्चों की शिक्षा कदापि नहीं हो सकता है। विद्यालयी शिक्षा और उसके परसिर में समावेशी शिक्षा के रूप निम्न ढंग से हो सकते हैं–

1. विद्यालय के वातावरण में सुधार।
2. दाखिले की नीति में परिवर्तन।
3. रूचिपूर्ण एवं विभिन्न पाठ्यक्रमों का निर्धारणं
4. बच्चों की मनोवृत्तियों की पहचान।
5. लोकतांत्रिक वातावरण का सम्मान।
6. प्रावैगिक विधियों का प्रयोग।
7. विद्यालयों को सामुदायिक जीवन केन्द्र बनाया जाये।
8. विद्यालयी शिक्षा में नयी तकनीकि शिक्षा का प्रयोग।
9. मार्गदर्शन एवं समुपदेशन की व्यवस्था।
10. कुशल एवं विषय–ममर्ज्ञ शिक्षकों की नियुक्ति।
11. खेलकूद एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों पर विशेष ध्यान।
12. आवश्यकतानुसार विद्यालय में विद्वदजनों को बुलाया जाना।
13. बच्चों को जिज्ञासु बनाना।
14. परहित सरिस धर्म नहिं भाई का उपदेश देना।

विद्यालय के वातावरण में सुधार :– विद्यालय के वातावरण का सुधार अति–आवश्यक है। यदि विद्यालय की साज–सज्जा अच्छी है तो विद्यालय में अध्यापकों तथा विद्यार्थी का मन लगेगा और विद्यालय में बच्चे अपना उज्ज्वल भविष्य तथा सफल एवं संतुष्ट जीवन पा सकेंगे। ''जिस तरह व्यक्ति का व्यक्तित्व होता है और उसके सम्पर्क में आने वाला हर व्यक्ति किसी न किसी तरह प्रभावित होता है, ठीक उसी प्रकार विद्यालय का भी व्यक्तित्व होता है और विद्यालय के सम्पर्क में आने वाले हर व्यक्ति, बालक को वह प्रभावित करता है।''[1] इसी अनुभूति को विद्यालय का वायुमण्डल, विद्यालय का टोन, विद्यालय का व्यक्तित्व, तथा विद्यालय पर्यावरण कहा गया है।''[2] जिस प्रकार व्यक्ति अपने अच्छे, प्रभावशाली, मिलनसार, कर्त्तव्यनिष्ठ, व्यवहार व इसके विपरीत ईर्ष्यालु, झगड़ालु, कमजोर, कर्त्तव्यहीनता के प्रति जाने जाते हैं उसी प्रकार विद्यालय भी उनके स्टॉफ के व्यवहार से आगन्तुक पर अपने व्यवहार की विशिष्ट छाप छोड़ता है। यदि किसी विद्यालय में प्रधानाध्यापक व शिक्षक कार्यरत हैं, प्रसन्न मुद्रा में हैं, किसी भी प्रकार का तनाव या असन्तोष नहीं है, तब इनकी प्रसन्नता विद्यार्थियों में भी देखी जा सकती है।''[3] विद्यालय एक समाजिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रणाली है। इस प्रणाली में व्यक्ति अर्थात शिक्षक व प्रधानाध्यापक परस्पर व्यवहार करते हैं। इनके व्यवहार के अनुरूप विद्यालयी संगठन में अनेक प्रकार के पर्यावरणों का जन्म होता है।''[4] इस पर्यावरण का प्रभाव विद्यालय की गुणवत्ता, शैक्षिक क्रियाकलापों, शिक्षकों के मनोबल, उद्देश्यों तथा उपलब्धियों पर पड़ता है। समावेशी शिक्षा हेतु सर्वप्रथम उचित तथा मनमोहक विद्यालय–भवन का प्रबन्ध जरूरी है। इसके अलावा विद्यालयों में आवश्यक साज–सज्जा तथा शैक्षिक सहायताओं का भी समुचित प्रबन्ध जरूरी है, बिना इसके विद्यालय में समावेशी माहौल बहुत ही कठिन होगा, विद्यालय का वातावरण ही विद्यार्थी का जीवन है। जैसे घर का वातावरण सम्पूर्ण परिवार को प्रभावित करता है, वैसे ही विद्यालय का वातावरण भी सम्पूर्ण

विद्यालय परिवार को प्रभावित करता है, इसमें विद्यालय तथा छात्र दोनों का हित है। विद्यालय एक समूह है, जिसमें श्रेष्ठ पर्यावरण की आवश्यकता है, ''श्रेष्ठ पर्यावरण के सृजन के लिए नेतृत्व व समूह के सकारात्मक कारकों, यथा नेतृत्व द्वारा आदर्श प्रस्तुत करते हुए पहल करना तथा समूह के साथ सहयोगी, विश्वास व सकारात्मक मानवीय सम्बन्धों पर अधिक बल देना अच्छे पर्यावरण को जन्म देगा। समूह का यदि उच्च मनोबल (High Espirit) तथा उच्च समर्पण (High Belongingness) है तो निश्चय ही श्रेष्ठ विद्यालयी वातावरण बन सकेगा।''[5] ''प्रधानाध्यक के व्यवहार में अपेक्षित भूमिका (Expected Role) तथा वास्तविक भूमिका (Role Petormance) के बीच साम्य होता है, वह केवल कठिन कार्य कर आदर्श की उपस्थिति नहीं करता वरन् परिस्थितियों के अनुसार शिक्षकों के कार्य की आलोचना भी करता है तथा आवश्यकतानुसार उनके कार्य में मदद भी करता है। उसके व्यक्तित्व एवं योग्यता से शिक्षकों में सन्तोष होता है तथा उन्हें उचित मार्गदर्शन प्राप्त होता है। वह मिलकर चलता है। आवश्यकता पड़ने पर शिक्षकों के विकास के लिए नियमों में परिवर्तन भी कर लेता है। वह सभी कार्य अपने–आप नहीं करता, वरन् अपनी योग्यता से उचित कार्य का विभाजन करता है तथा शिक्षकों में नेतृत्व उभरने के अवसर प्रदान करता है। उसका आग्रह सम्बन्धों में उचित मानवीय सम्बन्धों को बनाये रखने का होता है। परिणामों पर अत्यधिक आग्रह नहीं होता है। वस्तुतः इस प्रकार का प्रधानाध्यापक विद्यालय की समग्र परिस्थितियों पर नियंत्रण रखता है, स्टाफ के व्यक्तित्व को कुशल नेतृत्व प्रदान करता है। शिक्षकों को संगठन में रहने में सन्तोष होता है, यहॉ तक कि अधिक भार होने पर भी उन्हें अधिक भार की अनुभूति नहीं होती, सभी मिलजुल कर कार्य कर लेते हैं इस पर्यावरण की विशेषता संक्षेप में निम्नलिखित प्रकार की होती है– 1. उच्च मनोवल। 2. निम्नअन्यमनस्कता। 3. निम्न बाधाये। 4. औसत घनिष्ठता। 5. उच्च सद्भाव। 6. परिणामों पर निम्न बल। 7. औसत उदाहरण। 8. निम्न एकाकीपन।''[6]

समावेशी शिक्षा के लिए प्रधानाध्यापक तथा शिक्षकों का यह कर्तव्य होता है कि वे विद्यार्थियों के अन्दर सहानुभूति, सद्भाव, सहिष्णुता, समन्वय, सहयोग, समर्पण, संयम एंव सद्वृत्ति के भाव पैदा करें ताकि विद्यार्थियों का भविष्य उज्ज्वल हो सके और विद्यार्थी एक सफल, सुयोग्य इन्सान एवं नागरिक बन सके।

विद्यालय के वातावरण में शिक्षक की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है, ''शिक्षक, विद्यालयी लक्ष्यों, कार्यक्रमों की क्रियान्विति का मूल आधार है। अतः अनुशासन बनाये रखने में भी उसकी अहम भूमिका है। विद्यालयी अनुशासनहीनता की सर्वाधिक घटनायें शैक्षिक कारणों से ही होती हैं, जिसके लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से शिक्षक ही उत्तरदयी होता है। शिक्षक पाठ्यक्रम की अच्छी तैयारी कर प्रभावी कक्षाध्यापन कर, विद्यार्थियों, कक्षा पर उनकी व्यक्तिगत समस्याओं पर उचित ध्यान देकर कक्षा–समस्याओं को विवेक एवं कौशल से हल करके तथा अपने अधीन छात्रों की व्यक्तिगत क्षमताओं के विकास के लिए व्यक्तिगत ध्यान देकर विद्यालयी अनुशासन की समस्यओं को बहुत कम करने में योग दे सकता है।''[7]

दाखिले की नीति में परिवर्तन :– विद्यालय की प्रवेश की नीति में परिवर्तन अतिआवश्यक है। विद्यालय के हर ढ़ंग के बच्चों का प्रवेश करना चाहिए तथा उनके शिक्षा की समुचित व्यवस्था करनी चाहिए। एक बार राकेश नाम का एक व्यक्ति अपने बच्चे को प्रवेश दिलाने के लिए एक सामान्य विद्यालय में पहुॅचा उस विद्यालय के प्रधानाध्यापक ने उसके बच्चें का प्रवेश लेने से मना कर दिया, क्योंकि उसका बच्चा आंशिक रूप से अंधा था और विद्यालय में हर ढंग से स्वस्थ बच्चे पढ़ते है। राकेश अपने बच्चे का प्रवेश दिलाने के लिए दिल्ली पहुॅचा, दिल्ली में Blind Children School था। वहॉ के प्रधानाध्यापक ने भी प्रवेश को मना कर दिया। क्योंकि वह विद्यालय केवल अंधे बच्चों के लिए था और राकेश के बच्चे को थोडा–थोडा दिखायी देता था, ऐसी परिस्थिति में राकेश दुःखी होकर घर लौट आया और अपने बच्चें को चाहते हुए भी कहीं पर प्रवेश नहीं दिला सका। समाज में फैली हुई इस तरह की कुरीतियों को हटाने की आवश्यकता है प्रवेश की नीति में सुधार करने की आवश्यकता है ताकि विद्यालय में सभी बच्चों का दाखिला हो सके तथा वे सभी बच्चें भाई–चारे के व्यवहार के साथ पढ़ सकें।

रूचिपूर्ण एंव विभिन्न पाठ्यक्रम का निर्धारण :– पाठ्यक्रम ऐसा हो कि सामान्य बच्चों के साथ–साथ विकलांग या विशिष्ट बच्चें भी अध्ययन कर सकें, पाठ्यक्रम का रूचिकर होना अतिआवश्यक है। पाठ्यक्रम को रूचिकर बनाने के लिए बच्चों के बैकग्राउण्ड का भी ध्यान देना चाहिए, बच्चों के बैकग्राउण्ड को देखकर ही उन्हे पढ़ाना चाहिए ताकि बच्चे अच्छी तरह से समझ सकें। खेल–कूद के प्रति बच्चों को प्रोत्साहित करना चाहिए ताकि बच्चों का मन और अधिक लगे और बच्चें खेलते–कूदते हुए अधिगम कर सकें। बच्चों को शिक्षित करने का सबसे असरदार ढंग है कि उन्हें अपनी प्यारी चीजों के बीच खेलने दिया जाये। अतः सभी विद्यालयी बच्चों में समावेशी शिक्षा की ज्योति जलाने हेतु इस बात की भी नितान्त आवश्यकता है कि उन्हें रूचियों के अनुसार संगठित किया जाये और पाठ्यक्रम का निर्माण उनकी अभिवृत्तियों, आकांक्षाओं तथा क्षमताओं के अनुकूल किया जाये, ताकि छात्रों में विभिन्न योग्यताओं, क्षमताओं का विकास हो सके, पाठ्यक्रम के सम्बन्ध सामाजिक जीवन से भी होना आवश्यक है जिससे छात्रों को समय के सदुपयोग तथा वातावरण से अनुकूलन का ज्ञान हो सकें।

प्रायोगिक विधियों का प्रयोग :– सभी शिक्षा आयोगों ने प्रावैगिक विधियों को अपनाने पर बल दिया है। परन्तु प्रावैगिक विधि का प्रयोग न के बराबर है क्योंकि विद्यालयों के स्तर दिन प्रति दिन गिरते ही जा रहे हैं। शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए ताकि बच्चों को उचित समावेशी शिक्षा दी जा सके। समावेशी शिक्षा का ज्ञान होना सब के लिए आवश्यक है। प्रयोग की विधि के प्रति अध्यापक की भी रूवि बढ़ानी आवश्यक हैं।

विद्यालयों को सामुदायिक जीवन का केन्द्र बनाया जाये :– विद्यालय समाज का एक अंग है, इसे सामुदायिक बनाया जाना अतिआवश्यक है। यूनेष्को द्वारा हाल ही में गठित डेलर्स कमीशन (1996) ने इस सन्दर्भ में एक रिपोर्ट दी है, "Education has always been and is still a highly social exercise. The full devlopment of the endividual personality is the out of the consolidation of personal independance and at one and the same time of the cultivtion of concern for others, in other words, of the process of discovering other people on the basis of moral, outlook. Humanization detined as the internal growth of the indevidual, Hinds. Its fullest expression at that fixed point where the paths of freedom and responsbility meet. Education systems are a source of human capital (Bakev, cultural capital (Boundiey) and social capital (Putnum). anstead of bing a walt to this felloman, Man may thus become afriend of man (home homunj amceas) through an Education that has remained faithful to its community grats". अर्थात् शिक्षा सदैव से सामाजिक चिन्तन का विषय रही है, और आज भी है। व्यक्ति के पूर्ण विकास में एक और जहॉ आन्तरिक विकास के लिए वैयक्तिक स्वतंत्रता को बनाये रखना आवश्यक है, वहीं दूसरों के प्रति दायित्व का अहसास पैदा करना भी है, जिसे शिक्षा का नैतिक दृष्टिकोण कहा जाता है। व्यक्ति का आन्तरिक विकास तभी पूर्णता की अभिव्यक्ति करता है, जिस मार्ग बिन्दु पर वैयक्तिक, स्वतंत्रता व दायित्व (सामाजिक) मिलते हैं। शिक्षा प्रणालियॉ मानवीय पूॅजी की स्रोत हैं। बजाय इसके कि वे मानव को अपने साथियों के लिए भेड़िया बनावें। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति को व्यक्ति का मित्र बनायें और अपने समुदाय के प्रति वफादार बनाने जैसी कि शिक्षा सदा से ही समुदाय के लक्ष्यों के प्रति वफादार रही है।

रोबर्ट केरनीशे का मानना है, ''विद्यालय सदैव जनकल्याण के लिए है। विद्यालय सामुदायिक आवश्यकता और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हैं। उन्हें ऐसे अर्थतंत्र के उपकरण बनने से सावधान रहने को कहते हैं जो मानवीय एकता को तोड़ता हो। शिक्षा स्वभाव से ही जनकल्याण से सम्बन्धित है अतः विद्यालयों को सर्वप्रथम सामाजिक संस्थान घोषित किया जाना चाहिए। शैक्षिक संस्थायें सभ्य समाज के लिए समर्पित हैं अतः इन्हें मात्र धार्मिक तंत्र का आधार नहीं बनने देना चाहिए जो मानवीय एकता को चूर–चूर करने वाला है।''[9]

विद्यालय में सामाजिकता का होना आवश्यक है ताकि विद्यालय में बच्चों का सर्वांगीण विकास हो सके और

विद्यालय से बच्चों को पूर्ण सफल जीवन जीने की सार्थकता मिल सके।

विद्यालयी शिक्षा में नयी तकनीकी का प्रयोग :– विद्यालयों में नयी तकनीकी का प्रयोग आवश्यक है, जैसे रेडियो, टी.वी. आदि। इन सबके द्वारा बच्चे का मानसिक विकास होता है, वह मानसिक रूप से सन्तुलित होता है। बच्चें का जीवन प्राप्ति की ओर अग्रसित होता है। शिक्षाप्रद व्याख्यान, वी.सी. और कम्प्यूटर जैसे उपकरणों को प्राथमिकता के आधार पर विद्यालय में उपलब्धता और प्रयोग में लाये जाने की क्रान्ति की आवश्यकता है। इससे विद्यालय में समावेशी शिक्षा लागू करने में मदद मिलेगी।

मार्गदर्शन एवं समुपदेशन की व्यवस्था :– विद्यालय में बच्चों के उचित मार्गदर्शन की व्यवस्था होनी चाहिए बच्चे की रूचि के अनुसार उसे उचित मार्गदर्शन मिलना चाहिए ताकि उसके जीवन में चार चाँद लग जाँय, उसका जीवन प्रगतिशील, उन्नतशील एवं सार्थक हो। विद्यालय में पढ़ने वाले छात्रों और उनके अभिभावकों हेतु आदि से अन्त तक सुशिक्षित, योग्य, मनीषी, विद्वदजन, योग्य एवं अनुभवी व्यक्तियों द्वारा मार्गदर्शन एवं परामर्श की उचित व्यवस्था होनी चाहिए, अस्तु समावेशी शिक्षा का उद्देश्य सभी छात्रों के ज्ञान, कौशल, आत्मनिर्भर बनाते हुए उन्हें भारतीय समुदयों और कार्यस्थलों में योगदान करने के लिए तैयार होना चाहिए, किन्तु भारतीय स्कूलों की विविध ा पृष्ठभूमि और क्षमताओं के साथ छात्रों को शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ने के रूप में समावेशी शिक्षा का केन्द्रीय उद्देश्य अधिक चुनौतीपूर्ण हो जाता है, लेकिन हम इन चुनौतियों का मुकाबला शिक्षकों के सहयोग, माता–पिता के प्रयास और समुदाय से मिलकर करने हेतु प्रयत्नशील हैं।

विद्यालय में लोकतंत्र की प्राथमिकता :– विद्यालय में लोकतंत्रीय वातावरण का होना अतिआवश्यक है ताकि विद्यालय को संकीर्णता एवं पक्षपात तथा रूढ़िवादिता से बचाया जा सके। लोकतंत्र में किसी के अधिकार का हनन नहीं होता है न ही किसी के अन्दर किसी ढ़ंग की कोई घुटन पैदा होती है। लोकतंत्र से टैगोर की शिक्षा की परिभाषा सार्थक होती है। टैगोर ने लिखा है– The highest education is that which makes our life in harmaney with all existance. अर्थात् सर्वोत्तम शिक्षा वही है जो सम्पूर्ण सृष्टि से हमारे जीवन का सामंजस्य स्थापित करती है।''[10] सम्पूर्ण सृष्टि के साथ सामंजस्य ही समावेशी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है। यदि सम्पूर्ण सृश्टि के साथ समावेशन हो जाये तो संसार के सम्पूर्ण छल–कपट, दुःख–दर्द, दोष, आतंक, पाखण्ड, झूठ एवं अन्याय दूर हो जायेगे। व्यक्ति का जीवन सुखमय एवं शान्तिमय होगा। उसकी शिक्षा सदुपयोगी होगी। वह अपने उद्देश्य एवं उपलब्धि के प्रति सन्तुष्ट रहेगा, उसका सर्वांगीण विकास होगा। समाज में शिक्षा की उचित व्यवस्था की बात तो हर जगह सुनने को मिलती है पर समाज में सबके साथ समानता का व्यवहार दिखायी नहीं देता है। समाज में अल्पसंख्यक बच्चों के साथ संवेदनहीनता दिखायी देती है। साथ ही दिव्यांग बच्चों के साथ सद्भाव का अभाव दिखायी देता है। महिलाओं, लड़कियों के साथ भी अभी सहानभूति का अभाव दिखायी दे रहा है। प्रतिदिन कहीं न कहीं रेप की कथा से अखबार के पृश्ठ रंगे होते है। समाज में भेदभाव आज भी व्याप्त है, इसे मिटाना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। किसी के अधिकार का हनन न हो तभी शिक्षा की महत्वपूर्ण उपलब्धि हो सकती है। इस पँक्ति को सार्थक करना अतिआवश्यक है–

''अधिकार खोकर बैठ रहना, यह महादुष्कर्म है।
न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दण्ड देना धर्म है।।''

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि समावेशी शिक्षा सबको शिक्षा का अवसर प्रदान करने का साधन है। समावेशी शिक्षा सबको शिक्षा का उचित अधिकार प्रदान करती है। समावेशी शिक्षा से ही समाज का सर्वांगीण विकास सम्भव है। समावेशी शिक्षा में सहानुभूति एंव सद्भाव तथा समन्वय का होना अति आवश्यक है। समावेशी शिक्षा तभी सम्भव है, जब विद्यालय का वातावरण शुद्व एवं जनतांत्रिक हो। शिक्षक योगी की भूमिका निभाते हो साथ ही विद्यालय में समाजिकता की समुचित पृष्ठभूमि हो। विद्यालय के शिक्षकों को कर्त्तव्यपरायणता का सिपाही

होना भी अतिआवश्यक हैं समावेशी शिक्षा का नारा 'सर्वे भवन्तु सुखिन्ः' है।

सन्दर्भ

1. Indrew W.Hapnin, Theory and research in Administration Newyork, Menillian cop P-131.
2. Robert G.Owens, organizational behaviour in schools, New Zersy, Engleword cliffs 1970, P-167.
3. M.L. Sharma, school Environment through the eyes of Teachers, Education Quarterty vol XVIII No 1 April-1975, P-40-73
4. Mirakshi Bhatnagar, A study of organization climate of teacher Education institutions in U.P., Ph.D Thesis Merrut University-1988.
5. जे0पी0 वर्मा : विद्यालय प्रबन्धन, आर लाल बुक डिपो, मेरठ, पृष्ठ–430
6. वही : पृष्ठ–433
7. जे0पी0 वर्मा : विद्यालय प्रबन्धन, आर लाल बुक डिपो, मेरठ, पृष्ठ–379
8. डेलर्स कमीशन 1996, यूनेस्को द्वारा गठित।
9. Rober to carneiro Revitalizing community spirit A glimpse of the socializing role of the school in the next century. Decore; s. commission, unesco 1996, P-202
10. रविन्द्रनाथ टैगोर।

❑❑

समावेशी ग्रामीण विकास में विज्ञान और तकनीक का योगदान

डॉ0 संजय कुमार सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर–भूगोल
तिलक महाविद्यालय, औरैया

महात्मा गाँधी ने कहा था कि भारत की आत्मा गाँवों में निवास करती है। भारत गाँवों का देश है जिसकी अधिकांश आबादी विविध भौगोलिक एवं जलवायु दशाओं में बसे 6.41 लाख गाँवों में रहती है। ये गाँव ही देश की प्रगति, उन्नति, समृद्धि और विकास की धुरी है। जब तक गाँवों का विकास नहीं होगा तबतक भारत भी विकसित राष्ट्र नहीं बन सकता है। इसीलिये भारत सरकार की सभी योजनाओं में समावेशी ग्रामीण विकास पर बल दिया जाता रहा है। प्रस्तुत शोधपत्र का उद्‌देश्य स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सत्तर वर्षों में ग्रामीण विकास में विज्ञान ओर तकनीक के योगदान का मूल्यांकन करना है।

देश के सर्वांगीण विकास के लिए ग्रामीण विकास अति आवश्यक है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार देश की ग्रामीण जनसंख्या 83.25 करोड़ आंकी गई है जो कुल आबादी की लगभग सत्तर प्रतिशत है। 6 लाख 41 हजार गाँवों में बसी इस आबादी का अधिकांश भाग आज भी कृषि एंव संबंधित कार्यों जैसे पशुपालन, छोटे स्तर की बागवानी, कृषि आधारित कुटीर उद्योग से जुडी है। कृषि को भारतीय अर्थव्यवस्था का मुख्य स्तंभ माना जाता है। अपने देश में कृषि के महत्व को उस तथ्य से भी समझा जा सकता है कि दुनिया की केवल 2.4 प्रतिशत क्षेत्र तथा 4.2 प्रतिशत पानी से यह विश्व की 17 प्रतिशत जनसंख्या का भरण पोषण करने में सक्षम है। इसके अतिरिक्त देश के सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) में कृषि का योगदान लगभग 14 प्रतिशत है और निर्यात से होने वाली विदेशी मुद्रा की आमदनी में इसकी हिस्सेदारी लगभग 11 प्रतिशत है।

देश की विकास यात्रा में विज्ञान एवं तकनीक ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है तथा मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपना सहयोग देकर जीवन को बेहतर बनाया है। गाँव हो या शहर, सभी जगह घर से लेकर उद्योग–धंधों, व्यवसाय, स्वास्थ्य, यातायात, शिक्षा, कृषि, परिवहन, संचार, ऊर्जा, मनोरंजन आदि सभी क्षेत्रों में वैज्ञानिक उपलब्धियों ने जीवन को आसान, सुखमय और सुविधाजनक बनाया है।

कृषि उत्पादन – देश की लगभग आधी आबादी आजीविका के लिए किसी न किसी रूप में कृषि से जुड़ी है। यही कारण है कि कृषि विकास को ग्रामीण विकास का सशक्त माध्यम माना जाता है। आजादी के समय उपजाऊ भूमि का एक बड़ा भाग पाकिस्तान में चले जाने के कारण कृषि की दशा एवं खाद्य उत्पादन दयनीय हाल में है। परन्तु कृषि एवं सम्बंधित उध्यमों में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के निरंतर उपयोग से भारत ने खाद्यान्न के मामले में आत्म निर्भरता हासिल कर ली है। देश में कृषि अनुसंधान, शिक्षा तथा प्रसार को गति देने के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) नामक शीर्ष संस्था तत्परता से कार्यरत है। यह भारत में फसल विज्ञान, बागवानी, मत्स्यिकी और पशुपालन सहित कृष से सम्बंधित सभी क्षेत्रों में समन्वय, मार्गदर्शन, अुनसंधान प्रबन्धन, शिक्षा एवं प्रसार का कार्य करती है। परिषद के अन्तर्गत देश के विभिन्न राज्यों में 102 कृषि अनुसंधान संस्थान कार्यरत हैं। इसके अलावे विभिन्न राज्यों में 75 कृषि विश्वविद्यालय स्थित हैं जो मुख्यतः कृषि शिक्षा एवं शोध कार्य में संलग्न हैं। वर्तमान में देश में कुल 642 कृषि विज्ञान केन्द्र हैं जो प्रत्येक ग्रामीण जिले में एक एवं बड़ें जिलों में दो हैं। उनके

माध्यम से कृषि की नई नकनीकों, कृषि एवं विकास कल्याण की सरकारी योजनाओं– कार्यक्रमों के बारे में किसानों को जागरूक बनाने का कार्य किया जाता है।

कृषि उत्पादन में मृदा के महत्व को देखते हुए भारत सरकार द्वारा प्रत्येक किसान को मृदा स्वास्थ्य कार्ड देने की महत्वाकांक्षी योजना चलाई जा रही है। इस अभियान के लिए तथा मिट्टी की आसान एवं सटीक जॉच के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा तीन यंत्र विकसित किये गए हैं।

(क) मृदा परीक्षक यंत्र

(ख) मृदा नमी सूचक यंत्र

(ग) पूसा एस.टी.एफ.आर. मीटर किट

इन यंत्रों द्वारों मृदा के विशेष गुणों जैसे पीएच–मान, विद्युत चालकता (इ.सी), जैविक कार्बन की मात्रा, मृदा की नमी, मृदा में पोषक तत्वों का पता लगाया जाता है तथा मिट्टी के प्रकार के अनुसार फसल एवं उर्वरक के उपयोग की सिफारिश की जाती है।

इन्हीं प्रयासों के चलते स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद खाद्यान्न उत्पादन में उल्लेखनीय बृद्धि हुई है। सन् 1950–51 की तुलना में खाद्यान्न उत्पादन में पाँच गुणा, बागवानी में छः गुणा, मछली उत्पादन में 14 गुणा, दूध में छः गुणा और अंडा उत्पादन में 30 गुणा बृद्धि दर्ज की गई है।

वैज्ञानिक प्रयासों द्वारा फसल प्रजनन की आधुनिक विधियों का उपयोग करते हुए मनचाही खूबियों वाली फसलों की उन्नत किस्में विकसित की जा रही हैं। आवश्यकतानुसार रोगों के लिए प्रतिरोधकता, सूखा या बाढ़ जैसी प्रतिकूल दशाओं के प्रति सहनशील तथा प्रोटीन कुपोषण का सामना करने जैसी बेहतर गुणवत्ता वाली खूबियों का समावेश किया जा रहा है। देश की दो प्रमुख खाद्यान्नों– धान एवं गेंहूँ ने देश की खाद्य सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। धान की स्वर्णा सब–1, वर्षा धान, सहभागी धान, शुष्क सम्राट, अंजलि, विरसा विकास, अभिषेक आदि किस्में तथा गेंहू की एच.डी. 2888, कौशाम्बी किस्म विशेष उद्देश्य हेतु विकसित की गई प्रजातियाँ हैं।

मृदा एवं जल के संरक्षण के लिए वैज्ञानिकों द्वारा ऐसी तकनीकें तथा विधियाँ विकसित की गई हैं जो मिट्टी के उपजाऊपन को संरक्षित करती हैं। सिंचाई के पानी की बचत तथा जल के कुशल उपयोग को बढ़ावा देकर खर्च में कमी लाती है। इस प्रकार की तकनीकों में ''शून्य जुताई'' (जीरो टिलेज), ''फर्ब'' तथा ''धान के बीजों की खेत में सीधे रूपाई'' प्रमुख हैं।

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन नामक आपदा से औसत तापमान में लगातार वृद्धि हो रही है। 1990 के बाद लगभग हर वर्ष पिछले वर्ष की तुलना में ज्यादा गर्म होता जा रहा है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी की सहायता से जलवायु परिवर्ततन का सामना करने तथा इसके प्रभावों को कम करने तथा किसानों की आजीविका सुरक्षित रखने के लिए वर्श 2011 में निक्रा (नेशनल इनोवैशंस ऑन क्लाइमेंट रिजिलियेंट एग्रीकल्चर) नामक एक राष्ट्रव्यापी शोध परियोजना चलाई जा रही है। यह परियोजना 27 राज्यों के 100 जिलों में जलवायु अनुकूल प्रौद्योगिकियों को किसानों के खेतों पर प्रदर्शित किया जा रहा है। इस परियोजना में फसलों, पशुपालन और प्राकृतिक संसाधन संरक्षण जैसे अहम मुद्दों को शामिल किया जाता है।

जी.एम. फसलें – जलवायु परिवर्तन, जनसंख्या वृद्धि तथा स्वाद्य पदार्थों की बढ़ती मांग जैसी प्रबल चुनौतियॉ आज समूचे विश्व के समक्ष हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण फसलों, भूमि, जल, मानव स्वास्थ्य, सामाजिक आर्थिक जीवन तथा वैश्विक पर्यावरण आदि सब पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। वैश्विक तापमान में लगातार वृद्धि

देखी जा रही है। वैश्विक तापमान का अध्ययन करने वाली एजेन्सियों ने पाया है कि साल 2015 में भूमि और समुद्र का औसत वैश्विक तापमान गतवर्श 2014 की अपेक्षा 0.16 डिग्री सेल्सियस ज्यादा गर्म था। एक अनुमान के अनुसार सन् 2030 तक भारत की बढ़ती आबादी के लिए 10 मिलियन टन अधिक गेहूँ उत्पादन की आवश्यकता होगी। परन्तु विभिन्न कारणों से भारत में गेंहूँ की उत्पादकता दर कम हो रही है। गेंहूँ की उत्पादकता के लिए उच्च तापमान एक प्रमुख बाधा है। औसत एक डिग्री सेल्सियस तापमान में वृद्धि होने पर गेंहूँ की उपज में 3 से 4 प्रतिशत की कमी आ जाती है। इसी प्रकार अन्य जैविक व भौतिक तनावों जैसे– सूखा, तापमान की प्रतिकूल दशाएॅं, कीट, बीमारियाँ, मृदा लवणता, जलाक्रांति आदि के कारण, फसलों का उत्पादन प्रभावित हो रहा है। ऐसे में जैनेटिक इंजिनियरिंग तकनीक काफी उपयोगी सिद्ध हो रहा है। जैनेटिक इंजीनियरिंग तकनीक का उपयोग कर फसलों के आनुवांशिक गुणों में परिवर्तन कर इन्हें पानी, उर्वरक, खरपतवार, कीटनाशी जैसे अवसादों का प्रतिरोधक बनाने में तथा अधिक पोषक क्षमता व अधिक उत्पाद हासिल करने में किया जाता है। ऐसी फसलों की जैनेटिकली मोडिफाइड या संक्षेप में जी.एम. फसल कहते हैं। आज पूरे विश्व में 18117 मिलियन हैक्टेयर में जी.एम. फसल की खेती की जा रही है। इस पूरे क्षेत्रफल का 90 प्रतिशत भाग केवल पॉच देशों द्वारा किया जाता है जिसमें भारत भी शामिल है।

बी.टी. कपास जी.एम. फसलों का एक ज्वलंत उदाहरण है। वास्तव में बी.टी. शब्द मिट्टी में पाये जाने वाले जीवाणु वैसिलस थुरेंजिनेसस से लिया गया है। इस जीवाणु में पाए जाने वाले जीन (बी.टी.जीन) एक तरह का विशैला पदार्थ पैदा करता है। जेनेटिक इंजीनियरिंग तकनीक का उपयोग कर वैज्ञानिकों ने विषैला पदार्थ तैयार करने वाले जीन को इस जीवाणु से निकालकर कपास की फसल में डालकर इसकी कीट प्रतिरोधी किस्मों का विकास किया। इससे इस कपास पर कीटनाशकों के छिड़काव की जरूरत नहीं जड़ती है। फसल भी भरपुर होती है। भारत में बी.टी. कपास की व्यावसायिक खेती वर्ष 2002 में शुरू की गई। आज भारत में बी.टी. कपास के अन्तर्गत कुल कपास क्षेत्र का 90 प्रतिशत है। वर्ष 2002 में हमारे देश के कुल 13 मिलियन कपास की गांठों का उत्पादन होता था जो सन् 2014 में बढ़कर लगभग 40 मिलियन गांठ हो गया। भारत में बी.टी. कपास का क्षेत्रफल दिनोदिन बढ़ता जा रहा है। इसी प्रकार की अन्य जी.एम. फसलें जैसे बी.टी.बैगन, बी.टी. सरसों आदि भी सफलतापूर्वक विकसित की गई हैं।

जैव प्रौद्योगिकी के प्रयोग द्वारा सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे आयोडिन, आयरन, जिंक, विटामिन ए आदि से भरपुर फसलों का विकास भी किया जा रहा है। अमेरिका में इसी तरह जीन परिवर्तन करके सन् 2000 में ''गोल्डन राइस'' नामक धान की किस्म का विकास किया गया था। इस चावल में प्रोटिन विटामिन ए की मात्रा अन्य चावलों से तीन गुणा ज्यादा होता है। इसके प्रयोग से एशियाई देशों में लाखों बच्चों को कुपोषण एवं 'विटामिन ए' की कमी से होने वाले अंधेपन से बचाया जा सकता है।

सूर्यज्योति या सूक्ष्म सौर्य गुम्बद (Micro solar Dome) – आज अक्षय उर्जा के रूप में सौर्य ऊर्जा के उपयोग पर पूरे विश्व में जोर दिया जा रहा है। भारत में सोलर पैनल एवं बैटरी की सहायता से सौर्य ऊर्जा का उपयोग कई वर्षों से हो रहा है। परन्तु भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के सौजन्य से कोलकाता स्थित एन.बी.इंस्टिच्यूट फॉर रूरल टेक्नोलॉजी के वैज्ञानिकों ने 'माइक्रो सोलर डोम' नामक कम लागत वाले एक हाइबिड उपकरण विकसित किया है जिसे 'सूर्यज्योति' नाम दिया गया है। दिन के समय यह उपकरण किसी बैटरी या सोलर पैनल का इस्तेमाल नहीं करता है। सूर्य का प्रकाश इसे निर्देशित करता है। यह परिर्वर्तित तकनीकी इसे पारम्परिक सौर्य उपकरणों से अलग बनाया है। सौर्य ऊर्जा पर आधारित लैम्प अधिकतम 4 घंटे रोशनी कर पाते हैं जबकि यह हाईब्रिड लैम्प दिन में 12 घंटे और सूर्यास्त के बाद 6 घंटे यानि 18 घंटे तक रोशनी करता है। ग्रामीण

इलाकों के मिट्टी के घरों में नमी रहने और सूर्य का प्रकाश न जाने तथा अधिक नमी के कारण बच्चों में रिकेट्स तथा आस्टियो पोरोसिस जैसी बीमारियों की अधिकता पायी जाती है। इन घरों में मिट्टी के तेल से जलने वाले लैम्प से अधिक मात्रा में सूक्ष्मकण निकलने के कारण फेफड़े का रोग और अस्थमा होते हैं। ऐसा अनुमान है कि सोलर डोम सौर्य ऊर्जा को ग्रहण कर सूर्य के प्रकाश की कमी से निजात दिलाने में सहायक होगा। देश के करीब एक करोड़ परिवारों को इस 'सूर्यज्योति' माइक्रो सोलर डोम के इस्तेमाल का सीधा फायदा मिलेगा। अगर ऐसा होता है तो इससे 1750 मिलियन यूनिट ऊर्जा की बचत होगी। इस प्रकार उतनी यूनिट ऊर्जा के निर्माण में प्रयुक्त जीवाष्म ईधन से निकलने वाली 125 मिलियन टन कार्वन डॉई ऑक्साइड का कम उत्सर्जन होगा।

नाभिकीय विकिरण कृषि तकनीक – अपने देश में बड़ी मात्रा में फसलें तथा खाद्य पदार्थ कीड़ों के संक्रमण, बैक्ट्रिया के आक्रमण या अन्य जैविक–अजैविक कारणों से नष्ट हो जाते हैं। एक अनुमान के अनुसार देश में हर वर्ष भण्डारण के दौरान 38 प्रतिशत से अधिक अनाज बर्बाद हो जाते हैं। ऐसे में नाभिकीय विकरण पर आधारित जैव तकनीक खाद्य विकरण (फूड इरेडियेशन) खाद्यान्न सुरक्षा में एक सुरक्षा कवच की तरह काम करता है। इस तकनीक के कई आयाम हैं –

(क) रेडियो एक्टिव तत्व कोबाल्ट 60 की गामा किरणों की बौछार से खाद्य सामग्री लम्बे समय तक सुरक्षित रहती है क्योकि इस पर कीटों, सूक्ष्म जीवों तथा फफूंद आदि का असर नहीं हो पाता। इससे फसलों का सेल्फ लाइफ अवधि बढ़ जाती है।

(ख) नाभिकीय विकिरण द्वारा पौधों की आनुवांशिक भिन्नता में बढ़ोत्तरी की जाती है। इसे उत्परिवर्ती प्रजनन या म्यूटेशन ब्रीडिंग कहते हैं। इस तकनीक द्वारा अनाज, दलहन, तिलहन की नई प्रजातियों में बांछित गुण विकसित किये जाते हैं।

(ग) विकिरित कर देने से आलू एवं प्याज का अंकुरण बहुत धीमा हो जाता है और अधिक समय तक वे खराब नहीं होते ।

(घ) भारत में वर्तमान में दूध व दूध से बने उत्पादों के अलावा सभी प्रकार के खाद्ध पदार्थों को किरणीत करने की अनुमति दी गई है।

(ड़) परमाण्विक तत्वों के रेडियों समस्थानिकों की सहायता से सामान्य खाद् व कीटनाशकों के क्षमता की जॉच की जाती है तथा खाद एवं कीटनाशकों के परमाणुओं में रेडियों समस्थानिकों की सहायता से बदलाव लाकर बेहतर गुणवत्ता की खाद् व कीटनाशक तैयार किये जाते हैं।

(च) फसल को बर्बाद करने वाले कीड़ों के खात्में के लिए बंध्या कीट तकनीक (स्टेराइल इन्सेक्ट टेक्नीक) अपनायी जाती है। इसमें प्रयोगशाला में कीटों को बड़ी संख्या में पाला जाता हैं एवं अयनकारी विकिरण द्वारा इन्हें लैंगिक रूप से बान्धय बनाया जाता है ताकि इनसे उत्पन्न अण्डे अनुर्वर हों।

भारत में इस समय 21 खाद्य किरणन केन्द्र (फूड इरेडियेशन सेन्टर) हैं जो एटोमिक एनर्जी रेगुलेटरी बोर्ड की कडी निगरानी में कार्य करते हैं।

ग्रामीण जीवन में उपग्रह प्रौद्योगिकी – ग्रामों के सर्वागीण एवं द्रुत विकास के लिए अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी की महत्वपूर्ण भूमिका है। यूंतो भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) द्वारा विकसित सभी उपग्रहों की अपनी विशिष्ट भूमिकाएॅ हैं, परन्तु ग्रामीण विकास में इन्सेट नामक संचार उपग्रह तथा धरती का प्रेक्षण लेने वाले उपग्रहों (अर्थ आवजर्वेशन सेटेलाइट्स) जिन्हें दूर संवेदन उपग्रह भी कहते हैं का विशेष अनुप्रयोग है। इन्सेट श्रेणी के (संचार) उपग्रहों ने भारत के टेलीविजन एवं रेडियो प्रसारण, दूरसंचार एवं मौसम विज्ञान सम्बन्धित क्षेत्रों तथा आपदा

प्रबन्धन में क्रांति ला दी है।

सुदूर संवेदन उपग्रहों के अनुप्रयोग का दायरा बहुत विस्तृत है। इसके माध्यम से हमें अपनी प्राकृतिक संपदा, प्राकृतिक आपदाओं, घने जंगलों, जल श्रोतों, भू–गर्भ में छिपी भूंसंपदा, खनिजों, सागरों के तापमान, लवणता आदि की भी जानकारी मिलती है।

(क) इूसरों की पहल से तथा एडुसेट उपग्रह की मद्‌द से शिक्षा का प्रसार गावों में हो रहा है। इसकी मदद से युवाओं में कौशल एंव क्षमता का विकास कर रोजगार मुहैया करया जा रहा है। इसके अलावा एडुसैट द्वारा अनौपचारिक एवं प्रौढ़ शिक्षा जैसे टेली शिक्षा देने का कार्य भी चल रहा है।

(ख) उपग्रहों की मदद से ग्रामीण क्षेत्रों में टेली स्वास्थ्य सेवा प्रदान की जा रही है।

(ग) कृषि सम्बंधी कार्यों के लिए कृषि विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों तथा एवं तकनीकी विशेषज्ञों द्वारा परस्पर क्रिया से उन्हें ज्ञान एवं जानकारी उपलब्ध कराई जाती है।

संदर्भ

1. जनसंख्या एवं नगरीकरणः एक सिंहावलोकन, मधुवन पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 2016
2. 'बदलाव के 70 साल,' दैनिक जागरण, कानपुर 15.08.2017
3. कुरूक्षेत्र, मासिक अंक 01, वर्श 52, सूचना एंव प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, नवम्बर, 2005
4. कुरूक्षेत्र, मासिक अंक 09, वर्श 62, सूचना एंव प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, जुलाई 2016
5. इंडिया 2015, पब्लिकेशन डिविजन, सूचना एवं प्रकाशन मंत्रालय नई दिल्ली, 2015
6. जागरण वार्षिकी 2016, दैनिक जागरण प्रेस, नोएडा, जनवरी 2016
7. जागरण वार्षिकी 2017, दैनिक जागरण प्रेस, नोएडा, जनवरी 2017

❑❑

समावेशी शिक्षा के स्थायित्वपूर्ण विकास के उपागम

भावना धोनी
एम0एड0–छात्रा
महेश कुमार चौधरी
सहायक आचार्य
विशेष शिक्षा संकाय, मानसिक मंदता
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय मोहान रोड, लखनऊ

समावेशी या ''समावेशन'' का अर्थ है सम्मिलित करना शिक्षा के संदर्भ में यदि हम इसका प्रयोग करे तो प्रत्येक बच्चे को शिक्षा की मुख्य धारा में सामान्य शिक्षा प्रणाली में सम्मिलित करने से है वास्तव में 'समावेशी शिक्षा शिक्षण की ऐसी प्रणाली है जिसमें विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को सामान्य बच्चों के साथ मुख्य धारा के स्कूलों में पठन–पाठन और आत्मनिर्भर बनने का मौका मिलता है ताकि वे समाज की मुख्यधारा में शामिल हो सकें इसमें पठन–पाठन के अलावा दिव्यांग बच्चों के लिए बाधा रहित स्कूली माहौल का निर्माण कार्य भी शामिल है। शिक्षण की इस नवीन प्रणाली से हाशिये पर के वैसें बच्चे लाभान्वित होते हैं, जिन्हें अपनी दिनचर्या से लेकर पढाई पूरी करने के लिए विशेश देखभाल की आवश्यता पढती है।

स्टीफन तथा ब्लैकहर्ट के अनुसार :– ''शिक्षा की मुख्य धारा का अर्थ बाधित बालकों की सामान्य कक्षाओं में शिक्षण व्यवस्था करना है। यह सामान अवसर मनोवैज्ञानिक सोच पर आधारित है जो व्यक्तिगत योजना के द्वारा उपयुक्त सामाजिक मानकीयकरण और अधिगम को बढ़ावा देती है।''

सलामांका का वक्तब्य :– हर शिशु को शिक्षा का बुनियादी अधिकार है और उसे अधिनाम का एक स्वीकार्य स्तर प्राप्त करने और बनाए रखने का अवसर दिया जाना चाहिए।''

NCF 2005 :– (अध्याय 4) के अनुसार – ''समावेशन की नीति को हर स्कूल और सारी शिक्षा व्यवस्था को लागू किये जाने जरूरत है। बच्चे के जीवन के हर क्षेत्र में वो चाहे स्कूल में हो या बाहर सभी बच्चो की भागीदारी सुनिश्चित किए जाने की जरूरत है। स्कूलों को ऐसे केन्द्र बनाये जाने की आवश्यकता है जहाँ बच्चों को जीवन की तैयारी करायी जाये और यह सुनिश्चित किया जाये कि सभी बच्चों, खासकर शारीरिक या मानसिक रूप से असमर्थ बच्चों, समाज के हाशिए पर जीने वाले बच्चों और कठिन परिस्थितियों में जीने वाले बच्चों को शिक्षा के इस महत्वपूर्ण क्षेत्र का सबसे ज्यादा फायदा मिले।''

अतः यह कहा जा सकता है कि समावेशी शिक्षा को एक आधुनिक सोच की तरह परिभाषित किया जा सकता है। जो कि शिक्षा को अपने में सिमटे हुए दृष्टिकोण से मुक्त करती है और ऊपर उठने के लिए प्रोत्साहित करती है। ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपने को स्वीकार्य, सुरक्षित और सम्मानित महसूस करें। समावेशन कोई प्रयोग नहीं है जिसकी जाँच की जाये। यह एक मूल्य है जिसका अनुसरण किया जा सकता है। सभी बच्चे चाहे वो दिव्यांग हो अथवा नहीं को शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार है। पर वास्तव में ऐसा होता नहीं क्योकिं माता–पिता या अभिभावकों का सोच भी इन बच्चों के प्रति सकारात्मक नहीं होता। लिहाजा वे अपने आपको समाज से कटा महसूस करते है परिणामस्वरूप वे स्कूली शिक्षा से बाहर ही रह जाते हैं। 1970–1980 के दशक में पश्चिमी देशों में समानता और अधिकारों की लगातार बढ़ती मांग के परिणामस्वरूप विशेष शैक्षिक जरूरत वाले बच्चों को मुख्य धारा के स्कूलों मे 'समेकित' करने की जरूरत महसूस की जाने लगी। हालांकि लोगों ने स्कूली शिक्षा की प्रक्रिया में आए किसी भी वैचारिक बदलाव को नहीं माना। नतीजा हुआ कि नियमित विद्यालयों के भीतर ही 'विशेष विद्यालयों' की स्थापना होने लगी। अपनी सोच के कारण ही पहले हमनें अपनी शिक्षा व्यवस्था में विभेदीकरण किया और अब

हम पुःन इसे समावेशी शिक्षा में बदलने का प्रयास कर रहे हैं। प्रश्न यह उठता है कि जब हमें समावेशन ही करना था तो हमनें विभेदीकरण क्यो किया इसको हम शिक्षा की विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय नीतियों , समझौतो व अधिनियमों के माध्यम से समझ सकते है कि कैसे हमारी शिक्षा व्यवस्था में विभेदीकरण हुआ और अब वह कैसे समावेशी शिक्षा में परिवर्तित हो रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य–''शिक्षा का अधिकार सभी का है'' यह बात सबसे पहले World Declaration for Education for all (1990) में कही गई 1994 मे सलामांका सम्मेलन में सर्वप्रथम समावेशी की बात कही गई। इसमे 92 सरकारो व 25 अन्तर्राष्ट्रीय संगठनो ने हिस्सा लिया । समामाकां का वक्तब्यः–''हर शिशु को शिक्षा का बुनियादी अधिकार है और उसे अधिगम का एक स्वीकार्य स्तर प्राप्त करने और बनाये रखने का अवसर दिया जाना चाहिए ।डाकर (सेनेगल) में वर्श 2000 में अयोजित विश्व शिक्षा मंच पर भी शिक्षा मे समावेश की बात दोहराई गई डाकर सम्मेलन में स्पश्ट किया गया कि ''किसी व्यक्ति या बच्चो को उच्च कोटि की प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करने के अवसर से केवल इसलिए वचिंत नही किया जाना कि वह सामर्थ्य से परे है''यू एन सी आर पी डी (UNCRPD) अगस्त 2006में लिखित रूप में आया व 3मार्च 2008 को लागू हुआ । इसके आने से सम्पूर्ण विश्व में समावेशी शिक्षा में एक प्रभाव पूर्ण बदलाव आया । इसका मुख्य उद्देश्य है कि प्रत्येक व्यक्ति समस्त अक्षम व्यक्तियो के सभी मानव अधिकारो और मौलिक स्वतंत्रताओ को एक समान और सम्पूर्ण आनन्द को सुनिश्चित,संरक्षित और प्रोतसाहित करें और उनकी जन्मजात प्रतिष्ठा के आदर को प्रोतसाहन दे। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के इन विकासक्रमो ने ऐसी स्थिती पैदा कर दी कोई भी देश ''समावेशी शिक्षा'' को कार्य रूप दिये बगैर अपनी तरक्की कर ही नही सकता इसलिए इसे अपनाने मे भारत भी पीछे नही रहा।

भारतीय परिप्रेक्ष्य

कोठारी आयोग :– (1964–66) के अनुसार ''एक दिव्यांग बच्चों के लिए शिक्षा का पहला कार्य यह है कि सामान्य बच्चो की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए बनाये गये सामाजिक–सांस्कृतिक पर्यावरण में समंजन के लिए उसे तैयार करें । इसलिए आवश्यक है कि दिव्यांग बच्चो की शिक्षा सामान्य शिक्षा प्रणाली का ही एक अविच्छिन अंग हो ।अंतर केवल बच्चे को पढाने की विधि और बच्चे द्वारा ज्ञान प्राप्ती के लिए अपनाये गये साधनो मे होगा ''आयोग ने अपनी रिपोर्ट मे एकीकृत शिक्षा की अनुसंशा की तत्पश्चात 1968 राष्ट्रीय शिक्षा नीति के जरिए 19974 में दिव्यांग बच्चो की एकीकृत शिक्षा शुरू की जा सके ।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 :– में कहा गया कि ''शिक्षा सबके लिए तभी मायने रखती है जब दिव्यांग बच्चो को भी शिक्षा का अवसर दिया जाय।'' जहाँ तक भी व्यावहारिक हो संवेगिक दोषो और मामुली निःशक्तताग्रस्त बच्चो की शिक्षा दूसरे बच्चो के साथ साक्षी होगी।गम्भीर रूप से निर्योग्य बच्चो के लिए जहॉ तक संभव हो जिला मुख्यालयो पर छात्रावास से युक्त विशेष विद्यालयो की व्यवस्था की जाए।

नई शिक्षा नीति 1992 (POA) – संशोधित कार्यवाई योजना मे भी दिव्यांग बच्चो की शिक्षा के लिए विशेश विद्यालय खोले जाने की वकालत की गई।

पी0डब्लू0डी0 एक्ट (1995) – इसमें कहा गया कि संमुचित सरकारे और स्थानिए प्राधिकारी यह सुनिश्चित करेंगें कि प्रत्येक निःशक्त बालक 18 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने तक,उचित वातावरण में निःशुल्क शिक्षा प्राप्त हो सके। सरकारे निःशक्त विद्यार्थियों का सामान्य विद्यालयो मे एकीकरण के संवर्धन का प्रयास करें।

सर्व शिक्षा अभियान – सबके लिए शिक्षा के लक्ष्य प्राप्ती हेतु वर्श 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में घोषणा की गई थी इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु शिक्षा के सार्वजनिक तथा सामाजिक न्याय को बढावा देने के लिए संविधान के 86 वें संशोधन (2002) के जरिये 6–14 वर्श आयु वर्ग कें सभी बच्चो के लिए निःशुल्क और अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा का मूल अधिकार प्रदान किया गया। कालांतर में समावेशी शिक्षा को सर्व शिक्षा अभियान में सामिल

कर लिया गया। इसके अर्न्तगत विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की पहचान, कार्यात्मक और औपचारिक जाँच, सहायक उपकरण, सहायक सेवायें शैक्षिक स्थापन, गैरऔपचारिकतथा वैकल्पिक स्कूली शिक्षा, दूरस्थ शिक्षा तथा अधिगम, अध्यापक प्रशिक्षण, संसाधन सहायता, वैयक्तिक शैक्षिक योजना (IEP) गृह आधारित शिक्षा, परिभ्रामी शिक्षक, बाधामुक्त वातावरण, समुदाय आधारित पुर्नवास आदि।

राष्ट्रीय विकलांगजन नीति 2006 – इस नीति का तात्कालिक सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री मीरा कुमार व्दारा लोकार्पण हुआ था इस नीति की यह मान्यता है कि विकलांग व्यक्ति देश के महत्वपूर्ण साधन है और इसमें एक ऐसा वातावरण सृजित करने के लिए अनुरोध किया गया है जो उन्हे समान अवसर, उनकें अधिकारो का संरक्षण और समाज में पूर्ण भागीदारी को सुनिश्चित करे जिससे एक समावेशित वातावरण का निर्माण हो।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 (RTE) – ''निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा अधिनियम'' 1 अप्रैल 2010 को लागूहुआ जिसमें 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए मुफ्त व अनिवार्य शिाक्षा के अधिकार की बात कही गई हैं ।

आर0 पी0 डब्लू0 डी0 एक्ट (R P W D Act 2016) – P W D Act – 1995 की जगह में 28 दिसम्बर 2016 में R P W D Act-2016 – आया इस अधिनियम मे कुछ बदलाव किये गए है – जैसे 7 की जगह 21 विकलांगता को स्थान दिया गया है सरकारी क्षेत्रो में आरक्षण 3% से बढ़ाकर 4% कर दिया गया है । अब कोई भी प्रोजेक्ट (विद्यालय, मॉल, बिल्डिंग) यूनिवर्सल डिजाइन के पास नहीं होगा, कोई भी विकलांगता के आधार पर स्वतंत्रता नहीं छीन सकता इस बदलाव के बाद विकलांग व्यक्ति के समावेशन में समाज एक कदम और बढ़ा और यह आशा की जा रही है कि समाज में दिव्यांग व्यक्तियों की सहभागिता बढ़ेगी।

उपरोक्त सभी नीतियों, अधिनियमों व समझौतों का उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय स्तर पर समावेशी शिक्षा का विस्तार करना है। क्योंकि माना जाता है कि हमारे देश व समाज का विकास तभी होगा जब सभी को शिक्षा का समान अधिकार व अवसर मिलेगा इसके द्वारा हम अपने मानव संस्थान का उचित उपयोग कर पायेगें सभी को गुणवतापूर्ण शिक्षा के साथ –2 गुणवतापूर्ण जीवन भी दे पायेंगे। जिसमें हमारा सह जीवन, सह अधिगम व सह अस्तित्व का सपना पूरा हो पायेगा इन्हें कार्यरूप में लाने के लिए हमें समावेशी शिक्षा के विभिन्न उपागमों की आवश्यकता होती है।

समावेशी शिक्षा के उपागम

दार्शनिक उपागम – दर्शन यह कहता है कि समावेशन एक विचार है जो प्रत्येक व्यक्ति को यह अनुमति देती है कि वह अपने को सुरक्षित, स्वीकार्य व महत्वपूर्ण समझे। समावेशी समाज अपने सदस्यों की आवश्यकताओं को चेतन रूप से विकसित करे दार्शनिक उपागम इसी विचार धारा पर आधारित है वह कहता है कि समावेशी शिक्षा विशेश बच्चो को स्वीकृत करे और सहायता के द्वारा उपयोगात्मक भागीदारी उपलब्ध कराये जिससे सभी की पहुँच शिक्षा तक हो। हम समावेशन को एक मंत्रमुग्ध कर देने वाले साधन के रूप में अंगीकार करें जो समाज के प्रत्येक व्यक्ति को एक पूर्ण इकाई मानें तथा साथ में कार्य करकें अपनी क्षमताओ को मजबूत करे और सभी के लिए एक मजबूत भविष्य की नींव डालें क्योंकि व्यक्ति समाज की महत्वपूर्ण इकाई है उसे उसी समाज में विकसित होना है समाज से दूर कर के किसी भी प्रकार की शिक्षा दीक्षा प्रदान करने से वह समाज के कई तौर तरीकों से अनभिज्ञ रहेगा।

मनोवैज्ञानिक उपागम – मनोविज्ञान कहता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने आपमें एक स्वतंत्र व्यक्तित्व है व्यक्तिगत भिन्नता समय, परिस्थिति व समाज के अनुसार व्यक्ति का व्यवहार बदलता रहता है शिक्षा का मुख्य भी ध्येय व्यवहार में परिवर्तन है यह परिवर्तन सकारात्मक होना चाहिए मनोवैज्ञानिक उपागम में हम मनोविज्ञान के

विभिन्न घटको जैसे अवधारणा, पुनर्बलन, अधिगम के विभिन्न सिद्धान्तों व विधियों के द्वारा बच्चे के व्यवहार में परिवर्तन लाते है बच्चे के व्यवहार में परिवर्तन शिक्षा के माध्यम से लाया जाता है परिवार, समाज व विद्यालय में भी सकारात्मक व्यवहार परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है ताकि ये सभी बच्चों के प्रति सकारात्मक दृश्टिकोण रखे तभी हम समावेशी शिक्षा के ध्येय को प्राप्त कर पायेंगे।

सामाजिक उपागम – व्यक्ति, परिवार व विद्यालय ये सभी समाज की महत्वपूर्ण इकाई है जब भी बच्चो को इनके साथ समावेशन करने में कठिनाई होती है तो वे अपनें को इनसे अलग कर लेते है समाजिक उपागम में इन बच्चो को व्यक्ति, परिवार, विद्यालय व समाज से जोड़ने का प्रयास किया जाता है। जब तक समाज प्रत्येक बच्चे को समानता, समता व समान अवसर प्रदान नही करेगा तब तक समावेशन सम्भव नही है यह समावेशन व्यक्तिगत व समाज दोनों रूप में आवश्यक है। सामाजिक उपागम इसी बात पर बल देता है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति की सोच में परिवर्तन आये, व्यवहार में सकारात्मकता आये, समाजिक में विशिष्ट बच्चों की भागीदारी सुनिश्चित हो तभी समावेशन हमारी शिक्षा व्यवस्था में दृश्टिगोचर होगा और समावेशी शिक्षा में स्थायित्वपूर्ण विकास आयेगा।

संवैधानिक उपागम – भारत के संविधान के संस्थापक सिंद्धांत है– समानता, सम्मान स्वायत्तता और स्वत्रंता। इन्हे ध्यान में रखते हुए हमारे संविधान ने हमें शिक्षा के अर्न्तगत विभिन्न अधिकार प्रदन किये है । जैसे अनुच्छेद 45 में 14 वर्श तक के आयु के सभी बालकों को निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है । अनुच्छेद 46 के अनुसार जनजात्ति तथा समाज के कमजोर वर्ग को शिक्षा एवं आर्थिक उन्नत्ति । अनुच्छेद 30 के अनुसार अल्पसंख्यकों को अपने धर्म व भाषा में आधार पर शिक्षा संस्थायें खोलने का अधिकार, अनुच्छेद 350 (A) में अपनी मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार । इन अनुच्छेदों के द्वारा यह पता चलता है। कि हमारा संविधान शिक्षा में समावेशन की बात करता हैं। समावेशन शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 1994 में सलामांका में किया गया इसके बाद डाकर (Dakar) सेनेगाल में वर्श 2000 में आयोजित विश्व शिक्षा मंच पर भी शिक्षा में समावेशन की बात दुहरायी गई । 2006 में यू0 एन0 सी0 पी0 डी0 (UNCRPD) के आने से अन्तर्राष्ट्रीय रुप से समावेशी शिक्षा का प्रभाव बड़ा। इन सबका प्रभाव हमारे देश के संविधान पर भी पड़ा जिसके परिणाम स्वरूप 1995 में पी0 डब्लू0 डी0 एक्ट (PWD Act) , 2002 में सर्वशिक्षा, 2006 में राष्ट्रीय विकलांगजन नीति, 2009 में शिक्षा का अधिकार अधिनियम (RTE) और 2016 आर0 पी0 डब्लू0 डी0 एक्ट (RPWD Act) का उदय हुआ । संवैधानिक उपागम में इन नीतियों समझौतों व अधिनियमों के माध्यम से विशेष बच्चों को सामान्य विद्यालय में जोड़ते है। जिससे समावेशी शिक्षा का विकास हो।

शैक्षिक उपागम– समावेशी विचारधारा के आगमन के साथ ही समावेशी शिक्षा का आरम्भ हुआ इसके साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कई परिवर्तन हुए जैसे – 1994 में सलामांका वक्तव्य। समावेशी शिक्षा को स्थापित करने के लिए शिक्षण प्रक्रिया में कई परिवर्तन किये गये। ये परिवर्तन शैक्षिक उपागम के अन्तर्गत आते हैं। इसमें वातावरण, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, शिक्षण अधिगम सामग्री, आकलन, कक्षा, निर्देशन आदि का अनुकूलन किया जाता है। ताकि बच्चें की क्षमता व आवश्यकता के अनुसार उसे शिक्षा प्रदान की जा सके और वे सामान्य विद्यार्थियों के साथ समावेशीत हो सके।

समावेशी शिक्षा, शिक्षण की एक ऐसी प्रणाली है जिसमें विशेश आवश्यकता वाले बच्चों को सामान्य बच्चों के साथ मुख्य धारा के स्कूलों में पठन–पाठन और आत्म निर्भर बनने का मौका मिलता है। समावेशी शिक्षा पर सबसे अधिक अन्तर्राष्ट्रीय अधिनियम समझौते व नीतियों का प्रभाव पड़ा। 1994 में स्पेन में सलामांका सम्मेलन में पहली बार समावेशन शब्द का प्रयोग हुआ था। इस सम्मेलन में भाग लेने वाले राष्ट्रों ने सलामांका वक्तथ पर हस्ताक्षर कर शिक्षा में समावेशन नीति अपनाने की अपनी प्रतिबद्धता जाहिर की। भारत भी सलामांका के हस्ताक्षर कत्ताओं में से एक था समावेशी शिक्षा को डकार सम्मेलन (2000) में पुनः दुहराया गया। इसके बाद 2006 में यू0

एन0सी0आर0पी0डी0, के आने के बाद समावेशी शिक्षा में प्रभावपूर्ण बदलाव आया। अंतर्राष्ट्रीय स्तर के इन विकासक्रमों ने ऐसी स्थित पैदा कर दी कि कोई राष्ट्र समावेशी नीति अपनायें बिना अपना विकास नही कर सकता। भारत पर भी इसका प्रभाव पड़ा।

माना कि समावेशी नीति भारत के लिए नई है लेकिन मुख्यधारा के स्कूलों में विशेश आवश्यकता वाले बच्चों के समावेशन की वकालत वह दशकों से करता आ रहा है। उसकी यह यात्रा कोठारी आयोग से प्रारम्भ होकर राश्ट्रीय शिक्षा नीति 1986, नई राष्ट्रीय शिक्षा निति 1992, निराक्त व्यक्ति अधिनियम –1995, सर्वशिक्षा अभियान 2001, राष्ट्रीय विकलांगजन नीति 2006, शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009, से R P W D 2016 तक पहुॅच गई है। इन सबकें माध्यम से हमने समावेशी शिक्षा में कई महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं। भारत सरकार ने भी समावेशी नीति को सैद्धान्तिक रुप से मान लिया है। समावेशी शिक्षा को कार्यान्वित रुप प्रदान करने मे दार्शनिक , मनोवैज्ञानिक, सामाजिक संवैधानिक व शैक्षिक उपागमों का महत्वपूर्ण योगदान है।

निष्कर्ष :– समावेशी शिक्षा का व्यापक व विस्तृत अर्थ है। यह एक विचारधारा है जो सभी बच्चों के अधिगम आवश्यकता की बात करती है। विशेशकर उनकी जो कमजोर प्रभावहीन व निष्कासित है। यह इस बात पर विशेश बल देती है कि सभी अधिगम कर्त्ता चाहें वे सामान्य हो या विशेष साथ में शिक्षा ग्रहण करें उनकी पहुॅच प्रथामिक शिक्षा, उच्चशिक्षा व सामुदायिक शिक्षण केंन्द्रों तक हो जहां उन्हें उनकी आवश्यकताओं के अनुसार उचित सहायता मिलें। यह तभी संभव है जब हम हम शिक्षाव्यवस्था में लचीलापन रखेगें और विभिन्न क्षमताओं वालें बच्चों की आवश्यकता का समावेशन करेगें।समावेशी शिक्षा का उद्देश्य है कि व्यवस्था के सभी भागीदार (अधिगमकर्त्ता, अभिभावक, समाज, अध्यापक, प्रशासन, नीति निर्माता आदि) इन विभिन्नताओं के साथ अपने को सहज महसूस करे और इसे चुनौतियों के रूप में देखें न की परेशानी के रूप में। शोध यह बताती है कि समावेशी शिक्षा से सभी अधिगम कर्त्ताओं के सामाजिक व शैक्षिक विकास में सुधार होता है। इसके द्वारा बच्चों के आपस में अच्छें सामाजिक संबन्ध विकासित होते हैं । क्योंकि प्रत्येक बच्चा अपने में विशिष्ट व्यक्तित्व रुचि व क्षमता रखता है। समावेशी शिक्षा समावेशी समाज की नींव हैं। इस नींव को स्थापित करने में समावेशी शिक्षा के उपागमों की महत्वपूर्ण भूमिका रहीं हैं । उन्होंने इस विचारधारा को मूर्त रूप प्रदान किया और अब समावेशी शिक्षा को स्थायित्वपूर्ण विकास की ओर अग्रसर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

सन्दर्भ

- Fill//H:MCP%20203/Uncrpd.pdf
- Fill//H:MCP%20203/SALAMAE.PDf
- Fill//H:MCP%20203/PWD%20act%20hindi.pdf
- Fill//H:MCP%20203ncf2005pdf
- Nind milami Dr [August2005] pedagogical approaches that dffictively Include children with special Education Needs in mainstream classrooms. International special Education congrus university of straathclyde 1-4
- बक्शी एस0एन0 (वर्श 2009) उदीयमान भारतीय समाज एवं शिक्षा प्रेरणा प्रकाशन सी–13, प्लाट नम्बर–2 डी0–5, रोज अपार्टमेंट, सेक्टर–14 एक्स टेंशन रोहिणी, दिल्ली–110085
- अभिप्रेरणा मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार के 3 ग्रीन पार्क, नई दिल्ली।

❑❑

42

भारत में दिव्यांगजनों के लिए बाधारहित परिवेश : आवश्यकता, पहल एवं चुनौतियाँ

राघवेन्द्र सिंह
शोधछात्र, हिन्दी विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

केन्द्र एवं राज्य सरकारों ने दिव्यांगजनों के कल्याण के लिए अनेक कानून बनाये हैं तथा कई योजनाएं एवं कार्यक्रम संचालित की हैं, लेकिन वास्तविकता यह है कि अशिक्षा, अज्ञानता या अन्य किसी न किसी कारण से सभी विकलांगजनों को इन कानून, योजनाओं, एवं कार्यक्रमों से लाभ नहीं मिल रहा है। विकलांगजनों को सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक कारणों से कलंक, भेदभाव और उपेक्षा का सामना करना पड़ता है। भेदभाव के साथ अगर विकलांगता भी हो तो अक्षमता की मात्रा दुगुनी हो जाती है। लोगों की सामान्य अवधारणा और पूर्वाग्रहों के चलते विकलांग व्यक्तियों के प्रति होने वाले भेदभाव का मूल्यांकन कम करके आंका जाता है। इसका कारण आम लोगों में प्रचलित पूर्वाग्रह हैं जिनके कारण विफलताओं का दुष्चक्र पैदा हो जाता है। इसके कारण हीन भावना पैदा होती है जिसका वृद्धि पर बुरा असर पड़ता है (कक्कड़, 2013)।

विकलांगता – विकलांगता व्यक्ति की वह दशा होती है जो किसी क्षति एवं अक्षमता के कारण उत्पन्न शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं सम्बन्धी भूमिकाओं को सामान्य व्यक्तियों की तुलना में जीवन निर्वाह करने में बाधक होती है। अतः विकलांगता सामाजिक वातावरणीय स्वरूप को परिलक्षित करती है। इसमें व्यक्ति की स्थिति एवं सामाजिक क्रियाएं बाधित हो जाती हैं (सिंह एवं कुमार, 2016:33)।

विकलांगता न केवल समस्या है, अपितु प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह एक चुनौती भी है कि अपने प्रयासों के द्वारा किस सीमा तक वह उसकी तीव्रता को कम करता है (अग्रवाल, 1982)। विकलांगता सिर्फ व्यक्तियों को ही प्रभावित नहीं करती, बल्कि समाज और पूरे राष्ट्र को भी प्रभावित करती है। विकास प्रक्रिया में विकलांगों को शामिल न करने से कई मुश्किलें पेश आती हैं। विकलांगता सिर्फ आमदनी को ही नुकसान नहीं पहुँचाती, बल्कि विकलांगता के कारण व्यक्ति को अतिरिक्त ख़र्च करना पड़ता है इसका असर उसे सेवा देने वालों और अन्य परिजनों पर पड़ता है। शिक्षा में भी बाधा आती है। उन्हें उपयुक्त माहौल नहीं मिल पाता। विकलांग व्यक्तियों और उनके परिवारों को प्रायः अलग–थलग रहना पड़ता है और उनमें अन्य लोगों के मुकाबले ज्यादा ग़रीबी पाई जाती है (कक्कड़, 2013:6)। कई लोगों का मानना है कि जब उन्हें स्वयं की सहायता के लिए जरूरी समर्थन दिए जाने की जरूरत होती है, तब वे अपना अधिकतम समय समाज से जूझने में व्यतीत कर रहे होते हैं (लिमये, 2016:25)।

विकलांगजनों को व्यवहारिक, शारीरिक और सामाजिक स्तर पर बाधाओं की एक विस्तृत श्रृंखला का सामना करना पड़ता है, जिससे सामाजिक समावेशन प्रभावित होता है। समाज की मुख्यधारा में शामिल न हो पाने का एक बड़ा कारण विकलांगों की समाज में स्वीकृति न हो पाना है। जब तक समाज का वो तबका, जो कि किसी न किसी रूप से विकलांगों के जीवन को प्रभावित करता है, इनकी मौजूदगी को स्वीकार नहीं करेगा, तब तक किसी भी तरह के बदलाव की कल्पना करना भी बेमानी ही होगा। जानकारी के अभाव में ज्यादातर लोग ये मानने को तैयार नहीं होते कि विकलांग व्यक्ति भी उन्हीं की तरह से गुणवत्तापूर्वक कार्यों को सम्पन्न कर सकते हैं। बड़ी

संख्या में विकलांगों को बिना उनकी क्षमताओं को परखे हुए ही रोजगार के लिए अयोग्य घोषित कर दिया जाता है, क्योंकि वे विकलांग हैं। कहीं—कहीं तो साक्षात्कार के लिए आमंत्रित नहीं किया जाता। हकीकत में ऐसा नहीं है आज नई—नई तकनीकों का इस्तेमाल करते हुए विकलांग लोग भी उसी तरह से तमाम कार्य कर सकते हैं जैसे कि एक आम आदमी करता है (गुप्ता, 2015:39)।

विकलांगता निर्धनता के साथ अंतरसंबंधित होती है और समाज के गरीब वर्गों में विकलांगता होने की अधिक संभावना होती है। यह स्थिति और खराब तब होती है जब महिलाएं विकलांग होती हैं। इसलिए अन्य वंचित समुदायों की अपेक्षा विकलांगजनों का वित्तीय समावेशन किया जाना अति आवश्यक है। यह इसलिए और अधिक महत्वपूर्ण और अधिक चुनौतीपूर्ण है क्योंकि उनकी गतिशीलता कम है, वे शारीरिक बाधाओं का शिकार हैं। साथ ही वित्तीय उत्पादों के बारे में कम जानकारी रखते हैं और उनके समूह बिखरे हुए हैं (दास, 2016:20)।

अनेक विकासशील देशों में यह माना जाता है कि विकलांगों के लिए संस्थागत सेवाएं घरेलू देखभाल से अधिक उपयोगी एवं प्रभावी होती हैं क्योंकि इन संस्थाओं के पास विशेषज्ञ, विशेष सुविधाएं एवं उपकरण, विशेष शिक्षा या व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था होती है। संस्थागत देखभाल विकलांगों के परिवार के उत्तरदायित्व एवं सामाजिक कलंक से भी निजात दिलाती है (डब्ल्यू0एच0ओ0, 1984); लेकिन विकसित देशों में हुए अनेक अध्ययनों (मिलर एवं ग्वेन, 1974; शेरर, 1981; गॉफमैन, 1961 आदि) में संस्थागत सेवाओं के अनेक दुष्प्रभावों को भी इंगित किया गया है, जिनमें दूसरों पर निर्भरता में वृद्धि, बोरियत, कमजोर उपलब्धि, कम आत्म—सम्मान, अकेलापन आदि प्रमुख हैं। अतः विकलांगजनों को अवसरों की समानता प्रदान करने के लिए बाधामुक्त वातावरण प्रदान किया जाना अति आवश्यक है क्योंकि सुगम्य और बाधामुक्त वातावरण विकलांगजनों के अधिकारों और सामुदायिक जीवन के हर क्षेत्र में उनकी सहभागिता को सुनिश्चित करता है (पाठक, 2016:28)।

भारत में विकलांगता — भारत में वर्ष 2001 में 2.19 करोड़ विकलांग थे, जो वर्ष 2011 में 2.68 करोड़ हो गए। इनमें 1.5 करोड़ पुरुष एवं 1.18 करोड़ महिलाएं थीं। 2001 से 2011 के बीच विकलांगों की संख्या में 22.4 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। विकलांगों की संख्या में वृद्धि की दर शहरी क्षेत्रों में एवं शहरी महिलाओं में अधिक है। समूचे दशक के दौरान शहरी क्षेत्रों में 48.2 प्रतिशत और शहरी महिलाओं में 55 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गई। अनुसूचित जातियों में विकलांगता की वृद्धि दर 2.45 प्रतिशत है।

वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत में विकलांगों की संख्या 268 लाख है। इनमें 149.9 लाख पुरुष और 118.2 लाख महिलाएं हैं। इन विकलांगों में 186.3 लाख लोग ग्रामीण क्षेत्रों में तथा 81.8 लाख लोग शहरी क्षेत्रों में रहते हैं। उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार, इनमें 134 लाख लोग रोजगार करने वाले आयु वर्ग के हैं इनमें 88 लाख ग्रामीण क्षेत्रों में और 46 लाख शहरी क्षेत्रों में रहते हैं। रोजगार करने वाले आयु वर्ग में 78 लाख पुरुष हैं और 56 लाख महिलाएं। इनके अतिरिक्त विकलांगों में 146 लाख निरक्षर हैं। इस विशाल जनसंख्या के परिप्रेक्ष्य में देश की अर्थव्यवस्था में उनके योगदान देने की क्षमता को नजरंदाज नहीं किया जा सकता (दास, 2016:20)।

तालिका सं0 1 : भारत में विकलांगता के प्रकार और विकलांग

विकलांगता के प्रकार	व्यक्ति		पुरुष		महिलाएँ	
देखने में	50,32,463	18.77	26,38,516	17.61	23,93,947	20.25
सुनने में	50,71,007	18.91	26,77,544	17.87	23,93,463	20.24
बोलने में	19,98,353	7.45	11,22,896	7.49	8,75,639	7.41

गतिशीलता में	54,36,604	20.28	33,70,374	22.49	20,66,230	17.47
मानसिक विक्षिप्तता में	15,05,624	5.62	8,70,708	5.81	6,34,916	5.37
मानसिक कमजोरी	7,22,826	2.70	4,15,732	2.77	3,07,094	2.60
अन्य	49,27,011	18.38	27,27,828	18.20	21,99,183	18.60
एकाधिक विकलांगता	21,16,487	7.89	11,62,604	7.76	9,53,883	8.07
कुल	2,68,10,557	100.00	1,49,86,202	100.00	1,18,24,355	100.00

स्रोत : जनगणना 2011

यदि विकलांगता के प्रकारों के आधार पर भारत में विकलांगों की संख्या देखी जाये तो स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक (20.28 प्रतिशत) विकलांग शारीरिक अंपग श्रेणी के हैं। इसके उपरान्त श्रवण निःशक्तता (18.91 प्रतिशत) एवं दृष्टि बाधित (18.77 प्रतिशत) विकलांग आते हैं। यदि लिंग के आधार पर देखा जाय तो पुरुषों में शारीरिक अपंगता (22.49 प्रतिशत) एवं महिलाओं में देखने (20.25 प्रतिशत) व सुनने (20.24 प्रतिशत) में विकलांगता अधिक पायी जाती है।

सुगम्यता – सुगम्यता विकलांग व्यक्तियों के समावेशन किए जाने की एक अनिवार्य शर्त है। यह विकलांगों को स्वतंत्र रूप से रहने और अपने समाज में सहज व सुरक्षित रूप से भागीदारी करने के योग्य बनाती है। सुगम्यता और विकलांगता एक–दूसरे के प्रतिलोमतः आनुपातिक हैं, सुगम्यता में वृद्धि से विकलांगता के स्तर में कमी आती है। सुगम्यता एक जन्मजात अधिकार है, जिसका लाभ विकलांग या बुजुर्ग जैसे किसी खास जनसांख्यिकीय समूह के आधार पर बिना किसी भेदभाव के सभी को मिलता है (गुप्ता, 2016:22)।

सुगम्यता की जड़ें विकलांग व्यक्तियों के स्वतंत्र रहने के आंदोलन में दिखाई देनी देती हैं और इसकी शुरुआत उन्हें एक बाधा मुक्त वातावरण की माँग के साथ हुई और समय के साथ आगे बढ़ते हुए यह सार्वभौमिक प्रारूप में विकसित हो गया। सार्वभौमिक प्रारूप में सुगम्यता की प्रक्रिया को समावेशी, न्यायसंगत लाभ प्रदान करने वाली, और लिंग, जनसांख्यिकीय समूह और सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक संरचना के आधार पर मानव मतभेद को दूर करने वाली माना गया है। सार्वभौमिक प्रारूप में सुगम्यता के प्रारूप पर विचार करते वक्त विकलांगों के लिए 'विशेष' प्रारूप के स्थान पर सभी के लिए 'सामान्य' प्रारूप तैयार करने की बुनियादी बदलाव को शामिल किया गया है। यह एक ऐसी संरचना पर आधारित है जिसके भवन, नीतियाँ, प्रौद्योगिकी और उत्पाद सभी लक्षित उपयोगकर्ता द्वारा उपयोग में लाए जा सकें।

वैश्विक स्तर पर विकलांग व्यक्तियों के लिए अवसरों की समानता (1983) पर संयुक्त राष्ट्र मानक नियमावली के नियम 5 (सुगम्यता) में पर्यावरणीय सुगम्यता पर प्रामाणिक और स्पष्ट दिशानिर्देश दिया गया है। विकलांगों के अधिकारों पर हुए एक कन्वेंशन (सीआरपीडी) में सुगम्यता को एक सामान्य सिद्धान्त और एक विशिष्ट अनुच्छेद के रूप में बताया गया है। विकलांगजनों के अधिकारों को लेकर संयुक्त राष्ट्र कंवेंशन के अनुच्छेद 9 में हस्ताक्षर करने वाली सभी सरकारों पर विकलांगजनों के लिए भौतिक अधोसंरचना, परिवहन और सूचना व संचार का अन्य के समान अवसर सुनिश्चित करने की शर्त रखी गई है। विकलांगजनों को ये सुविधाएं ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में प्रदान की जानी चाहिए। सुगम्यता संबंधी जरूरतों को समझने के लिए विशिष्ट अनुच्छेद के तौर पर अनुच्छेद 9 (सुगम्यता) को भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 (अभिव्यक्ति और विचार की स्वतंत्रता, तथा सूचना तक पहुँच) और अनुच्छेद 20 (व्यक्तिगत अस्थिरता) के साथ पढ़ा जाना चाहिए। कन्वेंशन के अनुच्छेद 4 (सामान्य दायित्व) में राज्यों को अपने सभी विकलांग नागरिकों को सुगम्यता प्रदान करने का निर्देश दिया गया है और सुगम्यता के विचार को प्राथमिकता दी गयी है। विकलांगजनों के लिए सुगम्यता के अधिकार को विकलांगजन अधिनियम, 1995

में भी मान्यता दी गई है, जिसके अंतर्गत सभी सार्वजनिक स्थलों और परिवहन तंत्र को बाधामुक्त बनाना अनिवार्य बनाया गया है।

क्षेत्रीय स्तर पर विकलांग लोगों के लिए एशियाई और प्रशांत दशक (इंचियोन रणनीति, 2013–2022) में लक्ष्य 3 के अन्तर्गत भौतिक पर्यावरण, सार्वजनिक परिवहन, ज्ञान, सूचना और संचार की सुगम्यता पर ध्यान दिया गया है। इस घोषणापत्र को स्वीकार करते हुए भारत ने इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सुगम्य भारत अभियान की शुरुआत की है।

सुगम्य भारत अभियान सार्वभौमिक सुगम्यता पाने के लिए देशव्यापी अभियान है, जो विकलांग व्यक्तियों को एक समावेशी समाज में समान अवसर तक पहुँच बनाने, स्वतंत्र रूप से रहने और जीवन के विभिन्न आयामों में पूर्ण भागीदार बनने की योग्यता प्रदान करेगा। इस अभियान की शुरुआत सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय के दिव्यांगजन अधिकारिता विभाग द्वारा की गयी है।

अभियान का प्रारूप निर्मित पर्यावरण, परिवहन प्रणाली और सूचना एवं संचार पारिस्थितिकी तंत्र की सुगम्यता को बढ़ाने के लिए किया गया है। सुगम्य भारत अभियान केवल भौतिक सुगम्यता तक ही केंद्रित न होकर समग्र दृष्टिकोण लिए हुए है। इसीलिए इसमें एक बहु–आयामी रणनीति बनाई गयी है, जिसमें विज्ञापन द्वारा अभियान का नेतृत्व व वृहद स्तर पर जागरुकता, कार्यशालाओं के माध्यम से क्षमता निर्माण, कानूनी हस्तक्षेप, प्रौद्योगिकी समाधान, संसाधन उत्पादन, सार्वजनिक–निजी भागीदारी आदि सम्मिलित हैं। सुगम्य भारत अभियान के तीन आधार स्तंभ हैं जिनमें निर्माण अधोसंरचना, सार्वजनिक परिवहन और सूचना व संचार तकनीक शामिल हैं। अभियान के अंतर्गत तीनों आधार स्तंभों को सुगम्य बनाने के कई लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं। निर्माण अधोसंरचना से तात्पर्य आस–पास के परिवेश से है, जिसे सुगम्य बनाकर उन स्थानों पर विकलांगजनों का निर्बाध रूप से चलना–फिरना सुनिश्चित किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत व्हीलचेयर से प्रवेश कर सकने वाले और कम ऊँचाई वाले लो फ्लोर वाहनों के उपयोग को बढ़ावा देना, रैंप युक्त, कम उतार–चढ़ाव वाले और व्हीलचेयर व टेक्टाइल पथ जैसी सुविधा वाले हवाई अड्डों, रेलवे स्टेशनों, बस स्टेशनों और मेट्रो आदि का निर्माण करना, दृष्टिबाधितों के लिए ध्वनि के माध्यम से मार्ग बताने वाले उपकरणों या श्रवणबाधितों के लिए लिखित रूप में अथवा संकेतों द्वारा मार्ग बताने की व्यवस्था करना आदि उपाय सम्मिलित हैं (पाठक, 2016)।

इसी तरह सूचना एवं संचार क्षेत्र के अन्तर्गत वेबसाइटों के निर्माण में डब्ल्यू–3सी मानकों का अनुपालन करके उनकी सुगम्यता को बढ़ाया जा सकता है। वीडियो अथवा चलचित्रों में ध्वनि के साथ पाठ की सुविधा उपलब्ध करवा कर उन्हें श्रवण बाधितों के लिए सुगम्य बनाया जा सकता है। वेबसाइट अथवा दस्तावेजों में मौजूद चित्रों के साथ संगत वैकल्पिक पाठ उपलब्ध करवा कर उन्हें सुगम्य बनाया जा सकता है। किसी भी प्रकार के संचार में ऑडियो नरेशन की सुविधा उसे दृष्टिबाधित व्यक्ति के लिए सुगम्य बनाती है। इसी प्रकार के कई अन्य उपाय हैं, जिन्हें अपना कर आज के दौर में सूचना और संचार तकनीकों को विकलांगजनों हेतु सुगम्य और बनाया जा सकता है।

सुगम्य भारत अभियान का दायरा बढ़ाने के उद्देश्य से 30 मार्च 2016 को दिल्ली के विज्ञान भवन में समावेशी और सुगम्यता सूचकांक का आरंभ किया गया है। इस सूचकांक को कॉरपोरेट सेक्टर और गैरसरकारी संगठनों को सुगम्य भारत अभियान से जोड़ने के लिए बेहद महत्वपूर्ण माना जा रहा है। यह विभिन्न संगठनों, कंपनियों या कार्यस्थलों की निश्चित पैमानों और मानदंडों के आधार पर सुगम्यता का आकलन करता है और उस सुगम्यता को व्यक्त करने का सांख्यिकीय आधार प्रदान करता है। यह सांख्यिकीय आधार सूचकांक में पिछड़े स्तर पर आने वाले संगठनों के लिए एक प्रकार की चुनौती होती है, जो कि कार्यस्थलों को विकलांगजनों के लिए निरंतर बेहतर बनाने का मार्ग प्रशस्त करती है।

लेकिन व्यावहारिक स्तर पर सुगम्य भारत अभियान में कुछ कमियाँ भी नजर आती हैं, जैसे– जिन न्यूनतम आवश्यकताओं और सुगम्य प्रारूप के मानकों को सुगम्यता पर आधारित होना चाहिए, वे अभी तक अस्पष्ट हैं, जबकि भवन मानकों, परिवहन पोत संरचना और परिवहन टर्मिनल संरचना मानकों, सभी सार्वजनिक सेवाओं और सुविधाओं के लिए सेवा के मानकों, प्रसारण मानकों आदि सहित सुगम्यता के विभिन्न पहलुओं के लिए न्यूनतम आवश्यकताओं और प्रारूप मानकों का निर्धारण आरम्भ में ही किया जाना चाहिए। साथ ही अभियान का पूरा ध्यान शहरी क्षेत्रों तक ही सीमित है। इसमें ग्रामीण क्षेत्रों में सुगम्यता में सुधार लाने के लिए कोई प्रयोजन नहीं है, जबकि देश के तीन–चौथाई से भी अधिक दिव्यांगजन ग्रामीण क्षेत्र में निवास करते हैं।

अभियान केवल सरकारी स्वामित्व वाली बुनियादी सुविधाओं पर ही केंद्रित है। निजी क्षेत्र द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सार्वजनिक सेवाओं और सुविधाओं को अभियान में शामिल नहीं किया गया है, जबकि वैश्वीकरण व नव–उदारीकरण के दौर में अधिकांश सार्वजनिक जन सेवाओं का संचालन निजी क्षेत्र को सौंपा जा रहा है। सरकार द्वारा सेवाओं और सुविधाओं के निजीकरण में वृद्धि के साथ यह भी जरूरी है कि सुगम्यता के नियम समान रूप से उन पर भी लागू हो। वर्तमान में निजी क्षेत्र को अनिवार्य रूप से सुगम्यता सुनिश्चित करने लिए बाध्य करने वाली कोई विधायी प्रारूप उपलब्ध नहीं है, जबकि निजी सेवा और सुविधा प्रदाताओं को विकलांग व्यक्तियों को सुगम्यता प्रदान करने की बराबर जिम्मेदारी होनी चाहिए।

निष्कर्ष – प्रायः यह देखा गया है कि अलग–अलग विकलांगता वाले लोगों के लिए उनकी विशिष्ट जरूरतों को पूरा करने संबंधी सरकारी नीतियों को बनाते समय या उन्हें लागू करने के दौरान विकलांग समूहों को न तो तवज्जो दी जाती है, न उनसे सलाह–मशविरा की जाती है, और न ही उन्हें नीति–निर्माण में सम्मिलित ही किया जाता है। बहुत बार विकलांगजनों को लगता है कि वे एक ऐसी व्यवस्था से जूझ रहे हैं, जो, खंडित, जटिल और नौकरशाही प्रवृत्ति की है और जिसका विकलांग जनों के जीवन में सुधार लाना और उनके सामाजिक समावेशन से कोई लेना–देना नहीं है। इस राजनीतिक और कानूनी प्रक्रियाओं से विकलांग लोगों के लिए अलगाव और उपेक्षा की स्थिति उत्पन्न होती है जो कि उनके सामाजिक बहिष्कार के तौर पर सामने आता है। विकलांगजनों के विकास में आने वाली बाधाओं से निपटने की जिम्मेदारी अकेले सरकार की न होकर सामूहिक रूप से विकलांग लोगों के स्वयं की, नियोक्ताओं, स्वास्थ्य पेशेवरों, शिक्षकों, स्थानीय समुदायों और वस्तु एवं सेवा प्रदाताओं के साथ ही अन्य लोगों की भी है। सभी को अपने स्तर पर विकलांगों के जीवन को सहज बनाने और उनके समुचित सामाजिक समावेश के लिए कार्य करने की जरूरत है।

विकलांग होना कोई अभिशाप नहीं है, बस जरूरत है तो वातावरण को सुगम्य बनाने की। यदि विकलांगजनों को सुगम्य माहौल दिया जाएगा, तो वे स्वयं को और बेहतर ढंग से विकसित कर अपने जीवन की बाधाओं पर जीत हासिल कर सकेंगे। विकलांगजनों को सुगम्य वातावरण देना सिर्फ सरकार का ही नहीं, बल्कि समाज का भी दायित्व है।

सन्दर्भ

- कक्कड़, स्तुति. 2013. ''विकलांगता को समझिये''. योजना, वर्ष–57, अंक–4, अप्रैल. पृ0 6–9.
- गॉफमैन, ई0. 1961. एसिलम्स. पेंग्विन बुक्स, मिडिलसेक्स.
- गुप्ता, कुलदीप कुमार. 2015. ''ए कम्परेटिव स्टडी एबाउट दि एडजस्टमेंट्स ऑफ नार्मल एण्ड फिजिकली चेलेन्ज्ड स्टूडेंट्स इन दि मेट्रो सिटी ऑफ कानपुर''. आई0जे0ए0एच0एम0एस0, वा0–1, नं0–12, दिसम्बर. पृ0 37–44.
- गुप्ता, शिवानी. 2016. ''विकलांगता से आगे सुगम्यता और कल्याण''. योजना, वर्ष–60, अंक–5, मई. पृ0 22–24.
- ग्रॉस, एन0. 1990. ''ट्रेडीशनल फोक सिस्टम्स एण्ड डिसबिलिटीज : एन इम्पार्टेंट फैक्टर इन पॉलिसी प्लानिंग''. वन इन टेन, 8:1–4, 9:1–2,2–7.

- जी0ओ0आई. 2016. वार्षिक रिपोर्ट 2015–16. विकलांगजन सशक्तिकरण विभाग, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली.
- जी0ओ0आई. 2017. भारत का राजपत्र अधिसूचना सं0 639, भाग–2, खण्ड–3, उपखण्ड–2, शुक्रवार, मार्च 3, दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
- डब्ल्यू0एच0ओ0. 1980. इंटरनेशनल क्लासीफिकेशन ऑफ इम्पेयरमेंट, डिसेबिलिटीज, एण्ड हैण्डीकैप्स. वर्ल्ड हेल्थ आर्गनाइजेशन, जिनेवा.
- डब्ल्यू0एच0ओ0. 1984. रिहैबिलिटेशन फार आल. वर्ल्ड हेल्थ मैंगजीन, मई. वर्ल्ड हेल्थ आर्गनाइजेशन, जिनेवा.
- दास, पी0सी0. 2016. ''विकलांगों के लिए वित्तीय समावेशन''. योजना, वर्ष–60, अंक–5, मई. पृ0 19–21
- पाठक, अखिलेश. 2016. ''सुगम्य भारत अभियान : निर्बाध वातावरण और सशक्तीकरण की राह''. योजना, वर्ष–60, अंक–5, मई. पृ0 28–29.
- मिलर, ई0जे0 एण्ड ग्वेन, जी0वी0. 1974. ए लाइफ एपार्ट. तिविस्टॉक, लंदन.
- यू0एन0ओ0. 2006. कन्वेंशन आन दि राइट्स ऑफ परसंस विथ डिसेबिलिटीज. यूनाइटेड नेसंस आर्गनाइजेशन, न्यूयार्क.
- रंजन, दीपक. 2016. ''विकलांगजन : शारीरिक पुनर्वास व संस्थागत प्रयास''. योजना, वर्ष–60, अंक–5, मई. पृ0 41–45.
- लिमये, संध्या. 2016. ''विकलांगजनों का सामाजिक समावेशन : मुद्दे और रणनीतियाँ''. योजना, वर्ष–60, अंक–5, मई. पृ0 25–27.
- शेरर, ए0. 1981. डिसेबिलिटी – हूज हैण्डीकैप, लाकवेल, आक्सफोर्ड.
- सिंह, ए0के0 एवं कुमार, के0. 2016. ''तकनीकी विकास से राह आसान''. योजना, वर्ष–60, अंक–5, मई. पृ0 33–36.

❑❑

43

दलित जीवन की जिजीविषा का सहित्य : शब्द झूठ नहीं बोलते

सुश्री प्रतिमा प्रसाद
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
काजी नजरूल विश्वविद्यालय, आसनसोल

किसी भी साहित्य का उद्‌भव अपने अतीत के गर्भ में छिपी वास्तविकताओं के परिणाम से ही उत्पन्न होता है। दलित साहित्य भी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्थिति की असमानता के कारण ही उत्पन्न होता है। सामाजिक एवं राजनैतिक आंदोलनों के कारण ही इसको बल मिलता है। इस कारण ही साहित्य में दलित की दिशा को क्रांतिकारी मोड़ मिलता है। जमाने के बदलने का एहसास, विचार, साहित्य और आन्दोलनों के माध्यम से ही होता है। विमर्श की परम्परा में दलित साहित्य एक छोटी सी दबी–बुझी चिन्गारी के रूप में आता है और भरसक सदियों से दबी आग को आत्मा–भिव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत होकर अपनी संताप की गाथा को व्यक्त करता है। हिन्दी में दलित साहित्य का विकसित होना अर्थात् एक प्रकार से मानव सत्ता का अध्ययन है। एक ऐसा मानव जिसे किसी प्रकार की आजादी नहीं है। वह खुलकर सांस भी नहीं ले सकता। भारतीय संस्कृति में मनुवादी सिद्धांतों का हर तरफ बोलबाला है। यह विचारधारा सैद्धांतिक नहीं बल्कि पूरी तरह व्यावहारिक है। जहाँ मनुस्मृति में यह लिखा हो कि इनके बात करने पर स्नान और इन्हें देख लेने के बाद सूर्य दर्शन से शुद्धि होती है। इस प्रकार की मानव विरोधी बातें जहाँ धर्म ग्रन्थों में लिखी हो वहाँ मानवता की मुक्ति तथा समानता असम्भव है। दलितों पर राज करने और इन्हें सदैव अपनी गुलाम बनाये रखने के लिए मनुवादियों ने इन्हें अधिकारों से वंचित, आर्थिक रूप से हमेशा के लिए तंग और शिक्षा के ज्ञान से हमेशा के लिए दूर रखा। यदि ये किसी भी भांति सिर उठायें तो तमाम नियमों के तहत इनका सिर कुचल कर रख दिया जाय। अर्थात् दलितों की स्थिति जानवर से भी बदतर रहे।

दलित अर्थात् ही दलन, दबा, कुचला लेकिन यह आभास ही कि वह दबा कुचला है, इसके प्रति उसे आवाज उठानी है, यही उसकी चेतना है। हिन्दी में दलित साहित्यकारों की परम्परा सिद्ध साहित्य से ही देखी जा सकती है। इन्होंने वर्णव्यवस्था तथा आडम्बर का विरोध किया। इसके पश्चात् सिद्धों की परम्परा आगे बढ़ती और मध्यकाल में संत काव्य परम्परा में रैदास, कबीरदास, मलूकदास तथा नवलदास इत्यादि कवियों ने अश्यपृश्यता, जातिभेद, शोषण, कर्मकाण्ड इत्यादि का विरोध किया। कबीर ने एक तरफ प्रखर तथा उग्र रूप में वर्णाश्रम व्यवस्था का विरोध किया तो दूसरी तरफ रैदास ने सामाजिक भेदभाव के प्रति भरसक आवाज उठाई–

रैदास एक बूंद सो तभी मचौ विचार
मूरख हैं जो करत हैं, बरन–अबरन विचार।

भक्त कवियों ने भावनात्मक स्तर जातिभेद के प्रति अपना विरोध दर्ज कराया लेकिन आधुनिक काल में नवजागरण काल के समय दलित चेतना का प्रखर स्वर सुनाई देना आरम्भ हुआ और केवल हिन्दी में ही नहीं दलित आन्दोलन अन्य भारतीय भाषाओं के तहत में बीज में से अंकूर के समान फूटता दिखाई देता है।

दलित साहित्य का प्रामाणिक साक्ष्य, सरस्वती पत्रिका के सितम्बर 1914 के अंक में मिलते हैं। जिसे हीरा डोम नामक कवि ने अछूत जीवन की अत्यन्त मार्मिक स्थिति का चित्रण किया है। लेकिन कहीं कोई जिक्र नहीं मिलता है बाद के अन्य कविता आन्दोलन में जिस तरह सामंतवादी शक्ति ने भक्तिकाल को दबा दिया। समकालीन

कविता आन्दोलन के समय पूरी तरह दलित साहित्य सक्रिय रूप से अपनी भूमिका, अपनी भागीदारी दर्ज कराता है।

काशीनाथ सिंह की टिप्पणी में "घोड़ें पर लिखने के लिए घोड़ा होना जरूरी नहीं है।" इसके प्रतिउत्तर में– "घोड़े को देखकर उसके बाह्य अंगों, उसकी दुलकी चाल, उसके पुठों, उसकी हिनहिनाहट पर ही लिखेंगे। लेकिन दिन भर का थका–हारा जब वह अस्तबल में भूखा–प्यासा खूँटे से बँधा होगा तब अपने मालिक के प्रति उसके मन में क्या भाव उठ रहे होंगे, उसकी अन्तःपीड़ा क्या होगी, इसे आप कब्से समझ पाएँगे? मालिक का कौन–सा रूप और चेहरा उसकी कल्पना में होगा, इसे सिफ घोड़ा ही जानता है।"

चेतना कहीं न कहीं स्वमूल्यांकन अथवा पहचान को इंगित करती है। जागृत होने के भी संदर्भ में भी कहा जा सकता है, अब चाहे वह आप के अपने अधिकार हों या आपकी अपनी स्थिति के प्रति सचेतना हो। दलित समाज का प्रत्येक व्यक्ति इस पीड़ा को लेकर जीता है। कि समाज में कहीं भी, कोई भी उसकी जाति को लेकर उसे गाली दे सकता है। उसे जीवन भर जाति के नाम पर गर्व नहीं शर्मिन्दगी झेलनी पड़ती है। वहीं समाज के दूसरी तरफ प्रत्येक व्यक्ति की मानसिकता में बिदा दिया गया कि दलित का अर्थ निम्न अर्थात् अछूत अर्थात् घृणित अर्थात् गरीब और कमजोर, इस कारण उनका मनोबल इन्हें नीचा दिखाने के लिए और बढ़ जाता है।

दलित चिन्तक और साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते है– "चेतना का सीधा सम्बन्ध दृष्टि से होता है जो दलितों की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक भूमिका की छवि के तिलस्म को तोड़ती है, वह है दलित चेतना। दलित मतलब मानवीय अधिकारों से वंचित, सामाजिक तौर पर जिसे नकारा गया हो। उसकी चेतना यानी दलित चेतना।"

दलित चेतना अपनी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति बड़े ही वैज्ञानिक और तक पूर्ण तरीके से पाता है तो वह है केवल एकमात्र अम्बेडकरवादी दर्शन से। दलित विमर्श सामाजिक अव्यवस्था को उद्घाटित करता है। छूआ–छूत, जातिगत असमानता समाज में कोढ़ के समान है। दलित चिन्तक केवल भारती के अनुसार– "दलित सिफ वह नहीं है जो ार्थिक रूप से शोषित है। आर्थिक रूप से शोषित और गरीब तो स्वर्ण वर्ग से बहुत मिल जायेंगे पर सामाजिक स्तर पर वे शोषित नहीं है। उनका सामाजिक अपमान नहीं होता है, क्योंकि समाज में वे विशेषाधिकारों का उपभोग करते हैं। इसलिए दलित वास्तव में वही है, जो सामाजिक और आर्थिक दोनों स्तरों पर शोषित है।"

समाज एक ऐसी इकाई है जिसमें कई तरह की समतायें और विषमतायें पनपती रहती है। समाज में विषमता की स्थिति समाज को पतन की ओर ले जाती है। जातिगत विषमता, लिंगगत विषमता, आर्थिक, शैक्षिक, राजनैतिक इत्यादि समस्त विषमताएँ समाज को पीछे ढकेलते हैं। इस प्रकार ही समाज में भौतिकवादी द्वन्द्व आरम्भ होता जाता है। दलित वेदना सामाजिक विषमता के कारण ही उत्पन्न होती है। जब समाज में जातगत विषमता होती तो आर्थिक रूप से भी विपन्नता की स्थिति जन्म लेगी और विषमता का सूत्र चाहे वह लिंगगत हो या शिक्षागत सब पर लागू होगी और मानवता पीड़ित होगी।

दलित साहित्य आत्मानुभव का खजाना है जो हिन्दी साहित्य को नई तेजस्विता, उर्जा या यूँ कहे तो चुनौती दे रहा है। दलितों की पीड़ा ही इसका सौन्दर्यशास्त्र है। महादेवी की उन पंक्तियों की तरह "तुममें ढूंढूँगी पीड़ा तुझमें पीड़ा को ढूँढा।" हिन्दी के कुछ महान आलोचक इसे गाली साहित्य की संज्ञा से अभीहित करते है। अपने आत्मानुभव को प्रखर आँच देती वाल्मीकि जी की कवितायें क्रमशः प्रस्तुत हैं"– "शब्द झूठ नहीं बोलते" काव्य संग्रह में वाल्मीकि ने बड़े ही बौद्धिकता के स्तर पर एक कविता पर बड़ी मार्मिक टिप्पणी की है। उनके इस वर्णन पर यथार्थबोध की स्पष्ट झलक मिल पड़ती है जैसा कि कविता शब्द और ब्रह्म के माध्यम से कवि कहते है कि शब्द अर्थात् ज्ञान और ब्रह्म अर्थात् विचार शब्द ज्ञान की अभिव्यक्ति है और जब तक वह शब्द के माध्यम मंथित नहीं होता, उसका मनन नहीं होता तब तक वह विचार के रूप में रहता है। यहाँ वाल्मीकि जी कि कविता 'शब्द' और ब्रह्म' के माध्यम से

बड़ी ही अर्थ भेदक टिप्पणी की गई है– यथा,

उसने कहा / शब्द ब्रह्म है / भीड़ ने सिर झुकाए / सहमति जताई

मैं अवाक्! / सोचने लगा / उनके बारे में / जो गूंगे हैं / हजारों साल से

यानि शब्द विहीन / यानि ब्रह्म विहीन / यहां भीड़ का सम्बोधन उन ज्ञान विहीन असंख्य लोग से है जिन्होंने बिना सोचे –समझे हर बात में अपनी सहमति जताई है। जिनकी स्थिति समाज में बिना किसी प्रतिरोध के है। हजारों साल से जो शोषित ओर दमित हैं। ज्ञान की अभिव्यक्ति न होने के कारण उनकी स्थिति गूंगे के समान हो गई है। उन्हें ऐसी परिस्थिति के लिए विवश होना पड़ा है।

जबकि, / गूंगे करते है संवाद / बिना शब्द / यानि बिना ब्रह्म के

ऐसी परिस्थितिवश विवश होने के बावजूद उनके भीतर स्थित चेतना ने उन्हें संवाद करने पर मजबूर कर दिया है। उनके भीतर दबी चिन्गारी धीरे–धीरे सुलग कर आग का रूप ग्रहण कर रही है। यह वर्ग भेद का आक्रोश है। सबल पक्ष दुर्बल पक्ष को कभी नहीं उभरने देना चाहता है, यथा–

हजारों साल रखा जिन्हें / शब्द से दूर / ब्रह्म से दूर

जो पल–पल रच रहे थे

हजारों शब्द अपने पसीने की गंद्य से सुविधा भोगी समाज हमेशा उपभोग वादी दृष्टिकोण बनाये रखना चाहता है इस कारण वह हमेशा अपनी मुट्ठी को भींचे रहता है ताकि शोषित समाज उसकी पकड़ से बाहर न जा सके। इस कारण उसने ऐसी मान्यताओं और कुरीतियों को रच रखा है कि वह कभी मूल्यांकन करने लायक ही न रहे। इस समाज को अपंग और शून्य रखने के लिए उसने सबसे पहले उन्हें ज्ञान से विचार से दूर रखने की क्रूर साजिश की है। लेकिन फिर भी यह शोषित समाज पूरी तरह से कुचला नहीं जा सका और ज्ञान अपरूप फूट पड़ता है श्रम की गंद्य के रूप में। समूल नाश करने और फिर से उभर पड़ने का संघर्ष जारी रहता यथा–

जिसे छीन कर / अपनी मिल्कियत बना कर बैठ गए थे

कुछ चतुर लोग / जो आज भी समझा रहे है शब्द के अर्थ

अपनी संकुचित भाषा में / बना कर शब्द को जड़ / और अर्थहीन

सुविधा भोगी समाज ज्ञान को सड़े–गले, दकियानूसी विचारों से ढक देना चाहता है जिससे कि वह अपना उल्लू सीधा कर सके। ज्ञान की स्थिति विवश और असहाय को गई है उसे व्यक्त करने की अभिव्यक्ति का सही माध्यम नहीं मिल पा रहा है। यथा–

भाषा हो जाती है असमर्थ / नए सूर्य की धूप में

चुंधियां जाती है जिसकी आँखें / रहने लगती हैं / घिसी–पिटी क्रियाएँ

जो धीरे–धीरे प्रलाप में बदल कर खो जाती हैं / रेतीले बवंडर में

'शब्द झूठ नहीं बोलते' काव्य संग्रह की दूसरी कविता 'उन्हें डर है कविता में शोषित और सुविधा भोगी समाज के कभी न समाप्त होने वाले संघर्ष को सूक्ष्मता से वर्णित किया गया है। शोषित वर्ग की परिश्रम की एकनिष्ठता के आगे शोषक वर्ग में भय का माहौल छाया हुआ है उन्हें इनकी शक्ति का पूरा आभास है वह ये अच्छी तरह से जानते हैं कि इन्हें अब अधिक दिनों परम्परा, सड़े–गले रीति–रिवाज, झूठी शानो–शौकत की आड़ में नहीं दबाया जा सकता। दलितों में चेतना की जागृति ने जन्म ले लिया है और इस क्रांति को आग बड़ा अब दबाया नहीं जा सकता लेकिन इस अवस्था में भी वह पुरानी दकियानूस परम्पराओं की आड़ में, दिखावे की संस्कृति बाह्य आडम्बर जैसे पुराने तीरों को तेज कर रहे हैं ताकि किसी भी तरह से इन्हें जीता जा सके। यथा–

वे जानते है /यह एक जंग है/जहाँ उनकी हार तय है
एक झूठ के रेतीले ढह की ओर में/खड़े रह कर आखिर कब तक
बचा जा सकता है/फिर बी अपने पुराने तीरों को वे
तेज करने लगे है/चौराहों से वे गुजरते हैं/निःशंक

बाल्मीकि जी की अगली कविता 'तुम्हारी जात' में छायावादी शिल्प का प्रयोग करते हुये 'शब्द' अर्थात् ज्ञान की यथार्थपूर्ण अभियक्ति हुई है। जहाँ भाषा कमजोर नहीं बल्कि अपने अर्थ को स्पष्ट करती मौलिकता का परिचय कराती है। यहां बल्कि कहते है कि प्रकृति अपनी परिवर्तनशील स्थिति के कारण नित नवीनता का संदेश देती हुई प्राकृतिक रहस्यों से विदित है और एक दूसरे का सम्मान करती है। परन्तु ठीक इसके विपरीत मानव समाज जो विभिन्न प्रकार की विषमताओं से भरा हुआ है और परिवर्तन को स्वीकार नहीं करना चाहता है जो जिस अवस्था में है उसी में बने देना रहना चाहता है एक दूसरे का सम्मान करना नहीं जानता, अपनी–अपनी अकड़ में फूला रहता है। प्रकृति में परिवर्तन तभी आता है जब वह अपनी सीमा तोड़कर विध्वंस करती है। लेकिन इंसान है कि बदलने का नाम नहीं लेना चाहता है। यहाँ कवि का इशारा आदर्शवादी हिन्दु समाज की ओर है जिसके कटर और आडम्बरी समर्थक नैतिकता का बाना त्याग कर झूठे वर्चस्व में फँसे है जो मानवता की हत्या कर अपने हाथ खून से रंगे हाथ को पवित्रता का नाम देते हैं। ब्राह्मण वर्ग जो जातियों में स्वयं को सबसे श्रेष्ठ बताता है जो चंदन, तिलक की आड़ में, पाप–पुण्य, स्वर्ग–नरक के झमेले में सबको फँसाया है वह अब सड़ चुका है। समय तेजी से परिवर्तित हो रहा है परन्तु इनकी मानसिकता जहाँ की तहाँ अटकी हुई है अर्थात् अस्पृश्यता पर अटका हुआ, जहाँ एक मानव के सामने दूसरा मानव घृणित है, जहाँ उसके चलने में हवा अशुद्ध हो जाती है। यह सब इनकी घृणित साजिश है अपने वर्चस्व को कायम रखने की। कवि ने बड़े ही आक्रोश की आत्मा से इन पर सवालिया निशान साधे है, यथा–

यह जानते हुये भी/कि पांत गंदगी से भरे हैं/हाथ सने है लहू से
माथे पर लगा/हजारों साल पुराना चंदन/सड़ चुका है
वे जानती हैं/तुम कभी नहीं बदलोगे/तुम्हारी जात ही ऐसी है।"

'भोपाल–कांड' शब्द झूठ नहीं बोलते काव्य संग्रह की अगली कविता है। गाँव और शहर को जोड़ने वाली सड़क कितनी कठिन है वह सर्वहारा, दलित गाँव के सांमती घेरे को तोड़ कर शहर की तरफ भागता है और यहाँ भी अर्थात् शहर में भी उसकी ढाक के तीन पाँत वाली स्थिति हो जाती है। शहरों में उनका वैसा ही शोषण होता है। वह गाँव में भी मैला ढोता है और शहर में भी उसको यही काम मिलता है। न जाने किस सीवर लाइन के 'मेन–होल' में कितने बल्लू, कल्लू और रमेसर दम तोड़ कर गुमनाम भर जाते है तब किसी भी अखबार को या न्यूज चैनल को इनकी याद नहीं आती क्योंकि इससे उनको कोई भी फायदा नहीं नज आता। जनतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाने वाला मीडिया वह पिक करता है तो केवल ग्लैमर को, पदस्त मंत्री के धार्मिक दौरे को। इस कारण ही वह सत्तासीन के हाथ की कठपूतली बनकर नाचता है सत्तासीन जो दिखाना चाहती है वही दिखाती है और जो छुपाना चाहती है, उसे बैन कर देती है। इस कारण ही सही आँकड़े का पता नहीं चल पाता। भोपाल–कांड की दुर्घटना में कितने ही मजदूरों–दलितों का शोषण हुआ। उनकी स्थिति बद से बदतर हो गई। उसकी सच्ची रिपोर्ट के बार में किसी को सूक्ष्मता से कभी पता नहीं चलता। यथा–

'सीवर–लाइन के 'मेन–होल' में/दम तोड़ते बल्लू की
घुटती सांसे खो जाती हैं/गुमनाम
वैसे ही जैसे नगर निगम के ट्रेक्टर–ट्राली से/रात–भर हैं खामोशी से
न जाने कितने कल्लू और रमेसर

हर समय समाज में कुछ न कुछ अनैतिक हो रहा है सत्ताधारियों के द्वारा और समाज का सर्वहारा तबका विवश है उनके द्वारा फैलाये गये जहरीले धुँये में जीने के लिए और सबसे कठिन विद्रूपता की स्थिति तब पैदा होती है जब बुद्धिजीवी वर्ग खड़ा होकर इस तमाशे में शामिल हो जाता है। बुद्धिजीवी वर्ग जो दूरदर्शिता की प्रखर शक्ति लिये भी तलवे सहलाने वाला बन जाता है। क्योंकि यहाँ केवल जातिगत मानसिकता उसे ऐसा करने पर मजबूर करती है, क्योंकि जाति के बिना भारतीय समाज की कल्पना ही नहीं की जा सकती। बुद्धिजीवी वर्ग के तबके में वर्चस्व इन्हीं का है और शोषित के तबके में बहुलता दलितों की है। यही कारण है कि बुद्धिजीवी वर्ग समाज की सच्ची बातों को नहीं कह पाता और उल्टे ही समाज को अंधेरे की बाढ़ की ओर ढकेलता है नहीं तो जहाँ भूमण्डलीकरण का युग चल रहा है, डिजीटलाइजेशन की बात हो रही है वहीं संकीर्णता और अधिक बढ़ती जा रही है, यथा 'भोपाल–कांड' कविता में देखी जा सकती है–

कठिन हो गया है/अंतर करना रंगो में/दिशाहीनता के इस/स्याह–युग में
कहना–/स्याह को स्याह/पीले को पीला/लाल को लाल
नीले को नीला/ले आए हैं/अंधेरे की बाढ़/नए–नए चोले पहन कर
असंख्य बाबा, योगी और गुरू

वाल्मीकि जी की अगली कविता 'शब्दजीवी' अर्थात् शब्दों पर जीने वाला अर्थात् कथनी और करनी में अन्तर को चरितार्थ करती है। किस प्रकार से ये लोग दोहरी नीति के शिकार मनुष्य है जिनके हृदय में कुछ और जुबान पर कुछ और ही होता है। आज के आधुनिक भारत में ये लोग कहते है कि अब जाति–पाँति का बंधन समाप्त हो गया है सब लोग बराबर हैं लेकिन अपनी जातिगत विषाक्त मानसिकता के तहत ये अभी भी जातिगत भेदभाव की आदिम संस्कृति को ढो रहे है। केवल वाकछलना के तहत कहते है कि आधुनिक समय में वे जात–पांत को नहीं मानते ऐसा केवल सब तो कहते ही साथ ही लेखकों का अच्छा खासा वर्ग भी इसमें अपनी अहम भागीदारी निभाता है, जैसा कि मैत्रेयी पुष्पा 'बहुजन साहित्य का स्वागत किया जाना चाहिए' में प्रेमा नेगी से हुये साक्षात्कार में स्वाकारती हैं– "लेखक बिरादुरी में भी जातिवाद गहरे तक पेठा है। मैंने अपने आसपास के ही लेखक लेखिकाओं को अपने बच्चों से कहते सुना है कि 'लव मैरिज करो, मगर चमार–पासी से नहीं।' जो सवर्ण लेखक खुद इस तरह की मानसिकता रखते हैं, उनसे समाज को दर्पण दिखाने की उम्मीद बेमानी है।"

आजादी के इतने वर्ष बीत चुकने के बावजूद, संविधान में लिखित होने के बाद भी यह केवल कितावों तक ही सीमित है।

जबकि व्यवहार रूप में वैसा ही चला आ रहा है जैसा इन्होंने शोषण के नाम पर शुरू से तय किया था जहाँ केवल इन्सान ही नहीं, गाँव ही नहीं हवायें और दिशाएँ भी जन्मगत जाति के आधार पर बँटी हैं। अब तक आये दिन किसी दलित की बारात, किसी को पानी पी लेने या आरक्षण से नौकरी प्राप्त कर लेने या मजदूरी का पैसा बढ़ाने पर उसको सबक सीखाने के लिए पेड़ पर मारकर लटका देने की वारदात घटित होती रहती है परन्तु यहाँ चाहे शब्दजीवी हो या बुद्धिजीवी या वर्तमान सरकार इन सब पर आसानी से अपनी चुप्पी बनाये रखती है। यथा–

मेरे प्रदेश में/जब लुटती है किसी दलित की बारात
मेरे प्रदेश का शब्दजीवी/मौन धारण कर लेता है
भूल जाता है पढ़ना अखबार/निकल जाता है चारों धाम की यात्रा पर

यह शोषक वर्ग अर्था्त सवर्ण आडम्बर की ऐसी पर्त लगाये हुये है कि उपर से सबकुछ अच्छा दिखता है लेकिन इनके भीतर छिपे गहरे काले रंग को कोई नहीं देख सकता है, इनकी मानसिकता, इनके आडम्बर युक्त हृदय में पीढ़ी दर पीढ़ी जाति गत के दमन की संकीर्णता को बनाये रखने में अब तक सफल है।

ओम प्रकाश बाल्मीकि ने जातिगत भेदभाव को 'अंधेरा' कहा है और यह अंधेरा सदियों से चला आ रहा है जो खत्म होने क बजाय और गहराता जा रहा है। यह एक ऐसी खाई जो पाटी ही नहीं जा सकती। यह मानवीय रिश्तों की दरार को और अधिक बढ़ाती जा रही है। शोषक चाहता है वह शोषित के अधिकारों का अक्षुण आजीवन हनन करता रहे इसलिए वह रोज नई तरकीब इसमें पैदा करता रहता है। शोषित यदि अपने हक की बात करने या आवाज उठाने की सोचता भी है तो हमेशा के लिए उसकी आवाज को दफना दिया जाता है। यथा–

एक को दी है मुखरता/भाषा की/दूसरे को चुप्पी दहशत की
जिसने खो दिए हैं/शब्दों के अर्थ/हजारों साल के भूस्खलन में दबकर

'दुर्गति' कविता के माध्यम से वाल्मीकि जी एक बार प्रेमचन्द के उस अविस्मरणीय चरित्र 'सद्गति' के दुखी को याद करते हुए फिर से दर्द के आकंठ में डूबकर लिखते है कि सवर्णों के द्वारा बनाया विधि–विधान किस प्रकार कमजोरों, गरीबों और खासकर दलितों का शोषण करता है। दुःखी की दुर्गति देखकर आज भी रूह काँप उठता है और केवल और विद्रोह करने का मन हो उठता है लेकिन दुःखी का इतिहास हर रोज दुहराया जाता है। यथाः–

मलबे के ढेर पर/मौसम के दस्तखत/कभी मिटते नहीं/न रहते हैं खामोश
हर रोज कौंधती है/एक आवाज/जेहन में/'न फँसे कोई 'सदगति' का दुखी बन कर/किसी बामन के जाल में'

"भारतीय समाज–व्यवस्था ने वर्ण–व्यवस्था का एक ऐसा जिरहबखतर पहन रखा है, जिस पर लगातार हमले होते रहे है फिर भी वह टूट नहीं पाई।" दलित साहित्य की सामाजिक प्रतिबद्धता। 'नाटक जारी है' कविता के माध्यम से वाल्मीकि जी ने देश की यथार्थ स्थिति को प्रस्तुत किया है यहाँ शोषण का नाटक जारी है जो कभी भी खत्म होने वाला नहीं है तीसरी आजादी तथा दूसरी आबादी का जिक्र इस कविता में व्यंग्य रूप में हुआ क्योंकि इसका केवल प्रदर्शन किया जा रहा वास्तविकता यानि कि फासीवाद अथवा सामंतवादी विचारधारा अपने यथास्थान पर सुरक्षित है। देश की फटेहाल जनता आज भी सिर झुकाये फटेहाल, चिंताओ के बीच, भूखी और लाचार होकर सन् 1977 ई0 में हुये आपातकाल जिसे लोकतंत्र का हनन कहा गया, भारतीय इतिहास का काला इतिहास कहा गया, उसी दमन चक्र के इतिहास को चुपचाप–बार–बार सहने के लिए बाध्य है। यथा–

टैक्स खोरों/जमाखोरों/कालाबाजारी करने वाले
धाखेबाजी ने दिखाई है चुस्ती/टांग कर अपने सीने पर नारा
घोषित कर दिया है खुद को ईमानदार/

भारतीय राजनीति ने लोकतंत्र की नई–नई परिभाषायें गढ़ ली हैं। जिसके कारण एक नवीन स्वर सुनाई पड़ रहा हैंः– यथा–

मेरे पास तो प्राब्लम ही प्राब्लम है/धार्मिक /सामाजिक
दुश्चिंताओं के बीच खरा /आम आदमी फटेहाल है
भूखा और लाचार है।

राजनीति का ही बदला स्वरूप है कि जिसके कारण अमीर और अमीर तथा गरीब और गरीब होता जा रहा है अर्थात् समाज में सदियों से जो भी स्थाई रूप से समस्यायें थीं वह दिन प्रतिदिन खत्म होने के बजाय बढ़ती जा रही है लोग मानसिक रूप से और अधिक संर्कीण होते जा रहे हैं। जातिगत संकीर्णता लोगों की मानसिकता में कोढ़ की तरह विद्रूप रूप लेता जा रहा है।

अगली कविता 'शब्द झूठ नहीं बोलते' वाल्मीकि जी की अत्यन्त मार्मिक कविता है। "शब्दों का अपना इतिहास होता है... ओर यदि छप जाएँ तब क्या उनकी यों उपेक्षा करना सम्भव होगा?" छिन्नमस्ता उक्त कथन में शब्दों का

महिमामण्डन किया गया है कि शब्द कितने अंतहीन शक्तिशाली होते हैं। वाल्मीकि जी ने शब्द को ही ब्रह्म कहा है अर्थात् ज्ञान। जिसकी सत्ता संसार में हर जगह विद्यमान है। शब्द–शक्ति पर उन्हें पूरा यकीन है कि चाहे कितनी भी कोशिशें की जायें शब्द अपनी पूरी दृढ़ता के साथ उन साजिशों का रूख बदल देंगे। शब्दों को बाहर न आने देने के लिए बहुत जुल्म किये जाते हैं क्योंकि उनके बाहर आते ही सच्चाई सामने आ जायेगी और सबकुछ साफ–साफ दिखने लगेगा। वह समाज जो शब्दों को दबाकर ऐय्याशी में तल्लीन हो जाता है शब्द अर्थात् ज्ञान की रोशनी में इन दमनकारियों की साँसे अटक जायेगी। अत्याचार के तहत चीख अर्थात् शब्द को दबा दिया जाता है लेकिन इन विपरीत परिस्थितियों में भी शब्द अपना रास्ता बना लेते है और सच्चाई सबके सामने प्रकट हो जाती है। यथा–

थके हारे मजदूरों की फुस–फुसाहट में /बामन की दुत्कार सहते
दो घूंट पानी के लिए भिन्नते करते/पीड़ित जनों की आह में
जिंदा रहते हैं शब्द /जो कभी नहीं मरते/खड़े रहते हैं
सच को सच कहने के लिए/क्योंकि/शब्द कभी झूठ नहीं बोलते!

सम्भवतः ओम प्रकाश वाल्मीकि अपने इस संग्रह के माध्यम से अपनी अत्यन्त मार्मिक शब्द चित्रों के जरिये दलित जीवन की त्रासदी को भली भांति उकेरा है। वे किस प्रकार दलित जीवन चेतना से चेतित हैं यह भली–भांति दिख पड़ता है। यहाँ उनके स्वानुभूति की यथार्थता ने उन्हें एक प्रमाणिक रचना के लिए बाध्य किया है जो पूरी तरह युगानुरूप है। यहाँ वाल्मीकि जी ने रंजन या सहानुभूति के लिए यह रचना नहीं कि बल्कि दलित समाज को और साथ स्वर्ण समाज के कट्टरपंथियों को सावधान करने की कोशिश भी की है। यह अपनी अलग अस्मिता के साथ नवीन सौन्दर्य शास्त्र का सृजन करते हैं। प्रश्न वही खड़ी कर पाता है जो चेतित हो और जो वस्तु स्थिति को भली–भाँति समझ पाता है अथवा जो अपने अधिकारों के प्रति सजग हो। दलित साहित्य की बढ़ती संख्या इस बात की गवाह हैं कि इन्हें अब आगे बढ़ने से कोई रोक नहीं पायेगा। संघर्ष वर्तमान समाज की मानसिकता तथा स्वयं की स्थिति बदलने के बीच है युद्ध कठिन है, निरन्तर है तथा परिणाम समय अर्थात् भविष्य के गर्भ में है इसलिए शब्द अर्थात् ज्ञान के मार्ग में आगे बढ़ते जाना है।

❑❑

गरीबी, बेरोजगारी और असमानताएँ

भानु प्रकाश पाण्डेय
शोध छात्र– हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

आज भारत देश की बहुत बड़ी समस्या गरीबी जो सूरसा की तरह बड़े आकार में चारो ओर फैली है। गरीबी जो सिर्फ गरीब होता जा रहा है। अमीर, अमीर होता जा रहा है। देश की कुछ ऐसी अर्थव्यवस्था और हमारे नीति नियंताओं की नीति रही है, जिससे यह सब समस्याओं का बड़ा जाल फैला रहा है। इस दुनिया में गरीब का कोई मित्र नहीं होता है। यदि कोई उस पर एहसान भी करता है, तो उसकी आजादी अपने हाथ में ले लेता है, उसे सिर्फ मिलती है, एहसान करने वाले की गुलामी। कुछ ही अपवाद में होते हैं, कि जो किये हुए एहसान की रक्षा करते हैं।

दुश्मन भी दोस्त बनते हैं, जब ज़र पास होता है।
टूट जाता है, वह रिश्ता गरीबी में जो खास होता है।

यदि आपके पास धन है, तो हर कोई आपका अनायास मित्र, साथी बनना चाहता है, गरीबी में कोई भी साथ नहीं रहता। गरीब का जीवन स्तर बहुत ही दयनीय दशा की होती है। वह निरंतर अपनी गतिविधि को ठीक करने में लगा रहता है, लेकिन फिर भी विपत्ति उसकी साथ लगी रहती है।

गरीबी में आर्थिक संकट होने के कारण बहुत बड़ा अंध विश्वास में पूरा परिवार जीता है। जहाँ बीमारी की हालत होती है, वहाँ झाड़–फूँक से काम चलाया जाता है, जिससे कभी–2 परिणाम भयानक होता है।

एक सूक्तिकार ने लिखा है–

अश्वं नैव गंज नैव व्याघ्रं नैव च नैव च।
अजा पुत्रां बलि दद्यात दैवो दुर्बल घातकः।।

घोड़े की नहीं, हाथी की नहीं, व्याघ्र की तो कभी नहीं, हमेशा बकरे के पुत्र की बलि दी जाती है। दैव भी दुर्बल पर घात करता है। इस दूनिया में यदि कोई संकट को झेलता है, तो गरीब ही झेलता है।

वह सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, शारीरिक मानसिक आदि प्रकार से गरीब रहता है। जिसका विकास, सर्वांगीण विकास नहीं हो पाता है। जिस पर हमारे गो0 तुलसी दास जी ने लिखा–

दुर्बल को न सताइए, जाकी मोटी हाय।
मुई खाल की श्वास से सार भसम ह्वै जाय।।

यदि कोई कमजोर व्यक्ति है, तो उसे नहीं सताना चाहिए। क्योंकि उसके हाय से काई भी व्यक्ति बच नहीं पाता। अभाव से ग्रस्त व्यक्ति अपने दैनिक–जीवन के गतिविधि के चक्कर में बहुत बुरा फंसता जाता है। आज गरीब और गरीबी पर अनेक प्रकार की समस्याओं को दिखाया जा रहा है। लेकिन फिर भी हमारे देश के सर्वोच्च लोगों का ध्यान इन पर नहीं जा रहा है। अतीत की घटना हो या तात्कालिक घटना को लिया जाय, यदि किसी अमीर के साथ घटना घटित हो, तो वह मीडिया से लेकर संसद तक शोर–शराबे में चलता रहता है। यदि किसी गरी

भाई के साथ कुछ दुर्व्यवहार, होता है, जिसको देखने वाला कोई नहीं होता। हरियाणा रेयान प0 स्कूल में एक बच्चे के साथ जो मानवता को शर्मसार करने वाली घटना घटित होती है। यह तो गलत है। लेकिन किसी गरीब बच्चे के साथ होता तो इसमें न भारत और न भारत की मीडिया बाजार रूचि लेती। असम में कुछ घटना घटित होती है। जिसका कोई, मीडिया बाजी नहीं होती, बाम्बे में नेता और उद्योगपति पर हमला हुआ। उसका मामला जब तूल पकड़ा, तो लोगों का ध्यान खींचा गया। एक सामान्य वर्ग का जब तक ध्यान नहीं दिया जायेगा। जब तक उनके लिए अपने सोच में क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं होगा। हमारे देश के सर्वांगीण विकास में बाधा बनी रहेगी। देश का वह जनता जो गरीब, दलित, शोषित पीड़ित है। उसका पूरा ध्यान रखकर उसे विभिन्न योजनान्तर्गत लाभ के दायरे में लेकर उसके समस्याओं का समाधान ही हमारे भारत को आगे बढ़ने की प्रेरणादायी कदम होगा। बेरोजगारी की समस्या हमारे देश में चरमोत्कर्ष स्थान पर है। भारत एक युवा प्रधान देश है। लेकिन युवाओं के लिए चारों तरफ सिर्फ निराशा ही निराशा है। हमारे यहाँ के लोग चुनाव के समय अनेक कपोल– कल्पित स्वप्न दिखाकर इस वर्ग को छलते हैं। बाद में सिर्फ उनका दूर का ढोल सुहावना ही सिद्ध होता है।

किसी ने लिखा है कि–

संगीनों के साये में वीरों की रवानी पलती है,
जिस ओर जवानी चलती है,
उसे ओर जमाना चलता है।
लेकिन यहाँ के युवाओं को सिर्फ नेता वर्ग ही छलता है।

किसी ने कहा कि–

''देश में यदि–क्रांति चाहते हो तो देश का नेतृत्व युवाओं के हाथ में दे दो।

आज का युवा बेरोजगारी में कन्फ्यूज हैं वह कहाँ जाये, किधर जाये कि उसकी मंजिल मिल जायेगी। चारों ओर उसे सिर्फ निराशा, अंधकार ही हाथ लग रहा है।

इस पर नागार्जुन ने लिखा–

खादी ने मल–मल से अपनी साढ़–गाँठ कर डाली है।
रतन टाटा डाल मिया की तीसों दिन दिवाली है।

किस तरह एक तरफ फाका और दूसरी तरफ डाका चलता है। दिनकर जी ने लिखा–

श्वानों को मिलता दूध–भात भूखे बालक अकुलाते हैं।
माता की छाती से चिपक ठिठुर जाड़े की रात बिताते हैं।

एक तरफ जहाँ बच्चे को खाने को कुछ भी नहीं वहीं दूसरी तरफ कुत्तों को दूध और मलाई सामग्री खिलाई जाती है। गोस्वामी जी ने लिखा–

''खेती न किसान को भिखारी को न भीख भली, बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी, सीद्यमान सोच बस कहै एक एकन्ह को जीविका विहिन लोग कहा जाय का करी।''

उधर मध्यकाल में गोस्वामी जी ने इस तरह से बेरोजगारी के समस्या को दिखाया है। जबकि अकबर कालीन समय था। यह बेरोजगारी एक ऐसा काल चक्र होता है। जीवन का जो मृत्यु से भी अधिक भयानक होता है।

जिस तरह व्याप्त बेरोजगारी में युवाओं के हाथ से काम छीना जा रहा है उससे चारो तरफ सिर्फ निराशा

का ही हाल है। निराश लोग कहते हैं–

सपनों में भी सच न बोलना, वरना पकड़े जायेंगे।
भैया लखनऊ दिल्ली पहुँचो मेवा मिसरी पाओगे।
माल मिलेगा यदि रेत सको गला मंजूर किसानों का।
हम मर भुक्खों से क्या होगा, चरण गहो श्रीमानों का।

आज पूंजी के अभाव में प्रत्येक परिवार में जिस तरह पारिवारिक कलह फैला हुआ है। वह अशांति का केन्द्र बनकर रह गया है। बेगारी की तंग हालत में परिवार में एक–2 व्यक्ति एकाकी जीवन जी रहा है। बेरोजगारी का आलम यह हो गया है कि व्यक्ति मशीन की तरह सिर्फ किसी प्रकार भौतिक सुख के पीछे दीवाना होकर भाग रहा है। जहाँ उसे कुछ भी हासिल नहीं हो रहा सिर्फ निराशा के। आज सरकार की सोच रोजगार क्षेत्र में कुछ दिव्यांग जीवन स्तर के जीने वालों के लिए भी अवसर प्रदान कर रहे है, जो इनका बहुत ही सकारात्मक कदम है। इससे उन्हें सामान्य जीवन जीने और एक–दूसरे के समीप आकार अपने आपको गौरवान्वित महसूस करने की एक अच्छी पहल है। इस तरह से इनके भी सर्वांगीण विकास में एक अच्छा कदम होगा। समावेशीकरण में जिस तरह से समान्य और विशिष्ट लोगों को लाया जा रहा है। इससे विशिष्ट व्यक्तियों के आगे बढ़ने का एक अच्छा अवसर ही बेरोजगारी में कभी एवं इन्हें आत्मनिर्भर बनकर एक अच्छा जीवन जीने का सही सोच ही हमारा समाज तभी सर्वांगीण विकास कर सकता है, जब यह बात धरातल पर रहे कि

सबका साथ, सबका विकास।

असमानता किसी भी प्रकार का हो वह एक बहुत बड़ा अभिशाप है। हमारे देश में अनेक प्रकार की असमानताएँ विद्यमान है–शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक सामाजिक आदि प्रकार की असमानता हमारे सर्वांगीण विकास में बहुत बड़ा अवसर धन है।

गोस्वामी जी ने लिखा है–

मुखिया मुख सो चाहिए, खान–पान को एक पालै–पौषे सकल अंग तुलसी सहित विवेक।।

बाबा ने शरीर की संरचना को ही उदाहरण देकर बताया कि जिस प्रकार मुज, मुखिया का कार्य करता है। वह ग्रास लेकर अंदर दांत, जीभ, आहार (पेट, किडनी इत्यादि अंगो को समायोजित ढंग से किसी भी प्रकार असमानत न करके शरीर की संयुक्त संरचना का संचालक किया जाता है। उसी प्रकार अपने सामाजिक नेतृत्व के दायरे में समाज व राष्ट्र का संचालन करना चाहिए। समादेशी भारत– समावेशी शिक्षा में जिस प्रकार से सामान्य से विशिष्ट वर्ग के लोगों के ध्यान में रखकर जोड़ा गया है। यह एक बहुत ही सराहनीय कदम है। इस तरह से गरीबी, बेरोजगारी और असमानता के कारण इनको भी सामान्य जीवन में लाकर एक दया नहीं विशेष प्रकार का इनका वास्तविक जीवन जीने का मार्ग है।

यदि भारत की सोच में हर एक हाथ को काम मिले तो यहाँ तीनों प्रकार की समस्याओं का समाधान और किसी भी प्रकार की प्रतिभाओं का हनन नहीं होगा। देश एक बहुत ही अच्छे लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगा।

देश की दशा और दिशा यहाँ के सही स्तर जीवन जीने वालों के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने में महत्वपूर्ण है। धूमिल जी ने कहा–

एक व्यक्ति रोटी बेलता है। एक रोटी से खेलता है।
एक और व्यक्ति है, जो न रोटी बेलता है न खेलता है।

मैं पूछता हूँ यह तीसरा व्यक्ति कौन है।
इस पर मेरी संसद मौन है।

इन्होनें कहा–

मेरे यहाँ संसद तेली की वह घानी है।
जिसमें आधा तेल और आधा पानी है।

यदि अपने जनप्रतिनिधि जिनको हम चुनते हैं। वह पचास प्रतिशत ठीक हो जायें तो यह देश गरीबी, बेरोजगारी और असमानता के कुचक्र, से बाहर निकल कर अपनी अच्छी अवस्था में प्राप्त हो जाय।

सन्दर्भ

- गो0 तुलसीदास 'रामचरित मानस' गीताप्रेस गोरखपुर, संस्करण– सं0 1631
- कवितावली' गीता प्रेस गोरखपुर, संस्करण– सं0 1636
- नागार्जुन–कविता– 'सच न बोलना' राजकीय प्रकाशन नई दिल्ली।
- रामधारीसिंह दिनकर– 'विपथगा' संस्करण–1963
- सुदामा पाण्डेय धूमिल– 'संसद से सड़क तक'
- राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1972

❑❑

45

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का लोकतंत्र व संविधानवाद पर विचार

डॉ0 गीता यादव
विभागाध्यक्ष–राजनीति विज्ञान
टी.डी.पी.जी कॉलेज, जौनपुर

सुरेश कुमार
शोध छात्र
वी.बी.एस.पी.यू., जौनपुर

सामाजिक न्याय के चैंपियन और भारतीय संविधान के प्रमुख निर्माता बाबा साहेब डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने भारत वर्ष के लिए लोकतांत्रिक शासन प्रणाली को प्रस्तुत किया जिस पर चलते हुए नवस्वतंत्र भारत अपने विकास की यात्रा में निरंतर चौमुखी ऊँचाईयों को स्पर्श करने में सफल रहा और भारत के लोकतंत्र की विकास यात्रा आज भी निर्बाध गति से जारी है। भारत के लोकतंत्र के समावेशी स्वरूप की आज विष्व भर में प्रशंसा की जाती है तो इसका क्रेडिट मुख्य रूप से बाबा साहेब डॉ0 भीमराव अम्बेडकर को जाता है। बाबा साहेब के लिए लोकतंत्र केवल एक शासन प्रणाली भर नहीं थी बल्कि एक समग्रता भी थी। बाबा साहेब ने लोकतंत्र के सभी आयामों को प्रस्तुत किया। बाबा साहेब ने लोकतंत्र को एक जीवन पद्धति के रूप में देखा और इसे उसी रूप में अपनाया। अपनी सम्पूर्णता में लोकतंत्र बाबा साहेब के लिए राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक सरोकार वाला रहा। बाबा साहेब ने अपने जीवन के अनुभवों से लोकतंत्र के तीनों आयामों को सींचा और अपनी प्रखर मेधा शक्ति से लोकतंत्र को पल्लवित और पुष्पित किया। भारत के लोकतांत्रिक संवैधानिक प्रणाली को लेकर आलोचकों ने यह कहकर चिंता और आशंका जताई थी कि यह बहुत ज्यादा दिनों तक नहीं चल सकता लेकिन जब हम अन्य देशों को देखते है जिन्होने लोकतंत्र को तो स्वीकार किया था परन्तु उन देशों में शीघ्र ही यह मुरझा गया, वही भारत के लोकतंत्र ने सफलताओ के नए–नए कीर्तिमान गढ़ा और आज भी इसकी यश पताका लहरा रही है तो ऐसे में हम बाबा साहेब डॉ0 भीम राव अम्बेडकर के उस व्यावहारिक बुद्धि प्रयोग को भूल नही सकते जिन्होने यहाँ के सामान्य जन – जीवन में लोकतंत्र के प्रति तीव्र भूख पैदा कर दिया। एक ऐसी भूख जिसमें लोकतंत्र की आत्मा को ही आत्मसात कर लिया और जिसने तानाशाही को भी झुकने के लिए मजबूर कर दिया। उन तमाम आशंकाओं को निर्मूल कर दिया जो जाहिर की गई थी अपनी तमाम विविधताओं से भरे भारत वर्ष में लोकतंत्र का अनवरत जारी रहना बाबा साहेब डॉ0 अम्बेडकर को एक सच्ची श्रद्धांजलि ही है।

लोकतंत्र पर डॉ0 बाबा साहेब अम्बेडकर ने लोकतंत्र के बारे में जो विचार प्रस्तुत किया है उसका सीधा सम्बन्ध उसकी संविधानवाद की प्रति समझ से भी है। इसलिए संविधानवाद कि संकल्पना पर चर्चा इस विचार सम्मत है। लोकतंत्र पर उनके विचारों का विशद विवेचना है जिसमें लोकतंत्र के सभी आयामों पर बाबा साहेब के विचारो को शामिल किया गया है।भारत मे लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक रणनीति के रूप में संविधानवाद की संकल्पना पर बाबा साहेब के विचारों का वर्णन करता है। क्योंकि बाबा साहेब के लिए संविधानवाद तौर – तरीके को अपनाएं बिना लोकतांत्रिक लक्ष्यों की सिद्धि नहीं की जा सकती। इस बात से है कि वर्तमान समय मे बाबा साहेब का लोकतंत्र के प्रति समझ वर्तमान पीढ़ी के लिए किस तरह उपयोगी हो सकती है।

लोकतंत्र को सीमित और व्यापक दोनों रूपो में परिभाषित किया जाता है। सीमित रूप में लोकतंत्र को एक शासन व्यवस्था समझा जाता है। इस रूप में लोकतंत्र से तात्पर्य जनता के शासन से है शाब्दिक रूप से ही 'डेमोक्रेसी' शब्द 'डेमोस' और 'क्रेटोस' शब्दों के मिलने से बना है। डेमोस का अर्थ है जनता और क्रेटोस का अर्थ है शासन, अर्थात लोकतंत्र जनता का शासन से है। अब्राहम लिंकन, जान सीले, लार्ड ब्राइस आदि ने शासन व्यवस्था

के रूप में ही लोकतंत्र को परिभाषित किया है। अपने सीमित रूप में लोकतंत्र का राजनीतिक पहलू अधिक महत्वपूर्ण होता है। जब लोकतंत्र को सीमित रूप में परिभाषित किया जाता है तो लोकतंत्र की संस्थाएं और प्रक्रियाएं महत्वपूर्ण मानी जाती है। अपने सीमित रूप में लोकतन्त्र केवल एक साधन है। लेकिन सामाजिक राजनीतिक दर्शन में लोकतंत्र को व्यापक रूप में परिभाषित किया जाता है। दार्शनिक दृष्टि में लोकतंत्र एक शासन व्यवस्था होने के साथ–साथ एक मूल्य व्यवस्था भी है और लोकतंत्र का तात्पर्य स्वतन्त्रता, समानता, न्याय, भ्रातृत्व व सहनशीलता आदि मूल्यों में भी है। व्यापक रूप में लोकतंत्र के राजनीतिक पहलू के साथ–साथ अन्य पहलू भी महत्वपूर्ण होते है और सामाजिक लोकतंत्र, आर्थिक लोकतंत्र और सांस्कृतिक लोकतंत्र वैसे विचार भी प्रचलित है। अपने दार्शनिक रूप में लोकतंत्र एक शासन पद्धति में आगे बढ़कर एक जीवन पद्धति बन जाता है। जीवन पद्धति के रूप में लोकतंत्र के आशय है कि व्यक्ति जीवन लोकतांत्रिक मूल्यों से ओत–प्रोत हो। जब व्यापक रूप में लोकतंत्र को परिभाषित किया जाता है तो लोकतंत्र की संस्थाओं और प्रक्रियाओं की तुलना में लोकतंत्र के आदर्श अधिक महत्वपूर्ण माने जाते है। अपने व्यापक रूप में लोकतंत्र साधन न होकर साध्य बन जाता है और व्यक्ति, राज्य, सरकार तथा समाज प्रत्येक का उद्देश्य लोकतंत्र की प्राप्ति बन जाता है।

लोकतंत्रीय व्यवस्था दूसरों से बेहतर है क्योंकि इसमें हमें अपनी गलती ठीक करने का अवसर मिलता है क्योंकि गलतियों पर सार्वजनिक चर्चा की गुंजाइश लोकतंत्र में है और फिर इनमें सुधार करने की अवसर भी है तथा इसके साथ ही साथ लोकतंत्र हमें सब चीज नहीं दे सकता और ना ही यह सभी समस्याओं का समाधान है लेकिन यह साफ तौर पर उन सभी दूसरी व्यवस्थाओं से बेहतर है जिन्हें हम जानते है और दुनिया के लोगों को जिनका अनुभव है। इस व्यवस्था में स्वतन्त्र चर्चा के आधार पर सारे सार्वजनिक निर्णय किए जाते है। व्यक्तियों के अधिकारों पर बल दिया जाता है। ऐसे व्यवस्थाओं के प्रणाली की परिभाषाओं का विश्लेषण करने के बाद यह विचार उभरकर सामने आया जिसका संविधान निर्माण के समय रखने वालों में से एक बहुआयामी प्रतिभा के धनी दलितों के मसीहा तथा संविधान के शिल्पकार डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने किया है और स्वाधीन भारत के राष्ट्रीय एकता और अखण्डता को कायम रखने के लिए लोकतंत्र का पुरजोर समर्थन किया।

विधिवेत्ता और कानून की महत्ता पर अटूट विश्वास रखने वाले अम्बेडकर इस लोकतंत्र के सम्बन्ध में मात्र बाते ही नही बल्कि इस संदर्भ मंन वे एक सिंद्धान्तवादी से अधिक अर्थक्रियावादी भी थे। वे व्यावहारिक लोकतंत्र में दृढ़ता से विश्वास रखते थे तथा विश्व के लोकतांत्रिक देशों की और प्रेम एंव मित्रता का हाथ बढ़ाया। बाबा साहेब मुख्य रूप से जरूरतमंदों एंव निम्नस्तरीय लोगो की सेवा से सम्बन्ध रखते थे। मानवता की सेवा पर पर्याप्त बल दिया था। बाबा साहेब भारतीय समाज का अध्ययन करते हुए उसके बारे में एक नई सोच पैदा किया था। उन्होंने कहा था कि भारत मे भक्त होना आसान है लेकिन समझदार होना मुश्किल है।

भारत के शासन प्रणाली के रूप में लोकतंत्र के विकल्प का चयन सन् 1947 में भारत की आज़ादी के बाद भारत मे किस प्रकार की शासन पद्धति को अपनाया जाएं तो हमारे संविधान निर्माताओं में से मुख्य रूप से बाबा साहेब ने देखते हुए कहा कि – मानव शक्ति को उन्मुख करने के लिए कोई व्यवस्था इतनी प्रबल नहीं हो सकती जितनी कि लोकतंत्र। जिसमें व्यक्ति को शिखर तक पहुँचने का अवसर मिल सकता है। लोकतंत्र में स्वतन्त्रता को सकारात्मक शक्ति और क्षमता के रूप में देखा तथा लोगो को आर्थिक प्रक्रियाओं और शोषण, सामाजिक, संस्थाओं और धार्मिक रूढ़िवादिता तथा भय और पूर्वाग्रहों द्वारा प्रतिबंधित हुए बिना उन्हें अपनी पसन्द चुनने के योग्य बनाता है। इन्होंने इसी को प्राप्त करने के लिए तथा इससे पीड़ित लोगों के उद्धार के लिए न केवल आवाज ही बुलन्द कि बल्कि उसके लिए ठोस कार्य भी किया। जो सामाजिक क्षेत्र में एक क्रांति के रूप में आज भी प्रासांगिक है तथा लोकतंत्रीय मूल्यों व आदर्शो को प्राप्त करने के लिए लोकतंत्रीय शासन प्रणाली की स्थापना में जिस महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहन किया। बाबा साहेब लोकतंत्र से अत्यधिक प्रभवित थे उनके लिए लोकतंत्र का आशय दासता,

जातिवाद, उत्पीड़न से विहीन समाज था। लोकतंत्र की जड़े समाज मे मनुष्य के आपसी सबंधो में ढूढी जा सकती है। यह फैसलों के लिए बेहतर अवसर उपलब्ध कराता है। जिसमें लोगो की इच्छाओं का सम्मान किए जाने की ज्यादा सम्भावना है। मनुष्य के कल्याण एवं मानवाधिकारों पर अत्यधिक बल देते थे। उनकी दृष्टि में लोकतंत्र सर्वसत्तावाद, निरंकुशतावाद, फासीवाद एवं अराजकतावाद से पूर्णतः विपरीत है। जहाँ तक सम्भव हो सके मानवाधिकारों में सहभागी हो। जिसके बिना मानव जीवन जीने के योग्य रहता है उन्होंने एक स्थान पर लोकतंत्र पर जोर देते हुए कहा कि वास्तविक लोकतंत्र तभी आएगा जब किसी को भी भूखे पेट सोने की जरूरत नहीं रहेगी यही लोकतंत्र की सच्ची कसौटी है। जहाँ मिल जुलकर रहने का तरीका का वकालत किया जाता है जिसमे लोग आपस मे सारे दुःख–सुख बाट लेते है सहचरों के प्रति आदर और सम्मान की भावना है।

गाँधी जी शक्तियों के विकेंद्रीकरण और पंचायत–राज के समर्थक थे वही बाबा साहेब देश की एकता और अखण्डता के हित मे एकात्मक शासन प्रणाली का समर्थन किया और वीर पूजा का विरोध करते हुए लोकतंत्रीय सरकार सबसे बड़ा खतरा बताया। लोकतंत्र के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा – जातिवाद, जिसके बारे में बाबा साहेब ने बताया कि यह सामाजिक जीवन मे लोकतंत्र स्थापित नहीं सकते है यदि हो भी जाएगा तो ज्यादा दिन तक नही टिकेगा। राजनीति बहुमत साम्प्रदायिक बहुमत में अन्तर करते हुए अम्बेडकर ने आगे कहा कि राजनीतिक बहुमत का सदस्य राजनीति कार्यवाही में कोई योगदान करने की अपेक्षाकृत स्वतन्त्र होता है परन्तु साम्प्रदायिक बहुमत का सदस्य केवल वही राजनीतिक कार्यवाही कर सकता है जो विशेष सम्प्रदाय में जन्म लेने के कारण उसके लिए निर्धारित करती है। पंचायत राज को अस्वीकार करते हुए गांव शासन की इकाई बना देने पर व्यक्ति का अस्तित्व दब जाता है गाँव मे केवल स्थानीय एंव संकीर्ण हित की बात सोची जाती है। गांव हमारे जहालत, तंगदिली और सम्प्रदाय के अड्डे है ग्राम प्रशासन के पुनरुत्थान का विचार विनाशकारी है। इस सम्बंध में उनका दृष्टिकोण पंड़ित जवाहर लाल नेहरू की तरह था।

संविधानवाद समान्यतः संविधान पर आधारित विचारधारा है जिसका मूल अर्थ यही है कि शासन संचालन संविधान के प्रावधानों के अनुरूप हो। व्यवहार में संविधानवाद शासन के ऊपर एक प्रकार की प्रभावी अंकुश लगाने की व्यवस्था है ताकि शासन तानाशाही का रूप न हो सके और जनता के वे राजनीतिक आदर्श सुरक्षित रहे जिनकी प्राप्ति के लिए वे राज्य कर अधीन रहना स्वीकार करते है। जनता के राजनीतिक आदर्शो व आकांक्षाओं को अभिव्यक्ति संविधान में होती है। संविधानवाद जनता के आधार – भूत मांगो, आकांक्षाओं और मूल्यों की व्यवहार में उपलब्धि है। इसी अर्थ में संविधानवाद संविधान के नियमों के अनुरूप शासन संचालन से अधिक हो जाता है। क्योंकि एक तानाशाही शासन व्यवस्था भी संविधान के नियमों के अनुरूप चल सकती है जहाँ संविधान का सरोकार जनता के हितों, आकांक्षाओं व आदर्शो के बजाय स्वंय तानाशाह के हितों व आदर्शो को पोषक करने वाली होती है। इस तरह संविधानवाद लोकतंत्र की भावना के निकट है। संविधानवाद स्वंय लोकतांत्रिक मूल्यों की गारंटी सुनिश्चित करने वाली व शासन को लोकतंत्र की भावना के अनुरूप चलाने वाली जनता के राजनीतिक आकांक्षाओं और आदर्शों को पूरा करने वाली व्यवस्था है।

बाबा साहेब भारत में पहले सिद्धान्तवादी थे। जिन्होंने यह माना था कि यदि राज्य अधिकारों को कायम रखने के लिए कटिबद्ध है तो उसे चाहिए कि वह सुविधावंचितों के लिए राज्य के सवैंधानिक आधार विचार करे। उन्होंने सुविधावंचित लोगों की निर्धारित करने के लिए निश्चित मानदण्ड का विकास किया। उन्होंने सामाजिक रूप से जन्म से उत्पन्न प्रतिकूल अवस्थाओं पर प्रकाश डाला क्योंकि वे प्रकृतिक और वंशागत प्रतिकूल अवस्थाओं से अनभिज्ञ थे, परन्तु उन्होंने जब अनुभव किया कि सार्वजनिक प्रतिकूल अवस्थाएँ प्रभावशाली सामाजिक सम्बन्धों से ही कायम होगा। ये सामाजिक सम्बन्ध स्वाभाविक प्रतिकूल दशाओं में बदलने का प्रयास करते है। वे अपनी पीछे सामान्य रूप से वंचित समूहों के लिए और विशेष रूप से अछूतों के लिए सुरक्षा उपाय की व्यवस्था छोड़ गए उसमें उनकी

चिंताओं में जाति –पात, समूह, धर्म शामिल था इस पर उन्होंने विरोध जताते हुए कहा कि कोई जाति या समूह नही है वे इस मौके पर बन रहे मुकम्मल राष्ट्र के पहले प्रवक्ता के तौर पर बोले कि – यह संविधानवादी अम्बेडकर है, जो स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व के वैश्विक सिंद्धांत पर मन, वचन और कर्म से विश्वास करते है।

एक अखण्ड राष्ट्र की परिभाषा बाबा साहेब फ्रांस के दार्शनिक अन्र्स्ट रेनन से लेते है, रेनन नहीं मानते कि एक नस्ल, जाति, भाषा, धर्म, भूगोल या साझा स्वार्थ किसी जनसमुदाय को राष्ट्र बना सकता है। इसी आधार पर बाबा साहेब ने एक पवित्र राष्ट्र का विचार है, जिसमें हर सदस्य का साझा है। इसलिए संविधान सभा के आख़िरी भाषण में बाबा साहेब ने आर्थिक और सामाजिक गैर बराबरी के खात्मे को राष्ट्रीय एजेंडे के रूप सामने लाते है। उनकी कामना थी संवैधानिक संस्थाएं वंचित लोगो को लिए अवसरों का रास्ता खोलती है जो लोकतंत्र की हिस्सेदारी होती है राष्ट्रीय एकता के लिए बेहद महत्वपूर्ण है। इसलिए संविधान के मूल अधिकारों के अध्याय में अवसरों की समानता के सिद्धांत को स्वीकार करते हुए भी विशेष अधिकार का प्रावधान किया गया है जहाँ से आरक्षण का सिद्धांत भी पनपता है। भारत करोड़ों की आबादी वाले में वंचित जाति समूहों के हर सदस्य को नौकरी देने के लिए नही है बल्कि इसका मकसद यह है कि वंचित जातियों को महसूस हो सके कि देश में मौजूद अवसरों में उनका भी हिस्सा और देश चलाने में उनका भी योगदान है। इसलिए संविधान में अल्पसंख्यको, आदिवासियों, महिलाओं सबका रखता हुआ नजर आता है। बाबा साहेब ने 22 दिसम्बर 1952 में हुए पूना में वकीलों की एक सभा मे बोलते हुए कहा था कि – लोकतंत्र शासन की वह पद्धति है जिसमें लोगो के सामाजिक और आर्थिक जीवन मे बदलाव बैगर खूनखराबे के सम्भव है। उनका विचार यह था यदि देश मे लोकतंत्र कायम हो जाएगी तो उसे तीन बातों को हमेशा ध्यान रखना जरूरी होगा। जो यह कि हमें सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए केवल संविधानिक विधि का सहारा लेना चाहिए। इसमें कोई ढील नही देनी चाहिए इसका अर्थ यह भी था कि गाँधीजी ने सविनय अवज्ञा, असहयोग और सत्याग्रह का जो रास्ता दिखाया था, वह सही रास्ता नही था बाबा साहेब के अनुसार इसका अनुशरण हमें तब करना चाहिए जब सामाजिक और आर्थिक मकसद की पूर्ति के अन्य सब रास्ते बंद हो चुके हो वरना ये विधियां समाज को शान्ति के बजाय अराजकता के गर्त में धकेल देगी। दूसरी बात हमें अपनी स्वतन्त्रता को महापुरुषों के चरणों मे अर्पित नहीं कर देना चाहिए कोई इंसान किसी के प्रति कृ तज्ञता प्रकट करने के लिए आत्म सम्मान को दांव पर नहीं लगा सकता, कोई स्त्री किसी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए अपने सतीत्व को दांव पर नही लगा सकती बाबा साहेब ने भारत में लोकतंत्र की दुदर्शा का कारण यह नही था कि यहाँ के मतदाता निरक्षर थे इसका असली कारण यह था कि यहाँ के नेतृत्व मतदाताओं को पालतू पशुओं की तरह हाँकने में विश्वास करता था। उसे विधि के शासन और लोकतंत्रीय प्रक्रिया में कोई अभिरुचि नही थी।

लोकतंत्र व संविधानवाद पर डॉ0 अम्बेडकर के विचारों की उपयुक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि लोकतंत्र के प्रति उनकी आस्था इस विश्वास पर आधारित था कि लोकतांत्रिक शासन–प्रणाली व संविधानवाद के आधार पर ही भारत मे शांत सामाजिक, आर्थिक क्रांति सम्भव है। लोकतंत्र के समावेशी चरित्र पर उनका बल इस बात का प्रभाव है कि अल्पमत को बहुमत से घबराने की कोई आवश्यता नही है क्योंकि अल्पमत के सुरक्षा की भावना ही लोकतंत्र का आधार स्तम्भ है। बहुमत को सदैव अल्पमत के दृष्टिकोण का सम्मान करना चाहिए। संसदीय लोकतंत्र की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि समाज मे सामाजिक आर्थिक विषमताएं अधिक चौडी न हो जिसमें किसी तरह के भेद – भाव की कोई गुजाइंश न हो और यदि ऐसा नही होता है तो सामाजिक, आर्थिक दरार खूनी क्रांति को जन्म दे सकती है। लोकतंत्र के सफल संचालन के लिए डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने इस बात पर बल दिया कि शासन संचालन किसी के सनक पर आधारित नही होना चाहिए अपितु यह संविधान के प्रावधान और संविधानवाद की भावना के अनुरूप होना चाहिये। वर्तमान सन्दर्भ में बाबा साहेब के उपयुक्त विचारों का महत्व

स्पष्ट हो जाता है जब हम देखते है कि लोकतांत्रिक संस्थाएं आज पहले से कही अधिक दबावों का सामना कर रही है। ऐसे में बाबा साहेब के उपयुक्त विचार सामान्य जनों के साथ ही शासन के लिए भी मार्गदर्शी सिंद्धान्तों के रूप में उभर कर सामने आते हैं।

सन्दर्भ

1. अम्बेडकर, बी0आर0, (1987), राइटिंग एण्ड स्पिचेज, बम्बई : महाराष्ट्र सरकार प्रकाशन (वॉल्यूम :1 और 3)
2. अम्बेडकर, बी0आर0 (1988), कांग्रेस और गांधी ने अछूतों के लिए क्या किया ?, (अनुवादक) जगन्नाथ कुरीन, लखनऊ : समता साहित्य प्रकाशन
3. अम्बेडकर, बी0आर0 (2018), जाति का विनाश, (अनुवादक) राजकिशोर, नई दिल्लीः फारवर्ड प्रेस
4. गाबा, ओम प्रकाश (1999), भारतीय राजनीति विचारक, नोएडा : मयूर पेपर बैक्स
5. जिलयोट, ईलिनोर (1992), फ्रॉम अनटचेबल टू दलितः एस्सेस ऑन दि अम्बेडकर मूवमेंट, नई दिल्लीः मनोहर प्रेस
6. दास, भगवान (1998), बाबा साहेब डॉ0 भीमराव अम्बेडकरः एक परिचय एक सन्देश, लखनऊः दलित लिबरेशन टूडे प्रकाशन
7. यादव गीता (2018), भारतीय राजनीतिक एंव सामाजिक समस्याएँ, नई दिल्लीः इम्पायर बुक्स इंटरनेशनल
8. यादव, वीरेंद्र सिंह (संपा) (2011), समतामूलक समाज एवं सामाजिक परिवर्तन के युगपुरुषः डॉ0 भीमराव अम्बेडकर, नई दिल्लीः ओमेगा प्रकाशन
9. रोड्रिग्ज, वेलेरियन (संपा), (2000), दी इसेंशियल राइटिंग ऑफ बी0आर0 अम्बेडकर, नई दिल्लीः आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
10. रोड्रिग्ज, वेलेरियन (2008), बी0आर0 अम्बेडकर, इन इग्नू, आधुनिक भारत मे सामाजिक और राजनीतिक चिंतन, नई दिल्लीः इग्नू
11. लियये, मधु (2002), बाबा साहेब अम्बेडकर – एक चिंतन, दिल्लीः आत्मराम एन्ड सन्स
12. शास्त्री, धर्मवीर (1990), डॉ0 भीम राव अम्बेडकर और दलित आंदोलन, दिल्लीः शेष साहित्य प्रकाशन
13. सिंह, आर0 जी0 (2002), डॉ0 अम्बेडकर के सामाजिक विचार, भोपालः मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ आकदमी
14. सिंह, मोहन (2008), डॉ0 भीम राव अम्बेडकरः व्यक्तित्व के कुछ पहलू, इलाहाबादः लोकभारती प्रकाशन (चतुर्थ संस्करण)
15. सिंह, रघुवर (2000), डॉ0 अम्बेडकर और दलित चेतना, दिल्लीः कामना प्रकाशन
16. सूचना एंव जनसम्पर्क विभाग, उ0 प्र0 (1993), डॉ0 बाबा साहेब अम्बेडकरः लेख एंव भाषण, लखनऊ

❑❑

लोकतंत्र का प्रहरी मीडिया को आत्मलोकन की जरूरत

सुरेश कुमार
शोधार्थी
टी.डी.पी.जी कॉलेज जौनपुर, उ0प्र0

ऐसे समय मे जब मीडिया की निष्पक्षता पर सवाल खड़े हो रहे है तब इसकी भूमिका का निष्पक्ष तरीके से पड़ताल किया जाना आवश्यक हो जाता है, क्योकि इसी पर लोकतंत्र का भविष्य टिका हुआ है, जबकि मीडिया को लोकतंत्र का प्रहरी समझा जाता है।

किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मीडिया जनता के अधिकारों एंव स्वतन्त्रताओं का प्रहरी है। सरकार की नीतियों का सहृदय आलोचक भी है और जनता तक सूचनाएं पहुँचाने का सर्वाधिक सशक्त माध्यम है। मीडिया स्वतन्त्र हो, यह लोकतांत्रिक राष्ट्र के अस्तित्व के लिए अनिवार्य शर्त होता है। इसका कारण यह है कि यदि मीडिया स्वतन्त्र नही है, तो विभिन्न प्रकार के विचारों की अभिव्यक्ति मिल सकती है, न ही सरकार की गलत व सही नीतियों का प्रकाशन हो सकता है और न ही राष्ट्र में स्वस्थ जनमत का निर्माण हो सकता है। मीडिया की इस बहुमुखी भूमिका को देखते हुए 'हैराल्ड लास्की' ने तो आपातकाल परिस्थितियों में भी मीडिया की स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध लगाने को अवांछनीय माना है। इस संदर्भ में वे लिखते भी है – '" एक नियंत्रणहीन कार्यपालिका अधिनायकवाद की समस्त प्राकृतिक भूल करेगी। यह अर्द्ध– दैवीय भूमिका का निर्वाह करेगी। मीडिया पर प्रतिबंध लगाने से तो जनता उन सूचनाओ सही वंचित हो जाएगी, जिनके आधार पर जनता को सरकार का मूल्यांकन करती है।"'

आधुनिक काल मे मीडिया मानव मूल्यों की गरिमा बनाये रखने के लिए तथा मनुष्य के राजनैतिक एंव सामाजिक अधिकारों की रक्षा करने का सशक्त माध्यम है। इसलिए मीडिया लोकतंत्र का प्रहरी समझा जाता है। सरकार के तीन अन्य स्तम्भ व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एंव न्यायपालिका है। भारतीय संविधान में प्रेस के लिए कोई अलग से उपबन्ध या अनुच्छेद नही है। लेकिन अनुच्छेद 19(1) (क) के वाक और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार के अन्तर्गत इसे रखा गया है। यद्यपि संविधान ने वाक एंव अभिव्यक्ति शब्द को पूर्णतः परिभाषित नही किया गया है। लेकिन अनेक न्यायिक निर्णयों में संविधान के अनुच्छेद 19(1) (क) के अन्तर्गत प्रेस की स्वतंत्रता को भी स्वीकार किया गया और वाक एंव अभिव्यक्ति शब्द को परिभाषित किया गया। इंडियन एक्सप्रेस समाचार पत्र (बम्बई) प्राइवेट के मामले में प्रेस की स्वतंत्रता को वाक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को भी एक अंग माना गया है।

यदि वर्तमान समय में मीडिया वह कड़ी है जो एक देश को सम्पूर्ण विश्व से जोड़ती है। प्रसिद्ध तानाशाह नेपोलियन का विचार था कि मीडिया अत्याचार, अन्याय और अदक्षता के खिलाफ एक सशक्त शास्त्र है। 'नेपोलियन' ने कहा है कि – '"मैं हज़ारों संगीनों की अपेक्षा तीन समाचार पत्रों से अधिक डरता हूँ।"' नेपोलियन के ये कथन स्वमेव समाचार पत्रों की महत्ता को स्पष्ट करते हुए नेपोलियन के विचार को 'अकबर इलाहाबादी' ने इस रूप में

व्यक्त किया है – ''खींचों न कमान को न तलवार निकालो, जब तोप मुकाबिल न हो तो अखबार निकालो।'' आधुनिक समय मे जहाँ एक तरफ मीडिया जनता को देश की राजनैतिक, समाचार एंव आर्थिक स्थितियों की जानकारी देता है। वही विदेश में घटी घटनाओ और बदलते सामाजिक एंव राजनैतिक मूल्यों से भी अवगत कराता है। आज से ही नही क्रांति के प्रारम्भिक अवस्था से ही देश के सवंत्रता के प्रति जनमानस में क्रांति की चेतना जाग्रत करने का वीणा मीडिया ने ही उठाया है। लोकतंत्र के प्रहरी के रूप में ख्याति प्राप्त विद्वान 'लिपमैन' ने समाचार – पत्र को लोकतंत्र का धर्मग्रन्थ तक कह डाला है। वही पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति 'थॉमस जैफरसन' ने भी मीडिया की महत्व पर बल दिया और कहा – '"यदि हमें सरकार युक्त किन्तु मीडिया विहीन राष्ट्र और मीडिया युक्त सरकार विहीन राष्ट्र में किसी एक को चुनना हो तो मैं निःसंकोच बाद वाली व्यवस्था का ही चयन करुंगा।"'

वास्तव में मीडिया लोगो के इच्छा विरोध समर्थन एंव आलोचना सब कुछ प्रकट करती है। यही कारण है कि बड़े से बड़ा राजनेता भी प्रेस से भयभीत रहता है। सूचना प्रौद्योगिकीय के विकास के काल मे मीडिया का अर्थ अत्यधिक व्यापक हो गया है। आज मीडिया का अर्थ समस्त साधनों से लिया जाता है। दूसरे शब्दों में अगर कहे तो समाचार संवहन की वाहन गाड़ी के प्रिन्ट मीडिया व इलेक्ट्रॉनिक मीडिया नामक दो पहिया है।

आज तहलका, बोफोर्स काण्ड तो पुराने हो गये, टी0वी0 खोलते ही हर – न्यूज़ चैनल पर हर घण्टे ब्रेकिंग न्यूज़ जैसा कुछ आइटम कुछ – न – कुछ धमाल मचाता रहता है और यह सोचने को मजबूर कर देता है कि क्या सच मे भारतीय राजनीति जो लोकतांत्रिक है इतनी दूषित है या हो गई है ?और इतना ही नही वर्तमान समय में जो चल रहा है अगर इसे देखे राम मन्दिर मुद्दा, हिन्दू – मुस्लिम का मुद्दा, शहरों के नामकरण का मुद्दा, कश्मीर पाकिस्तान का विवाद आदि ऐसे तमाम मामलो को सिर्फ मीडिया को दिखता है ?क्या, यह नही दिखता जो रामलीला मैदान तथा जंतरमंतर पर किसानों के आंदोलन, दम तोड़ते आत्म – हत्या करते किसान, भात–भात करते दम तोड़ देने वाली उस किशोरी की चीख, रोजगार हीनता के कारण भटकते नौजवान युवा, राफेल डील के सन्दर्भ में तर्क संगत बाते जैसी चीजों को क्यों नही मीडिया बढ़–चढ़ कर भागीदारी करती। भ्रष्टाचार के खत्म करने का जो सपना जो अन्ना हज़ारे देखते थे या सरकार भ्रष्टाचार को खत्म मुक्त करने की बात कही थी वह कहा है। लोकपाल आज अस्तित्व में क्यो नही आ पायी इस पर मीडिया अभियान क्यो नही चलाया। यहाँ तक कि न्यायपालिका में भ्रष्टाचार की घटना भी यदा – कदा आती रहती है। इतना तक नही बल्कि न्यायधीश न्याय मांगने के लिए मीडिया के सामने आये लेकिन उस पर भी तर्क संगत बहस नही हुई। आजकल मीडिया खबर के नाम पेड़ न्यूज़ चलाती है और जोर शोर से व्यवसायिकरण चल रहा है। खबरे गढ़ी जा रही है। खबर के नाम पर सनसनी फलाई जा रही है। यहाँ तक कि मुख्यधारा के लोकप्रिय चैनल व अखबार भी सरकार की चापलूसी करने में अमादा है। वही राष्ट्र की सुरक्षा से जुड़े राफेल डील आरोप–प्रत्यारोप लगते आ रहे है। क्या इस मीडिया को आगे आना और सच्चाई को सामने लाना चाहिए। इस सब चीजों से निपटने के लिये कही न कही हम सबको आत्म मूल्यांकन करने की जरूरत है। मीडिया को पीत–पत्रकारिता से कोसो दूर रहकर बचना चाहिए। और यह कर्तव्यबोध होना चाहिए कि तथ्यों तो तोड़–मरोड़ कर प्रस्तुत नही करना चाहिए तथा ऐसी खबरे न प्रकाशित करे। जो देश की एकता, अखण्डता एंव शांति पर आंच पहुँचा सके। इसके लिए एक आचार संहिता का विकास होना चाहिए। जिससे मीडिया अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का दुरुपयोग न कर सके। केवल एक स्वस्थ मीडिया ही लोकतंत्र का सच्चा प्रहरी होता है।

सन्दर्भ

1. फाडिया, बी0एल0 – ''राजनीति विज्ञान प्रश्न पत्र''–
2. तिवारी, रामचन्द्र (2002), – ''जनसंचार और हिंदी पत्रकारिता''– इलाहाबाद : वि0 वि0 प्रकाशन
3. चोपड़ा, धनंजय (2006), – ''सिर्फ समाचार''– इलाहाबाद : वि0 वि0 इंस्टीट्यूट ऑफ प्रोफेशनल स्टडीज़
4. ''कृतिका'' – (2016), 09 (17 – 18), जनवरी – दिसम्बर
5. वैदिक, वेदप्रताप – ''हिंदी पत्रकारिता विविध आयाम''
6. विद्रोही, राम – (2006) – ''नए दौर की पत्रकारिता,''– ग्वालियर अमृत प्रकाशन
7. राजकिशोर, (2006) – ''समकालीन पत्रकारिता मूल्यांकन और मुद्दे''– जयपुर : वाणी प्रकाशन
8. पचौरी, सुधीर – ''नया मीडिया और नये मुद्दे ''– वाणी प्रकाशन
9. यादव, राजेश – ''हंस'' – 33 सितम्बर 2018
10. टी0 डी0 एस0, आलोक – ''सांस्कृतिक पत्रकारिता''–
12. दौड़, तुकाराम (2011), –''मास मीडिया और समाज''– योजना, अगस्त
13. http@@www-bbc-com
14. http@@www-webduniya-com

❑❑

डॉ0 राम मनोहर लोहिया के विचारों की प्रासंगिकता

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव
अध्यक्ष, एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

एक समाजवादी बुद्धिजीवी के रूप में डॉ0 लोहिया जी ने सूक्ष्म चिन्तन व मनन किया। आप भारत ही नहीं विश्व की जनता के लिए समर्पित यथार्थवादी व समाजवादी आन्दोलन के कीर्ति स्तम्भ थे। कृषकों व ग्रामों की स्थिति में सुधार लाने के लिए विकेन्द्रित समाजवाद की स्थापना करना चाहते थे। धर्म व राजनीति का समन्वित उपयोग चाहते थे। आपके अनुसार–राजनीति के बिना धर्म निष्प्राण हो जाता है तथा धर्म के बिना राजनीति में संकट आ जाता है। धर्म को 'दीर्घकालीन राजनीति' तथा राजनीति को 'अल्पकालीन धर्म' कहते थे। सत्य का महत्व समाज की व्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण था। छल–कपट, आलस्य, कर्त्तव्यनिष्ठा का अभाव, निकम्मेपन को सामाजिक प्रगति व सामाजिक न्याय में बाधा मानते थे। कर्म, वाणी, मन से हिंसा दूर करने के लिए गांधीवादी विचारधारा से असहमत नहीं थे। डॉ0 लोहिया अंग्रेजी को दासता का प्रतीक मानते थे और हिन्दी को राष्ट्रीय सम्पर्क सूत्र में बनाना चाहते थे। सीमा सुरक्षा व आन्तरिक सुरक्षा, बेकारी, मंहगाई, गंगा प्रदूषण मुक्ति, धर्म व राजनीति का समन्वय, अमीरी–गरीबी के मध्य दूरी में कमी लाना, पुरूष वर्चस्व वाले समाज में नारी की उपेक्षा व परिणाम, सामाजिक बुराइयों, हिमालय बचाओ, बेरोजगारों व काम दो, बेरोजगारी भत्ता दो, निर्धन व पीड़ित पिछड़ों व नारी उत्थान के विशेष अवसर, सर्वधर्म समभाव भी मानसिकता विकसित की जाय, हिन्दू– मुस्लिम के बीच मधुर सम्बन्धों की स्थापना आदि विचार सार्थक व प्रासंगिक हैं। लोहिया पर गाँधीवादी की अमिट छाप थी। और समाजवादी विचारध ाारा के गरम प्रवक्ता थे। डॉ0 लोहिया ने मुसलमानों के लिए कहा कि गजनी, गोरी व बाबर उनके पुरखें नहीं अपितु हमलावर थे। हिन्दुओं के लिए कहा कि रजिया, जायसी, रसखान, कबीर आदि मुसलमान नहीं हमारे पुरखे थे। गांधीजी के सत्याग्रह अहिंसा के अखण्ड समर्थक थे, लेकिन गाँधीवाद को अधूरा दर्शन मानते थे, वे समाजवादी थे, लेकिन मार्क्स को एकांगी मानते थे, वे राष्ट्रवादी थे लेकिन विश्व सरकार का सपना देखते थे । वे आधुनिकतम आधुनिक थे लेकिन आधुनिक सभ्यता को बदलने का प्रयत्न करते रहते थे। वे विद्रोही एवं क्रान्तिकारी थे। लेकिन शान्ति व अहिंसा के अनूठे उपासक थे।

डॉ0 लोहिया के आर्थिक चिन्तन दृष्टि के तीन पड़ाव हैं प्रथम मार्क्स का जिसे वह अर्द्धसत्य वाला चिन्तक मानते थे। मार्क्स के वर्ग संघर्ष को डॉ0 लोहिया भारतीय जाति व्यवस्था के सम्बन्ध में उचित नहीं मानते थे। द्वितीय चिन्तन दृष्टि गांधी, जिसे वह पूर्णतया मानवीय चिन्तन स्वीकार करते थे और उनके जीवन दर्शन और उनकी आर्थिक नीति को भारतीय परिप्रेक्ष्य में महत्त्वपूर्ण मानते थे लेकिन उसमें वह व्यावहारिक मानवीय सन्दर्भ को व्यापक यथार्थ से जोड़ते हैं तृतीय चिन्तन दृष्टि है समाजवाद को वह मार्क्स की परिभाषाओं की सीमा में आबद्ध नहीं करते बल्कि समाजवाद को वह प्रत्येक देश के इतिहास, भूगोल, समाज की अनिवार्यताओं के साथ जोड़कर प्रासंगिक बनाते हैं। शास्त्रीय और सैद्धान्तिक रूप में डॉ0 लोहिया जिस अर्थ व्यवस्था की व्याख्या करते हैं उसके आधारभूत तत्त्व इस प्रकार हैं, जाति और वर्ग उन्मूलन, विकेन्द्रीकरण, राष्ट्रीकरण, भूमि वितरण, अन्न सेना का गठन, भू सेना का निर्माण, खर्च पर सीमा, आय नीति, मूल्य नीति आदि। डॉ0 लोहिया ने इस आधारों को अपनी दृष्टि में रखते हुये, व्यक्ति, गाँव और छोटी मशीनों को केन्द्र में रखकर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। डॉ0 राम मनोहर लोहिय सम्पूर्ण चिन्तन का मूल उद्देश्य था कि व्यक्ति और गाँव को कैसे प्रतिभा सम्पन्न और अर्थ सम्पन्न बनाया जा सकता है।

डॉ0 लोहिया के अनुसार निजी स्वामित्व की सीमा वहीं तक रह सकती है, जहाँ तक कि वह अपनी सीमित

आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके तथा अन्य व्यक्तियों को शोषित श्रमिक की स्थिति न दे सकें। सामाजीकृत तथा निजी सम्पत्ति के सह सम्बन्ध का विवेचन करते हुये लोहिया ने लिखा है, ''सामूहिक सम्पत्ति का अपरिमित विकास और निजी सम्पत्ति पर अपेक्षित अंकुश इन दोनों का मेल ही संतोष की स्थिति ला सकता है, जब अपूर्ण इच्छाओं की पीड़ा दुःख नहीं देगी।'' डॉ0 लोहिया ने समाजीकृत व्यवस्था को प्रभावी बनाने के लिये चार कदम उठाने के सुझाव दिये हैं : प्रथम, लोकसभा के सभी सदस्यों की सम्पत्ति के एक भाग का चाहे वह जमीन हो, कारखाना हो, मकान हो राष्ट्रीयकरण कर दिया जाये। इस पर शक्ति से अमल हेतु उल्लंघनकर्ता के लिये जेल का प्रावधान रखा जाये। डॉ0 लोहिया ने माना कि, जब तक जेल की सजा का बहुतायत से प्रयोग नहीं किया जाता, तब तक हिन्दुस्तान का आर्थिक जीवन सुधार नहीं सकता। द्वितीय, लोहिया के अनुसार चार्टर्ड–एकाउन्टेन्टों का राष्ट्रीयकरण किया जाये, क्योंकि पूँजीपतियों के अधीनस्थ स्थिति होने के कारण ये घपलों तथा गलतियों को कानूनी औचित्य का दर्जा प्रदान कर देते हैं। तृतीय, सभी विदेशी कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाये। डॉ0 लोहिया के अनुसार इन कम्पनियों की लाभ दर बहुत अधिक 35 प्रतिशत तक है। ऐसी स्थिति राष्ट्र के लिये बहुत खतरनाक होगी। साथ ही राश्ट्रीय राजनीति में भी काफी हस्तक्षेप होता है, क्योंकि इन कम्पनियों में जिन लोगों को नौकरियाँ मिलती हैं, उनमें नौकरशाह, मंत्री, और बड़े लोगों के परिजनों की संख्या का प्रतिशत बहुत अधिक होता है।

डॉ0 राम मनोहर लोहिया जी का आर्थिक चिंतन सशक्त है। यद्यपि मार्क्स ने औद्योगीकरण को पूँजीवाद का संवाद माना परन्तु डॉ0 लोहिया का लक्ष्य समाजवादी समाज की स्थापना करना है किन्तु इसके लिए पूँजीवाद का सह अस्तित्व अनिवार्य है। दोनों परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। एक–दूसरे के अभाव में कोई टिका नहीं रह सकता। नेहरू ने मार्क्सवादी लेनिनवादी समाजवाद की तुलना में मिश्रित अर्थव्यवस्था वाले समाजवाद को ज्यादा महत्व दिया किन्तु उत्पादन के संसाधनों का केन्द्रीकरण और बढ़ती मंहगाई के कारण मजदूरों की संख्या में वृद्धि के साथ ही साथ जातिवाद, लघु उद्योग बनाम बड़े उद्योग, भ्रष्टाचार तथा चुनावी जोड़–तोड़ के लिए जातीय समीकरणों के जाल से नहीं बच पाए। डा0 लोहिया के समाजवाद में मुख्य मुद्दा अर्थ एवं आर्थिक शक्तियों के वितरण तथा जातिवाद और उसके विभेदकारी कुप्रथाओं को समाप्त करना था। जहाँ पर मार्क्स ने सामाजिक और आर्थिक साम्य के लिए क्रांति द्वारा परिवर्तन की बात की, वहीं पर डॉ0 लोहिया भी क्रांतिकारी हैं किन्तु शांतिपूर्ण ढंग से समाज में परिवर्तन लाने के पक्षधर रहे हैं।

डॉ0 लोहिया ने औद्योगीकरण हेतु मध्यम मार्ग को अपनाया। डॉ0 लोहिया ने न तो गांधी जी के चरखा जैसे उपकरण को अपनाया और न नेहरू जी के समान आधुनिक भारी उद्योगों को। उन्होंने लघु मशीन के सिद्धांत को अपनाया। डॉ0 लोहिया ने छोटी मशीन के औचित्य को सिद्ध करते हुए कहा था कि ये मशीनें भारतीय स्थिति की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप हैं। छोटी मशीनों की व्यवस्था से अल्पपूंजी वाले कुटीर और लघु उद्योग धन्धे चला सकते हैं और आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं। डॉ0 लोहिया का मानना था कि भारतवर्ष में आर्थिक विकेन्द्रीकरण लघु और कुटीर उद्योगों के बिना सम्भव नहीं है, क्योंकि साधनहीन जनता को एक ओर शोषक विशाल उद्योगों से छुटकारा चाहिए तो दूसरी ओर स्वयं का विकास करने के लिए लघु उद्योग और नियंत्रित उपकरण चाहिए। समाज–कल्याण सम्पत्ति के समाजीकरण पर आधारित है। सम्पत्ति के प्रयोग में ही नहीं वरन् समस्त जीवन मूल्यों में वैयक्तिक हित की समाप्ति ही समाजवाद का लक्ष्य है। डॉ0 लोहिया व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक महत्व देते थे, इसीलिए उन्होंने सम्पत्ति के समाजीकरण पर काफी बल दिया। वे जानते थे कि इसके बिना वास्तविक लक्ष्य की प्राप्ति नहीं की जा सकती। डॉ0 लोहिया इस प्रकार की व्यवस्था के पक्षपाती थे कि जिसमें एक तरफ सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण हो। डॉ0 लोहिया ने राष्ट्रीयकृत उद्योगों की सुव्यवस्था, कठिन नियंत्रण, आय पर उचित नियंत्रण तथा वितरण एवं प्रबंधों के सरल जीवन पर बल देकर राष्ट्रीयकरण की सार्थकता प्रमाणित की है। इसके अलावा उन्होंने राष्ट्रीयकरण के सबसे बड़े दोष केन्द्रीयकरण को समाप्त कर इसकी एक बड़ी बुराई दूर

कर दी है। वास्तविकता भी है कि उपर्युक्त तत्वों के बिना समाजीकरण का कोई महत्व नहीं रह जाता।

डॉ0 लोहिया एक ऐसी क्रान्ति के पक्षधर थे जिसके द्वारा नारी को प्रत्येक स्तर पर पुरुषों के समकक्ष अधिकार प्राप्त हो। डॉ0 लोहिया ने 'सात क्रान्तियों' की अवधारणा में नर–नारी समानता को प्रमुख स्थान दिया है। अक्सर सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य करने वाली महिलाओं पर सामान्यतया चरित्रगत संदेह व्यक्त किये जाते हैं, परन्तु डॉ0 लोहिया का कहना था कि ''इस प्रकार के आरोप हमारे ओछेपन एवं नकारात्मक मानसिकता को सूचित करते हैं। आज के प्रगतिशील हिन्दुस्तान में किसी औरत की निंदा नहीं करनी चाहिए। केवल जहाँ तक विचार का सम्बन्ध है उसमें भी मैं समझता हूँ, बहुत सँभलकर उसके बारे में कुछ बोलना चाहिए।'' समाज में नारी की मानसिक दृढ़ता एवं बुद्धि चातुर्य के विषय में भारतीय पौराणिक चरित्रों का सहारा लेते हुए एक चर्चित भाषण में डॉ0 लोहिया ने कहा था कि भारतीय नारी का आदर्श सावित्री नहीं हो सकती, जिसका एक मात्र गुण उसकी पति–निष्ठा है बल्कि द्रौपदी होना चाहिए जो क्रियाशील है, विद्वान है, बहस करने वाली है और कृष्ण के साथ बराबरी का सखा संबंध रखी हैं। और जिसने कभी भी किसी पुरुष से दिमागी हार नहीं मानी। नारी को गठरी के समान नहीं बनाना है, अपितु नारी इतनी शक्तिशाली होनी चाहिए कि वह वक्त आने पर पुरुष को गठरी बनाकर अपने साथ ले चले।'' डा0 राममनोहर लोहिया ने नारी के सम्मान को बढ़ाया व उसकी राष्ट्र–निर्माण में योगदान करने की शक्ति को बखूबी पहचाना। अपनी रंगभेद विरोधी नीति में डॉ0 लोहिया ने श्वेत एवं अश्वेत महिला के बीच होने वाले पक्षपातपूर्ण बर्ताव का खुलकर विरोध किया है। डॉ0 लोहिया का मानना था कि नारी को जागरुक होना चाहिए तथा इस तथ्य को महसूस करना चाहिए कि वह राष्ट्र–निर्माण तथा शांतिमय विश्व की परिकल्पना की असली वाहिका है। सार्वजनिक जीवन ही नहीं अपितु व्यक्तिगत एवं वैवाहिक जीवन में भी नारी के प्रति होने वाले अन्यायों का उन्होंने जमकर विरोध किया तथा पारिवारिक निजी रिश्तों में भी स्त्री को समता एवं स्वायत्तता देने की पुरजोर वकालत की है। दहेज प्रथा जैसी घृणित व्यवस्था पर उन्होंने करारा प्रहार किया है। नारी सशक्तीकरण के लिए उन्होंने पर्दा प्रथा को हटाने व सार्वजनिक जीवन में स्त्री की सक्रिय सहभागिता की आवश्यकता पर बल दिया है। महिलाओं के लिए उत्तम शिक्षा व अच्छे स्वास्थ्य की व्यवस्था करना वे सरकार का कर्त्तव्य निरूपित करते हैं ताकि राष्ट्र निर्माण के लिए एक सशक्त नारी आगे आ सके।

डॉ0 लोहिया के अनुसार भारतीय समाज में स्त्री का क्षेत्र बहुत ही सीमित समझा जाता है। डॉ. लोहिया के अनुसार नारी की रसोई की गुलामी वीभत्स है और चूल्हे का धुँआ तो और भी वीभत्स है। खाना बनाने के लिए उनका बाजवी समय बांध देना चाहिए....। भारतीय समाज में स्त्री–पुरूष जन्म में ही असमानता है। पुरूष का जन्म सुखद और स्त्री का जन्म दुखद समझा जाता है। इसका कारण भारतीय समाज में व्याप्त दहेज प्रथा है। दहेज प्रथा का अंत होना चाहिए। स्त्री स्वतन्त्रता का प्रतिपादन करते हुए डॉ0 लोहिया ने कहा कि 'आधुनिक पुरूष स्त्री को एक ओर सजीव, क्रान्तिपूर्ण और ज्ञानी चाहता है, दूसरी ओर अधीनस्थ भी। पुरूष की यह परस्पर विरोधी भावनाएं बहुत ही विडम्बनापूर्ण, काल्पनिक एवं अवास्तविक हैं। क्योंकि परतन्त्रता की स्थिति में ज्ञान व सजीवता का प्रार्दुभाव कैसे वह कर सकता है। या तो औरत को बनाओ परतन्त्र, तब मोह छोड़ दो। औरत को अच्छा बनाने का। या फिर बनाओ स्वतन्त्र। तब वह बढ़िया होगी, जिस तरह से मर्द बढ़िया होगा।'

डॉ0 लोहिया की चिन्तन धारा कभी देशकाल की सीमा की बंदी नहीं रही। विश्व की रचना और विकास के बारे में उनकी अनोखी व अद्वितीय दृष्टि थी। इसलिये डॉ0 लोहिया ने सदा ही विश्व नागरिकता का सपना देखा था। डॉ0 लोहिया मानव मात्र को किसी देश नहीं बल्कि विश्व का नागरिक मानते थे। डॉ0 लोहिया की चाह थी कि एक से दूसरे देश में आने जाने के लिये किसी तरह की भी कानूनी रूकावट न हो और सम्पूर्ण पृथ्वी के किसी भी अंश को अपना मानकर कोई भी कहीं आ–जा सकने के लिये पूरी तरह आजाद हो। डॉ0 लोहिया एक नयी सभ्यता और संस्कृति के दृष्टा और निर्माता थे। लेकिन आधुनिक युग जहाँ उनके दर्शन की उपेक्षा नहीं कर सका,

वहीं उन्हें पूरी तरह आत्मसात भी नहीं कर सका। अपनी प्रखरता, ओजस्विता, मौलिकता, विस्तार और व्यापक गुणों के कारण डॉ0 लोहिया अधिकांशतः लोगों की पकड़ से बाहर रहे। इसका एक कारण है–जो लोग डॉ0 लोहिया के विचारों को ऊपरी सतही ढंग से ग्रहण करना चाहते हैं उनके लिये डॉ0 लोहिया बहुत भारी पड़ते हैं। गहरी दृष्टि से ही डॉ0 लोहिया के विचारों, कथनों और कर्मों के भीतर के उस सूत्र को पकड़ा जा सकता है जो सूत्र डॉ0 लोहिया–विचार की विशेषताएं हैं, वही सूत्र ही तो उनकी विचार पद्धति हैं।

आज डॉ0 लोहिया जी के एक–एक शब्द न केवल भारतीय राजनैतिक मानचित्र पर सही उतर रहें हैं बल्कि विश्व के रंगमंच पर जो कुछ घट रहा है उसमें डॉ0 लोहिया जी की दृष्टि समाहित है । भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम और भारत के समाजवादी आन्दोलन में डॉ0 राम मनोहर लोहिया का एक विशिष्ट स्थान रहा है। भारत की राजनीति में परिवर्तन की पहल डॉ0 लोहिया ने ही की थी। आदर्श को कोरेपन से मुक्त करके उसे व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए सारा देश उनका ऋणी रहेगा। लोहिया के विचारों में भारतीयता के साथ–साथ वर्तमान परिस्थितियों के बुनियादी कर्त्तव्यों की सर्वथा मौलिक शक्ति दिखाई देती है। डॉ0 नीलम संजीव रेड्डी(पूर्व राष्ट्रपति) के शब्दों में कहे तो 'इस देश में अनेक नेता हुये, लोहिया केवल एक हुआ'।

भारत से बाहर विदेश जाने के समय तक डॉ0 लोहिया जी का बौद्धिक दृष्टिकोण भी निश्चित हो गया था, जिसके तीन मुख्य पक्ष थे–मानवीयता, तर्कबुद्धि और संकल्प। ये तीनों मिलकर ही मनुष्य की आंतरिक शक्ति का निर्माण करते हैं, लोहिया जी का बौद्धिक व्यक्तित्व इन तीनों के मिश्रण से ही निखर पाया। जर्मनी में खोज कार्य करते हुए डॉ0 राम मनोहर लोहिया ने अपनी आँखों के सामने नाजीवाद का उदय देखा। उसके हाथों साम्यवाद और समाजवाद को पराजित होते देखा और वे इस नतीजे पर पहुँचे कि नाजीवाद और साम्यवाद बुरे सिद्धांत हैं, लेकिन उनमें संकल्प–शक्ति है। समाजवाद अच्छा सिद्धांत है, पर उसमें संकल्प–शक्ति नहीं है। संकल्प शक्ति वाला समाजवाद, ही डॉ0 लोहिया का वैचारिक लक्ष्य बना।

21 अक्टूबर सन् 1961 ई0 को एथेंस में विश्व समाज का एक सम्मेलन आयोजित था। डॉ0 लोहिया को उसमे आमंत्रित किया गया था। उस सम्मेलन में डॉ0 लोहिया के विचारों का बड़ा स्वागत किया गया । डॉ0 लोहिया का दिमाग साफ था। प्रेस वालों ने कहा–आप तो सिकन्दर के देश में जा रहे हैं लोहिया ने छूटते ही कहा–नहीं मैं सुकरात के देश में जा रहा हूँ। सम्मेलन में डॉ0 लोहिया के विचारों को लोगों ने बड़े ध्यान से सुना । उन्होंने वहाँ सप्तक्रान्ति की व्याख्या की और कहा कि जब तक यह सातों क्रान्तियां पूर्ण नही होतीं तब तक न तो विश्व मे शान्ति स्थापित हो सकती है और न ही समाज में समता । विश्व को युद्ध के आतंक और हथियारों के अभिशाप से मुक्त कराने के लिए सप्तक्रान्ति की विशेष आवश्यकता है। अमेरिका और यूरोप के मशीनीकरण और चमक–दमक वाली संस्कृति की आलोचना करते हुए लोहिया ने कहा– यह ख्याल रहे कि अमरीका और यूरोप की चमक दमक मशीनी पुर्जों की अनोखी निपुणता पर टिकी हुई है। हमें डर इस बात से लगता है कि वे लोग जो गोरी चमड़ी वाले नही हैं अपने अपने मुल्कों में गोरी चमड़ी वालों की तड़क–भड़क की नकल तो कर रहे हैं लेकिन मशीन पुर्जों के ज्ञान और उनकी निपुणता को पकड़ पाने में नितान्त असमर्थ हैं। वस्तुतः देश की मिटटी और संस्कृति से जुड़कर ही मशीन के संस्कार बनते हैं । जो मशीनीकरण विदेशी उधार खाते पर होता है उस पर आाश्रित होकर जीने और गुलामी की जकड़न की अनिवार्यता होती है डा0 लोहिया गुलामी के इस नये रूप के खिलाफ थे।

राजनीतिक चिन्तन की दृष्टि मे डॉ0 लोहिया के मौलिक अधिकार सम्बन्धी विचारों का आज विशेष महत्व है । मानव जीवन के सभ्य तथा सुसंस्कृत, विकास के लिए वे मौलिक अधिकारों के अस्तित्व को एक जनतान्त्रिक समाज के अनिवार्य अंग के रूप मे स्वीकार करते हैं। इस दृष्टि से वे राज्य को उनका निर्माता नही संरक्षक के रूप में ही चित्रित करते हैं। डॉ0 लोहिया की इस दृष्टि से मान्यता है कि मौलिक अधिकार मनुष्य मनुष्य होने के नाते स्वाभाविक रूप से प्राप्त होते हैं। इन मौलिक अधिकारों में वे प्रत्येक मनुष्य की बौद्धिक स्वतंत्रता अर्थात उसकी

चिन्तन और अभिव्यक्ति की निरपेक्ष स्वतंत्रता का समर्थन करते हैं तथा यह मानते हैं कि यदि राज्य द्वारा उस पर किसी प्रकार का अंकुश लगाया जाता है तो व्यक्ति को उसका प्रतिरोध करने के कारण वे इस प्रतिरोधक चरित्र को अनिवार्य रूप से अहिंसक मानते हैं तथा इस हेतु सविनय अवज्ञा या सिविल नाफरानी का समर्थन करते हैं।

धर्म और राजनीति के बिगड़ते हुए रूप को देखकर डॉ0 लोहिया ने गहन चिन्तन किया क्योंकि नेताओं का धर्म और राजनीति को लेकर कलह बढ़ गया था। वस्तुतः डॉ0 लोहिया का विचार था , धर्म केवल एक है वह है मानव धर्म। डॉ0 लोहिया ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करते थे और न मूर्ति के रूप में उसकी पूजा का। मन्दिर को वे एक ढकोसला मानते थे। वे मनुष्य को ईश्वर का नहीं वरन् ईश्वर को मनुश्यकृत मानते थे। वे ईश्वर, पूजा–पाठ, तीर्थाटन, स्वर्ग–नरक तथा मोक्ष–मुक्ति आदि में कतई विश्वास नहीं रखते थे, और न ही उन्हे धर्म का सच्चा विषय मानते थे। इसके विपरीत गाँधी जी के समान दरिद्र में ही भगवान के दर्शन करते थे। गिरों एवं असहायों को उठाना, प्यासों को पानी देना, भूखे को रोटी और बेघर को घर देना ही उनके अनुसार धर्म के सच्चे विषय थे। धर्म को वे बाह्य आडम्बर और कर्मकाण्ड का विशय नहीं वरन् नैतिक गुणों का पर्यायवाची मानते थे, एवं इसी रूप में धर्म की व्याख्या करते थे। डॉ0 लोहिया ने अपने रामायण लेख में इस पर चिन्ता व्यक्त की है– वे धर्म को दीर्घ कालीन राजनीति मानते थे तथा राजनीति को अल्पकालीन धर्म। धर्म उनके लिए जीवन मे उतारने की चीज थी। परस्पर संघर्ष की नहीं। उनका विचार था –धर्म जब बुरा बनता है तो वह झगड़ालू बनता जाता है और जब राजनीति बुरी बनती है। तो वह मुर्दा बनकर श्मशान बन जाती है। वे धर्म और राजनीति को अलग–अलग रखना चाहते थे। डॉ0 लोहिया दोनों के घालमेल के खिलाफ थे। यदि दोनों का घालमेल होगा तो भ्रष्टता होना स्वाभाविक है जैसा कि डॉ0 लोहिया ने कहा है–''धर्म और राजनीति के अविवेकी मिलन से दोनों भ्रष्ट होते हैं। किसी एक धर्म को किसी एक राजनीति से कभी नहीं मिलना चाहिए। इसी से साम्प्रदायिक कट्रता जन्मती है। धर्म और राजनीति को अलग रखने का सबसे बड़ा मतलब यही है कि साम्प्रदायिक मिलन और कट्टरता से बचें। एक और मतलब है कि राजनीति के दण्ड और धर्म की व्यवस्थाओं को अलग रखना चाहिए। नही ंतो दकियानूसी बढ़ सकती है और अत्याचार भी। इतना ध्यान में रखते हुए भी जरूरी है कि धर्म और राजनीति एक दूसरे से सम्पर्क न तोडें, मर्यादा निभाते हुए।''

डॉ0 लोहिया दो चीजों को संसार में बड़ा मोहक मानते थे और कहते थे–''ईश्वर की कभी मुझे जरूरत महसूस नहीं हुई और स्त्री की कृपा मुझे मिली नहीं'' । स्वाभाविक रूप से डॉ0 लोहिया प्रचलित धर्म के संकीर्ण और संस्थागत रूप के विरोधी थे एवं इसे निहित स्वार्थों की पूर्ति का एक साधन मानते थे। अतः राज्य और राजनीतिक दृष्टि से वे धार्मिक राज्य के स्थान पर एक धर्म–निरपेक्ष राज्य का समर्थन करते थे जो धर्मविरोधी नहीं वरन् सर्वधर्म समभाव पर आधारित था। इसीलिये वे धर्म को सद्भावना और सद्कर्म का स्रोत मानते थे और राजनीति को वह सद्भावना और सद्कर्म में बाधक तत्वों को समाप्त करने का साधन मानते थे। इस प्रकार डॉ0 लोहिया धर्म को रचनात्मक दृष्टि से मनुष्य के नैतिक उत्थान का साधन मानते थे। डॉ0 लोहिया धर्म के प्रति उदारवादी दृष्टिकोण को अपनाने वाले व्यक्ति थे। उन्हें धर्मान्धता, कट्टरता और रूढिवादिता पसन्द नहीं थी। सत्य और अंहिसा के प्रति उनकी .... श्रद्धा थी। उनका विश्वास था कि ये ही बिन्दु ऐसे हैं जिनपर किसी को एतराज नहीं होना चाहिए।

डॉ0 लोहिया का मानना था कि युवाओं को सत्ता के संदर्भ में लगाम की भूमिका निभाने की क्षमता रखनी चाहिए। डॉ0 लोहिया का मानना था कि 40 वर्ष से कम उम्र के लोगों को सत्ता की राजनीति में नहीं पड़ना चाहिए लेकिन सत्ता को खुले सांड की तरह समाज को चरने–खाने के लिए भी नही छोड़ देना चाहिए। डॉ0 लोहिया ने विद्यार्थियो को जो विचार गोष्ठी के लिए जो विषय दिये हैं वे आज और भी ज्यादा प्रासंगिक हैं।

अपने व्यस्त राजनीतिक एवं सामाजिक कार्यक्रमों के बावजूद लोहिया पढ़ने–लिखने का समय निकाल ही लेते थे। डॉ0 राममनोहर लोहिया ने अनेकों विषयों पर अपने विचार लेख एवं पुस्तकों के रूप में प्रकाशित कीं। उनकी

कुछ प्रसिद्ध रचनाएं अंग्रेजी हटाओ, इतिहास चक्र, देश, विदेश नीति–कुछ पहलू, धर्म पर एक दृष्टि, भारतीय शिल्प,भारत विभाजन के गुनहगार, मार्क्सवाद और समाजवाद, राग, जिम्मेदारी की भावना, अनुपात की समझ, समलक्ष्य, समबोध, समदृष्टि, सच, कर्म, प्रतिकार और चरित्र निर्माण आह्वान, समाजवादी चिंतन, संसदीय आचरण, संपूर्ण और संभव बराबरी और दूसरे भाषण, हिन्दू बनाम हिन्दू, कृष्ण, वाल्मीकि और वशिष्ठ, क्रांति के लिए संगठन, नया मन, नया समाज, सात क्रांतियाँ, सुधारों अथवा टूटो इस प्रकार हैं।

आज की सियासत की सबसे बड़ी समस्या पार्टियों में आंतरिक लोकतंत्र का घोर अभाव और राजनीतिक संगठनों में आई अंदरूनी गिरावट है। अभी के दौर में कोई भी नेता संसदीय भागीदारी की कसौटियों पर खरा उतरने में सक्षम नहीं है। संघर्ष से संगठन बनाने की क्षमता तो अब बीते दिनों की बात हो गई है। लेकिन डॉ0 राममनोहर लोहिया संसदीय राजनीतिक और संघर्ष व रचनात्मक कार्यों की मार्फत सांगठनिक क्षमता के सशक्त प्रमाण थे। संसदीय भागीदारी शुरू करने से पहले ही उन्होंने सियासत में अपनी जगह हासिल कर ली थी। तभी तो 13 अगस्त सन् 1963 ई0 को जब उत्तर प्रदेश की फर्रूखाबाद लोकसभा सीट से चुनाव जीतकर डॉ0 लोहिया लोकसभा पहुंचे तो उनके स्वागत में पूरा सदन उठ खडा हुआ। आज जब पूरा विपक्ष भी सरकार के आगे कमतर साबित होता है, उस जमाने में अकेले डॉ0 लोहिया जी का नाम ही सत्ता विरोधी संगठन बन गया था। भारतीय समाज में व्याप्त असमानता की गहरी खाई को पाटने के लिए समता और सपन्नता के मकसद के साथ डॉ0 लोहिया ने समाजवाद का झंडा उस वक्त उठाया था जब कांग्रेस में धुर दक्षिणपंथी खेमा हावी था। जो किसी भी नये सिद्धान्त को स्वीकार करने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं था लेकिन जन्मजात विद्रोही डॉ0 लोहिया जी ने कांग्रेस के यथास्थितिवादी नेतृत्व को कड़ी चुनौती दी।

डॉ0 लोहिया का मशहूर जुमला है कि 'जिंदा कौमें पांच साल इंतजार नहीं करतीं ? लेकिन हम पिछले पैंसठ सालों से इंतजार कर रहे हैं। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और कच्छ से लेकर कामरूप तक फैले इतने बड़े मुल्क में अलग–अलग विचारधाराओं को मानने वाले लोग बसते हैं लेकिन एक अरब से ज्यादा की आबादी को वैकल्पिक रास्ता दिखाने वाले किसी भारतीय विचार की कल्पना डॉ0 लोहिया के बगैर संभव नहीं है। आजादी मिलने के तुरंत बाद सदियों से सताए लोगों के मन में सत्ता से उम्मीदें जगी थीं। एक नवस्वतंत्र राष्ट्र के लिए ऐसा स्वाभाविक भी था। लेकिन गुजरते वक्त के साथ वे तमाम उम्मीदें पीछे छूट गईं जिन्हें पूरा करने के लिए आजादी की जंग लड़ी गई थी। नतीजा–देश समस्याओं का अंबार बन गया। और आजादी के इतने साल बाद भी भारत की जनता के हिस्से कुछ न आया। अब तो हालात ऐसे हैं कि बेहाल भूखी जनता के मुंह से भ्रश्टाचारी सुख के निवाला निकालने में लगे हैं। ऐसे वक्त में युवाओं को एक बड़ा तबका जब निराश करता है तो उसे बस डॉ0 राममनोहर लोहिया ही नजर आते हैं।

सन्दर्भ

- भाटिया पी.आर.–भारतीय राजनीतिक विचारक, यूनिवर्सल बुक डिपो, आगरा (उ.प्र)
- कुमार आनन्द, कुमार, मनोज–तिब्बत, हिमालय, भारत, चीन और डॉ0 राममनोहर लोहिया – अनामिका प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2013
- पाल डॉ0 ओमनाग – प्रमुख राजनीतिक विचारक एवं विचार धाराएँ, कमल प्रकाशन, इंदौर (म.प्र.)
- मंत्री गणेश – मार्क्स, गाँधी और समसामयिक संदर्भ, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
- The Secret Film, www.Thesecret.tv (रहस्य)
- इंटरनेट से डब्ल्यू.डब्ल्यू.डब्ल्यू.गूगल एवं विकीपीडिया का जिन्होंने डॉ0 राम मनोहर लोहिया पर अद्यतन सामग्री उपलब्धि कराई।
- त्रिपाठी अरविन्द–स्त्री मुक्ति : लोहिया की आवाज कथा क्रम, अप्रैल–जून 2011

- शरद ओंकार (संपादक)–समता और संपन्नता (डॉ0 राममनोहर लोहिया के अप्रकाशित लेख)–लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण :1996
- वर्मा श्रीकांत रचनावली,खंड–3
- कथाक्रम, अप्रैल–जून 2011
- कपूर मस्तराम–डॉ0 राममनोहर लोहिया, वर्तमान संदर्भ में, अनामिका प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2009
- सिंघवी लक्ष्मीमल्ल–साहित्य अमृत, संपादक,अक्टूबर 2007
- कथाक्रम–डॉ0 लोहिया–मार्क्स, गाँधी, सोशलिज्म–अक्टूबर–जून 2011
- लोहिया डॉ0 राममनोहर–राममनोहर लोहिया–हिन्दू बनाम हिन्दू, लोकभारती प्रकाशन, चतुर्थ पेपर बैक्स संस्करण : 2009
- सिंह डॉ0 नामवर द्वारा मार्च 2010 को नई दिल्ली में आयोजित संगोश्ठी में दिये गये वक्तव्य पर आधारित
- शरण शंकर–विखंडन की संस्कृति, संपादकीय,जनसत्ता समाचार पत्र, 31 दिसंबर 2011
- पाठक नरेन्द्र–कर्परी ठाकुर और समाजवाद–मेधा बुक्स–एक्स–11 नवीन शाहदरा दिल्ली–110032,प्र सं.2008
- दीक्षित ताराचन्द–डा0 राममनोहर लोहिया का समाजवादी दर्शन–लोकभारती प्रकाशन महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद–211001, पहला पेपरबैक्स संस्करण–2013
- लोहिया डॉ0 राममनोहर–डा0 लोहिया : इतिहास–चक्र (Wheel of History)] लोकभारती प्रकाशन,इलाहाबाद,संस्करण :1992
- लोहिया डॉ0 राममनोहर–हिन्दू बनाम हिन्दू, लोकभारती प्रकाशन, ,इलाहाबाद, चतुर्थ पेपर बैक्स संस्करण : 2009

❑❑

लघु व कुटीर उद्यमों में महिला सशक्तीकरण एवं रोजगार

डॉ0 रमेश चन्द्र
असि0 प्रोफेसर–वाणिज्य
महामाया राजकीय महाविद्यालय, कौशाम्बी

ग्रामीण विकास सतत् आर्थिक वृद्धि और मानव विकास का मूलमंत्र है। जब ग्रामीण अर्थव्यवस्था में गति आती है तो गरीबी का उन्मूलन होता है और कृषि एवं गैर–कृषि में विभिन्न प्रकार की आजीविका के अवसर प्राप्त होते हैं। वैश्विक शक्ति के रूप में भारत का उद्‌भव ग्रामीण गरीबी और विकास की चुनौती से निपटने की उसकी क्षमता पर निर्भर करता है। भातीय अर्थव्यवस्था में लघु एवं कुटीर उद्यमों का एक महत्वपूर्ण योगदान शुरू से रहा है। वर्तमान आधुनिक परिवर्तनशील समय में उद्यमों में महिलाओं का योगदान वृद्धिशील पाया गया है। जिसमें करोड़ों की संख्या में महिलाएँ कार्यरत हैं। सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्योग क्षेत्र के विकास और प्रोत्साहन का प्राथमिक उत्तरदायित्व राज्य सरकारों का होता है। भारतीय सरकार राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास और रोजगार सृजन हेतु लघु एवं कुटीर उद्यम क्षेत्र के महत्व और उसकी क्षमता को पहचानती है। केन्द्र सरकार लघु एवं कुटीर उद्यमों के विकास एवं प्रोत्साहन के लिए अखिल भारतीय स्तर पर कदम उठाने और नीति निर्माण की आवश्यकता को महसूस करती है और ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में कुशल एवं अकुशल महिलाओं के उत्थान हेतु सरकार नित्य सहयोग की भूमिका में है।

भारत सरकार ने लघु एवं कुटीर उद्यमों के विकास को प्रोत्साहन देने के लिए महिलाओं के हित को ध्यान में रखकर कई कदम उठाए हैं जिससे महिला उद्यमी की सहभागिता उद्योगों में निरन्तर वृद्धिशील पायी गई है। इनमें क्रेडिट की उपलब्धता, प्रौद्योगिकी उन्नयन के लिए योजनाएं, गुणवत्ता सुधार और विपणन में सहयोग शामिल है। मुद्रा, स्टैण्ड–अप इंडिया, लघु एवं कुटीर उद्यमों के लिए क्रेडिट गारंटी फण्ड के कवरेज में वृद्धि और एम0एस0एम0ई0 को बैकों के द्वारा प्रदान किए जाने वाले ऋण सहयोग में काफी वृद्धि हुई है। इसके साथ ही साथ भारत के आर्थिक परिप्रेक्ष्य में इस क्षेत्र का रणनीतिक महत्व भी है। अब तक लगभग 90% औद्योगिक इकाईयाँ इस क्षेत्र से सम्बन्धित है, जो भारत की 40% श्रम शक्ति को रोजगार प्रदान करती है। आठ हजार से अधिक पारंपरिक और हाईटेक वस्तुओं का उत्पाद इस क्षेत्र में होता है। भाारतीय अर्थव्यवस्था विकास की दिशा में अग्रसर है। जो सन् 2025 तक इसके पाँच खरब डॉलर की अर्थव्यवस्था बनने की सम्भावना है। ऐसे में इस क्षेत्र का विकास और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। इसीलिए सरकार की यह प्राथमिकता है कि नई नीतियों, योजनाओं और कार्यक्रमों के जरिए एम0एस0एम0ई0 क्षेत्र के इकोसिस्टम को मजबूती दें। इस वर्ष के 6482 करोड़ रूपये के बजटीय आवंटन से यह स्पष्ट होता है कि जो पिछले वर्ष के मुकाबले 3465 करोड़ रूपये के आवंटन के मुकाबले अत्याधिक है।

विभिन्न नीतिगत उपायों से एम0एस0एम0ई0 को और अधिक मजबूत करना सरकार की प्राथमिकता में है। एम0एस0एम0ई0 सेक्टर की अन्तनिहित क्षमता के बाजवूद अनेक चुनौतियाँ मौजूद है। समयानुसार ऋण न मिलना, बुनियादी ढांचे की कमी, पुरानी तकनीक, बाजार तक पहुँच न होना आदि समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसके विपरीत चीन, फिलीपीन्स, थाईलैण्ड आदि जैसे पड़ोसी देशों में बढ़ती होड़ के कारण वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धात्मकता को बरकरार रखने के लिए मजबूत रणनीति सरकार तैयार करने में जुटी है। सरकार के कदम कुछ निम्न विन्दुवार है :–

- एम0एस0एम0ई0 को वित्त प्रदान करना।

- प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम।
- प्रौद्योगिकी उन्नयन।
- खादी और ग्रामोद्योग।
- नए बाजार की खोज।
- मानव पूँजी एवं स्रोत।

दीनदयाल अन्त्योदय योजना के तहत सूक्ष्म एवं ऋण योजना महिलाओं के स्वयंसहायता समूहों (एस0एच0जी0) के साथ कार्य करते हुए राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन आर्थिक गतिविधियों के लिए परिवारों को संस्थागत ऋण प्रदान करता है। 31 लाख से अधिक महिला स्वयंसहायता समूह और लगभग 3.6 करोड़ महिलाएं इस मिशन से जुड़ी हुई हैं। स्वयं सहायता समूहों, ग्राम संगठन, सामुदायिक संसाधन व्यक्ति के माध्यम से प्रभावी सामाजिक सम्पत्ति विकसित करने के बाद अब इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि आर्थिक गतिविधियाँ इन समूहों को अधिकोषण से जोड़ा जाय। महिला एवं स्वयं सहायता समूहों ने पिछले तीन वर्षों में 85000 करोड़ से अधिक का ऋण लिया है। इसमें एक बड़ी रकम का उपयोग गरीब परिवारों की इनकम को सुधाारने और विविधतापूर्ण रोजगार प्रदान करने के लिए किया गया है। मनरेगा के संसाधनों का उपयोग भेड़ बकरियों, कुक्कुट पालन के लिए शेड्स और डेयरी शेड्स बनाने के लिए किया गया है। जनता के लिए कुएँ व तालाब बनाए गये हैं ताकि अधिक आय अर्जित करने के लिए विविध प्रकार के रोजगार का सृजन किया जा सके। भारत सरकार की योजना से ग्रामीण अंचल की महिलाओं को अधिकतम रोजगार उपलब्ध कराकर आजीविका से जीवन की काया पलट की ओर दृष्टियोजना रही है। ऐसी योजनाओं से 1.50 लाख महिलाएं ऐसी हैं जो खुद गरीबी से उठकर अब सी0आर0जी0 (समुदाय संसाधन व्यक्ति) बन गई हैं और सामाजिक परिवर्तन की मुहिम को आगे बढ़ा रही हैं। स्थायी कृषि को बढ़ावा देने, अधिकोषण सेवाएं प्रदान करने, पशु देखभाल के लिए पैरा वेंट्स का कैडर तैयार करने जैसे कामों के अलावा वे महिला समूहों के लिए बुक कीपिंग और लेखांकन संभालने की जिम्मेदारी भी बखूबी निभा रही हैं। ऐसा लगता है कि मानो ग्रामीण अंचल की तस्वीर ही बदल गयी है। वर्तमान समय में महिलाएं शिक्षा के क्षेत्र में अत्यधिक रोजगार प्राप्त कर रही हैं और वे अपनी कुशलता से भारत के जी0डी0पी0 में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर रही हैं। जिससे भारत की अर्थव्यवस्था में महिलाओं का योगदान सराहनीय है और देश विकास की गति में अग्रसर है।

सन्दर्भ सूची

1. कुरूक्षेत्र ग्रामीण विकास दिसम्बर 2016।
2. 21वी सदी में भारतीय अर्थव्यवस्था विमल जालान।
3. योजना पत्रिका मई 2017।
4. योजना पत्रिका जनवरी 2018।
5. भारतीय अर्थव्यवस्था ए0एन0 अग्रवाल।
6. www.pib.mic.in/newsite.

❑❑

49

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र की भूमिका

डॉ0 नरेन्द्र प्रताप सिंह
असि0 प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

भारतीय अर्थव्यवस्था के प्राथमिक क्षेत्र का एक प्रमुख घटक कृषि है। देश स्वतंत्र होने के समय भारतीय कृषि अत्यन्त पिछड़ी अवस्था में थी। परम्परागत तरीके से खेती करने के कारण उत्पादकता बहुत ही न्यून थी। भारतीय किसान को कोई तकनीकी ज्ञान न होने से, खेती के लिए मात्र पुराने तरीकों का ही प्रयोग करना होता था। कृषि कार्य केवल जीवन यापन के लिए ही किये जाते थे।

आजादी के समय भारत में सकल घरेलू उत्पाद में कृषि एवं संबद्ध क्षेत्रों का योगदान लगभग 50 प्रतिशत था। उत्तरोन्तर सकल घरेलू उत्पाद में कृषि एवं संबद्ध क्षेत्रों की भागीदारी निरन्तर न्यून होती जा रही है। वर्तमान समय में सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र की भागीदारी लगभग 17 प्रतिशत है।

भारत में कृषि उत्पादन लगातार बढ़ रहा है। आज भारतीय कृषि भारत की खाद्यान आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम है। भारतीय कृषि का महत्व इस बात से स्पष्ट दिखाई देता है कि दुनिया के मात्र 2.4 प्रतिशत क्षेत्र और 4.2 प्रतिशत पानी से हम विश्व की लगभग 17.5 प्रतिशत आबादी का भरण–पोषण करने में सक्षम हैं। आज भारत ने खाद्यानों में आत्म निर्भरता प्राप्त कर ली है।

कृषि क्षेत्र का भारत के सकल घरेलू उत्पाद में महत्वपूर्ण योगदान है। वित्तीय वर्ष 1950–51 में लगभग 51 प्रतिशत का योगदान था जो वित्तीय वर्ष 2011–12 में यह 14.2 प्रतिशत रह गया। सकल घरेलू उत्पाद में कृषि के प्रतिशत योगदान में कमी अर्थव्यवस्था में कृषि के महत्व में गिरावट को नहीं दर्शाती है, अपितु यह मात्र अर्थव्यवस्था के द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्रों की सापेक्षिक वृद्धि को दर्शाती है। भारतीय कृषि का देश के लिए महत्वपूर्ण स्थान है। इसके महत्व को निम्न बिन्दुओं से समझा जा सकता है–

रोजगार के अवसर – भारतीय कृषि रोजगार का सबसे बड़ा एवं महत्वपूर्ण स्रोत है। भारत की आज भी लगभग 50 प्रतिशत कार्यशील जनसंख्या कृषि क्षेत्र में कार्यरत है, जबकि अन्य देशों में ऐसा नहीं है। भारत की कार्यशील जनसंख्या के पुरूष 46 प्रतिशत और महिलाएं 65 प्रतिशत कृषि क्षेत्र में कार्य करती हैं। जबकि अमेरिका में 2 प्रतिशत तथा जापान में 4 प्रतिशत कार्यशील जनसंख्या कृषि क्षेत्र में कार्यरत है।

बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए खाद्यानों की आपूर्ति – भारतीय कृषि में लगातार उत्पादकता में वृद्धि हो रही है। वित्तीय वर्ष 2015–16 में कुल खाद्यानों का उत्पादन 251.57 मिलियन टन रहा जो कि वित्तीय वर्ष 2016–17 में बढ़कर 273.38 मिलियन टन हो गया। आज भारत को अपनी बढ़ती हुई जनसंख्या के भरण–पोषण हेतु आयात पर निर्भर होने की आवश्यकता नहीं है जबकि वास्तविकता यह है कि आज कृषि आधिक्य के कारण, निर्यात भी किया जा रहा है।

औद्योगिक विकास में कृषि क्षेत्र की भूमिका – औद्योगिक क्षेत्र के समृद्धि और विकास में कृषि से कच्चेमाल की आपूर्ति की जा रही है जिसके अभाव में उत्पादन सम्भव नहीं है। कृषि क्षेत्र के द्वारा औद्योगिक कच्चे मालों, जैसे–कपड़ा उद्योग को कपास, तेल उद्योग को तिलहन, चीनी उद्योग को गन्ने की आपूर्ति की जाती है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में महत्वपूर्ण योगदान – प्राचीन काल से ही कृषि से उत्पादन का विदेशी व्यापार होता चला आ रहा है। कृषि भारत के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कृषि से चाय, जूट, काजू,

तंबाकू, कॉफी और मसाले का निर्यात भारी मात्रा में करके विदेशी मुद्रा को प्राप्त करने में मदद मिल रही है।

गरीबी निवारण में महत्वपूर्ण योगदान – भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में आधी से अधिक श्रमशक्ति कृषि क्षेत्र में कार्यरत है। कृषि आज भी गरीबों का सहारा बनी हुई है।

पूँजी निर्माण में सहायक – भारत की पूँजी निर्माण में कृषि क्षेत्र का अभूतपूर्व सहयोग आरम्भ से ही रहा है। कृषि उत्पादों के उत्पादन के रूप में तथा गैर– कृषि उत्पादों की मांग के रूप में भारत में कृषि का केन्द्रीय स्थान है। गैर– कृषि उत्पादों की मांग के महत्वपूर्ण स्रोत होने के रूप में कृषि अर्थव्यवस्था के द्वितीयक क्षेत्र में निवेश को प्रेरित करता है। कृषि क्षेत्र में किसी भी प्रकार की मदों से औद्योगिक क्षेत्र में भी मंदी उत्पन्न हो जाती है। इसके परिणाम स्वरूप सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर गंभीर रूप से प्रभावित होती है।

भारतीय कृषि का स्वरूप – मुख्यतः भारतीय कृषि वर्षा पर आधारित है। भारतीय किसान के पास पर्याप्त सिंचाई के साधन न होने से काफी कृषि भूमि बिना जुताई–बुवाई के पड़ी रहती है। जिससे उत्पादकता बहुत अधिक नहीं हो पाती है, इसके स्वरूप या प्रकृति के सम्बन्ध में निम्नलिखित बिन्दु उल्लेखनीय हैं–

1. छोटी (लघु) जोतें – भारत में कृषि जोतों का आकार बहुत ही न्यून है, जिससे उत्पादकता पर असर पड़ता है। लघु जोतों के कारण निम्न समस्या उत्पन्न होती है–

1. कृषि का यंत्रीकरण सम्भव नहीं हो पाता है।
2. किसान सुधार एवं उन्नत प्रोद्योगिकियों के प्रयोग हेतु प्रोत्साहित नहीं हो पाते हैं।
3. बिना बुआई के खेत पड़ रह जाते हैं।

भारत में कृषि जोत के औसत आकार को निम्न प्रकार से दर्शाया जा सकता है–

क्रम संख्या	वर्ष	कृषि जोत का औसत आकार
01	1970–71	2.28 हेक्टेयर
02	2000–01	1.33 हेक्टेयर
03	2005–06	1.23 हेक्टेयर
04	2010–11	1.15 हेक्टेयर

2. कृषि क्षेत्र में बेरोजगारी का अधिक्य – कृषि क्षेत्र में मौसमी बेरोजगारी और प्रच्छन्न बेरोजगारी अधिकाधिक पायी जाती है। एक किसान कृषि में उतने ही दिन काम करता है जितने दिन गेहूं, धान आदि खाद्यानों की बुआई से लेकर कटाई तक की आवश्यकता होती है उसके बाद वह बेरोजगार हो जाता है।

3. भू–स्वामी काश्तकार संघर्ष – भारतीय कृषि के अन्तर्गत, कृषि भूमि के एक बड़े भाग पर काश्तकारों द्वारा कृषि की जाती है। काश्तकार भूमि के स्वामी नहीं होते हैं बल्कि वे भू–स्वामी से भूमि–पट्टे पर कृषि कार्यों हेतु ले लेते हैं। आय का एक बड़ा भाग भू–स्वामी के पास होता है। एक काश्तकार को निम्नतम भाग प्राप्त होता है।

4. जीवन निर्वाह हेतु कृषि – भारत में अधिकतर लघु एवं सीमान्त किसान हैं। किसान का प्राथमिक उद्देश्य अपने परिवार हेतु जीवन–यापन के लिए कृषि उत्पादन करना होता है, न कि लाभ कमाने हेतु।

5. वर्षा पर निर्भरता – भारतीय कृषि बरसात पर निर्भर है। सिचांई के पर्याप्त साधन आज भी नहीं हैं। खेती के लिए नहरें भी सिचांई का साधन नहीं बन पा रही है। अक्सर नहरें सूखी पड़ी रहती हैं अथवा अधिकांश नहरें बंद हो गई हैं। जो भी ट्यूबवेल बने हैं वह पर्याप्त नहीं हैं जिससे किसान को आसमान की ओर देखना पड़ता है। यही कारण है कि कृषि उत्पादकता में बहुत अधिक बढ़ोत्तरी नहीं हो पा रही है।

6. परम्परागत तकनीक – भारतीय किसान आज भी खेती के लिए पुराने तरीके ही प्रयोग में ला रहे हैं। वही हाथ से बुआई, कटाई, निराई। आधुनिक तकनीक से काफी दूर हैं भारतीय किसान। जिसके मुख्य कारण धन की कमी तथा अशिक्षा ही है।

7. आधुनिक कृषि आगतों का अभाव – आज भी भारतीय कृषि में आधुनिक आगतों यथा–उन्नत किस्म में बीज, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक दवाइयों का उपयोग बहुत कम किया जाता है जिससे उत्पादकता पर असर पड़ता है।

8. खेतों का अपखंडन और उप–विभाजन की समस्या – भारतीय कृषि के अन्तर्गत यह पाया जाता है कि विभिन्न कानूनी, सामाजिक एवं आर्थिक कारणों से जोतों का उप–विभाजन एवं अपखण्डन है। कृषि भूमि का कई छोटे–छोटे टुकड़ों में विभाजन होना कृषि भूमि का उप–विभाजन है। जबकि अपखंडन के अर्न्तगत एक व्यक्ति का कुल भू–स्वामित्व अलग–अलग स्थानों पर बिखर जाता है। इस कारण किसान अपनी कृषि भूमि में सुधार नहीं कर पाता है, जिससे निम्न उत्पादकता की समस्या बनी रहती है।

9. कृषि उत्पादन में क्षेत्रीय विषमता – भारत में विद्यमान विस्तृत भोगोलिक विषमताओं एवं जलवायु के अनुसार कृषि उत्पादकता में भारी अन्तर दिखाई पड़ता है।

विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि क्षेत्र की वृद्धि दर

क्रम संख्या	योजना	वृद्धि दर (प्रतिशत में)
01	पहली पंचवर्षीय योजना 1951–56	2.71
02	दूसरी पंचवर्षीय योजना 1956–61	3.15
03	तीसरी पंचवर्षीय योजना 1961–66	–0.73
04	तीन वर्षीय योजना 1966–69	4.16
05	चौथी पंचवर्षीय योजना 1969–74	2.57
06	पाँचवीं पंचवर्षीय योजना 1974–79	3.28
07	छठी पंचवर्षीय योजना 1980–85	2.52
08	सातवीं पंचवर्षीय योजना 1985–90	3.47
09	दो वर्षीय योजना 1990–92	1.01
10	आठवीं पंचवर्षीय योजना 1992–97	4.72
11	नौवीं पंचवर्षीय योजना 1997–2002	2.44
12	दसवीं पंचवर्षीय योजना 2002–07	2.30
13	ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना 2007–12	3.30
14	बरहवीं पंचवर्षीय योजना 2012–17	4.0 (लक्ष्य तय था)

कृषि उत्पादकता में वृद्धि के उपाय

सिंचाई – कृषि क्षेत्र में उत्पादकता में वृद्धि काफी हद तक कृषि आदानों (Input) एवं उत्पादन की विधियों पर आधारित होता है। इसे निम्न चित्र के माध्यम से दर्शाया जा सकता है–

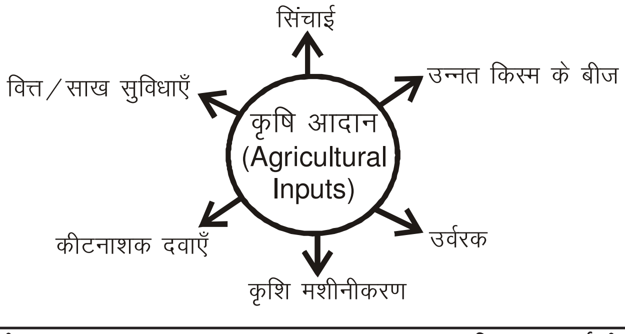

भारत में कृषि उत्पादकता में वृद्धि के लिए हरित क्रान्ति का उल्लेखीय योगदान रहा है। उन्नत किस्म के बीजों, उर्वरकों कीटनाशकों के प्रयोग द्वारा कृषि उत्पादकता में होने वाली वृद्धि के सन्दर्भ में ''हरित–क्रान्ति'' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 1968 में अमेरिकी वैज्ञानिक डॉ0 विलियम गैड के द्वारा किया गया। भारत में हरित–क्रान्ति का श्रेय नोबेल पुरस्कार से सम्मानित अमेरिकी कृषि वैज्ञानिक डॉ0 नार्मन ई. बोरलॉग को दिया जाता है।

भारत में हरित–क्रान्ति के क्षेत्र में डॉ0 एम.एस. स्वामीनाथन का योगदान भी अति महत्वपूर्ण रहा है। वर्ष 1960 के दशक में खाद्यान्न संकट के समस्या के समाधान हेतु 1966–67 में मेक्सिको से लाए गए गेहूँ एवं चावल की अधिक उपज देने वाले बीजों का प्रयोग किया गया जिससे पूर्व की तुलना में प्रति हेक्टेयर कृषि उत्पादन अधिक मात्रा में होना प्रारम्भ हो गया। देश को खाद्य उत्पादन में आत्म निर्भर बनाने हेतु वर्ष 1966–67 में कृषि क्षेत्र में विकास के लिए नई कृषि रणनीति अपनाई गई। भारत में हरित–क्रान्ति की शुरूआत 1966 में खरीफ की फसल से हुई। सघन कृषि कार्यक्रमों को अपनाया गया। इसके अतिरिक्त कृषि क्षेत्र में अनुसंधान एवं प्रशिक्षण, लघु सिचांई कार्यक्रम एवं भूमि संरक्षण जैसे उपाय किये गये। उन उपायों के परिणाम स्वरूप भारत के पश्चिमोत्तर भागों जैसे हरियाणा, पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश इत्यादि में गेहूँ और धान के उत्पादन में तीव्र वृद्धि हुई। इसको भारतीय कृषि के क्षेत्र में हरित–क्रान्ति का नाम दिया गया। आज भारत खाद्यानों की दृष्टि से आत्म निर्भर हो गया है। तथा भारतीय अर्थव्यवस्था में अभूतपूर्व योगदान दे रहा है।

कृषि क्षेत्र के विकास हेतु सरकार द्वारा शुरू की गयी विभिन्न योजनाएं एवं कार्यक्रम–

चूँकि भारत देश कृषि प्रधान देश है इसको ध्यान में रखते हुए भारतीय सरकारें भी निरन्तर कृषि उत्पादकता में वृद्धि हेतु प्रयासरत रहीं हैं। इसके लिए अनेकों सरकारी योजनाएं एवं कार्यक्रम चल रहे हैं जिनमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं–

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना।
प्रधानमंत्री कृषि सिचांई योजना।
मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना।
राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन।
परम्परागत कृषि विकास योजना।
राष्ट्रीय सतत कृषि मिशन आदि।

संदर्भ

- भारतीय अर्थव्यवस्था – वी0के0 पुरी एवं एस0के0 मिश्रा।
- भारतीय आर्थिक संरचना – डॉ0 जे0पी0 मिश्रा।
- भारतीय अर्थव्यवस्था – डॉ0 चतुर्भुज मामोरिया एवं डॉ0 एस0सी0 जैन।
- भारतीय अर्थव्यवस्था – शिव कुमार ओझा।

❖❖

बदलते विश्व की बदलती कूटनीति

मनोज कुमार
प्रवक्ता–राजनीति विज्ञान
आर0पी0टी0कॉलेज गोसांईगंज, लखनऊ एवं पूर्व सदस्य माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड, प्रयागराज

विश्व स्तर पर नये दौर में रष्ट्रों की सोच की समग्रता का आधार बिन्दु अर्थ की नीति की ओर अधिक हो गया है। इसलिए प्रत्येक राष्ट्रों का अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में प्रत्येक निर्णय आर्थिक कूटनीति के रूप में देखा जा सकता है। इसी परिप्रेक्ष्य में भारत, अमेरीका, चीन सहित सभी राष्ट्र अपनी कूटनीति का संचालन आर्थिक हितों के अनुरूप करते नजर आ रहे हैं। विश्व स्तर पर अभी हाल के वर्षों में राष्ट्रों के द्वारा परम्परागत सोच से हटकर जो नीतियां अपनायी गयी उससे यह सोच प्रखर हुई है कि बदलते विश्व में कूटनीति स्तर पर व्यापक परिवर्तन देखा जा सकता है। वर्तमान कूटनीति का मुख्य दद्देश्य आर्थिक हितों को बढावा देना कहना गलत नहीं हेगा। अमेरीका, भारत, चीन सहित अन्य देशों के बीच जो मतभेद उभरे हैं। उसमें कुछ परम्परागत मतभेदों के साथ आर्थिक,व्यापारिक मतभेद के बिन्दु अधिक महत्वपूर्ण है। मतभेद के स्तर की कूटनीति के माध्यम से स्वंय को अधिक लाभप्रद स्थिति में रखना राष्ट्रों की नियति बनती जा रही है जिसे कूटनीतिक सर्वोच्चता के रूप में महिमा मंडित भी किया जा रहा है। अभी हाल का घटनाक्रम सिर्फ चीन– अमेरिका के बीच चल रहे व्यापार युद्ध का नहीं है। मामला एशियाई कूटनीति में सर्वोच्चता हासिल करने का भी है। भारत ने ईरान से तेल आयात पूरी तरह रोकने का फैसला किया है। वहीं ईरान पर अमेरिकी प्रतिबंधों के बावजूद पाकिस्तान के प्रधानमंत्री इमरान खान तेहरान पहुंचे और ईरान से आर्थिक सहयोग बढ़ाने व क्षेत्रीय सहयोग के लिए साथ में काम करने का वादा किया। हालांकि ईरान और पाकिस्तान के बीच लंबे समय से तनाव है। दोनों मुल्क एक दूसरे पर आतंकियों को शरण देने का आरोप लगाते रहे हैं। लेकिन इमरान खान का ईरान दौरा कई मायनों में महत्वपूर्ण था क्योंकि इमरान के लक्ष्य में भारत–ईरान संबंध भी हैं। इमरान ने ईरान के साथ आर्थिक साझेदारी को लेकर बातचीत की, आतंकवाद रोकने पर बातचीत की। दोनों मुंल्कों के बीच ऊर्जा क्षेत्र में सहयोग की बातचीत हुई, ईरान से खरीदी जाने वाली बिजली को लेकर बात हुई। वही अफगानिस्तान, पाकिस्तान और ईरान के बीच क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग बढ़ाने पर भी विचार–विमर्श किया गया। जब भारत अमरीकी दबाव में ईरानी तेल के आयात से पीछे हट रहा है, तब पाकिस्तान ईरानी तेल और गैस आयात पर विचार कर रहा है। सवाल यह है कि पाकिस्तान किस हद तक ईरान पर लगाए गए अमेरिकी प्रतिबंधों को मानेगा।

भारत – अमरीका के बीच व्यापारिक स्तर पर कूटनीतिक उठापटक जारी है। ट्रंप प्रशासन ने व्यापार में वरीयता की सामान्य व्यवस्था के तहत भारत को मिलने वाले प्रशुल्क छूट के लाभ को समाप्त कर दिया है। भारत को यह छूट अमेरिका सामान्य तरजीह व्यवस्था (जीएसपी) के तहत विकासशील देशों को मिलने वाली छूट के तहत देता था। ट्रंप के इस फैसले से भारत का लगभग छह अरब डॉलर का निर्यात प्रभावित होगा। अमेरिकी प्रशासन का यह फैसला भारतीय उद्योग जगत को झटका है। इससे भारत के कई उत्पाद अमेरिका में शुल्क लगने के कारण महंगे होंगे। इनकी प्रतिस्पर्धा की क्षमता कम होगी। ट्रंप ने साफ किया है कि भारत अपने बाजार को अमेरिकी निर्यात के लिए खोले। अगर नहीं खोलेगा तो भविष्य में भारत की मुश्किलें और बढ़ेंगी। ट्रंप का कहना है कि भारत अपने बाजार को अमेरिकी सामान के लिए नहीं खोल रहा है। इसलिए पांच जून से भारत का लाभार्थी विकासशील देश का दर्जा समाप्त करना उचित है। चीन के बाद अब भारत अमेरिका के निशाने पर है। वैसे तो अमेरिका भारत को एशिया–प्रशांत क्षेत्र में अपना सहयोगी बताता रहा है। लेकिन ट्रंप प्रशासन का यह फैसला भारतीय अर्थव्यवस्था

की चुनौतियों को और बढ़ाएगा। यह शुरूआत है। ईरान से तेल आयात पर अमेरिकी प्रतिबंध के कारण भारत की मुश्किलें पहले से ही बढ़ी हुई हैं।

भारतीय निर्यात को हतोत्साहित करने की नीति अपनाए जाने के संकेत ट्रंप प्रशासन ने पहले ही दे दिए थे। चीन के साथ ही ट्रंप के निशाने पर यूरोपीए यूनियान,भारत, जापान, कनाडा जैसे देश हैं। ट्रंप ने जब चीन से व्यापार युद्ध शुरू किया तो यूरोपीय यूनियन और भारत जैसे मुल्क खुश थे। इन्हें लग रहा था कि अमेरिकी बाजारों में चीनी निर्यात कम होने पर उनकी हिस्सेदारी बढ़गी। यूरोपीय यूनियन का निर्यात सत्तर अरब डॉलर और जापान और कनाडा का निर्यात बीस–बीस अरब डॉलर तक बढ़ने की संभावना थी। भारतीय निर्यात में भी साढ़े तीन फीसद के इजाफे की उम्मीद थी। लेकिन भारत की यह खुशी सामान्य तरजीह व्यवस्था से बाहर होने के साथ ही खत्म हो गई। इसके संकेत पिछले दिनों भारत दौरे पर आए अमेरिकी वाणिज्य मंत्री विल्बर रोस ने दे दिए थे। उनका कहना था कि भारत अमेरिका से आयात होने वाले सामान पर उच्च शुल्क लगा रहा है। भारत में नई सरकार के गठन के बाद अमेरिका इस मुद्दे को उठाएगा। भारत में आयात होने वाले अमेरिकी सामान पर औसत शुल्क 13. 8 फीसद है। जबकि ऑटोमोबाइल पर 60 फीसद और मोटरसाइकिल पर 50 फीसद शुल्क है। कुछ अमेरिकी उत्पादों पर 150 से 300 फीसद तक शुल्क भी लगाया जाता है। इससे अमेरिका खासा नाराज है।

ट्रंप के दो फैसले भारतीय हितों के खिलाफ थे। ट्रंप प्रशासन के दबाव में भारत ने ईरान से तेल आयात बंद कर दिया। भारत ईरान से रोजाना साढ़े चार लाख बैरल तेल आयात करता था। ईरान भारत को तेल आयात के बिल भुगतान के लिए साठ दिन का समय देता था। यह छूट दूसरे तेल निर्यातक देश नहीं देते हैं। लेकिन ट्रंप की नजर सिर्फ भारतीय तेल बाजार पर नहीं है, वे भारत के रक्षा बाजार पर भी नजरें गड़ाए हुए हैं। एक बार फिर अमेरिका ने भारत द्वारा रूस से खरीदी जा रही एस–400 मिसाइलों को लेकर विरोध जताया है। यह सौदा पांच अरब डॉलर का है। अमेरिका ने साफ धमकी दी है कि रूस से एस–400 मिसाइल खरीदने से भारत–अमेरिका रक्षा संबंधों पर बुरा असर पड़ेगा। अमेरिका ने साफ किया है कि अंतराष्ट्रीय बाजार में उच्च रूसी तकनीक से युक्त रक्षा उपकरणों की खरीद पर अमेरिका ने प्रतिबंध लगा रखा है। अगर भारत इसे खरीदेगा तो अमेरिकी कानूनों के तहत उसे भी प्रतिबंध झेलना पड़ेगा।

भारत पर ताजा अमेरिकी दबाव के कुछ कूटनीतिक कारण भी है। ट्रंप भारत से एशिया–प्रशांत क्षेत्र में सिर्फ सहयोग ही नहीं चाहते, बल्कि चीन और रूस से भारत की दूरी भी बढ़ाना चाहते हैं। दरअसल ट्रंप एक तीर से कई शिकार कर रहे हैं। ईरान के तेल निर्यात पर प्रतिबंध लगा कर वे चीन और भारत दोनों की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करना चाहते है। ईरान से तनाव बढ़ने की स्थिति में तेल की कीमतें बढेंगी। इससे दोनों मुल्कों की अर्थव्यवस्था को चोट पहुंचेगी। भारत अपनी जरूरत का अस्सी फीसद तेल आयात करता है। इसके अतिरिक्त ट्रंप एशिया में मजबूत हो रहे शंघाई सहयोग संगठन (एससीओ) को भी कमजोर करना चाह रहे हैं।

एससीओ के पीछे चीन और रूस का दिमाग है। एससीओ बीते कुछ समय में काफी मजबूत बन कर उभरा है, इससे अमेरिका खासा परेशान है। यह संगठन मध्य एशिया से लेकर यूरोप तक आर्थिक सहयोग ही नहीं, बल्कि एशियाई देशों के ऊर्जा संकट को भी दूर करेगा। इसमें दुनिया के दो बड़े देश चीन और भारत आपस में सहयोग बढ़ा रहे हैं, इससे भी अमेरिका की परेशानी बढ़ गई है। हालांकि कई मुद्दों पर चीन और भारत के बीच आपसी तनाव है, पर आर्थिक सहयोग को लेकर दोनों मुल्कों में एक सहमति बन रही है। ट्रंप की परेशानी यह भी है कि तमाम प्रतिबंधों के बावजूद चीन और रूस ईरान के साथ खड़े हैं। तुर्की भी ईरान के साथ है। इसलिए वे इन कूटनीति संबंधों के बीच एससीओ की मजबूती को कम करना चाहते हैं। भारतीय निर्यात पर मिली शुल्क छूट को समाप्त करने के पीछे ट्रंप प्रशासन की एक मंशा एससीओ को कमजोर करना भी हो सकती है।

पिछले दिनों अमेरिका ने आतंकी मसूद अजहर के बहाने भारत–ईरान सम्बंधों को लेकर खुली राय रखी थी।

मसूद को लेकर अमेरिका ने भारत को जो खुला समर्थन दिया, उसके बदले वह चाहता था कि भारत ईरान से तेल खरीदना बन्द कर दे। वैसे बीते दिनों मसूद पर संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद द्वारा लगायी गयी पाबन्दी को भारत की कूटनीतिक जीत बताया गया था, क्योंकि इस बार चीन ने विरोध नहीं किया। पाकिस्तान भी चुप था। पकिस्तान को इतना पता था कि मसूद अजहर पर प्रतिबन्ध लगाने से जमीन पर कुछ खास परिवर्तन नहीं आने वाला। 'वन बेल्ट–वन रोड' पर चीन में हुई बैठक से पहले भारतीय विदेश सचिव चीन गये थे। इसी समय इमरान खान बेल्ट एण्ड रोड फोरम की बैठक ने भाग लेने चीन पहुँचे थे। उनकी चीनी आधिकारियों से बात चीत हुई इसके बाद मसूद अजहर पर चीन ने रणनीति बदली। हालांकि भारत ने भी इसके लिए प्रयास कम नहीं किए थे। लेकिन इसके एवज में पश्चिमी देशों ने भारत को कूटनीतिक समर्थन मुफ्त में नहीं दिया, यह भी सच्चाई है।

दूसरी तरफ चीन को यह डर था कि मसूद अजहर पर ज्यादा अड़ने से चीन की वैश्विक छवि खराब होगी। इस बार पाकिस्तान ने भी व्यावहारिक रणनीति अपनाई, क्योंकि उसे अपनी खराब होती आर्थिक स्थिति की खासी चिंता है। पाकिस्तान यह अच्छी तरह जानता है कि अजहर पर प्रतिबंध कागजों में ही लगेगा, जमीनी कार्रवाई के मामले में पाकिस्तान अभी तक पूरी दुनिया की आंखों में धूल झोंकता रहा है, चाहे अमेरिका विरोधी आतंकी गुट हक्कानी नेटवर्क हो या आतंकी हाफिज सईद का संगठन। मसूद अजहर पर भारत की जीत सिर्फ मनोवैज्ञानिक जीत है। वैश्विक आतंकी घोषित होने से अजहर पर कोई खास फर्क नहीं पड़ेगा। क्योंकि पाकिस्तान मसूद अजहर पर सख्त कार्रवाई करने से बचेगा, वह अजहर के मदरसों, खातों और संपत्तियों पर केवल दिखावे की कार्यवाही करेगा। दरअसल, भारत ने मसूद अजहर को तो वैश्विक आतंकी घोषित करवा दिया, लेकिन दूसरी सच्चाई यह है कि मसूद का संगठन जैश– ए–मोहम्मद कई साल पहले वैश्विक आतंकी सूची में डाला जा चुका है। जैश और इससे जुड़े दो बड़े ट्रस्ट अल रशीद ट्रस्ट और अख्तर ट्रस्ट पर 2003 और 2005 में प्रतिबंध लगाया गया था। इसके बावजूद जैश की आतंकी गतिविधियों पर पाकिस्तान ने कोई रोक नहीं लगाई। सच्चाई तो यही है। कि संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव 1267 का असर दुनिया के आतंकी संगठनों पर नहीं है। आतंकी संगठनों की संपत्ति, पैसे आदि कागजों में जब्त किए जाते हैं। जब्ती से पहले आतंकी संगठन पैसे और संपत्ति अपने दूसरे ट्रस्टों को हस्तांतरित कर देते हैं। हाफिज सईद भी वैश्विक आतंकी सूची में काफी पहले आ गया था। लेकिन उसकी गतिविधियां आज भी जारी हैं, उसके संगठन को हथियारों की आपूर्ति आज भी हो रही है। हाफिज कई दूसरे ट्रस्टों के माध्यम से अपने काम कर रहा है। सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव 1267 में शामिल होने के बाद भी हाफिज पाकिस्तान में खुला घूमता है, उसने मिल्ली मुसलिम लीग नामक राजनीतिक दल भी बना लिया है, खुलेआम भारत विरोधी जलसा करता है। आजतक उसका कुछ नहीं बिगड़ा।

पाकिस्तान ने पिछले कुछ महीनों में व्यावहारिक रणनीति पर चलते हुए अपनी अंतर्राष्ट्रीय छवि सुधारने की कोशिश की है। हाल में इमरान खान ने साफ कहा कि क्षेत्रीय शांति को लेकर पाकिस्तान तत्पर है , पर यह तभी संभव है जब भारत –पाकिस्तान सम्बंध ठीक होंगे। उन्होंने यह भी कहा कि चुनाव के बाद जो नई सरकार आएगी उससे बातचीत शुरू हो जाएगी और संबंध भी सुधरेंगें। इमरान ने ऐसे बयान पाकिस्तान सेना की सहमति से ही दिए होंगे। भारत चीन की ओबीओआर परियोजना का लगातार विरोध कर रहा है। चीन किसी भी किमत पर भारत के विरोध को ठंडा करना चाहता है, क्योंकि भारत के विरोध का असर छोटे एशियाई मुल्कों पर पडंता है। श्रीलंका और मलेशिया जैसे देशों में चीन की कुछ परियोजनाओं का विरोध हुआ। चीन इसके पीछे भारत के रवैये को देखता है। तभी से चीन लगातार कोशिश कर रहा है कि भारत बेल्ट एंड रोड के प्रति आक्रामक रवैया न अपनाए।

पाकिस्तान को पता है कि अमेरिकी दबाव में भारत ईरानी तेल के आयात को पूरी तरह रोकेगा। पाकिस्तान इसका लाभ उठाना चाहता है। उसकी सबसे बड़ी परेशानी ही भारत–ईरान के अच्छे संबंध हैं। पाकिस्तान को हमेशा यही डर रहा है कि भारतीय खुफिया एजेंसियां ईरान की सीमा में सक्रिय हैं। चाहबहार में भारत की मौजूदगी से

पाकिस्तान को भारी नुकसान है, क्योंकि चाहबहार परियोजना पूरी हो जाने के बाद अफगानिस्तान की पाकिस्तान पर निर्भरता काफी हद तक कम हो जाएगी। अभी अफगानिस्तान अपनी जरूरी चीजों का आयात चाहबहार के रास्ते कर रहा है। भारत भी अफगानिस्तान में अपना सारा निर्यात चाहबहार के रास्ते ही कर रहा है। पाकिस्तान को यह लगता है कि ईरान से तेल खरीद बंद होने के बाद भारत–ईरान संबंधों में तनाव आएगा। यह पहली बार हो रहा है कि जब भारत ने ईरान से पूरी तरह से तेल आयात को रोका है। पिछली बार जब अमेरिकी प्रतिबंध लगा था तो भारत ने पूरी तरह से ईरानी तेल आयात को नहीं रोका था।

पाकिस्तान को लगता है कि ज्यादा संबंध खराब होने की स्थिति में चाहबहार से भारत को ईरान बाहर करेगा और इसका सीधा लाभ चीन और पकिस्तान को मिलेगा। चीन ने हाल ही में आरोप भी लगाया कि भारत चीन द्वारा विदेशों में विकसित किए जा रहे बंदरगाहों के विकास में अडंगाा लगा रहा है। चीन ने विशेष तौर पर पाकिस्तान के ग्वादर बंदरगाह का नाम लिया था और कहा था कि भारत इसके विकास में रोड़ा अटका रहा है। दरअसल,ग्वादर के विकास में मुख्य रोड़ा ही चाहबहार है जहां भारत का निवेश है। पाकिस्तान ईरान से संबंधों को इसलिए भी नए सिरे से निर्धारित करना चाहता है कि अफगानिस्तान में ईरान की खासी भुमिका है। अफगान शांति वार्ता में भी ईरान की भागीदारी है। पाकिस्तान–अफगान सीमा पर लगातार तनाव से पाकिस्तान को आर्थिक नुकसान हो रहा हैं। चमन और तोरखम सीमा पूरी तरह से व्यापार के लिहाज से लाभदायक है, लेकिन इसका लाभ पाकिस्तान को नहीं मिल रहा है। पाकिस्तान को ऊर्जा की भारी जरूरत है।

सन्दर्भ

1. जनसत्ता दैनिक समाचार पत्र
2. हिन्दुस्तान दैनिक समाचार पत्र
3. नवभारत टाइम्स दैनिक समाचार पत्र
4. टाइम्स ऑफ इण्डिया दैनिक समाचार पत्र

❑❑

सामाजिक विभेद का प्रतिषेध और गांधी : एक चिन्तन

डॉ0 विजय कुमार वर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर–समाजशास्त्र विभाग
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय, पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ।

गाँधी जी एक व्यवहारिक राजनीतिज्ञ थे, इसलिए उन्होंने न केवल अस्पृश्यता का सैद्धान्तिक एवं वैचारिक स्तर पर विरोध किया अपितु इन कुप्रथाओं के विरुद्ध उन्होंने जनमानस के बीच रहकर कार्य भी किया। गाँधी के आगमन से पूर्व सामाजिक और राजनीतिक सुधारों की धाराएं अलग–अलग दिशाओं में प्रवाहित हो रही थीं, परन्तु उनके आगमन के बाद दोनों प्रवाहों का एकाकार हो गया।[1] भारतीय समाज में जाति व्यवस्था ने जहाँ समाज को विभिन्न जातियों एवं उपजातियों में व्यवसाय के आधार पर अलग–अलग समूहों में विभक्त कर रखा था, वहीं जाति से सम्बन्धित व्यवसायों को धार्मिक प्रतिबद्धता के अनुरूप पवित्रता एवं अपवित्रता की कोटियों से भी सम्बद्ध कर रखा था ऐसी स्थिति में जाति विशेष के सदस्य व्यवसाय विशेष से सम्बद्ध होने की स्थिति में या तो पूज्य थे या उन्हें स्पर्श करना भी अपवित्र माना जाता था। भारतीय समाज का विशाल हिस्सा कई शताब्दियों तक वर्णगत और जातिगत उच्चता एवं निम्नता, जातीय अहंकार और निर्योग्यताओं के बन्धन में बंधा रहा। उपर्युक्त दशाएं व्यक्ति की उन मूलभूत मानवीय अधिकारों को प्रतिबंधित करती थी जिससे वह सामान्य जीवन का परिवेश प्राप्त कर पाता। अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से असमान स्थिति में था। यह असमानता केवल सामाजिक प्रतिष्ठा और परिसम्पत्तियों के स्वामित्व तक ही सीमित नहीं थी, अपितु जाति विशेष का सदस्य होने के नाते वह मानव होने के अधिकार से भी वंचित था। इस पृष्ठभूमि में अस्पृश्यता निवारण से सम्बन्धित गाँधी के विचार व रचनात्मक कार्य महत्वपूर्ण स्वीकार किये जा सकते हैं।

गाँधी अपने स्वभाव व संस्कार से परिवर्तनवादी नहीं थे, वरन् एक सुधारवादी थे। उन्होंने इस बात को कभी स्वीकार नहीं किया कि एक नई सामाजिक व्यवस्था का निर्माण, पुरानी व्यवस्था का सर्वनाश करके ही किया जा सकता है।[2] उन्होंनें अस्पृश्यता जैसी कुरीतियों के उन्मूलन के प्रयासों और सामाजिक सुधारों के माध्यम से ही स्वाधीनता प्राप्ति का लक्ष्य निर्धारित किया था। गाँधी राजनीतिक स्वतंत्रता और रचनात्मक तथा सामाजिक कार्यक्रम, इन दोनों को साथ–साथ लेकर चलना चाहते थे। स्वराज की प्राप्ति उनके जीवन का उद्देश्य था परन्तु मनुष्य–मनुष्य के बीच व्यापक अन्तर और विषमताओं को भी वे समाप्त करना चाहते थे। उनका कहना था कि "हिन्दू समाज का यह कर्त्तव्य है कि वह अस्पृश्यता को दूर करने के लिए भारी तपश्चर्या करें। जब तक हिन्दू समाज अस्पृश्यता के पाप से मुक्त नहीं होता तब तक स्वराज्य की स्थापना होना असम्भव है।[3]

गाँधी जी का मानना था कि सच्चा स्वराज अस्पृश्यता जैसे कोढ़ के रहते स्थापित नहीं हो सकता। इसलिए वे असहयोग आन्दोलन के दिनों से लेकर जीवन के अंतिम पहर तक राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ–साथ अस्पृश्यता निवारण और अछूतोंद्धार के लिए जी–जान से प्रयासरत रहे।

अस्पृश्यता से सम्बन्धित समस्या का बोध गाँधी को 12 वर्ष की अल्पायु में ही हो चुका था। उनकी माता उनके घर में सफाई करने वाले मेहतर को तथा स्कूल में अस्पृश्य जाति के सहपाठियों को छूने से मना किया करती थी।[4] उस समय वे अपनी माँ के निर्देशों का पालन करते थे, किन्तु बड़े होने पर उन्हें समाज में व्याप्त इस सामाजिक

अन्याय को देखकर अत्यन्त क्षोभ हुआ और उन्होंने खुलकर अस्पृश्यता की निन्दा की। उनका मानना था कि यदि हिन्दू शास्त्रों में अस्पृश्यता का अनुमोदन है तो उनका वे परित्याग करने को भी तैयार है। अस्पृश्यता को उन्होंने हिन्दू समाज का कलंक बताया और हिन्दू समाज का फोड़ा कहकर इसकी भर्त्सना की।[5] उनके अनुसार अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का दूषण है। सम्भवतः वह कभी समाज की अवनति के दिनों में कुछ काल के लिए आपद्धर्म के रूप में आरम्भ की गयी व्यवस्था थी। यह अव्यापक है और शास्त्रों में इसका समर्थन नहीं किया गया है। इसके समर्थन में जिन लोगों को उद्धृत किया जाता है, वे क्षेपक है अथवा उनके अर्थ के विषय में मतभेद है।[6] गाँधी जी ने वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित समाज व्यवस्था को स्वीकार किया किन्तु वे वर्णों के बीच भेदभाव तथा ऊँच नीच को मानने को तैयार नहीं थे।

मेहतरों के व्यवसाय से जुड़ी हीनता को दूर करने के लिए गाँधी जी ने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपने शौचालय की सफाई करे। उन्होंने कस्तूरबा से शौचालय की सफाई करवाई तथा आश्रम में रहने वालों को आश्रम की सफाई स्वयं करने को कहा। जब कुछ लोगों ने तर्क किया कि अछूत गन्दे काम करते हैं, उन्हें छूना स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक हो सकता है तो गाँधी जी ने स्पष्ट उत्तर दिया कि,

''अपने संतानों के संदर्भ में प्रत्येक व्यक्ति एक मेहतर है। आधुनिक औषधि विज्ञान का प्रत्येक विद्यार्थी प्रायः अनुसूचित जाति है, परन्तु हम उनके कार्यों को पवित्र कर्म के रूप में मानते हैं।[7]

गाँधी जी का विचार था कि अस्पृश्यता ईश्वर तथा मनुष्य के प्रति पाप है और इसलिए वह विषैले नासूर के समान धीरे–धीरे हिन्दू धर्म के मर्मस्थल को खा रहा है। हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए उन्होंने अस्पृश्यता का उन्मूलन आवश्यक माना। यदि अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का अभिन्न अंग है तो हिन्दू धर्म मृतप्राय है।[8] गाँधी जी अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म का आंतरिक गुण न मानकर उसके अंदर उभर आए एक अनावश्यक मांसपिंड के रूप में समझते रहे। वर्ण व्यवस्था पर टिके हिन्दू धर्म का परित्याग करने के बजाय वह उसमें अस्पृश्यता रूपी उग आये अनावश्यक कटीले झाड़–झंखाड़ को उखाड़ फेंकना चाहते थे। 1920 में यंग इडिया में छपे एक लेख में उन्होंने कहा कि मैं हिन्दू समाज को चार वर्णों में विभक्त होने की बात की हिममायत करने के लिए तो सदा की भांति आज भी तैयार हूँ लेकिन मैं अस्पृश्यता को मानवता के विरुद्ध एक जघन्य अपराध मानता हूँ। यह संयम का नहीं, बल्कि ऊँचेपन के अहंभाव का द्योतक है। हिंदुत्व की किसी अन्य चीज ने मानव जाति के एक विशाल समुदाय का ऐसा दमन नहीं किया है जैसा इस अस्पृश्यता ने किया है...........अगर हिन्दुत्व को एक सम्माननीय और उदात्त प्रेरणा देने वाले धर्म के रूप में मान्यता प्राप्त करनी है तो इस पाप से वह अपने आपको जितनी जल्दी मुक्त कर ले उतना ही अच्छा है। इस पापमय प्रथा के समर्थन में धर्म ग्रन्थों के संदिग्ध विधान को अस्वीकार करने में मुझे जरा भी संकोच नहीं है। सच तो यह है कि अगर ये विधान विवेक और हृदय की आवाज के विरुद्ध हो, तो मैं उन्हें अस्वीकार ही करूँगा। जब कोई सत्ता, कोई विधान विवेक से उत्पन्न होता है तो वह कमजोर की रक्षा करता है, उन्हें ऊपर उठाता है। जब कोई विधान अन्तर के धीमे, शांत, मूक स्वर से अभिषिक्त विवेक को अपने पास नहीं फटकने देता, तो वह कमजोरों और असहायों को नीचे गिराता है।[9]

उनकी दृष्टि में अस्पृश्यता मानव समाज के एक वर्ग को सामाजिक सेवा के दायरे से पृथक कर देती है, इसलिए वह एक अमानवीय संस्था।[10] उनकी दृष्टि से जन्म से कोई मनुष्य अपवित्र नहीं हो सकता, अपवित्रता लोगों की आंतरिक मनःस्थिति में निहित होती है। बुरे विचार ही अपवित्र और अस्पृश्य है। पवित्र तो केवल वही है जो ईश्वर से डरकर चलता है। और उसकी सृष्टि की सेवा करता है।[11] स्पष्टतः गाँधी अस्पृश्यता निवारण के प्रयास में व्यक्ति के उन मूलभूत मानवाधिकारों को प्रस्थापित करना चाहते थे जो उसे एक समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त होना चाहिए। अस्पृश्यों को मानवाधिकार प्राप्त हो सके इसलिए उन्होंने मानव के समता के अधिकार का प्रतिपादन किया। इस संदर्भ में सितम्बर 1921 में डिण्डीगुल में दिए गए उनके भाषण का प्रसंग उल्लेखनीय है–

इस प्रदेश की चतुर्दिक यात्रा के दौरान मुझे अस्पृश्यता से जैसी वेदना हुई है वैसी किसी अन्य बात से नहीं हुई है...हिन्दुओं को अपने अस्पृश्यता का अंत कर अपने पंचम भाईयों को गले लगाना चाहिए। मैं यह नहीं चाहता कि आप उनके साथ अन्तर्जातीय विवाह करें लेकिन आपका हिन्दू धर्म आपसे यह मांग करता है कि समस्त मानव जाति को समान अधिकार प्रदान करें।[12]

उनका कहना था कि अस्पृश्यता विकृतिपूर्ण मानसिक सोच है, जो जाति विशेष के सदस्यों के प्रति सक्षम लोगों द्वारा निर्मित कर ली गयी है। अस्पृश्यता के प्रति लोगों की मनोवृत्ति परिवर्तित करने के लिए गाँधी ने दिन–प्रतिदिन के जीवन में घटित होने वाली घटनाओं एवं व्यक्तिगत व्यवहार से सम्बन्धित क्रियाओं के विभिन्न उदाहरण दिये। उनका कहना है कि अस्पृश्यता एक मानसिक अवस्था की देन है। वस्तुतः जिस कार्य को करने के कारण कोई व्यक्ति अस्पृश्य माना जाता है, वह कार्य सामान्यतः सभी लोग प्रतिदिन या कुछ विशेष स्थितियों में संपन्न करते है। उनके शब्दों में–

हम सब भंगी हैं, यह भावना हमारे मन में बचपन से ही जाग जानी चाहिए और उसका सबसे आसान तरीका यह है कि जो समझ गए हैं वे शरीर श्रम का आरम्भ पाखाना सफाई से करें।[13]

गाँधी जी की दृष्टि में अस्पृश्यों की सेवा एक धार्मिक कर्त्तव्य है। यह केवल त्याग एवं तपस्या द्वारा की जा सकती है। अब तक हम उनके कन्धों पर सवार रहे हैं। यदि हमें उनके साथ न्याय करना है तो हमें उनके ऊपर से अपना भार उतार लेना चाहिए और उन्हें वैसा ही समझना चाहिए जैसा हम अन्य हिन्दुओं को समझते हैं। अस्पृश्यों को अपमानपूर्ण स्थिति से छुटकारा दिलाने के लिए उन्होंने अस्पृश्यों को हरिजन नाम दिया। हरिजन का अर्थ है हरि का जन। संसार के सभी धर्म ईश्वर को अनाथ का सखा, असहाय का सहायक तथा निर्बल का रक्षक बताते हैं। भारत में चार करोड़ अथवा उससे ज्यादा भारतीय हिन्दुओं से अधिक अनाथ, असहाय तथा निर्बल और कौन हो सकता है जिन्हें 'अस्पृश्य' माना जाता है? अतः यदि किसी को सचमुच 'हरि का जन' कहा जा सकता है तो वे निश्चय ही ये असहाय, अनाथ तथा धिक्कारे गये लोग हैं। इसलिए मैंने 'नवजीवन' पृष्ठों में अस्पृश्यों के लिए हमेशा 'हरिजन' शब्द का प्रयोग किया है। नाम बदल देने मात्र से किसी की सामाजिक स्थिति तो नहीं बदल जाती पर कम से कम किसी के लिए ऐसे शब्द का प्रयोग तो नहीं किया जाना चाहिए जो स्वयं अपमानसूचक है।[14] गाँधी जी के विचारों के स्त्रोत सदैव उनके आचरण रहे। जिसे वे आचरण के रूप में आजमा लेते थे। उसे ही विचार के रूप में प्रस्तुत करते थे। अस्पृश्यता को दूर करने के लिए गाँधी जी ने अपने आपको केवल भाषण या बयानबाजी देने तक ही सीमित नही रखा अपितु साबरमती में उन्होंने जो आश्रम बना रखा था, वह खुद अपने आप में अस्पृश्यता से निपटने की कार्यशाला और प्रयोगशाला दोनों ही था। अस्पृश्यता निवारण इस आश्रम में रहने की अनिवार्य शर्त थी। उन्होंनें आश्रम में कस्तूरबा की इच्छा के विरुद्ध एक अछूत परिवार को प्रवेश दिया।[15] आश्रम में वर्णभेद को मिटाने के लिए वर्णभेद से परे धन्धे अपनाये गये। आश्रम में रहने वाले सभी लोगों को भंगी का कार्य करना ही पड़ता था, मोटी खादी गुजरात में अछूत जुलाहे ही बुनते थे। अब उस धन्धे का जीर्णोद्धार हुआ। आश्रम में एक दूसरे के साथ खाने में छुआछूत नहीं रखा जाता था इसलिए यहाँ सभी एक पंगत में खाने बैठते थे। अछूतों एवं सवर्णों को एक आश्रम में रखकर और छुआछूत से जुड़े कार्यों में सबको समान रूप से संलग्न कर अछूतपन मिटाने का ऐसा प्रयोग हिन्दुस्तान की धरती पर कदाचित अनोखा था। बौद्धों सिद्धों एवं भक्त कवियों ने जरूर छुआछूत विरोध की एक दीर्घकालीन परम्परा बना रखी थी, किन्तु सामाजिक स्तर पर छुआछूत मिटाने का ऐसा क्रियात्मक प्रयोग शायद ही किसी सवर्ण या अवर्ण ने किया था।....सदियों के अछूतपन से जर्जर–रुग्ण भारतीय समाज में गाँधी जी प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने मिशनरी अंदाज में अस्पृश्यता जैसी सामाजिक व्याधि से संस्थागत रूप से निबटने का प्रयास किया।[16]

हिन्दू समाज श्रेणीबद्ध असमानता और विसंगतियों के आधारों पर टिका था। गाँधी जी के अस्पृश्यता निवारण

कार्यक्रम में जहां एक तरफ अछूतो के प्रति सवर्णों की मानसिकता बदलने के लिए प्रबोधन कार्य शामिल था तो दूसरी ओर अछूतों को भी उनकी मानसिकता से उबारने का उपक्रम था। उन्होंने कहा कि ''सभी हिन्दुओ का यह परम कर्त्तव्य है कि वे अस्पृश्यता को समाप्त करें। अस्पृश्यता हिन्दू धर्म पर एक बहुत बड़ा कलंक है। इस कलंक को मिटाना बहुत जरूरी हैं दलितों की जो सेवा करेगा वह हिन्दू धर्म का त्राता होगा।[17] वे सवर्णो में अस्पृश्यता बरतने के लिए एक प्रकार का अपराध बोध जगा रहे थे। गाँधी जी अछूतों को भी अपने परम्परागत सोच और जीवन शैली में बदलाव की आवश्यकता समझा रहे थे। उन्होंने 'नवजीवन' में उद्धृत किया कि, 'हिन्दू अपने पापों का परिमार्जन कर भी लें तो इससे क्या विमान मिल जायेगा क्या उन्हें स्वर्ग प्राप्त हो जायेगा? यह पुरुषार्थ तो उन्हें स्वयं ही करना होगा। उन्हें शराब पीना, जूठा अन्न लेना छोड़ देना चाहिए। उन्हें मांसाहार छोड़ देना चाहिए। यह सब तो तभी हो सकता है जब अन्त्यज स्वयं इसे करें, उनके लिए दूसरे लोग यह नहीं कर सकते।[18] गाँधी जी का मानना था कि सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए पक्षों अर्थात् सवर्ण और अस्पृश्य दोनों को अपने व्यवहार व संस्कृति में बदलाव लाना होगा। समाज में समानता की स्थापना तभी हो सकती है जब अस्पृश्यों के साथ न्यायोचित व्यवहार हो। हरिजनों की वास्तविक भूख है, स्वाभिमान तथा समानतापूर्वक आदमी की तरह रहने की भूख, मनुष्य होने के नाते न्यायोचित व्यवहार की भूख। उनको जरूरत है भय से मुक्ति, सफाई, मितव्ययिता, परिश्रम तथा शिक्षा की। इसके लिए हमें लगन, आत्म त्याग तथा धीरज के साथ बुद्धिमता से काम करने की जरूरत है।[19] उनका मानना था कि यदि भारत से अस्पृश्यता का उन्मूलन नहीं हुआ तो इसकी 20 प्रतिशत जनसंख्या राष्ट्रीय संस्कृति और तद्जनित विकास के लाभांशों से वंचित रह जायेगी। उनकी दृष्टि में बुनकर बुनता रहे, चमार चमड़ा कमाता रहे और भंगी पाखाना साफ करता रहे, तब भी वह अछूत न समझा जाय तभी हम कह सकते हैं, कि अस्पृश्यता का निवारण हुआ।[20] गाँधी ऊँच–नीच की भावना को अनुचित मानते थे। कर्म से कोई छूत और अछूत नहीं हो जाता व कर्म से कोई ऊँच–नीच नहीं हो जाता। उनका मानना था कि भंगी, चमार आदि को अछूत कहना, उनसे कोई सम्बन्ध न रखना और उनसे प्रेम न करना मानवता के प्रति अन्याय है। ऊँच–नीच की भावना को नष्ट कर देने से अस्पृश्यता का निवारण हो जायेगा। इस प्रकार गाँधी उस मौलिक अधिकार का संरक्षण करते हैं जिससे व्यक्ति में निहित मानवीय मूल्यों को समाज में संरक्षण प्राप्त हो। गाँधी अस्पृश्यता को निन्दनीय तथा अमानवीय अपराध मानते हैं और किसी भी स्थिति में उसे समाज के लिए स्वीकार नहीं करते। उनका दृढ़ विश्वास था कि हिन्दू धर्म का तब तक विकास नहीं हो सकता जब तक अस्पृश्यता विद्यमान है। इसकी आलोचना करते हुए उन्होंने कहा कि–

''मैं अस्पृश्यता के अपवित्र धब्बे को बड़ी गहराई से अनुभव करता हूँ और मेरा यह ठोस विश्वास है कि यदि इस अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म से पूर्णतया हटाया नहीं गया तो हिन्दू धर्म का विनाश सुनिश्चित है।[21]

निष्कर्ष : अस्पृश्यता निवारण के द्वारा गाँधी जी व्यक्ति के उन मूलभूत मानवाधिकारों को स्थापित करना चाहते थे जो उसे समाज का सदस्य होने के कारण प्राप्त होना चाहिए। जब तक समाज में छुआछूत तथा भेदभाव की भावना बनी रहेगी सामाजिक न्याय के लक्ष्य को नहीं प्राप्त किया जा सकता। अस्पृश्यों को अपमानपूर्ण स्थिति से मुक्ति दिलाने हेतु उन्होंने अस्पृश्यो को हरिजन नाम दिया।

संदर्भ

1. राम रतन (1992), महात्मा गाँधी की राजनैतिक अवधारणाएँ, नई दिल्ली, कलिंग प्रकाशन।
2. रोडरमंड हाईटेमर (1991), महात्मा गाँधी एन ऐसे इन पोलिटिकल, बायोग्राफी, राजकमल प्रकाशन इलेक्ट्रानिक्स प्रेस, दिल्ली।
3. रचनात्मक कार्यक्रम (1951),, अहमदाबाद, नवजीवन प्रकाशन मदिर।
4. रोलां, रोमां (1976), 'महात्मा गाँधी जीवनी और दर्शन, इलाहाबाद लोकभारती प्रकाशन।

5. राव, मोहन (2006), यू0एस0 महात्मा गाँधी का संदेश, नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।
6. राम जगजीवन (1981), 'भारत में जातिवाद एवं हरितन समस्या', दिल्ली राजपाल एण्ड संस।
7. राजकिशोर (संपा0) (1997), 'हरिजन से दलित', नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन।
8. वर्मा, वेद प्रकाश (1979), 'महात्मा गाँधी का दर्शन', दिल्ली, बी0एल0 प्रिंटर्स।
9. वेबर, थामस (1991), कॉनफ्लिक्ट रेजोलेशन एण्ड गाँधीयन एथिक्स, गाँधी पीस फांउण्डेशन।
10. बार्थोनिया शेफाली (सित0, अक्टू0 1990), 'वर्तमान युग में गाँधी की प्रासंगिकता' गाँधी मार्ग।
11. वर्मा वी0पी0 ''द पोलिटिकल फिलासफी ऑफ गाँधी एण्ड सर्वोदय,'' आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल।
12. बोस, एन0के0 (1947), 'स्टडीज इन गाँधीज, कलकत्ता, इंडियन एसोसिएटेड पब्लिशिंग कं0
13. वर्मा वी0पी0 (1988), 'आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन', आगरा लक्ष्मी नारायण अग्रवाल।
14. सिंह राम जी (1986),, 'गाँधी दर्शन मीमांसा', बिहार, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना।
15. सिंह, प्रताप, 'गाँधी जी का दर्शन, जयपुर, नई दिल्ली रिसर्च पब्लिकेशन्स
16. राव, यू0आर0 और प्रभु, आर0के0 'महात्मा गाँधी के विचार', अहमदाबाद नवजीवन पब्लिशिंग हाउस
17. सिंह, नरेन्द्र नारायण (1991), 'निराला,, 'महात्मा गाँधी एवं उनकी एशियाई चेतना', पटना, जानकी प्रकाशन।
18. सिंह, ब्रज किशोर (1991), चंपारण में बापू,' पटना, जानकी प्रकाशन।
19. सेठी, जयदेव (1979), 'गांधी की प्रासंगिकता', नई दिल्ली राधाकृष्ण प्रकाशन।
20. सुमन रामनाथ, 'गाँधी जी के विचार', (राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक) दिल्ली, गाँधी स्मारक निधि, राजघाट
21. शर्मा, जी0 रंजीत (1991), 'ऐन इन्ट्रोडक्शन टू गाँधीयन थॉट', नई दिल्ली, एटलांटिक पब्लिशर्स।

❑❑

युवाओं के लिये सरकारी योजनायें

डॉ. क्षमा त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर–लाइब्रेरी
दयानन्द गर्ल्स पी जी कॉलेज, सिविल लाइन्स, कानपुर

सरकारी योजनाओं का क्षेत्र इतना व्यापक और विस्तृत है कि समस्त सरकारी योजनाओं को कुछ पन्नों तक सीमित करके पूर्ण परिचय दे पाना बड़ा ही दुष्कर कार्य है। तथा मुझे प्रतीत होता है कि मै इस प्रकार विषय के साथ पूर्ण इमानदारी भी नही निभा पाऊँगी। अतैव मैने इस प्रपत्र में भारत में युवाओं के लिये सरकारी योजनायें विषय को चुना है।

बूढ़ी जनसंख्या, युवा देश, राष्ट्रनिमार्ण, रचनात्मक सामर्थ्य, बहुमुखी प्रतिभा, कल्याणकारी योजनायें, कुशल श्रमिक, श्रमशील, विश्वव्यापी मैन्यूफैक्चरिंग हब, दसवीं पंचवर्षीय योजना, स्टार्ट अप इंडिया, वेब पोर्टल, नई विचार, विकास, उत्पादो, प्रकियायों, रजिस्ट्रेशन, कौशल विकास, उद्यमिता मंत्रालय, उद्यमिता शिक्षा, प्रशिक्षण कार्यक्रमों, आनलाइन पाठ्यक्रम नक्सलवाद, माओवाद, समृद्ध सांस्कृतिक विरासत, सामुदायिक सेवा, माध्यमिक शिक्षा परिषद, व्यवसायिक शिक्षा निदेशालय, सामाजिक बुराइयों के उन्मूलन, स्वस्थता अभियान, भूमिक्षरण की रोकथाम, गोबर गैस, सौर उर्जा, जनसंख्या शिक्षा, अनाथों और वृद्धों की सहायता. स्वच्छ पेयजल, पौष्टिक आहार, सम्वैधानिक और कानूनी अधिकारों, खरपतवार नियंत्रण, सहकारी समितियों के सुदृढ़ीकरण।

किसी भी राष्ट्र के युवा उसकी सम्पन्नता के रखवाले होते है । विकसित दुनिया के अधिकतर देश बूढ़ी होती जनसंख्या वाले देश बनते जा रहे हैं।लेकिन भारत 2020 तक दुनिया का सबसे युवा देश बनने जा रहा है ।देश के भविष्य के रूप में युवाओं को राष्ट्रनिमार्ण में अद्‌भुत भूमिका निभानी है ।उनका रचनात्मक सामर्थ्य, उत्साह, उर्जा और बहुमुखी प्रतिभा किसी भी देश के लिये आश्चर्यजनक परिणाम दे सकती है किन्तु इस शिक्षित वर्ग को विशिष्ट कार्यों के लिये आवश्यक कौशल प्रदान करने की आवश्यकता है ।सरकार द्वारा आरम्भ किये गये युवा कल्याणकारी योजनायें युवाओं को रोजगार प्रदान करने तथा उन्हें उद्यमशील बनाने के लिये तत्पर है।

देश के युवा जिस तेजी से मुख्यधारा की शिक्षा और कौशल को हासिल करने का प्रयास कर रहा है उसे देखते हुये यह अनुमान लगाया जा रहा है कि भारत में 2030 तक कु शल श्रमिक प्रचुर मात्रा में होगे । इसके मुख्यतः दो कारण है प्रथम श्रमशील आयुवर्ग के लोगों की व्यापक आपूर्ति द्वितीय सरकार द्वारा विभिन्न योजनाओं और कार्यक्रमों की मदद से शिक्षा और कौशल विकास को प्रोत्साहन देना इन्ही बिन्दुओं पर ध्यानाकर्षित करते हुये सरकार देश को विश्वव्यापी मैन्यूफैक्चरिंग हब और कौशल का केन्द्र बनाने का प्रयास कर रही है। जिनमें से प्रमुख योजनाओं का उल्लेख इस प्रकार है :

1. नेहरू युवा केंद्र संगठन – इस संगठन की स्थापना 1972 में दसवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान हुई। यह दुनिया के सबसे बड़े युवा संगठनों में है। वर्तमान में 129 लाख युवा क्लबों के माध्यम से 87 लाख युवा पंजीकृ त है। ये केंद्र 623 जिलों में विद्यमान है तथा 29 जोनल आफिस है। इसका मुख्यालय दिल्ली में है। इस संगठन का मुख्य उद्देश्य युवाओं में शख्सियत और नेतृत्व के गुण विकसित करना और उन्हें राष्ट्र निर्माण की गतिविधियों से जोड़ना है। राष्ट्र निर्माण की गतिविधियाँ तैयार करने और युवाओं को उनसे जोड़ने का जिम्मा नेहरू युवा केंद्र संगठन को सौपा गया है। प्रमुखतः इस योजना का उद्देश्य निम्नवत् है :

1. युवाओं के लिये प्रशिक्षण तथा विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन करना
2. राष्ट्रीय एकता का प्रचार एवम् प्रसार करना

3. युवाओं का विकास एवम् सशक्तिकरण करना

2. स्टार्टअप इंडिया : 5 अप्रैल 2016 को स्टार्टअप इंडिया का वेब पोर्टल शुरू किया गया। इस योजना के तहत देश में व्यापार और उद्योगो को बढ़ावा देने के लिये युवाओं को प्रोत्साहित किया जाता है। इसका संचालन "Department of Industrial Policy and Promotion" द्वारा किया जाता है।

इस योजना का मुख्य उद्देश्य देश में नौकरियों और रोजगार के अवसरों को बढ़ाया जाना है। इस योजना से जुड़कर व्यापार करना आसान हो जाता है तथा ऋण भी आसानी से प्राप्त हो जाता है। 3 वर्षो तक टैक्स में छूट मिलती है तथा 3 वर्षों तक कोई निरीक्षण नही करने का प्रावधान है। इस योजना के लिये सरकार ने 10000 करोड़ रूपये आवंटित किये है। इस योजना का उद्देश्य उद्योग का नई विचार, विकास, उत्पादो, प्रकियायों और सेवाओं के सुधार की दिशा में कार्यरत हो। इस योजना में पंजीकरण बहुत ही आसान है। उद्यमी को startupindia-gov-in/registration-php पर जाकर पंजीकृत करवाना है। इस पंजीकरण के दौरान उद्यमी को स्वयं तथा स्वयं के उद्यम के बारे में सूचना देकर कुछ पत्राजातों को upload करना होगा। तत्पश्चात योजना की terms and conditions को पढ़कर वा करना होता है। फार्म भरने के बाद यदि पत्राजात सही पाये जाते है तो उद्यमी का रजिस्ट्रेशन हो जाता है।

निःसंदेह स्टार्टअप इंडिया एक अच्छी योजना थी किन्तु यह सफल नही हो पायी क्योकि ज्यादातर लाभार्थी अपने क्षेत्र में प्रशिक्षित नही थे। इस कमी को दूर करने के लिये प्रधानमंत्री युवा रोजगार योजना प्रारम्भ की गयी।

3. प्रधानमंत्री युवा रोजगार योजना : यह योजना कौशल विकास तथा उद्यमिता मंत्रालय द्वारा 9 नवम्बर 2016 को शुरू की गयी योजना है। इस योजना से युवाओं में रोजगार के प्रति प्रोत्साहन बढ़ा है यह योजना एसे युवाओं के लिये है जो उद्यम तो करना चाहते परन्तु वे उचित रूप से कुशल नही है। इस योजना का उद्देश्य युवाओं के लिये उद्यमिता शिक्षा तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों की व्यवस्था करना है।

इस योजना के अंतर्गत लगभग 2200 उच्च शिक्षण संस्थान जैसे कालेज, प्रमुख संस्थान और विश्वविद्यालय है। 500 आई0आई0टी0 300 विद्यालय और 50 कौशल विकास और उद्यमिता केंद्र है। इन संस्थानों में प्रशिक्षण प्रक्रिया होगी। जिसके द्वारा प्रशिक्षिओं को आसानी से घर पर अध्ययन सामाग्री प्राप्त हो सकेगी। यह परियोजना आगामी 5 वर्षों के लिये है तथा इस पर 4,99 करोड़ रूपये खर्च सहोगे। इस योजना से 7 लाख से अधिक छात्रों जिनकी उम्र 30 वर्ष से कम है, को लाभ मिलेगा। यह प्रशिक्षण संस्थानों द्वारा आनलाइन पाठ्यक्रम (Massive Open Online Courses & MOOCs) के माध्यम से किया जायेगा।

4. नशामुक्ति योजना : नशा एक मानसिक, सामाजिक और चिकित्सकीय समस्या है और इसके इलाज के लिये व्यक्ति, परिवार, दोस्त, समाज, सरकार और कानून को साथ मिलकर एक दिशा में काम करना पड़ेगा। युवा मादक दृव्य का उपयोग करते करते दुरुपयोग की सीमा तक बढ़ जाते है और युवा सीमा पार कर उस दृव्य विशेष पर निर्भर हो जाता है । यह वह स्थिति है जहाँ से वापस आना युवा के अकेले के बस की बात नही होती है इसके लिये युवा के परिवारीजन, मित्रजन के साथ साथ शासन की भी आवश्यकता होती है।

भारतवर्ष में अभी तक पूर्णतया मद्यपान निषेध कानून नही बन पाया है। किन्तु कुछ राज्यों ने इस कानून को बनाकर लागू कर लिया है। इन राज्यों में बिहार, गुजरात, मनीपुर, नागालैंड, मिजोरम और लक्षद्वीप है।

किन्तु धूम्रपान निषेध कानून का निर्माण केंद्र सरकार द्वारा 1 जनवरी 2008 को हुआ था। इस कानून के अंतर्गत सार्वजनिक स्थल इस अधिनियम में शामिल किए गए हैं। इनमें बस स्टैंड, रेलवे स्टेशन, अस्पताल, सरकारी दफ्तर, छात्रावास, पुलिस थाने, मंदिर परिसर, स्कूल परिसर सहित अन्य क्षेत्र धूम्रपान के लिए प्रतिबंधित घोषित किए गए हैं। सार्वजनिक जगहों पर बीड़ी, सिगरेट और तंबाकू के सेवन पर एक्ट के तहत 200 रुपए का जुर्माना मौके पर ही किए जाने का प्रावधान है।

5. आदिवासी युवा आदान प्रदान योजना : ग्रहमंत्रालय की मदद से हर वर्ष इस योजना के अंतर्गत कार्यक्रमों

का आयोजन किया जाता है। इस कार्यक्रम में नक्सलवाद और माओवाद प्रभावित क्षेत्रों के आदिवासी युवाओं को देश के बाकी हिस्सों में ले जाया जाता है जिससे वे देश की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत और विकास सम्बिन्धत जानकारियां प्राप्त कर सके और देश के बाकी हिस्से से भावनात्मक रिश्ता विकसित हो सके।

6. राष्ट्रीय सेवा योजना : यह योजना राष्ट्र की युवाशक्ति के व्यक्तित्व विकास हेतु युवा कार्यक्रम एवं खेल मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा गाँधी जी की जन्म शताब्दी वर्ष 1969 में 37 विश्वविद्यालय में प्रारम्भ की गयी थी। इस योजना के अन्तर्गत 40000 छात्र शामिल था। इस योजना में सामुदायिक सेवा के माध्यम से छात्रों के व्यक्तित्व के विकास पर प्राथमिक ध्यान दिया जाता है। आज देशभर के 298 विश्वविद्यालय, 44 उच्च माध्यमिक शिक्षा परिषद तथा व्यवसायिक शिक्षा निदेशालय के लगभग 3 करोड़ छात्र इस योजना से जुड़े है। विद्यार्थी जीवन से ही सामाजिक कार्यों में लिप्त रहने से उनमें समाजसेवा तथा राष्ट्रसेवा के गुणों का विकास होता है। जिससे वह आदर्श नागरिक की श्रेणी में आ जाता है। वह लोगों के साथ मिलकर कार्य करना सीख जाता है। वह भविष्य में कर्तव्यनिष्ठ, संवेदनशील तथा उपयोगी नागरिक की भूमिका अदा करने में सक्षम हो जाता है। युवाओं को इस योजना से प्राप्त प्रमाणपत्र शासकीय तथा गैरशासकीय सेवाओं को प्राप्त करने में सहायता करता है।राष्ट्रीय सेवा आयोजन के अंतर्गत जिन कार्यक्रमों का समावेशन होता है वे इस प्रकार है :

शिक्षा तथा मनोरंजन : इसके अंतर्गत साक्षरता, सांस्कृतिक गतिविधियाँ, खेलकूद, सामाजिक बुराइयों के उन्मूलन एवं जागरुकता सम्बंधित कार्यक्रम आते है।

आपदा प्रबंधन : आपातकालीन तथा प्राकृतिक आपदाओं के आने पर सहायता और पुनर्वास कार्यों में स्थानीय लोगों, अधिकारियों एवं संस्थाओं की सहायता देना तथा उसका प्रबंधन करना।

पर्यावरण संरक्षण एवं सम्वर्धन : पर्यावरण के प्रति सामाजिक चेतना फैलाने के साथ स्वस्थता अभियान, भूमिक्षरण की रोकथाम, गोबर गैस और सौर उर्जा के प्रयोग को बढ़ावा देना इस यौजना के अंतर्गत आता है।

परिवार कल्याण एवं पोषण कार्यक्रम : इसके अन्तर्गत प्राथमिक स्वास्थ, जनसंख्या शिक्षा, अनाथों और वृद्धों की सहायता, स्वच्छ पेयजल तथा पौष्टिक आहार के प्रयोग को प्रेरित करना आदि है।

महिला सशक्तिकरण : महिलाओं की शिक्षा तथा उनको सम्वैधानिक और कानूनी अधिकारों के प्रति सचेत करने के लिये विभिन्न प्रकार के आयोजन किया जाता है।

कृषि सुधार कार्यक्रम : उन्नत कृषि के तरीकों की जानकारी, खरपतवार नियंत्रण, भूमि की देखभाल, कृ षि यंत्रों की देखभाल, सहकारी समितियों के सुदृढ़ीकरण और उनके प्रोत्साहन के लिये फार्म हाउस, पशुपालन, पशुस्वास्थ के बारे में सहायता एवं मार्गदर्शन, कृषि तकनीकों के प्रयोग के प्रति जागरुकता उत्पन्न करना।

अविरल गंगा : गंगा सफाई अभियान के साथ अन्य गतिविधियाँ जो स्थानीय आवश्यकताओं के अंधार पर हो, राष्ट्रीय सेवा योजना के अन्तर्गत आती है।

संदर्भ

1. आधुनिकता के आइने में भारतीय शिक्षित युवा – कृष्ण कुमार – कानपुर, 2012 .
2. hpgczna-org
3. www-uphed-gov-in
4. 21वीं सदी का युवा और भारतीय समाज – कृष्ण कुमार – कानपुर : विकास प्रकाशन, २०१२ .
   योजनाःविकास को समर्पित मासिक. जून, 2018.
5. योजना : विकास को समर्पित मासिक – – जुलाई, 2018.
6. भारतीय युवाओं में आत्महत्या की बढ़ती प्रवृत्ति – दीपाली सक्सेना. – कानपुर : रोशनी पब्लिकेशन, 2012

❑❑

सूचना संचार के साधन और ग्रामीण समाज

अवधेश सिंह निरंजन
शोध–छात्र – समाजशास्त्र
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

संचार का सामान्य अभिप्राय लोगों का आपस में सूचनाओं, विचारों, भावनाओं आदि के आदान–प्रदान से है। यह मनुष्य की मूलभूत प्रवृत्तियों में से एक है और मानव के सतत वैचारिक विकास से जुड़ा है। वहीं अपने सैद्धान्तिक रूप में संचार किसी एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को अथवा किसी एक व्यक्ति से कई व्यक्तियों को कुछ सार्थक चिन्हों, संकेतों या प्रतीकों के सम्प्रेषण से सूचना, जानकारी, ज्ञान, मनोभाव का आदान–प्रदान करना है। कुछ विद्वानों की परिभाषाओं के अनुसार–

न्यूमैन व समर के शब्दों में – संचार दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच तथ्यों, विचारों, राय एवं भावनाओं का आदान–प्रदान है।

लईस–ए–एलन के अनुसार – संचार उन सब बातों का योग है, जो एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को अपनी बात समझाने के लिए करता है। इसमें कहने, सुनने और समझने की विधिवत् प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है।

उपर्युक्त विद्वानों की परिभाषाओं का सार भी यही प्रकट करता है, कि संचार दो या उससे अधिक व्यक्तियों के बीच अपने विचारों, अनुभव, ज्ञान, भावनाओं, सूचनाओं को विशिष्ट संकेतों या चिन्हों का आदान–प्रदान करना है। अतः संचार समाज की पारस्परिक क्रिया व प्रक्रिया है और समाज व समुदाय की आधार शिला भी है। बिना संचार के कोई भी व्यक्ति व समाज विकास नहीं कर सकता।

मानव चेतना के विकास के साथ–साथ संचार की प्रकृति व संचार के साधनों का विकास भी हुआ जिससे संचार का क्षेत्र भी बढ़ा। वैज्ञानिक दृष्टिकोण व तकनीकि उन्नति के द्वारा संचार के नये साधन विकसित हुये। जिनके प्रयोग से मानव ने अपने संदेशों, विचारों, सूचनाओं को कम समय में अधिक दूरी तक पहुंचाने में समर्थता हासिल कर ली। सूचना प्रौद्योगिकी के इस विकास के कारण आज सूचना क्रान्ति आयी है। जिसने समूचे विश्व को संचार व्यवस्था के एक नये युग में खड़ा कर दिया है। जहाँ आज बड़ी से बड़ी सूचनाओं को कम समय में दूर तक पहुंचाना एक साधारण कार्य हो गया है। भारत ने भी विश्व के साथ इस संचार क्रान्ति में कदम से कदम मिलाया हैं और वर्तमान में इन संचार के साधनों को देश के न केवल शहरी क्षेत्रों में बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में भी पहुंचाने में सफलता पा ली है। जिससे यह संचार साधन अब शहरी, उच्च वर्ग तक सीमित न होकर जन साधारण, ग्रामीण व मध्यम वर्ग की पहुंच में भी आ गये हैं।

ग्रामीण समाज जहाँ भारत की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है और यहाँ कृषि एवं कुटीर उद्योग मुख्य व्यवसाय होने व शहर से दूर होने के कारण यह समाज संचार व संपर्क से विहीन रहता था। जिससे यह नगरीय समाज व वर्तमान की मुख्यधारा एवं क्रियाशीलता से नहीं जुड़ पाते थे। आज उपग्रह प्रक्षेपण के माध्यम से देश के अधिकतम गांवों को सूचना नेटवर्क से जोड़ा जा चुका है। जिससे वहां जन संचार साधनों की उपलब्धता पायी जा रही है। नये संचार साधन विशेष रूप से इलैक्ट्रानिक मीडिया का विस्तार यहां हुआ है। जिसने ग्रामीण समुदाय को अप्रत्यक्ष रूप से बाह्य संसार के सम्पर्क में ला दिया है। संचार के इन नवीन आयामों के साथ–साथ शिक्षा जागरूकता प्रयासों ने भी इसके विकास में योगदान किया है। समकालीन ग्रामीण समाज में परम्परागत साधनों से भिन्न नये संचार साधनों का प्रसार हो रहा है। भारतीय गांवों में इनके प्रयोग करने वालों

की संख्या बढ़ रही है। जिससे यह संकेत मिलता है, कि ग्रामीण भारत मे संचार क्रान्ति लाना महज एक संभावना नहीं, वास्तविकता है। ग्रामीण समाज में इन संचार साधनों के प्रयोग से जहां नवीन ज्ञान के हस्तान्तरण के साथ ग्रामीण जीवन शैली परिवर्तित हो रही है। वहीं यह मनोरंजन, सूचना क्षेत्र, सामाजिक, राजनैतिक, वैचारिक क्षेत्रों में इन्हें एक विस्तृत दृष्टिकोण प्रदान करने का कार्य कर रहे हैं। इनके प्रयोग से ग्रामीण क्षेत्र में नयी कृषि कार्य प्रणाली व उद्यमिता का नया माहौल बन रहा है। जो उन्हें पारम्परिक प्रणाली से तार्किक व वैज्ञानिक प्रणाली की ओर ले जा रहा है यह समय के साथ अन्य क्षेत्रों में भी बढ़ेगा। जिससे ग्रामीण समाज को और भी अधिक रोजगार व आर्थिक लाभ प्राप्त कर सकेंगे। जिससे दूर संचार साधनों से समकालीन ग्रामीण व्यक्ति का सूचना जगत भी विस्तृत हो रहा है। जिससे सर्वाधिक व्यक्ति समूहों मे ंचेतना जागृति और क्रियाशीलता भी विकसित हो रही है। इसका प्रभाव ग्रामीण विकास की प्रमुख इकाइयों, कृषि विकास, स्वास्थ्य शिक्षा, व्यवसाय, परिवार नियोजन, लिंग समानता आदि क्षेत्रों में भी क्रियान्वित हो रहा है। इसके साथ ही अब ग्रामीण समाज में भी अपने हितों के समकालीन राष्ट्रीय व क्षेत्रीय मुद्दों पर भी सहभागिता देखी जा सकती है। जो इनके राजनैतिक सक्रियता को परिलक्षित कर रहा है। वहीं ग्रामीण समाज में महिलाओं की सामाजिक स्थिति में सुधार उनके वैचारिक दृष्टिकोण के विकास को दर्शाता है।

संचार के नये साधनों से जहाँ ग्रामीण समाज तक सरकारी योजनाओं, सहायता राशियों, नयी रोजगार सूचनाओं की पहुंच बढ़ रही है। वहीं यह नया माध्यम सूचना के अधिकार जैसे कानूनों को नया अर्थ दे रहे है। जिससे अब ग्रामीण समाज व प्रशासन की दूरी कम हो रही है। जो इन क्षेत्रों के विकास के लिए अति आवश्यक है। जिसके द्वारा ही सर्वांगीण विकास के रास्ते खुल सकते हैं।

इन संचार साधनों ने ग्रामीण समाज की सामाजिक व सांस्कृतिक क्षेत्र में भी नयी ऊर्जा प्रदान की है। जिसके माध्यम से इनके नातेदारी, सम्बन्धों में गति बढ़ी है। वहीं त्यौहारों की कार्य प्रक्रिया में भी नयी रचनात्मकता देखने को मिल रही है। अतः यह अब सरलता से भव्यता की ओर अग्रसर हो रहे हैं। जिससे इनमें भी उपभोक्तावादी प्रकृति विकसित हो रही है। जो इस समाज को पारम्परिक के आधुनिकता की ओर प्रदर्शित कर रहा हैं । और इन्हें वर्तमान समाज की मुख्यधारा सें जोड़ रहा है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं, कि ज्ञान व जागरूकता का विस्तार न केवल चेतना व तर्क के स्तर को बढ़ाता है, वरन यह व्यक्ति के निर्णय करने की प्रक्रिया और आर्थिक एवं सामाजिक सहभागिता की दिशा एवं परिधि में भी निर्धारक होता है। जिनमें मुख्य भूमिका यह संचार साधन निभा रहे हैं और ग्रामीण समाज जिसे स्थिर समाज माना जाता था, इन साधनों से सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक गतिशीलता में व्यापक परिवर्तन की अपेक्षा की जा रही है। जिनकी क्रियाशीलता ने परिवर्तन और विकास के सन्दर्भ में एक नये आयाम प्रस्तुत किये हैं।

सन्दर्भ संकेत

1. बी0 कुप्पुस्वामी : कम्युनिकेशन एण्ड सोशल डेवलेपमेण्ट इन इण्डियाः स्टर्लिंग पब्लिकेशन प्रा0लि0, नई दिल्ली 1976
2. देसाई एम0वी0 : कम्युनिकेशन पॉलिसीज इन इण्डिया, यूनेस्को, 1976
3. राव : एम0एस0ए0 ''अर्बनाइजेशन एण्ड सोशल चेंज'', ओरियन्ट लांग्मैन्स, न्यू देहली, 1970
4. श्रीवास्तव दिनेश, गांव–गांव को जोड़ती सूचना तकनीकि, कुरूक्षेत्र, वर्ष 55 अंक–6, अप्रैल 2009–प्र0 14
5. त्रिपाठी रामसूरत : देश के विकास में अग्रसर दूरसंचार सेवाएं'', कुरूक्षेत्र, नई दिल्ली, जून–1997, प्र0 52
6. शर्मा दाधीच, बालेन्दु, ''सूचना तकनीकि से गांवों में उद्यमिता का नया माहौल : कुरूक्षेत्र'' वर्ष 62, अंक–04, फरवरी 2016
7. मिश्र, यतीश : ''ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचार माध्यमों की स्थिति'' नवम्बर, 1992 कुरूक्षेत्र, नई दिल्ली।
8. शर्मा आर0के0 : ''द सेल ऑफ मीडिया इन सोसाइटी'', अमन पब्लिकेशन, सागर, 2003

❑❑

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन की पृष्ठभूमि का मूल्यांकन

डॉ0 किशन यादव
अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग व शोध केन्द्र
बुन्देलखण्ड कॉलेज, झाँसी (उ.प्र.)

किसी भी ऐतिहासिक घटना के पीछे कई कारण होते हैं। जब तक इन कारणों का समुचित अध्ययन न किया जाए, उस घटना के सही संदर्भ का ज्ञान सम्भव नहीं हो सकता। जब कोई घटना एक घटना मात्र न हो, बल्कि एक आन्दोलन हो, इसके पीछे मात्र कुछ कारण ही नहीं होते बल्कि ये कारण परस्पर इतने उलझे होते हैं कि उनकी व्याख्या करना दुरूह कार्य हो जाता है। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन की नींव कब और कैसे पड़ी, इन प्रश्नों के उत्तर इस बात पर निर्भर हैं कि हम इस आन्दोलन के किन किन पहलुओं पर विचार कर रहे हैं। ये पहलू राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक यहाँ तक कि नैतिक अथवा धार्मिक भी हो सकते हैं। इस सब पहलुओं की अलग अलग पहचान आवश्यक तो है किन्तु सहज नहीं, इसके अलावा, किसी ऐतिहासिक घटना या आन्दोलन का एक पहलू दूसरे पहलुओं से बिल्कुल भिन्न नहीं होता। उदाहरणार्थ, किसी घटना के घटित होने पर उसका राजनैतिक या केवल आर्थिक या केवल सामाजिक प्रभाव नहीं होता। ये सारे प्रभाव मिलजुल कर प्रकट होते हैं।[1] यही कारण है कि इस घटना या उसके कारणों की व्याख्या बड़ी जटिल हो जाती है। यही बात भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के विषय में भी लागू होती है। अगर हम यह मानकर चलें कि इस आन्दोलन का प्रारंभ 1857 के विद्रोह से हुआ, तो यह पूरी तरह सही नहीं होगा, क्योंकि 1857 के विद्रोह में जो कुछ भी हुआ उसकी जड़ें अतीत के इतिहास में मिलती है। कभी कभी यह माना जाता है कि भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन की शुरूआत 1757 से ही मान लेनी चाहिए क्योंकि 1757 के पलासी के युद्ध के परिणामस्वरूपा अंग्रेज पहली बार एक क्षेत्रीय सत्ता के रूपा में आये और उसी समय से असंतोष की भावना भी प्रकट होने लगी थी, भले ही 1857 के पहले कोई विद्रोह नहीं हुआ। कुछ अंग्रेज इतिहासकारों ने 1857 के विद्रोह को सिर्फ एक ''सिपाही विद्रोह'' के रूपा में देखा है और इसके विपरीत कुछ अन्य इतिहासकारों ने इसे भारत के ''प्रथम स्वतंत्रता संग्राम'' के रूपा में देखा है। इन दोनों विचारधाराओं में एक बड़ा अंश अतिशयोक्ति का है। यह न तो पूर्णतया सिपाही विद्रोह था और न राष्ट्रवादी भावना का स्पष्ट संकेत। 1857 में एक बड़ी घटना घटी, इसमें संदेह नहीं। किन्तु इस वर्ष विशेष को स्वतंत्रता आन्दोलन की शुरूआत से मान लेना युक्ति संगत नहीं है। वास्तव में किसी भी वर्ष विशेष से हम इस आन्दोलन की शुरूआत नहीं मान सकते। यह एक शनै–शनै विकसित होने वाला आन्दोलन था। क्योंकि यह आन्दोलन ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध था इसका सीधा सम्बन्ध किसी वर्ष विशेष से न मानकर एक घटना विशेष से मानना अधिक उचित होगा। यह घटना थी अंग्रेजों का भारत में आगमन। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास अंग्रेजों के भारत में आने और प्रभुता स्थापित करने से लेकर 1947 तक का पूरा इतिहास है। 1757, 1857, 1885 आदि आदि अनेक वर्ष इस आन्दोलन के विभिन्न पड़ाव थे। इतना अवश्य माना जा सकता है कि ब्रिटिश सरकार के विरोध में एक व्यापक सशस्त्र विद्रोह 1857 में ही हुआ। सन 1857 को महत्व प्रदान करने का यह तर्क अवश्य हो सकता है कि ''इसी वर्ष से ब्रिटिश भारत सम्बन्धों में राजैनतिक कटुता एक विशिष्ट घटना के रूपा में प्रकट हुई। किन्तु इस कटुता का बीजारोपण पहले के वर्षों में ही हो गया था। 1857 की घटना एक आकस्मिक घटना नहीं थी।''[2] यह तो उस असंतोष की अभिव्यक्ति थी जिसके लक्षण 1779 या सम्भवतः उसके भी पहले मौजूद थे। इस पूरे संदर्भ को समझने के लिए हमें मुगलिया साम्राज्य के अंतिम कुछ वर्षों के इतिहास को दृष्टिगत करना पड़ेगा।

मुगल साम्राज्य भी अंग्रेजी राज्य की तरह एक विदेशी राज्य था। मुगलों ने बल प्रयोग से भारत में प्रवेश

किया था। यह मानना सरासर गलत होगा कि भारत की रिआया मुगल बादशाहों के अधीन निर्भय और संतुष्ट थी। भारतीयों ने अपनी नियति से समझौता अवश्य कर लिया था। हॉ, एक बात अवश्य सच है मुगल बादशाहों ने प्रत्यक्ष रूपा से भारत की सामाजिक व्यवस्थाओं तथा आर्थिक ढॉचे पर प्रहार नहीं किया। उनमें से कई में धार्मिक कटट्रता थी और उन्होंने कभी कभी हिन्दू पक्ष की अवहेलना भी की। किन्तु, इन अपवादों के बावजूद, उन्होंने कभी कभी हिन्दू पक्ष की अवहेलना भी की।[3] किन्तु ,इन अपवादों के बावजदू, उन्होंने आर्थिक शोषण या राजनैतिक दमन का सहारा नहीं लिया। वे विदेशियों की हैसियत से आये थे और यहीं के होकर रह गये। साम्प्रदायिकता किसी न किसी रूपा में मौजूद थी, किन्तु इसका राजनैतिक पहलू करीब–करीब नहीं के बराबर था। हिन्दी कवि तुलसीदास का अकबर के काल में आविर्भाव और संपूर्ण तुलसी साहित्य में लेशमात्र भी मुस्लिम विरोधी भावना का न होना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है।

मुगल काल की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी थी कि मुगलों ने भारत के आर्थिक ढॉचे में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं किया। 17वीं शताब्दी तक भारत एक समृद्ध कृषि प्रधान देश था।[4] यहाँ की हस्तकलायें विश्व भर में प्रसिद्ध थीं। कृषि और हस्तकलाओं के संयोग से भारत एक पूर्णतया आत्मनिर्भर देश था। यहाँ की ग्राम प्रधान आर्थिक व्यवस्था, अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल होने की वजह से, बहुत गतिशील न होते हुए भी, देश की राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के सर्वथा अनुकूल थी।

किन्तु ज्यों–ज्यों मुगलिया राज्य का पतन होता गया यहाँ की आर्थिक और राजनैतिक ढाँचे पर भी इसका प्रभाव पड़ता चला गया। औरंगजेव के बाद अगले बावन वर्षों में आठ बादशाह दिल्ली के सिंहासन पर बैठे। इस राजनैतिक अस्थिरता के कारण विदेशियों का भारत में प्रवेश एक अनिवार्यता सी हो गई थी। राजनीति तो बिखर रही थी, किन्तु आर्थिक दृष्टि से भारत में अभी भी बहुत कुछ था। इस देश को कच्चे माल का घर माना जाता था। इसी कारण से विदेशी व्यापारियों की आँखें भारत की ओर लगी थी। जब यूरोपीय देशों के कुछ साहसी लोगों ने भारत में प्रवेश के मार्ग की खोज कर ली तो विदेशियों का भारत में आगमन लगभग निश्चित सा हो गया। सबसे पहले पुर्तगाली यहाँ आये, फिर डच, फ्रैंच और अंग्रेज। अंग्रेजों ने अपनी बुद्धिमता तथा कूटनीति से अन्य देशों के लोगों को या तो बाहर चले जाने को मजबूर कर दिया या प्रभावहीन बना दिया। प्रायः यह कहा जाता है कि इन विदेशियों का भारत में आने का मुख्य ध्येय व्यापार करना था, राज्य स्थापित करना नहीं, हो सकता है यह बात सच हो, किन्तु अंग्रेजों के इतिहास से (भारत में उनकी गतिविधियों के संदर्भ में) इस बात के संकेत मिलते हैं कि ब्रिटिश सरकार का ईस्ट इंडिया कम्पनी को भारत जाने की इजाजत देने के पीछे कुछ औपनिवेशिक महत्वाकांक्षायें भी थीं।[5]

बहरहाल, सन् 1599 में अस्सी व्यापारी लंदन में इकट्ठा हुए और उन्होंने भारत में व्यापार करने की बात सोची। उस वक्त मसाले के व्यापार से विशेष लाभ होने की संभावना थी। मसालों का व्यापार पहले से ही पुर्तगालियों और डचों को आकर्षित कर चुका था। 1617 में अंग्रेजों का एक दूत टामस रो मुगल दरबार में पहुँचा और उसने मुगल बादशाह से व्यापार करने की अनुमति इस शर्त पर प्राप्त की कि अंग्रेज पुर्तगालियों की अवैध गतिविधियों के विरूद्ध वे बादशाह की सहायता करेगें। धीरे–धीरे अंग्रेजों ने अपनी कोठियाँ भारत में स्थापित करना शुरू कर दिया। सर्वप्रथम सूरत, अहमदाबाद, आगरा और भडौंच में कोठियॉ खोली गई।[6] 1668 में बम्बई भी ईस्ट इण्डिया कम्पनी को मिल गया। इस वक्त तक दक्षिणी भारत में भी कई जगहों पर कोठियाँ खुल चुकी थीं। इनमें मछलीपट्टम विशेष महत्व का था। इसके बाद कम्पनी ने अपना ध्यान उत्तर पूर्वी भारत की ओर दिया। हरिहरपुर और बालासोर में कोठियाँ खुली और फिर कुछ अन्य स्थानों पर।

सन् 1660 के बाद अंग्रेजों ने व्यापारिक लाभ के अलावा राजनैतिक लाभ की ओर भी ध्यान देना शुरू कर दिया। उन्होंने धीरे–धीरे पुर्तगाली, डच और फ्रांसीसी व्यापारियों को तंग करना शुरू कर दिया। इसके लिए वे मुगल

शासन से सहायता ले लिया करते थे। धीरे–धीरे कम्पनी के डायरेक्टरों ने सख्ती का रूख अपनाना शुरू किया और मुगल बादशाह भी इसमें बच न सके, 1687 में डायरेक्टरों ने मद्रास केन्द्र की कोठियों के प्रधान को लिखा – ''असैनिक और सैनिक शक्ति का ऐसा शासन कायम कीजिए तथा दोनों की प्राप्ति के लिए इतनी विशाल आय निकालिए और बनाये रखिए जो सदैव के लिए भारत में एक विशाल, सुगठित, सुरक्षित अंग्रेजी राज्य की नींव बन सके।[7] यह भारत में उपनिवेशवाद का पहला संकेत था। अंग्रेजों ने मुगल शासन के अधीन बन्दरगाहों पर घेरा डालना शुरू कर दिया। कई मुगल जहाजों को पकड़ लिया गया और इसी दौरान (1688–89) कुछ हज यात्रियों को बन्दी बना लिया गया। इससे औरंगजेब बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने कुछ सख्त कार्यवाही करने की सोची, किन्तु अंग्रेजों ने, विपरीत परिस्थिति देखकर, मॉफी माँग ली। इसके एवज् में उसने अंग्रेजों को व्यापार के लिए फर्मान भी जारी कर दिया। इन सब घटनाओं से भारतीयों में असंतोष की भावना अवश्य फैली होगी, किन्तु इसके विरूद्ध आवाज उठाने का समय अभी नहीं आया था।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापारियों को कई प्रकार की दिक्कतों का सामना भी करना पड़ता था। उनके ऊपर कई कर लगा दिये गये थे और सामान को इधर–उधर ले जाने में परेशानियाँ पेश आती थीं।[8] औंरगजेब तथा अन्य बादशाहों ने उनको कई सुविधायें प्रदान कीं, किन्तु वे उनकी बढ़ती हुई महत्वाकांक्षाओं के अनुरूपा नहीं थीं। इसलिए अंग्रेजों ने अपनी सहायता खुद करने का प्रयत्न शुरू कर दिया।

18वीं शताब्दी के प्रारंभ में बादशाह फर्रूखसियर से अंग्रेजों को बहुत बड़ी मदद मिली। उसने उनको समूचे मुगल राज्य में अबाध व्यापार करने की सुविधा दे दिये गये तो वहाँ के सूबेदार ने इसका विरोध किया, किन्तु इसका कोई प्रभाव नहीं हुआ।[9] धीरे–धीरे बंगाल में अंग्रेजों की स्थिति मजबूत होने लगी। 1715 तक अंग्रेजों की स्थिति काफी मजबूत हो गई। इन्हीं वर्षों के दौरान अंग्रेजों ने बम्बई, मद्रास आदि स्थानों पर भी अपनी स्थिति में काफी सुधार कर लिया। यही समय था जब अंग्रेजों के औपनिवेशिक इरादों में भी वृद्धि होती चली गई।

अंग्रेजों को पुर्तगाली एवं डच व्याापारिक कम्पनियों से नहीं फ्रांसीसी कम्पनियों से भी निबटना पड़ा। कर्नाटक में तीन युद्ध हुए और अंत में फ्रांसीसियों के हौसले पस्त पड़ गये।

लेकिन अंग्रेजों के लिए मुख्य बात थी बंगाल में अपना पूर्ण प्रभुत्व स्थापित करना। 1740 से 1756 तक अलीवर्दी खाँ बंगाल का नवाब था, इसके बाद 1756 में सिराजुदौला बंगाल का नवाब हो गया। ये नवाब नाममात्र के लिए मुगल बादशाहों के अधीन थे।[10] व्यावहारिक दृष्टि से ये स्वतंत्र थे। अंग्रेजों ने बिना सिराजुदौला की आज्ञा के कलकत्ते की घेराबन्दी शुरू कर दी। इससे सिराजुदौला बहुत नाराज हुआ। दोनों में युद्ध ठन गया। कासिम बाजार में प्रसिद्ध ब्लैक होल की घटना हुई जिसमें 123 अंग्रेज मारे गये। पहले तो अंग्रेज काफी ढीले पड़ गये किन्तु बाद में उन्होंने षडयंत्र का सहारा लिया। उनके षडयंत्र के फलस्वरूप मीरजाफर की गद्दारी के कारण सिराजुद्दौला उनके दुश्मन फ्रांसीसियों के सम्पर्क में आ गया था।[11] मीरजाफर कुछ समय तक सिराजुद्दौला उनके दुश्मन फ्रांसीसियों के सम्पर्क में आ गया था। मीरजाफर कुछ समय तक सिराजुद्दौला का मीरजाफर ने सेना वापस बुला लेने की राय दी। यही उसकी हार का कारण बना। मीरजाफर बंगाल के नवाब घोषित कर दिया गया। सिराजुद्दौला भाग निकला बाद में मीरजाफर के बेटे ने उसकी हत्या कर दी।

प्लासी का युद्ध, जिसमें अंग्रेज विजयी हुए और सिराजुद्दौला मारा गया, एक मामूली सा युद्ध था, किन्तु यह भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है। इसी युद्ध से बंगाल में और फिर सारे भारत में अंग्रेजों का प्रभुत्त स्थापित हुआ।

प्लासी के युद्ध के बाद अंग्रेज एक राजनीतिक सत्ता के रूपा में उभरकर आये। इनको एक बड़ी सैन्य शक्ति प्राप्त हो गयी। इसकी सहायता से वे फ्रांसीसियों से लड़ने में भी सफल हुए।[12] मीरजाफर अंग्रेजों की कृपा पर पूरी तरह निर्भर हो गया और 1760 में उसे अंग्रेजों को बर्दवान, मिदनापुर और चटगांव के तीन जिले देने पड़े। नवाब

अभी भी था, पर दरअसल शासन कर रहे थे अंग्रेज। उन्हें बिना चुंगी दिये व्यापार करने का अधिकार मिल गया।

कुछ समय के लिए अंग्रेज मीरजाफर ने नाराज हो गये और उन्होंने उसके दामाद मीरकासिम को नवाब बना दिया। वह भी अंग्रेजों से नाराज हो गया। उसने अवध के नवाब शुजाउद्दौला तथा मुगल सम्राट शाह आलम द्वितीय से मिलकर अंग्रेजों पर हमला बोल दिया।[13] 1764 में बक्सर का युद्ध हुआ और मीर कासिम की सेना पराजित हो गई। इस युद्ध के फलस्वरूपा अंग्रेजों की शक्ति बंगाल और बिहार में और मजबूत हो गई। मुगल बादशाह और अवध का नवाब अंग्रेजों के संरक्षण में आ गये।

इसके बाद अंग्रेजों ने दक्षिण में मैसूर की ओर ध्यान दिया जहाँ हैदरअली एक शक्तिशाली शासक बन गया था। 1769 में हैदरअली ने अंग्रेजों के खिलाफ विजय हासिल की, किन्तु 1780 के मैसूर युद्ध में हैदरअली पराजित हुआ। हैदरअली के बाद उसके बेटे टीपू सुल्तान ने अंग्रेजों का वीरता से मुकाबला किया। कई लड़ाइयाँ लड़ने के बाद 1799 में उसकी भी मृत्यु हो गई और मैसूर पर भी अंग्रेजों का आर्थिक आधिपत्य स्थापित हो गया।

अंग्रेजों की साम्राज्यवादी आकांक्षायें बढ़ती चली गई। जब सन् 1798 में वेलेजली भारत आया उसने सहायक संधि का प्रयोग किया। अब भारत में छोटे छोटे राज्य बन गये थे। उसने उनके संरक्षण के लिए ब्रिटिश सेना तैनात करना शुरू किया। इसके एवज में उसको धन मिलता था। इस प्रकार भारत का समस्त धन विदेशों को जाने लगा। अपनी सेना के माध्यम से अंग्रेज राज्यों में हस्तक्षेप करने लगे और डलहौजी के समय तक राज्यों की सारी शक्ति अंग्रेजों के कब्जे में चली गई।

अब मराठों से निबटने की बारी आई। पेशवा को सहायक संधि करनी पड़ी, लेकिन सिंधिया, होल्कर और भोंसले ने इसका विरोध किया, कई झड़पें हुई।[14] 19वीं शताब्दी के दूसरे दशक तक यही हाल चलता रहा, अन्त में मराठों की शक्ति भी क्षीण हो गई। सन् 1814–16 के दौरान रूहेले और गुरखे भी पराजित हो गये और उत्तर पश्चिम में हिमालय तक अंग्रेजों का प्रभुत्व हो गया। 1824 से 1852 तक आसाम, कछार और मणिपुर कम्पनी के अधिकार आ गये। 1848 से 1852 तक के वर्षों में अंग्रेजों का पंजाब प्रान्त में भी अधिकार हो गया। अंग्रेज भारत की सर्वोत्कृष्ट सत्ता हो गये। अपनी औपनिवेशिक गतिविधियों के दौरान अंग्रेजों ने विलय के सिद्धांत का सहारा लेकर कई राज्यों को हड़प लिया। इस सिद्धांत के प्रयोग से सूरत, सतारा, संभलपुर, उदयपुर, झाँसी, नागपुर आदि का अंग्रेजी राज्य में विलय हो गया। यह प्रक्रिया (जिसके अनुसार अगर किसी राजा या नवाब का स्पष्ट उत्तराधिकारी न हो तो उसके राज्य का विलय कर लिया जाता था) 1839 से 185 तक कई राज्यों को हड़प चुकी थी।[15] डलहौजी ने अकेले डेढ़ लाल वर्गमील भूमि हड़प ली थी। 1857 तक अंग्रेजों के लिए आर्थिक शोषण का मार्ग पूर्णतया प्रशस्त हो गया।

1857 तक के अंग्रेजी इतिहास से यह स्पष्ट हो जाता है कि अंग्रेजों का मुख्य उद्‌देश्य शुरू में तो इंग्लैण्ड की पूँजीवादी व्यवस्था का पोषण करना था और बाद में औद्योगिक क्रांति की आवश्यकताओं को पूरा करना था। अंग्रेजों का मुख्य उद्देश्य आर्थिक लाभ था इसलिए उन्होंने भारत की परंपरागत आर्थिक व्यवस्था को ध्वस्त कर डाला।[16] 1757 तक तो व्यापार करना ही उनका मुख्य उद्देश्य था, किन्तु इसके बाद के वर्षों में भारत से कच्चे माल को इंग्लैंड भेजना उनका उद्देश्य हो गया। यहाँ की कपास बाहर जाने लगी। इंग्लैण्ड की मिलों में इसका कपड़ा बना और इस कपड़े को भारत की मंडियों में ऊँचे–ऊँचे दाम पर बेचा गया। भारत के सूत कातने की प्रक्रिया धीरे–धीरे बन्द होने लगी। करघे और चरखे की आवाश्यकता समाप्त हो गई। कपास और नील जैसी वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाया गया, किन्तु उनका दाम या तो स्थिर रहा या कम हो गया। किसान तथा काश्तकार गरीब होने लगे।[17] जब यह स्थिति आई तो लोगों ने कपास और नील की खेती बन्द कर दी। जिन्होंने ये धन्धे छोड़े वे कृषि की तरफ चले गये। जमीन पर बोझ बढ़ गया। यह सब एक दिन में नहीं हुआ। यह प्रक्रिया धीरे धीरे चलो और शनैः शनैः भारत की आर्थिक व्यवस्था ध्वस्त होती चली गई।

1757 तक तो स्थिति अधिक भयावह नहीं थी। अंग्रेज कई वस्तुयें भारत से ले जाते थे, किन्तु कई चीजें भारत में लाते भी थे। 1757 के बाद जब वे एक क्षेत्रीय शक्ति हो गये फिर सिर्फ सामान ले जाने का दौर शुरू हुआ। जो कुछ लौट कर आया भी वह बहुत ऊँचे दामों पर प्राप्त होता था। भारत इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति को सफल बनाने का एक साधन मात्र रह गया। ब्रिटिश सरकार ने कम्पनी को शोषण की पूरी इजाजत दे रखी थी। भारत स्थित ब्रिटिश सत्ता मनमाना कर वसूल करती थी, और भारतीय व्यापारियो को सस्ते दामों पर अपनी चीजें बेचने को मजबूर करती थी।[18] इस प्रकार भारत के व्यापार को पूर्णतया नष्ट कर दिया गया। यह सिलसिला लगभग 1813 तक एक ढर्रे पर चला, उसके बाद मुक्त व्यापार की अनुमति मिलने पर इसका स्वरूपा कुछ बदला। अब तक भारत का व्यापार ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथ में था अब यह ब्रिटेन के कई पूँजीपतियों के हाथ में चला गया। आर्थिक शोषण की प्रक्रिया और तेज हो गई। इसी का नतीजा भारत में व्यापक असंतोष था, जो धीरे–धीरे एक आन्दोलन के रूपा में प्रकट हुआ। इसका प्रथम लक्षण 1857 में दिखाई दिया। 1857 के विद्रोह का वर्णन आगे किया गया है। प्रस्तुत संदर्भ में इतना ही समझा लेना काफी होगा कि 1857 की क्रांति के बाद अंग्रेज यह समझ गये थे कि भारत में महज शोषण से अधिक दिन तक काम नहीं चलाया जा सकेगा। उन्होंने भारतीय समाज में फूट डालने का काम शुरू किया और संवैधानिक सुधारों के माध्यम से यह सिद्ध करने का प्रयास करते रहे कि वे जो कुछ कर रहे थे भारत के हित में कर रहे थे।

दूसरी ओर यह भी आवश्यक था कि जिन वस्तुओं को भारत से बाहर भेजा जाता था उनका उत्पादन बढ़ाया जाए। इसके लिए यातायात के साधनों का विस्तार करना आवश्यक था। रेल लाइनें बिछाने, सड़कें बनाने, सिंचाई के साधन जुटाने आदि की तरफ ध्यान देना आवश्यक था।[19] उत्पादन बढ़े और उत्पाद को आसानी से इंग्लैण्ड भेजा जा सके इन साधनों का एकमात्र उद्देश्य यही था। इस प्रकार भारत मे ब्रिटिश पूंजी का निवेश आरम्भ हो गया। इसके लिए बैंकिंग की व्यवस्था की गई और विदेशी कम्पनियों ने अपनी–अपनी वित्तीय एजेंसियॉ भारत में खोलनी शुरू कर दीं। 1880 में बम्बई के प्रशासक स्विर्ड टेंम्पल ने लिखा – ''इंग्लैंड के लिए भारत को अपने अधीन रखना अनिवार्य है क्योंकि ब्रिटिश पूँजी की भारी मात्रा इस देश में केवल इस आश्वासन पर लगाई गई है कि भारत में ब्रिटिश शासन चिरस्थायी रहेगा।''[20] इस प्रकार 19वीं शताब्दी के अन्त तक भारत पूर्णतया ब्रिटेन का एक महत्वपूर्ण उपनिवेश बन गया। भारत के आर्थिक स्रोतों तथा साधनों का पूर्ण उपयोग ब्रिटेन के लाभ के लिए ही होगा– यह बात पूर्णतया तय हो गई।

क्या इन नयी गतिविधियों का भारत पर कुछ अच्छा प्रभाव भी पड़ा? इसे प्रायः स्वीकार किया जाता है कि अंग्रेजों के प्रभाव से भारत को बाहरी दुनिया से सम्पर्क स्थापित करने में सहायता मिली। नये–नये विचार भारत में आये और यहाँ के प्रबुद्ध वर्ग में एक नयी चेतना का आविर्भाव हुआ। रेल आदि के विस्तार से अंग्रेजों को जो आर्थिक लाभ हुए वे तो स्पष्ट ही हैं, किन्तु भारतीयों को भी इसके माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थानों को जाने का अवसर मिला और विचारों का आदान प्रदान से एक नयी चेतना का प्रयास हुआ। 1885 में अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना किसी हद तक इन्हीं विकास प्रक्रियाओं का परिणाम थी। एक ओर तो ब्रिटेन द्वारा भारत में संचालित आर्थिक नीतियों का दबाव और दूसरी ओर विचारों के आदान प्रदान का अवसर इन्हीं के मिश्रित प्रभाव से राष्ट्रीय भावना का जागरण सम्भव हो सका।

यह भारत में ब्रिटिश प्रभुत्व की स्थापना का एक संक्षिप्त अवलोकन है। एक प्रश्न और रह जाता है। कौन सी ऐसी राजनैतिक अथवा सामाजिक परिस्थितियाँ थी, जिनके दबाव में भारत ने काफी समय तक इस आर्थिक शोषण का सक्रिय प्रतिरोध नहीं किया और कैसे वह ब्रिटिश उपनिवेशवादी नीति का आसानी से शिकार बन गया? इस संदर्भ में मार्क्स ने लिखा है – ''भारत में अंग्रेजी प्रभुत्व की स्थापना आखिर हुई कैसे?महान् मुगलों की अध ीश्वर सर्वोपरि शक्ति खंडित की मराठों ने।''[21] मराठों की ताकत अफगानों ने खत्म की अैर जब सब एक दूसरे से

लड़ रहे थे, तब अंग्रेज आ पड़े और वे सबको दबा सकने में सफल हो सके। देश पहले से ही मुसलमानों और हिन्दुओं के बीच नहीं बल्कि जनजातियों और जातियों में विभक्त था। यह समाज ऐसे संतुलन पर आश्रित था जिसका आधार था सदस्यों का पारस्परिक विकर्षण और वैधानिक पार्थक्य। ऐसा देश और ऐसा समाज तो मानो विजय का पूर्व निश्चित लक्ष्य था। इसी संदर्भ में ए.आर. देसाई लिखतें हैं। – "पूंजीवादी राष्ट्र में देशभक्ति और राष्ट्रवाद का बड़ा गहन भाव होता है। सामंती जन समुदाय भौतिक रूपा से असंबद्ध, सामाजिक तौर पर असंयुक्त और राजनीतिक तौर पर असंपृक्त होता है। इसमें रंचमात्र भी आश्चर्य नहीं कि पूँजीवादी ब्रिटेन ने असंयुक्त सामंती भारत पर आसानी से विजय हासिल कर ली। भारत की राजनैतिक स्थितियों ने ही अंग्रेजों का भारत में प्रवेश संभव बनाया।[22]

यह बात आश्चर्यजनक प्रतीत होती है कि एक सहस्त्रों मूल दूर आई हुई व्यापारिक कम्पनी ने भारत जैसे विशाल देश पर राजनीतिक प्रभुत्व जमा लिया। अंग्रेजों को किसी बड़े युद्ध या आक्रमण का सहारा लिये बिना इतनी बड़ी सफलता कैसी मिली? विश्व के इतिहास में कोई ऐसा दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। जब भी एक देश ने दूसरे देश पर अधिकार जमाने की कोशिश की उसे युद्ध का सहारा लेना पड़ा है। कम्पनी ने अपने प्रारम्भिक दिनों में कुछ युद्ध किये, लेकिन इसमें भारत की केन्द्रीय शक्ति निरपेक्ष बनी रही, बल्कि कम्पनी को एक के बाद एक सुविधा देती रही। मुगल बादशाहों के अधीन जितने भी महाराजा या नवाव थे वे अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा में ही लगे रहे। राष्ट्रीयता की भावना का पूर्णतया अभाव था। राजे महाराजे तथा नवाब आपस में ही लड़ते रहते थे। जब भारत में पुर्तगाली, डच, फ्रांसीसी और अंग्रेज व्यापार करने लगे तब भारत के सामंत तथा नवाब, विदेशियों की सहायता से, आपसी झगड़ों में उलझते चले गये। उनको कभी इस बात का अहसास नहीं हुआ कि आत्म सुरक्षा का सबसे अच्छा साधन आपसी एकता है। अगर इन लोगों ने अपनी सम्मिलित राजनीतिक शक्ति का प्रयोग किया होता तो विदेशी भारत में राजनीतिक साँठ गाँठ करने की हिम्मत न करते।[23] जहाँ एक ओर अंग्रेजों ने क्लाइव जैसे बुद्धिमान तथा हिम्मती नेता के अधीन एक सुनियोजित कार्यक्रम के अनुसार कार्य किया, वहीं भारतीय राजाओं तथा नवाबों ने राजनीतिक सूझबूझ का कोई परिचय नहीं दिया, बंगाल के नवाबों की गतिविधियॉ इस तथ्य का बससे बड़ा प्रमाण है। बंगाल संवैधानिक रूपा से मुगल साम्राज्य का ही एक हिस्सा था, किन्तु मुगल बादशाह ने बंगाल की समुचित सुरक्षा की ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

यह तो हुई ब्रिटिश प्रभुत्व के प्रारम्भिक दिनों की बात। बाद के वर्षों में भी लगभग इसी बात की पुनरावृत्ति हुई। मुगल साम्राज्य 19वीं शताब्दी के मध्य तक किसी न किसी रूप में भारत में वर्तमान रहा। इस वक्त तक देश में सामन्तवाद अपनी जड़ें जमा चुका था। अंग्रेजों ने अपनी कूटनीतिक गतिविधियों से भारत की सामान्तवादी शक्तियों को अपनी ओर मिलाये रखा, 1857 में एक अवसर ऐसा आया था जब अगर भारतीय सामंतों तथा नवाबों में कुछ भी एकता की भावना होती तो ब्रिटिश शासन को उखाड़ा जा सकता था। किन्तु अंग्रेजों ने सामंतों की स्वार्थपरता का पूरा लाभ उठाया। वे 1857 की क्रांति को पूरी तरह खत्म करने में सफल हो गये। इसके बाद के दिन अंग्रेजों के लिए काफी मुश्किल साबित हुए, किन्तु वे अपनी आर्थिक शोषण की नीति को बरकरार रखने में सफल हुए। इस शोषण का अन्त 1947 में ही हो सका।

वास्तविकता तो यह है कि ब्रिटिश राज के साम्राज्यवादी मन्सूबों के पीछे राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने की भावना तो थी ही इसके अलावा उनका मुख्य उद्देश्य था आर्थिक शोषण। यह बात इस तथ्य से भी स्पष्ट हो जाती है कि वे भारत में एक व्यापारिक कम्पनी के रूपा में ओय। ब्रिटिश राज के प्रारंभिक वर्षों में तो भारतीयों की समझ में यह बात ठीक से नहीं आई थी। मुगल शासक भी शायद यही समझते रहे थे कि अंग्रेजों का आगमन आर्थिक समृद्धि के द्वार खोलेगा। यह बात ठीक से समझ में नहीं आ सकी थी कि उनका उद्देश्य भारत को आर्थिक समृद्धि प्रदान करना नहीं था[24] बल्कि उसकी परंपरागत आर्थिक व्यवस्था को नष्ट करके भारत के धन को बाहर

पहुँचाना था। जब भी अंग्रेजी सरकार ने राजनीतिक हथकंड़ों का प्रयोग किया उनका एकमात्र उद्देश्य भारत की अर्थव्यवस्था को छिन्न भिन्न करना था। यहाँ तक कि संवैधानिक सुधारों की भी आवश्यकता इसलिए महसूस की गई ताकि आर्थिक शोषण को सरल बनाया जा सके और कानून की दुहाई भी दी जा सके।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद का आर्थिक पहलु कई वर्षों तक भारत के लोगों की समझ में नहीं आ सका। किन्तु 1857 की क्रांति के बाद, खासकर कांग्रेस की स्थापना के बाद, ब्रिटिश राज के आर्थिक षडयंत्र का अहसास हमारे नेताओं तथा बुद्धिजीवियों को होने लगा था। यह एक अत्यन्त सुखद संयोग था कि स्वतंत्रता संग्राम के प्रारंभिक दिनों के नेता अर्थशास्त्र के बहुत अच्छे ज्ञाता भी थे। प्रारंभ के नेताओं में कम से कम दो व्यक्ति ऐसे थे जो ब्रिटिश राज द्वारा थोपे गये उपनिवेशवाद के आर्थिक पहलू को गहराई से समझते थे। ये नेता थे दादाभाई नौरोजी और महादेव गोविन्द रानाडे।

दादाभाई नौरोजी स्वयं एक सफल व्यापारी थे और व्यापार में काम आने वाले हथकंडो की समझ रखते थे। वे पूरी तरह यह समझ चुके थे कि अंग्रेजों का एकमात्र उद्देश्य भारत का आधुनिकीकरण नहीं बल्कि आर्थिक शोषण है। उनके अनुसार इस शोषण का माध्यम था देश के साधनों का निर्गम। उन्होंने कहा– ''जब तक इस विनाशकारी निर्गम को रोका नहीं जाता और भारतीयों को अपने देश में अपने प्राकृतिक अधिकारों का प्रयोग नहीं करने दिया जाता तब तक इस देश के उद्धार की कोई आशा नहीं है।'' निर्गम की प्रक्रिया का विश्लेषण करते हुए नौरोजी ने लिखा–

''इस निर्गम में दो रकमें सम्मिलित हैंः पहली तो यूरोपीय अधिकारियों की बचत की रकम जिसे वे इंगलैड भेजते हैं और इंगलैड तथा भारत में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं और दूसरी, गैर सरकारी यूरोपीयों द्वारा भेजी गई इसी बचत की रकम।[25] चूंकि इस निर्गम के कारण भारत में पूंजी का संचय नहीं हो पाता, इसलिए जिस धन को अंग्रेज यहॉं से खसोट कर ले जाते हैं उसे पूंजी के रूप में भारत में वापस ले आते हैं और इस प्रकार व्यापार तथा मुख्य उद्योगों पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लेते हैं। इसके द्वारा वे भारत का और अधिक शोषण करते हैं और अधिक धन भारत से बाहर ले जाते हैं। अन्त में, सरकारी तौर पर धन का निर्गम ही सारी बुराईयों की जड़ हैं।''

दादाभाई नौरोजी ने स्वतंत्रता संग्राम के प्रारंभिक काल में ही जिस आर्थिक अन्वेषण का इतना गहन ज्ञान प्रदान किया वह वास्तव में उनकी अद्वितीय प्रतिभा का प्रमाण था। इसप्रकार के विचारों का प्रमाण रानाडे की कृतियों तथा भाषणों से भी मिलते हैं। उन्होंने आर्थिक सिद्धांतों के सामाजिक पहलुओं का अध्ययन किया और यह साबित किया कि अंग्रेजों ने जिन आर्थिक सिद्धांतों को भारत में लागू किया है वे वास्तव में भारत की परिस्थितियों के अनुकूल नहीं है। वे निर्गम के प्रश्न पर नैरोजी के विचारों से सहमत नहीं थे।[26] वे सिर्फ यह चाहते थे कि देश में उपलब्ध धन का विकेन्द्रीकरण किया जाए। उनका तात्पर्य यह था कि देश का आर्थिक विकास केवल कुछ केन्द्रों पर ही सीमित न रहे बल्कि इसका लाभ सारे देश को पहुँचे।

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के भाषणों में भी इसी तथ्य की प्रतिध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं। वे नौरोजी की ही भाँति भारतीय धन के निर्गम से दुखी थे, किन्तु वे यह भी चाहते थे कि अंग्रेजों का सीधा विरोध करने से अधिक अच्छा यह होगा कि उनकी आर्थिक नीतियों को समझा जाए और उनसे उन नीतियों में सुधार करने को कहा जाय जिन नीतियों के प्रभाव से भारत की अर्थ व्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद का सबसे गहरा असर भारत के औद्योगीकरण पर पड़ा। अपनी राजनीतिक जड़ें जमा लेने के बाद अंग्रेजी सरकार ने भारत के औद्योगीकरण की शुरूआत तो अवश्य की, किन्तु जितने भी उद्योग शुरू किए गये उनमें लगभग सारी की सारी पूँजी विदेश की ही लगाई गई। भारत के हित में तो यह होता कि भारत की ही पूँजी भारतीय उद्योगों में लगाई जाती। इस प्रक्रिया से भारत की पूँजी का बाहर जाना रूक सकता था।

किन्तु, स्पष्ट है कि अंग्रेजी शासन की नीति भारत की उन्नति करना नहीं था। उसका एकमात्र उद्देश्य था भारत से अधिक से अधिक धन इग्लैंड ले जाना, ताकि वहाँ की औद्योगिक क्रांति में इसका समुचित निवेश किया जा सके। यह एक बहुत गहरी चाल थी, किन्तु हमारे नेताओं को इसका पूरा अहसास था 1901 में विपिनचन्द्र पाल ने लिखा था–

''देश के संसाधनों के दोहन में विदेशी पूँजी, ज्यादातर ब्रिटिश पूँजी के इस्तेमाल से कोई मदद के बजाय दरअसल हुआ यह कि यह भारतीय जनता की आर्थिक दशा सुधारने में सबसे बड़ी बाधा बन गई है। यह जिस हद तक आर्थिक खतरा है, उसी हद तक एक आर्थिक राजनीतिक खतरा भी है, और जितनी जल्दी हम इस दुहरी बुराई को उखाड़ सकें, उतना ही हमारे भविष्य के लिए अच्छा होगा,''[27]

इसी समझ का नतीजा था कि हमारे नेता स्वतंत्रता आन्दोलन को आर्थिक परिवेश में समझने का प्रयत्न कर रहे थे। उस वक्त के अखबारों ने भी इस समस्या की ओर ध्यान दिया था। ब्रिटिश उपनिवेशवाद का एक भयानक प्रभाव यह पड़ा कि भारत की समृद्ध दस्तकारी का तेजी से ह्रास होने लगा। भारत में आने और भारत से बाहर जाने वाले माल की मात्रा तथा कीमत में तो अवश्य बढ़ोत्तरी हो रही थी, किन्तु इस नई आयात–निर्यात नीति का अपना स्वरूपा ऐसा था कि यहाँ की दस्तकारी का महत्व ही समाप्त हो गया। दस्तकारी में जिस कच्चे मालका उपयोग होता है वह बाहर जाने लगा और वहाँ से रूपांतरित होकर, कई गुना ज्यादा कीमत पर, फिर भारत आने लगा। जो दाम भारत के व्यापारियों को दिए गए उनसे कई गुना ज्यादा दाम भारत में खरीददारों को विदेशी व्यापारियों को चुकाने पड़ते थे, जिसे व्यापारिक संतुलन कहा जाता है उसका लेश मात्र भी नहीं था। यह केवल शोषण का ही एक तरीका था। जिसको अंग्रेजों ने मुक्त व्यापार नीति की संज्ञा दी वह महज एक शोषण प्रक्रिया थी। अपने इतिहास में श्री आर.सी.दत्त ने इसी समस्या को उजागर किया। दादाभाई नौरोजी तथा उनके बाद के कई नेताओं ने इस समस्या पर प्रकाश डाला। गाँधी तक आते आते तो सबसे मुख्य बात जो बार बार दुहराई जाती थी वह यही थी कि भारतीय धन सम्पदा की निकासी को तुरंत बन्द किया गया। धीरे–धीरे जन साधारण ने भी इस बात को समझ लिया और अंग्रेजों की औपनिवेशिक नीति का खुला विरोध करना शुरू कर दिया। यही कारण था कि गाँधीको जनता का इतना विस्तृत समर्थन मिला।[28] जब लोगों की समझ में यह बात आने लगी तो उन्हें इस बात का पूरा अहसास होगया कि जब तक अंग्रेजों की राजनीतिक सत्ता को न उखाड़ फेका जायेगा तब तक भारत की अर्थव्यवस्था में सुधार नहीं आ सकता। इस प्रकार आर्थिक प्रश्न और राजनीतिक प्रश्न एक दूसरे से जुड़ गये। यह हमारे प्रारंभिक नेताओं की सूझबूझ का परिणाम था। अगर वे भारत की राजनीतिक समस्याओं को आर्थिक समस्याओं के संदर्भ में न देख पाते तो उनको न तो वस्तु स्थिति का सही मूल्यांकन कर सकने की क्षमता प्राप्त होती और न ही जन साधारण का समर्थन प्राप्त हो सकता। बिना जन समर्थन के इतने विशद आन्दोलन को सही ढ़ंग से संचालित नहीं किया जा सकता था, इस तथ्य को भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन की एक महान उपलब्धि माना जाना चाहिए।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम महज एक राजनीतिक आन्दोलन नहीं था। यह वास्तव में ब्रिटिशराज के समूचे उपनिवेशवादी तंत्र के विरोध में चलाया गया आन्दोलन था।

सन्दर्भ संकेत

1. डॉ. सीताराम– भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की रूपरेखा, पृ. 44.
2. डॉ. सुभाष कश्यप– स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, पृ. 19.
3. वही, पृ. 21
4. वही पृ. 57
5. डॉ. सुशील पाठक– भारतीय स्वंतत्रता आन्दोलन का इतिहास, पृ. 69

6. वही, पृ. 72
7. वही, पृ. 87
8. डॉ. पुखराज जैन– भारत में स्वतंत्रता का इतिहास, पृ. 7
9. वही, पृ. 11
10. वही, पृ. 13
12. वही, पृ. 17
13. डॉ. के.सी. जैन– भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संविधानिक विकास, पृ.12
14. वही, पृ. 17
15. वही पृ. 29
16. डॉ. पुखराज जैन– भारत में स्वतंत्रता का इतिहास, पृ. 13
17. वही, 42
18. डॉ. सुशील पाठक– भारतीय स्वंतत्रता आन्दोलन का इतिहास, पृ. 109
19. वही, पृ. 121.
20. वही, पृ. 138
21. डॉ. पुखराज जैन– भारत में स्वतंत्रता का इतिहास, पृ. 24
22. वही, पृ. 26
23. वही, पृ. 35
24. डॉ. सुशील पाठक– भारतीय स्वंतत्रता आन्दोलन का इतिहास, पृ. 129
25. वही, पृ. 135
26. डॉ. पुखराज जैन– भारत में स्वतंत्रता का इतिहास, पृ. 55
27. वही, पृ. 59
28. वही, पृ. 75

❑❑

सूरज आज चाँद से हारा

डॉ. कविता यादव

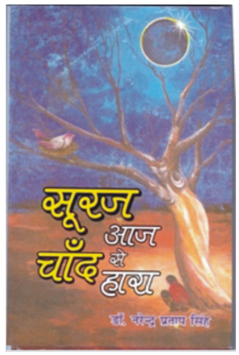

डॉ0 नरेन्द्र प्रताप सिंह एक ऐसे कवि है जो कि अपनी कविताओं के माध्यम से समाज को एक नई दिशा देने का काम कर रहे हैं। डॉ0 सिंह द्वारा रचित ''सूरज आज चाँद से हारा'' एक ऐसा काव्य संग्रह है जिसकी अनेक कविताएं समाज की बुराईयों पर सीधा–सीधा प्रहार करती हैं। यह शुरूआत उनकी पहली कविता में ही दृश्टिगोचर हो जाती है। इस कविता में डॉ0 सिंह बड़ी दृढ़ता के साथ चेतावनी भरे अंदाज मे कहते हैं।–पथ में पत्थर आते हैं, हम उनसे भी टकराते हैं। कथनी–करनी में भेद न कर, हम आगे बढ़ते ही जाते हैं।

डॉ0 सिंह की सजगता के आगे कोसों दूर खड़ी विपत्ति भी दिखाई पड़ जाती है, फिर भी कहा जा सकता है कि इस सजगता पर कभी–कभी कविता हावी हो जाती है और कविता के उतार–चढ़ाव में बहता हुआ एक सुकोमल कवि हृदय आहत हो जाता है जिसके परिणाम स्वरूप एक नई कविता का जन्म हो जाता है।

इस काव्य संग्रह की शीर्षक–कविता का जन्म भी ऐसे ही क्षण में हुआ था। शायद उस समय डॉ0 सिंह को सम्पूर्ण संसार की चिन्ता सता रही थी। बिगड़ा माहौल, असुरक्षा, और स्वार्थ उन्हें परेशान कर रहा था। इसी कारण उनका युवा कवि हृदय उनसे यह प्रश्न पूँछ बैठा–कैसे होगा जग उजियारा,। सूरज आज चाँद से हारा। जगते रात आज घर वाले,पहरेदार खूब हैं, सोते।

आज वर्तमान समय में अगर हम देखें तो प्रत्येक व्यक्ति धन–दौलत, रूपया–पैसा को बहुत महत्व दे रहा है। रूपया कमाने के चक्कर मे वह अवैध कार्य करने से भी नहीं डरता है। व्यापारी जिस पर समाज का पूरा का पूरा उत्तरदायित्व होता है वह समाज की आवश्यकता की पूर्ति करें तथा उन्हें ऐसी वस्तुओं को बेंचे जिसके उपभोग से उन्हें किसी प्रकार की क्षति न हो परन्तु व्यापारीगण ऐसा नहीं कर रहे हैं। जिसको डॉ0 नरेन्द्र ने बड़ी ही गम्भीरता के साथ लेकर व्यापारियों पर इस प्रकार से प्रहार किया है–व्यापारी बेइमानी करते,बाँट–तराजू झूठे रखते। हर चीज मिलावट की मिलती,जिसको खाकर ग्राहक मरते। बाजार का राजा ग्राहक है।

इस काव्य संग्रह की अनेक रचनाएं स्वयं ही डॉ0 सिंह की भावनाओं के समीप अपने पाठकों को ले जायेंगी। चाहे वह गीत हो, गजल हो अथवा अगीत। चूँकि इस काव्य संग्रह में कुल तीन खण्ड किये गये हैं। प्रथम खण्ड में गीत द्वितीय खण्ड में गज़ल तथा तृतीय खण्ड में अगीत अर्थात अतुकान्त। समस्त कविताएं अपनी–अपनी विशेषता लिए हुए है, परन्तु चिन्ता, सजगता और सुझाव सर्वत्र परिलक्षित होता है। 'नजर आयेंगे' शीर्षक वाली गजल में देखिए जो अपने–आप में सब कुछ समेटे है और एक अलग ही विश्वसनीय छाप छोड़ती है–जनाब! मर्यादा तो पुरूषोत्तम राम जैसी ही दिखायेंगे,अन्दर अगर झाँको तो रावण ही नजर आयेंगे।

चाहे शहर का आदमी हो, मजदूर हो व्यापारी हो नेता, या फिर गाँव के एक साधारण से किसान की जिन्दगी हो– युवा कवि डॉ0 नरेन्द्र की पैनी नजर से बच नही पायी। कविता शीर्षक ''उजड़े गुलशन मे फूल'' के अन्तर्गत एक किसान की वास्तविक जिन्दगी को इन्होंने हूबहू उतार कर रख दिया है। ऐसा लगता है कि सब–कुछ आँखों के सामने ही दिखाई पड़ रहा है।

देश में बढ़ती हुई जनसंख्या आज के समय में सबसे बड़ी विपत्ति बनती चली जा रही है है। फिर डॉ0 नरेन्द्र की पैनी नजर इस ओर क्यों नहीं जायेगी। उन्होंने कविता शीर्षक ''जगह मिलने पर पास दिया जायेगा'' के अन्तर्गत समाज पर बहुत करारा व्यंग्य कसते नजर आते हैं।

एक बात मैं बड़ी दृढ़ता के साथ कहना चाहूँगी कि किसी व्यक्ति या रचना की तारीफ करना बड़ा आसान होता है परन्तु सच्चाई बयान करना बड़ा कठिन होता है– चाहे वह कविता रूपी संतान की सच्चाई ही क्यों न हो।

पुस्तक का नाम – सूरज आज चाँद से हारा
प्रकाशक – बुक पब्लिकेशन, 106 विराम खण्ड गोमती नगर, लखनऊ
पृष्ठ – 103 मूल्य रू0 250/– ISBN-978-93-85420-27-6

● हिन्दी प्रवक्ता, राजकुमारी महाविद्यालय, रूदौली, फैजाबाद

आतंकवाद : इतिहास और वर्तमान

डॉ. विजय कुमार वर्मा

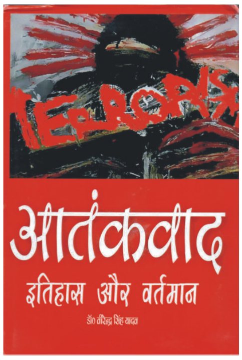

प्रस्तुत पुस्तक की मान्यता है कि साम्राज्यवादी ताकतें, जिनका अगुवा अमेरिका है, लादेन और तालिबान को पैदा करती हैं। यह ऐतिहासिक सच्चाई है कि धार्मिक शिक्षा, अवैज्ञानिकता और कठमुल्लावाद को बढ़ाने–चढ़ाने के लिये वही खाद पानी देती रही हैं। वही ताकतें इतिहास से छेड़खानी करती हैं और विचारधारा के अन्त की घोषणा भी करती हैं। वर्तमान में जहाँ–जहाँ आतंकवादी गतिविधियों की अधिकता है, वहाँ अमेरिका के पाँव पहले से जमे हुये हैं। पाकिस्तान, इराक और अफगानिस्तान आतंक के गढ़ तभी से बने हैं, जबसे अमेरिका की वहाँ घुसपैठ बढ़ी। जाहिर है, कट्टरता बढ़ाकर ये मनुष्यता को पराजित करेंगे। हैवानों को केन्द्र में रखेंगे तो मानवता सिर्फ किताबी शब्द रह जायेगी। अमेरिका ने ऐसी संस्कृति को जन्म दिया है, जिससे पूरी दुनिया बारूद के ऊपर बैठी है। पूरी दुनिया एक वर्ग विशेष को शक की निगाहों से देख रही है। ऐसी स्थिति में आतंकवादियों की उस वर्ग में पैठ बढ़ेगी जिससे ध्रुव्रीकरण होने से उनको बल मिलेगा।

प्रश्न उठता है कि राष्ट्र के प्रति समर्पित होने की भावना तब अधिक प्रबल एवं उछाल मारने लगती है जब आतंकवादी किसी बड़ी घटना को अंजाम देकर अनेक मासूम निर्दोषों को अनाथ कर देते हैं। आखिर ऐसी स्थितियों में भारत के राष्ट्र निर्माताओं को अपनी नीति में अचानक झोल क्यों नजर आने लगती है ? विभिन्न मंचों के माध्यम से बड़े–बड़े वायदे अब हम यह नहीं सहेंगे, ऐसा नहीं होने देंगे, हम वैसा नही होने देंगे यह कहने के स्थान पर एक कठोर न्यायिक नीति की आवश्यकता क्यों नहीं महसूस करते हैं ?जिन आतंकवादी गतिविधियों को पूरी दुनिया देखती है अनेक साक्ष्य एवं प्रमाणों की उपलब्धता के बावजूद हमारी न्यायिक व्यवस्था में उनकी सुनवाई चलती रहती है क्या यह किसी आतंकवादी का मजहब देखकर उसके खिलाफ कानूनी कार्यवाही की जाये ?

आतंकवाद से निपटने के लिये बेशक कानून की भूमिका महत्वपूर्ण है इसके साथ–साथ सरकारों को दृढ़ निश्चय एवं कठोर कानून, को लागू करना होगा जो आतंकवादियों के भीतर भय पैदा कर सके। आज भारत को आतंकवाद के खिलाफ एक निश्चित रणनीति के तहत नई जंग छेड़ने की आवश्यकता है। इसके साथ ही विश्व के सभी देशों को यह निश्चित करना होगा कि वे संकीर्ण राजनीतिक हितों व चालों से ऊपर उठकर आतंकवादी संगठनों एवं आतंकवादी कार्यवाहियों को समर्थन नहीं देंगे। इससे न केवल इनकी तीव्रता कम हो जायेगी, अपितु इनका सफाया हो जायेगा। इस प्रयोजन हेतु सामूहिक प्रयास किये जाने अपेक्षित हैं। साथ ही आतंकवाद से मुक्त समाज की स्थापना तभी साकार होगी जब राजनेताओं के चरित्र में बुनियादी बदलाव आयेगा और कथनी–करनी में भेद नहीं होगा।

इस पुस्तक में केवल स्याह पक्ष ही नहीं हैं बल्कि इन सबके बावजूद कुछ उजले पक्ष भी हैं–लेखक का व्यक्तिगत विचार है कि इंसान किसी भी मामले को मुद्दा बनाकर आतंकवाद फैला सकता है तो फिर किसी भी मुद्दों को लेकर प्यार, मोहब्बत, भाईचारा क्यों नहीं फैला पाता? वर्तमान की इन स्थितियों को देखते हुए एवं सम्पूर्ण विश्व की सम्प्रभुता को कायम रखने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि पूरी दुनिया के सभ्रान्त लोग, शासक, राष्ट्राध्यक्ष प्रशासक, शिक्षाविद, राजनीतिज्ञ, साहित्यकार एवं विषय विशेषज्ञ इस गम्भीर समस्या को गम्भीरता से चिन्तन–मनन करें जिससे इस वैश्विक समस्या के कुछ सार्थक परिणाम सामने आयें।

प्रस्तुत पुस्तक में देश के विभिन्न प्रान्तों के उच्च शिक्षा जगत से सम्बद्ध प्राध्यापकों, शिक्षाविदों, बुद्धिजीवियों, साहित्यकारों, अध्यात्म चिन्तकों, मनोवैज्ञानिकों एवं वैज्ञानिकों के सार्थक चिन्तन, मनन एवं गम्भीर विचारों को रखा गया है जिसमें आतंकवाद से सम्बन्धित मुद्दों को उठाया गया है। आशा है कि भारत के नीति नियन्ता एवं शोध छात्रों को यह पुस्तक अवश्य पसंद आएगी।

पुस्तक का नाम – आतंकवाद : इतिहास और वर्तमान लेखक – डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशन – एम्पायर बुक्स इण्टरनेशनल, 4831/24, प्रहलाद गली, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002
ISBN-978-93-88249-41-6 मूल्य–रू–1100/00 संस्करण : 2019

● असिस्टेंट प्रोफेसर–समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग– डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

आतंकवाद और भारतीय अर्थव्यवस्था

डॉ. सियाराम

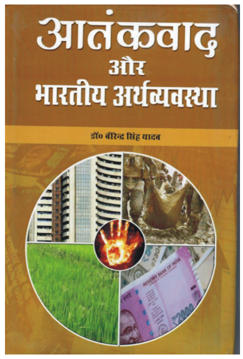

युवा आलोचक डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव की आतंकवाद और भारतीय अर्थव्यवस्था पर अद्यतन पुस्तक है।जिसमें आतंकवाद का भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभाव को नए सिरे से परिभाशित करने का सम्पादक ने प्रयास किया है। सम्पादक की मान्यता है कि आतंकवाद उस दशा को कहते हैं जिसमें कुछ लोग अपनी उचित अथवा अनुचित माँग मनवाने के लिए घोर हिंसात्मक साधनों का प्रयोग करने लगते है, क्योंकि आतंकवाद भय पैदा करने के लिए कृत्य करना है, इसके पीछे किसी उद्‌देश्य को प्राप्त करना है। जिनमें अपहरण, हत्या, निर्दोष जनता पर बम प्रहार, विमानों का अपहरण, धार्मिक स्थलों पर बमबारी जैसे घृणित अपराध पाशविकता की सीमा तक किये जाते है। पंजाब, कश्मीर और पूर्वोत्तर राज्यों में जिस प्रकार आतंकवादी घटनायें आये दिन घटित हो रही हैं उससे भारत की रीढ़ कमजोर हो रही है।

जहाँ तक अर्थव्यवस्था पर आतंकवाद के असर का सवाल है, इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि कुछ देश जो आतंकवाद के प्रायोजक हैं, वे तो धनाड्‌य हो रहे हैं तो दूसरी ओर आतंकवाद के शिकार देशों की अर्थव्यवस्था बुरी तरह से प्रभावित हो रही है। भारत जैसे देश में इसके अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग असर दिखायी पड़ रहा है। उदाहरण के लिए जम्मू एवं कश्मीर राज्य की जीवन रेखा पर्यटन उद्योग है। प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये की आय पर्यटन उद्योग के द्वारा इस राज्य को हासिल होती है, लेकिन हिंसक आतंकवादी गतिविधियों के कारण जब आतंकवाद इस राज्य में अपने उत्कर्ष पर था तो यहाँ का पर्यटन उद्योग बुरी तरह से प्रभावित हुआ। आने वाले सैलानियों की संख्या न के बराबर हो गयी। इस तरह पर्यटन पर आधारित राज्य के विभिन्न उद्योग धन्धें चौपट हो गये तथा कश्मीरियों में बेरोजगारों की संख्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती चली गयी और एक प्रकार से हताशा और कुंठा के वातावरण में बहुत से कश्मीरी मुसलमान आर्थिक लाभ के उद्‌देश्य से विभिन्न आतंकवादी संगठनों से जुड़ गये।

इसी तरह कुछ वर्ष पहले पंजाब प्रान्त एवं भारत के अन्य प्रान्तों की थी, पंजाब की बात की जाए तो एक समय में यहाँ जब खालिस्तान की माँग जोरों पर थी तो वहाँ का किसान व्यापारी तथा मजदूर और यहाँ तक राज्य की अर्थव्यवस्था बुरी तरह से प्रभावित हुयी थी।

वर्तमान में पूरे विश्व समुदाय द्वारा वैश्विक आतंकवाद से एकजुट होकर लड़ना तथा इसे समाप्त करने का संकल्प लेने के बावजूद आतंकवाद बढ़ता ही जा रहा है। इसके पीछे कुछ कह पाना निश्चित नहीं है परन्तु आतंकवादियों को प्रत्यक्ष रूप से समर्थन देने में उन देशों की संख्या ही ज्यादा है जो वैश्विक राजनीति में आर्थिक, सामाजिक रूप से पिछड़े हुये हैं साथ ही विकास की प्रक्रिया से अभी भी दूर हैं और अपने आन्तरिक भगोड़ों तथा जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति की समस्याओं से अभी जूझ रहे हैं। अमेरिका, ब्रिट्रेन, फ्रांस, रूस, भारत आदि ऐसे देश जो आतंकवादी गतिविधियों के शिकार हो रहे हैं। सहिष्णु, सम्प्रभु तथा विकास के रास्ते में अग्रसर होने के कारण इन देशों के पड़ोस में रहने वाले देशों से सामाजिक–राजनीतिक और आर्थिक सन्तुलन ठीक से नहीं हो पाता है। शायद इससे उपजा असन्तोष ही कहीं न कहीं बढ़ते आतंकवाद का कारण है।

प्रस्तुत पुस्तक में आतंकवाद के खतरे से देश व उसके नागरिकों की रक्षा के लिए कुछ जरूरी उपाय सुझाए गए हैं–अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रत्यर्पण संधि लागू की जाय। इसके साथ ही आतंकियों के वित्तीय स्रोतों पर अंकुश लगाया जाय। मीडिया द्वारा आतंकियों के महिमा मंडन की प्रवृत्ति से बचा जाय। पुलिस बल का शीघ्र व अधिकाधिक आधुनिकीकरण। स्थानीय स्तर से लेकर राष्ट्रीय व अन्तर्राश्ट्रीय स्तर तक खुफिया तंत्र को मजबूत, सक्रिय व समन्वित किया जाय। ए.टी.एस. सरीखे विशेष बलों को निष्पक्ष व स्वतन्त्र रूप से कार्य करने दिया जाय। और पोटा जैसे कठोर कानून बनाये जाएँ।

प्रस्तुत सम्पादित पुस्तक आतंकवाद पर अंकुश एवं समाधान में आम–जन के मध्य जिज्ञासा एवं उत्सुकता पैदा करने के साथ ही सरकारी नीतियों को बनाने में भी सहायक होगी।

पुस्तक का नाम – आतंकवाद और भारतीय अर्थव्यवस्था लेखक – डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशन – एम्पायर बुक्स इण्टरनेशनल, 4831/24, प्रहलाद गली, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली.110002
ISBN-978-93-88249-39-3 मूल्य – रू. 1100/00 संस्करण : 2019

● एसो0 प्रो0, हिन्दी विभाग, तिलक महाविद्यालय, औरैया

आतंकवाद,मानवाधिकार एवं साम्प्रदायिकता

डॉ0 अनीता यादव

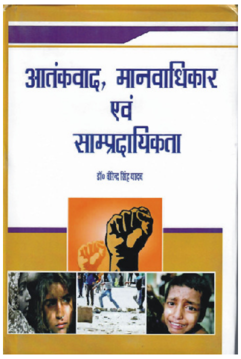

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा लिखित यह पुस्तक चार खण्डों एवं बाईस अध्यायों में विभक्त है। जिसमें आतंकवाद,मानवाधिकार एवं साम्प्रदायिकता पर चर्चा की गई है। प्रस्तुत पुस्तक में सम्पादक ने यह चिन्ता व्यक्त की है कि वर्तमान समय में भारत आंतरिक सुरक्षा के संकट से जूझ रहा है। माओवादी नक्सलपंथी हिंसा है, राष्ट्रव्यापी जेहादी आतंकवादी हैं, कश्मीर घाटी में अलगाववाद है, पूर्वोत्तर अशांत है, नेपाल और बांग्लादेशी सीमाएं असुरक्षित हैं। सिमी के देशी आतंकवाद से पूरे देश में थरथराहट है। आतंकवाद के खिलाफ पड़ोसी बांग्लादेश में भी कड़े कानून हैं और मृत्युदंड का प्रावधान है। ब्रिटेन के आतंक विरोधी कानून में संदिग्ध को 42 दिन तक पुलिस हिरासत में रखने की व्यवस्था है। फ्रांस, इटली, जर्मनी, स्पेन, अमेरिका, फिलीपींस में भी कड़े कानून हैं, लेकिन भारत आतंकवाद पर मुलायम है। यहाँ रक्तपात, हमला और बमबारी नहीं, बल्कि हमलावर का मजहब देखा जाता है। अर्थात अपने ही देशवासियों, भाई–बंधुओं का कत्ल करें। अचरज है कि एक सौ पैंतीस अरब भारतवासियों को कुछेक हजार उन्मादी मार रहे हैं और राष्ट्र–राज्य की सारी संस्थाएँ चुप हैं।

सच तो यह है कि भारत की सरकार कागज पर या अपने व्याख्यानों में चाहे जितने भी मानवाधिकारों की बात करे पर, वास्तविकता में वह इसके प्रति बिल्कुल ही प्रतिबद्ध नहीं है। ऐसे परिवेश में मानव अधिकार स्वयमेव कौतुक का विषय बन जाते हैं। इस परिप्रक्ष्य में वहां चिढ़ और क्रोध और भी अधिक बढ़ जाता है जब पुलिस हिरासत में मौत, कैदियों के साथ दुर्व्यवहार, आतंकवाद और मुठभेड़ के नाम पर की जाने वाली हिंसा और दमन का विरोध करता है। अपराधी या अभियुक्त के साथ भी हमारी सहनुभूति होनी चाहिए। सेना तथा पुलिस को क्रूर और निर्दयी नहीं होना चाहिए। अधिकारी के भीतर दया, ममता, सहानुभूति, क्षमा, विवेक, बुद्धि, माधुर्य और विश्वास जैसे मानवीय गुणों का समावेश होना चाहिए। पर, आज स्थितियां बिल्कुल बदल गयी हैं। नियमों और कानूनों की जैसी मनमानी व्याख्या आज की जा रही है ; वह अराजकता की स्थिति को उत्पन्न करके समाज में स्वयं ही अपराधी उत्पन्न करने की भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं। यह विचार तीसरी दुनिया की पुलिस में, सेना में और सम्प्रभुता सम्पन्न अधिकारियों में अभी तक विकसित ही नहीं हो सकी है। आन्दोलनकारियों के प्रति की जाने वाली हिंसा के प्रति असन्तोष की वकालत करने वाले सिर्फ दमन और अत्याचार के विरूद्ध ही आवाज नहीं उठाएंगे बल्कि वंचित, दलित पिछड़े और शोषित जनता के लिए भी आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक अधिकारों की लड़ाई लड़ेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक का समाधान यह है कि धर्मान्ध लोगों को प्रतिरोधक दण्ड दिया जाय। साम्प्रदायिक भावना फैलाने वालों को चुनाव लड़ने से रोका जाए। पुलिस बल को संवेदनशील बनाना तथा राजनीतिक हस्तक्षेप से दूर रखना। पुलिस अधिकारियों के प्रशिक्षण कार्यक्रम में सुधार करके उन्हें धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण अपनाने हेतु प्रेरित करना।वास्तव में यदि देश से इन समस्याओं को मिटाना है तो न सिर्फ साफ स्वच्छ छवि के नेताओं का चयन करना होगा। बल्कि लोकतंत्र के नागरिकों को भी सामने आना होगा। उन्हें प्राणपण से यह प्रयत्न करना होगा कि उन्हें भ्रश्ट लोगों को समाज से न सिर्फ बहिश्कृत करना होगा। वल्कि अपनी आम जरूरतों को पूरा करने एवं शीघ्रता से निपटाने के लिये बंद लिफाफे की प्रवृत्ति से बचना होगा। कुल मिलाकर जब तक लोकतंत्र में आम नागरिक एवं उनके नेतृत्व दोनों ही मिलकर यह नहीं चाहेंगें तब तक आतंकवाद,मानवाधिकार एवं साम्प्रदायिकता जैसे जिन्नों से बच पाना असम्भव है।

इस सम्पादित पुस्तक में जो भी विषयगत विचार हैं, वह लेखकों के अपने व्यक्तिगत विचार हैं उसमें सम्पादक की कोई सहमति–असहमति के सरोकार नहीं हैं। इस आशा विश्वास एवं नेह के साथ कि प्रस्तुत सम्पादित पुस्तक आतंकवाद, मानवाधिकार एवं साम्प्रदायिकता जैसे विषय पर आम–जन के मध्य जिज्ञासा एवं उत्सुकता पैदा करेगी, तो इसे लेखक अपनी मेहनत का प्रतिफल समझेगा।

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा सम्पादित इस पुस्तक में आतंकवाद और नक्सलवाद पर विस्तार से विवेचना की गई है। प्रस्तुत सम्पादित पुस्तक नक्सलवाद और नक्सलवाद जैसे विशय पर आम–जन के मध्य जिज्ञासा एवं उत्सुकता पैदा करेगी और शोधार्थियों के लिए उपयोगी साबित होगी।

पुस्तक का नाम – आतंकवाद, मानवाधिकार एवं साम्प्रदायिकता लेखक– डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशन–एम्पायर बुक्स इण्टरनेशनल, 4831/24, प्रहलाद गली, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002
ISBN-978-93-88249-42-3 मूल्य–रू–1100/00 संस्करण : 2019

● प्रवक्ता–शिक्षा शास्त्र, महाराज सिंह स्मृति महाविद्यालय, इटैली, औरैया, उ0प्र0

आतंकवाद और नक्सलवाद

डॉ. अलका द्विवेदी

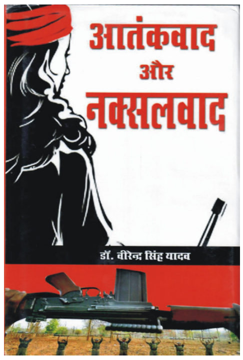

साम्यवादी विचारधारा नक्सलवाद का आधार है। आर्थिक शोषण एवं असमानता को समाप्त करने के साध्य के लिए हिंसा को साधन बनाना साम्यवादियों की विचारधारा रही है। नक्सली संगठन बन्दूक के बल पर लोक जनतंत्र की स्थापना करना चाहते हैं और अपने खूनी संघर्ष को जन संघर्ष का नाम देते हैं। सभ्य समाज के प्रति सशस्त्र संघर्ष को वे जन युद्ध का नाम देते हैं। भारत के नक्सली संगठन गरीब आदिवासियों, भूमिहीन मजदूरों, शोषित–पीड़ित लोगों का प्रतिनिधि होने का दावा करते है। यह संगठन सरकारी प्रतिष्ठानों को नुकसान पहुँचाने के लिए हिंसा का सहारा ले रहे है।

सम्पादक का मानना है कि नक्सलवाद का जन्म साठ के दशक में पश्चिम के नक्सलवाड़ी आन्दोलन की कोख से हुआ। नक्सलवाद, नक्सलवाड़ी नामक शब्द से बना हुआ है जो कि पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले के सिलीगुड़ी अनुमंडल में स्थित एक स्थान का नाम है। नक्सलवाड़ी गाँव में सामन्तों के शोषण के खिलाफ कुछ किसानों ने सशस्त्र विद्रोह कर सामन्तों को सजा दी। धीरे–धीरे चारू मजुमदार और कानुसान्याल जैसे नेताओ के नेतृत्व में नक्सलवाद का विस्तार पूरे पश्चिम बंगाल में हुआ लेकिन सत्तर के दशक के दमन और राज्य में वामपंथी पार्टियों के सत्तारूढ़ होने के बाद भूमि सुधार कार्यक्रम के लागू होने के साथ ही आन्दोलन पड़ोसी राज्यों में भी अपने पैर पसारता चला गया। और आज देश के लगभग सोलह राज्यों में नक्सलवादी गतिविधियां संचालित हो रही हैं जो राष्ट्र के लिए सिरदर्द बनी हुई हैं। प्रभावित राज्यों में कई तरह की समितियां व टास्कफोर्स गठित किए जा चुके हैं और प्रभावित राज्यों के लिए कई विकास योजनाएं प्रारंभ की गईं हैं लकिन स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई है।

सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक विविधता, राजनैतिक विकास, सामुदायिक जीवन पद्धति और जनजातीय जनसंख्या की दृष्टि से असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड ओर अरूणाचल प्रदेश का भारतीय संघ में विशेष महत्व है। आवागमन और संचार की अविकसित सुविधाएँ, विज्ञान और औद्योगिक पिछड़ापन, आधुनिक तकनीकी, प्रशासकीय लापरवाही, व्यापक भ्रष्टाचार और देश की राजधानी से दूर होने के कारण यहाँ के लोगों के मन में कई गलतफहमियाँ और गहरा दर्द है, जिसे आई.एस.आई. आतंकवाद के रास्ते पर चलने के लिए हवा देती रहती है। अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं से घिरे होने और आन्तरिक अंतर्विरोध के कारण इसकी कई चुनौतियाँ हैं।

अधिकतर विद्वानों का मानना है कि नक्सली उग्रवादियों की सक्रियता अधिकतर उन्हीं क्षेत्रों में है जहॉ आर्थिक विपन्नता की स्थिति है। निर्धनता, बेरोजगारी एवं अशिक्षा से नक्सली उग्रवाद को पनपने एवं मजबूत होने में मदद मिलती है।

नक्सलीय संगठन साम्यवादी विचारधारा के अनुरूप राजनीतिक व्यवस्था बनाना चाहते हैं, सभ्य समाज को निर्धन लोगों का शत्रु बताकर वे सर्वहारा वर्ग के उत्थान के लिए हिंसा का सहारा लेते है। समाज में व्याप्त असमानता भी नक्सली उग्रवाद के उदय के लिए उत्तरदायी है। अराजकता, शोषण, भ्रष्टाचार एवं अपराध के कारण समाज में शान्ति का परिवेश खंडित होता है और नक्सलवाद जैसे उग्रवाद को पनपने का पर्याप्त आधार मिल जाता है। पुलिस प्रशासन एवं खुफिया एजेंसियों की अक्षमता भी नक्सलवाद के विस्तार में सहायक है। भूमि कानूनों को भी नक्सलवाद के उदय का कारण माना जा सकता है। बड़ी संख्या में भूमिहीन लोग भूख, गरीबी, अशिक्षा एवं बेकारी से ग्रसित है। और ऐसे क्षेत्रों में नक्सलवाद का प्रभाव भी व्यापक है। जल, जंगल और जमीन से वंचित आदिवासी नक्सलवादियों के चंगुल में सहजता से फँस जाते हैं।

तीन खण्डों एवं 19 अध्यायों में प्रकाशित इस पुस्तक की मान्यता एवं समाधान यह है कि नक्सलवाद को समाप्त करने के लिए त्रिआयामी मॉडल महत्वूपर्ण हो सकता है इसके तीन आयाम हैं– सुरक्षा, कुशल प्रशासन और विकास। वस्तुतः यह तीनों आयाम ग्रिड–गार्ड–गवर्न के 3 जी फार्मूले का रूप हैं। वर्तमान की इन स्थितियों को देखते हुए एवं सम्पूर्ण विश्व की सम्प्रभुता को कायम रखने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि पूरी दुनिया के सभ्रान्त लोग, शासक, राष्ट्राध्यक्ष प्रशासक, शिक्षाविद, राजनीतिज्ञ, साहित्यकार एवं विषय विशेषज्ञ इस गम्भीर समस्या को गम्भीरता से चिन्तन–मनन करें जिससे इस वैश्विक समस्या के कुछ सार्थक परिणाम सामने आएँ।

पुस्तक का नाम– आतंकवाद और नक्सलवाद लेखक–डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशन–एम्पायर बुक्स इण्टरनेशनल, 4831/24, प्रहलाद गली, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली.110002
ISBN-978-93-88249-49-2 मूल्य–रू–1100/00 संस्करण : 2019

● एसो0प्रो0, हिन्दी विभाग, जुहारी देवी गर्ल्स कालेज, कानपुर

आतंकवाद और धर्म

डॉ. उत्तरा यादव

आतंकवाद और धर्म पुस्तक के सम्पादक एवं समकालीन विषयों के सक्रिय विद्वान डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव जी हैं। आप अनेक पुस्तकों के रचनाकार हैं। लेखन में आप सतत जीवंत एवं सृजनशील हैं। आपकी अभिरूचि अनुसंधात्मक के साथ खोजपूर्ण रहती है। सत्रह अध्यायों एवं 148 पृष्ठों में विभक्त प्रस्तुत पुस्तक आतंकवाद और धर्म पर करारा प्रहार करती है।

लेखक का मानना है कि वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में आतंकवाद साम्राज्यवाद से सम्बद्ध दिखता है। यदि राजनैतिक दृष्टि से विचार करके देखा जाय तो अमेरिका की दादागीरी आतंकवादियों के लिए प्रेरक सिद्ध हो रही है क्योंकि इतिहास साक्षी है, अमेरिका ने स्वयं को शक्तिशाली बनाने के लिए अन्य देशों को कमजोर बनाया है। सोवियत संघ, ईराक आदि इसके ज्वलत प्रमाण हैं। आज भी अमेरिकी नीतियाँ शेष विश्व को कमजोर करने पर ही अधिक अवलम्बित हैं। आतंकवाद की अभी तक सर्वमान्य परिभाशा नही दी जा सकी है समस्त राश्ट्रों का नेतृत्व करने वाला 'संयुक्त राश्ट्र संघ' भी आतंकवाद की सर्वमान्य परिभाषा निश्चित नहीं कर सका है। संयुक्त राष्ट्र संघ का मानना है कि आतंकवाद प्रजातंत्रीय समाजों को अस्थिर करने का मौका है और इसके साथ ही आतंकवाद यह प्रदर्शित करता है कि सरकारें शक्तिहीन हैं।

धर्म प्राचीन काल से ही मनुष्य की पहचान का सशक्त माध्यम रहा है। इसने आतंकवाद को बढ़ाने में वेहद सहायता की है क्योंकि आतंकवाद के प्रचारकों ने धर्म का सहारा लेकर आंतकवादी शिविर चलाये। ऐसे शिविरों में कम उम्र बच्चों तथा अशिक्षित नव जवानों में धार्मिक उन्माद पैदा करके उन्हें सर्वनाश के अनेक तौर–तरीकों का प्रशिक्षण दिया जाता है और उन्हें यह सब्जबाग दिखाया जाता है कि ऐसा करने से उन्हें जन्नत मिलेगी। इसके पीछे आतंकवादियों की अपने तथाकथित धर्म को ही सम्पूर्ण धर्मों पर श्रेश्ठ सिद्ध करने की प्रवृत्ति कार्य करती है। चूँकि सम्पूर्ण विश्व में विभिन्न धर्मों के अनुयायी रहते हैं। इसलिए आतंकवादियों को अपना समर्थक वर्ग भी आसानी से मिल जाता है।

भारत सरकार ने 'आतंकवाद विरोधी अधिनियम' में आतंकवाद को स्पष्ट करते हुए अपना दृष्टिकोण स्पश्ट किया है। इसके अनुसार सरकार लोगों को आंतकित करने, विभिन्न वर्गों में वैमनस्य बढ़ाने, शान्ति भंग करने, सम्पत्ति नश्ट करने, आवश्यक सेवाओं में गड़बड़ी के उद्देश्य से किये जाने वाले सभी कार्य आतंकवादी कार्य माने जायेंगे। दूसरे शब्दों में यदि कहा जाय तो आतंकवाद एक भयदोहन की प्रक्रिया है। यह एक ऐसा सुनियोजित सशस्त्र संघर्ष है जिसका निशाना निहत्थे, निरपराध नागरिक होते हैं। आतंकवादी अपने निहित क्षुद्र स्वार्थ के लिए ऐसे हिंसक एवं बर्बर तरीकों को अपनाते हैं जो किसी भी सभ्य समाज को स्वीकार नही हो सकते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक की मान्यता है कि आतंकवाद से लड़ने के लिए कठोर कानून चाहिए – ऐसे कानून जो आतंकियों के भीतर खौफ पैदा कर सके। आज भारत को आतंकवाद के खिलाफ एक निश्चित रणनीति के तहत नई जंग छेड़ने की आवश्यकता है। प्रशासनिक सुधार आयोग की अनुशंसा पर अमल करते हुए आतंकवादियों के लिए कड़े से कड़े नियम बनाने होंगे। यही नहीं यहाँ सिर्फ नियम बनाने की ही नहीं बल्कि उन्हें सही ढंग से शिद्दत के साथ क्रियान्वित करने की भी महती आवश्यकता है। खुफिया एजेंसियों को अधिक सुदृढ़ बनाया जाये ताकि आतंकी गतिविधियों की पूर्व सूचना मिलती रहे। देश में राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार हो, जिससे सभी धर्मों के लोगों के बीच आपसी भाईचारा, प्रेम, सद्भाव बढ़े। साथ ही शासन–व्यवस्था को न्यायपूर्ण, पारदर्शी और जन पक्षधर बनाया जाना जरूरी है। एक के बाद एक शहरों में दहशत फैलाने वाले और निर्दोष एवं निहत्थे लोगों की बलि लेने वाले आतंकी संगठनों का मकसद चाहे जो हो, उसे बर्बरता के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता है।

आतंकवाद और धर्म विषय जैसे ज्वलंत मुददे पर हो रहे चिंतन में ऐसे अनेक अछूते सन्दर्भ एवं समसामयिक घटनाओं को बहुत व्यापकता एवं नई समझ के साथ प्रस्तुत पुस्तक व्याख्या करती है जो निकट भविष्य में एक नयी बहस को जन्म देगी। शोधार्थियों, अध्येयताओं एवं प्राध्यापकों के लिये प्रस्तुत पुस्तक संग्रहणीय एवं महत्वपूर्ण होगी ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।

पुस्तक का नाम – आतंकवाद और धर्म लेखक – डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशन – एम्पायर बुक्स इण्टरनेशनल, 4831/24, प्रहलाद गली, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली.110002
ISBN-978-93-88249-50-8 मूल्य – रू–1100/00 संस्करण : 2019

● एसोसिएट प्रोफेसर–समाजशास्त्र विभाग, महिला पी0जी0 कालेज, अमीनाबाद, लखनऊ

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

Hkkjr esa vkradokn % pqukSfr;k¡ vkSj lek/kku

Mk- lqjs'k ,Q dkuMs

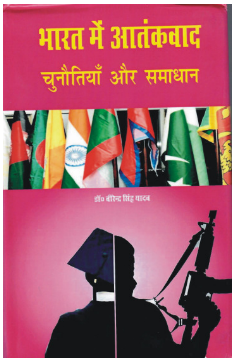

युवा आलोचक डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव का मानना है कि भारत दुनिया का अकेला देश नहीं है जो अंतर्राष्ट्रीय आतंकवादी हमलों से ग्रस्त एवं त्रस्त है वरन विश्व सहित एशिया महाद्वीप में शांति शब्द का लोप ही हो गया है। क्योंकि यहाँ आंतकवादी आये दिन आतंकवादी घटनाओं को अंजाम देते रहते हैं। भारत में एक के बाद होने वाले बम धमाकों से दहशत का माहौल व्याप्त है आतंकवाद रूपी दानव मुँह बाये खड़ा है। परन्तु विचारणीय प्रश्न यह है कि आखिर कब तक ये निर्दोष लोग आतंकवादियों का निशाना बनेंगे, इनके खून बहते रहेंगे और इनके शब बाजारों में बिखरे पड़े मिलते रहेंगे।यहाँ सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि भारत इस दृष्टि से अकेला ऐसा देश है जिसने सबसे अधिक जन–धन की हानि के बावजूद आतंकवाद की चुनौती का सामना करने में पूरी तरह अकर्मण्यता का परिचय दिया है। क्या इसका कारण हमारी गम्भीरता की महान परम्परा है, जो हमें उत्तेजित होने से रोकती है या फिर आम आदमी के प्रति हमारी संवेदनहीनता है, क्योंकि आतंकवाद के हमलों का शिकार तो साधारण तथा आम आदमी ही बनता है ?अगर ऐसा नहीं तो फिर निश्चय ही भारत ने आतंकवाद की चुनौती को गम्भीरता से या तो समझा ही नहीं या फिर उसे इतना कम करके आँका है कि आतंकवादियों का अपनी साजिश को अंजाम देना अत्यन्त सरल हो गया है। आतंकवाद साधारण अपराध का नाम नहीं है। आतंकवाद उस अधोषित युद्ध का नाम है जो किसी देश की नीतियों को बदलवाने के उद्देश्य से उस देश के साधारण नागरिकों को अपनी बर्बरता और हिंसा का शिकार बनाता है। हम इस युद्ध को लम्बे समय से झेल रहे हैं लेकिन हाल की घटनाएँ यह बताती हैं कि कुछ आतंरिक तत्वों की भागीदारी ने इस खतरे को और भी ज्यादा गम्भीर बना दिया है।

इस गम्भीर समस्या के प्रति अपना प्रतिवाद व्यक्त करते हुए लेखक का कहना है के आतंकवाद आज अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा, समृद्धि और स्थिरता के लिए ऐसी चुनौती बन गया है जिससे सम्पूर्ण विश्व किसी न किसी रूप में आहत है। अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के विचारक विद्वान ब्रियां क्लेजर का ऐसा मानना है कि बीसवीं शताब्दी का आंतकवाद अपने स्वरूप में विलक्षण है, यह समाज और राज्य के लिए कंलक जैसा है, यह अपने स्वरूप में वैश्विक है अर्थात् विश्वभर के आतंकवादियों में आपसी भाई–चारा है क्योंकि वे मूलभूत विश्वासों एवं कार्यपद्धति में एक जैसे हैं। वे एक दूसरे के हथियारों की आपूर्ति में सहायता करते रहते हैं। सामान्यतः आतंकवादी संगठन के सदस्य सुशिक्षित युवक एवं युवतियाँ होती हैं।

अंत में पुस्तक की मान्यता कुल मिलाकर यह है कि स्थितियाँ कितनी भी घातक क्यों न हों आतंक का मार्ग छोडकर देश समाज की मुख्य धारा से जुड़ने वालों के लिए पर्याप्त स्नेह संरक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए। अपराधियों को सुधरने का पर्याप्त अवसर तो दिया जाना चाहिए परन्तु नहीं सुधरने पर उनके विरूद्ध कठोर कारवाई भी होनी चाहिए। अपराधियों के साथ–साथ उनके संरक्षको के विरूद्ध भी कार्यवाई का विघान होना चाहिए। इसके लिए क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं अंतराष्ट्रीय स्तर पर विचार विमर्श होना चाहिए। अपरधी एवं आपराधिक वारदातों पर तीखी नजर रखने के लिए, आवश्यकता पडने पर उनसे मुकाबला करने के लिए पुलिस बल, सैन्य बल, गुप्तचरों को आधुनिकतम रक्षा उपकरणों से लैस किया जाना आवश्यक है। इन्हें सतर्कता, देशभक्ति, कर्तव्यनिष्ठा आदि का परिचय देना होगा। उपभोगतावादी संस्कृति के जाल से बचने के लिए तप, त्याग, संयम, संतोष की भावना का विकास करना होगा। व्यक्ति, परिवार, समाज, देश और विदेश स्तर पर मानव प्रेम का अलख जगाना पडेगा। इसके लिए जनता और सरकार को आगे बढना पड़ेगा। इसका निदान कठिन तो है लेकिन असंभव नहीं।

पुस्तक का नाम– भारत में आतंकवाद : चुनौतियाँ और समाधान
लेखक – डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशन – एम्पायर बुक्स इण्टरनेशनल, 4831/24, प्रहलाद गली, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002
ISBN-978-93-88249-40-9 मूल्य – रू. 1100/00 संस्करण : 2019

● प्लाट नं. 48, साईं बंगला, प्रोफेसर कॉलोनी, विजडम हाईस्कूल के पीछे, रामेश्वर नगर, गंगापुर रोड, नासिक–422013 (महाराष्ट्र)

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

PEER REVIEW BOARD KRATIKA

डॉ0 वाई0 पी0 सिंह
प्रोफेसर–अध्यक्ष हिन्दी विभाग
लखनऊ, विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
दूरभाष न0–9415914942
E-mail - yp.hindi.indology @gmail.com

डॉ0 देवेनबरा
एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
गुवाहटी कालेज बमुनिमाईदम
(BAMUNIMAIDAM), गुवाहटी–781021
दूरभाष न0–9435046970
E-mail - debenbora@gmail.com

डॉ0 मुकेश कुमार मालवीय
असिस्टेंट प्रोफेसर–विधि विभाग
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)
दूरभाष न0–8004851126
E-mail - mukesh9424@gmail.com

डॉ0 किशन यादव
एसोसिएट प्रोफेसर–राजनीति विज्ञान विभाग
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी (उ.प्र.)
दूरभाष न0–9454054899
E-mail - dr.kishanpolsc@yahoo.com

डॉ0 हरिशंकर सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग
बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय
विश्वविद्यालय, लखनऊ–226025

डॉ0 राजेश्वर यादव
असिस्टेंट प्रोफेसर–दर्शनशास्त्र विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
दूरभाष न0–9415789303
E-mail - rpyadavlu@gmail.com

डॉ0 आशुतोष पाण्डेय
एसोसिएट प्रोफेसर–लोक प्रशासन एवं राजनीति विज्ञान विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
दूरभाष न0–9411863763
E-mail - ashuparsiya@rediffmail.com

कृतिका इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एंड सोशल साइंसेज
ISSN : 0975-0002 वर्ष : 12, अंक : 23, जनवरी–जून 2019

रजिस्ट्रेशन ऑफ न्यूज पेपर्स रूल्स 1956 (सेन्ट्रल) के अन्तर्गत
'कृतिका' – हिन्दी अर्द्धवार्षिक के सम्बन्ध में स्वामित्व
तथा अन्य विवरण विषयक जानकारी

घोषणा–पत्र

(फार्म–4)

1.	प्रकाशन स्थल	:	1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
2.	प्रकाशन अवधि	:	अर्द्धवार्षिक
3.	मुद्रक का नाम	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
	नागरिकता		भारतीय
	पता		1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
4.	प्रकाशक का नाम	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
	नागरिकता		भारतीय
	पता		1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
5.	सम्पादक का नाम	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
	नागरिकता		भारतीय
	पता		1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.

मैं डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी तथा विश्वास के अनुसार दिये गये विवरण सत्य हैं।

दिनांक : जनवरी 2019

हस्ताक्षर
डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

मुद्रक : महक कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिण्टर्स,
15, आजाद नगर, उरई (जालौन)

☞सम्पादक : डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

सदस्यता पत्रक

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

कृतिका इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एंड सोशल साइंसेज
ISSN : 0975–0002 वर्ष : 12, अंक : 23, जनवरी–जून 2019
(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)
प्रधान सम्पादकीय कार्यालय – 303 तीसरा तल, टाईप फाइव, विश्वविद्यालय परिसर,
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, मोहान रोड, लखनऊ, उ.प्र. 226 017

पत्रांक– दिनाँक–

श्रीमान सम्पादक, कृतिका
303 तीसरा तल, टाईप फाइव, विश्वविद्यालय परिसर,
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, मोहान रोड, लखनऊ, उ.प्र. 226 017

महोदय,

निवेदन है कि मैं या हमारा विश्वविद्यालय/महाविद्यालय कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ हाफ इयरली "ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज, ISSN : 0975–0002, RNI: UPHIN/2008/30136 (साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका) की वार्षिक संस्थागत' सदस्य बनना चाहता है। मैं या हमारी संस्था सम्पादक कृतिका, के नाम व्यक्तिगत या संस्थागत सदस्यता शुल्क भारतीय स्टेट बैंक, मुख्य शाखा लखनऊ को ड्राप्ट या खाता सं. 30358537228, IFSC No. SBIN0000125 में नकद जमा कर रहा हूँ या रही हूँ।

नाम एवं पद का नाम ....

संस्था का नाम ....

पत्र व्यवहार का पूरा पता पिन कोड सहित ....

फोन/मो. नं. .... EMAIL..

स्थान एवं दिनांक ....

हस्ताक्षर

i/kku lEikndh; dk;kZy;
Mk- ohjsUnz flag ;kno
303 तीसरा तल, टाईप 5, विश्वविद्यालय परिसर,
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,
मोहान रोड, लखनऊ, 226017
दूरभाष–08052755512, 09415924888
Email : dr.virendrayadav@gmail.com
Email : kritika_orai@rediffmail.com
Webside :www.kritika.org.in

icU/ku
vkjk/kuk cqDl
(प्रकाशक एवं वितरक)
124/152–सी ब्लाक, गोविन्दनगर, कानपुर–208006, उ.प्र.
दूरभाष – 09935007102
Email : aradhanabooks@rediffmail.com
Webside :www.kritika.org.in

कृतिका पत्रिका की वार्षिक संस्थागत सदस्यता से तात्पर्य प्रिन्टेड उतने मूल्य की प्रति या प्रतियाँ (किसी भी अंक की)

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एंड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वर्ष : 12, अंक : 23, जनवरी–जून 2019

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अंतर्राष्ट्रीय रेफ्रीड शोध पत्रिका)

इक्कीसवीं सदी की शिक्षा : दशा एवं दिशा

- शिक्षा की अवधारणा, विकास एवं उन्नयन के उपाय
- वैदिक कालीन शिक्षा
- बौद्धकालीन शिक्षा
- मध्यकालीन शिक्षा
- आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली का प्रारम्भ और विभिन्न नीतियाँ
- वुड का घोषणा पत्र 1854
- भारतीय शिक्षा आयोग (हण्टर कमीशन) 1882
- शिमला सम्मेलन, भारतीय विश्वविद्यालय आयोग, 1902 और कर्जन शिक्षा नीति 1904
- राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन (राष्ट्रीय चेतना का विकास) राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन के कुछ प्रयोग
- प्रमुख शिक्षा आयोग – भारतीय शिक्षा आयोग
- हण्टर आयोग, सैंडलर आयोग, 1917, कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग, द्वैध शासन, हर्टाग समिति और वुड रिपोर्ट, वर्धा योजना, खैर समिति और आचार्य नरेन्द्र देव समिति – प्रथम, सार्जेण्ट योजना 1944, विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (राधाकृश्ण कमीशन) 1948–49
- भारतीय संविधान और शिक्षा
- प्राथमिक शिक्षा और उसकी समस्याएं – सार्वभौमीकरण की समस्या
- माध्यमिक शिक्षा और उसकी समस्याएं प्रसार की समस्या, पाठ्यक्रम की समस्या, भाषा एवं त्रिभाषा सूत्र की समस्या
- उच्च शिक्षा और उसकी समस्याएं
- उच्च शिक्षा के निजीकरण की समस्या, प्रशासन एवं वित्त की समस्या
- विश्वविद्यालयों के स्वायत्ता की समस्या
- शिक्षक शिक्षा की समस्याएँ – राष्ट्रीय शिक्षक परिषद और उसके कार्य
- प्रमुख शैक्षिक संस्थानों के कार्य एवं महत्व
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद
- जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान
- शिक्षा उच्च अध्ययन संस्थान
- नई शिक्षा नीति – 2019

शिक्षा किसी भी राष्ट्र के लिये उसके पुनःनिर्माण और विकास के लिये महत्वपूर्ण साधन एवं साध्य होती है। इतिहास इस बात के लिये गवाह है कि जब मानव अपनी प्रारम्भिक अवस्था जंगली जीवन को छोड़कर सामाजिक जीवन की ओर बढ़ रहा था, इन स्थितियों में उसके लिए सीखने का कार्य निश्चय ही अधिक अंश में अनुभव और अनुकरण पर अवलम्बित था लेकिन यह बात आगे चलकर शिक्षा की व्यवस्थित प्रक्रिया से प्रारम्भ हुई। यदि शिक्षा की बात करें तो भारतीय जीवन शैली और संस्कृत का संरक्षण, परिवर्तन, परिवर्धन और संशोधन शिक्षा संस्थाओं के माध्यम से होता है। अर्थात शिक्षा रुपी इस व्यवस्था के विकास की कथा संस्कृति के विकास की कहानी जुड़ी हुई है। इसी प्रक्रिया के तहत मानव वैदिक शिक्षा, बौद्धकालीन शिक्षा और मध्ययुगीन शिक्षा से चलकर वर्तमान शिक्षा प्रणाली तक की यात्रा में प्रवेश पाता है।

- कृपया उपरोक्त विषयों पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

आराधना ब्रदर्स कानपुर के नवीनतम् प्रकाशन

पुस्तक	लेखक	मूल्य
पं. दीनदयाल उपाध्याय : व्यक्तित्व एवं विचार	डॉ. लक्ष्मीकांत पाण्डेय	500/-
एकात्म मानव दर्शन	डॉ. श्याम बाबू गुप्त	300/-
पं. दीनदयाल उपाध्याय के एकात्ममानव दर्शन की प्रासंगिकता	डॉ. अलका द्विवेदी	500/-
पं. दीनदयाल उपाध्याय चिंतन दृष्टि	डॉ.नेहा जैन	400/-
दीनदयाल शोध संस्थान एवं गाँधी दर्शन : एक मूल्याँकन	डॉ. धीरज सिंह	750/-
तब भी और अब भी	डॉ. एल. एन. सावित्री शुक्ला	200
धूप की छाँह	डॉ. परशुराम शुक्ल	200/-
प्रतिबिंब	डॉ. परशुराम शुक्ल	400/-
सुनो पथिक!	डॉ. परशुराम शुक्ल	150/-
इन्द्रधनुषी लघु कथाएँ और चुटकले	डॉ. परशुराम शुक्ल	300/-
चीन की कला और संस्कृति	डॉ. परशुराम शुक्ल	200/-
स्वर्ग की अदालत	डॉ. परशुराम शुक्ल	300/-
चिकित्सा विज्ञान की खोंजे	डॉ. परशुराम शुक्ल	350/-
बुन्देलखण्ड का साहित्य, कला और संस्कृति	डॉ. परशुराम शुक्ल	350/-
हिन्दी बाल साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन	डॉ. परशुराम शुक्ल	500/-
बाल साहित्यकारों की कहानी उन्हीं की जुबानी	डॉ. परशुराम शुक्ल	400/-
परशुराम शुक्ल के सूचनात्मक बाल साहित्य का अध्ययन	डॉ. माधव राजप्पा मुंडकर	500/-
परशुराम शुक्ल की बाल कविता में मूल्य	अनिता रानी	400/-
डॉ. सुरेन्द्र विक्रम बालसाहित्य सृजन विमर्श	डॉ. दीपशिखा	950/-
बाल सतसई मीमांसा (परशुराम शुक्ल कृत बाल सतसई की टीका)	श्याम बिहारी श्रीवास्तव	500/-
हिन्दी बालकाव्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन	मनोज कुमार	400/-
हिन्दी का बाल लोक साहित्य	डॉ. मीना सिंह गौर	400/-
बाल धारावाहिक अनुभूति और अभिव्यंजना	डॉ. स्वामी विजयानंद	650/-
बाल सतसई प्रबोधिनी	स्वामी विजयानन्द	600/-
सतसई काव्य परम्परा और बाल सतसई	डॉ. संगीता जगताप	550/-
हिन्दी और ओड़िया बाल कविता का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. निर्मला जेना	750/-
स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी बाल कविता में वैज्ञानिक चेतना	डॉ. डी.आर. राहुल	300/-
स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी बाल कविता में युगचेतना	डॉ. उमा सिरोनिया	600/-

बाल कविता में सामाजिक–सांस्कृतिक चेतना	डॉ. शिरोमणि सिंह 'पथ'	400/-
हिन्दी बाल साहित्य में मनोरंजन एवं नैतिकता	डॉ. रामशंकर आर्य	400/-
बाल समस्याएँ कारण और निदान	जयजयराम आनन्द	500/-
हिन्दी बाल कविता की प्रवृत्तियाँ	डॉ. उदय सिंह जाटव	500/-
मयंक का हिन्दी बाल साहित्य	डॉ. कंचनलता यादव	500/-
हिन्दी का प्रवासी साहित्य	डॉ. कालीचरण स्नेही	400/-
डॉ. अंबेडकर : वैचारिकी एवं दलित विमर्श	डॉ. कालीचरण स्नेही	600/-
भारतीय प्रतिरोधी चेतना के प्रतीक प्रोफेसर तुलसीराम	धर्मेन्द्र कुमार वीरोदय	250/-
मुक्तिबोध एवं प्रगतिशील समीक्षा	डॉ. ऋतम्भरा	500/-
विचार संचयन	डॉ. ऋतम्भरा	300/-
लोकसाहित्य एवं लोक नाट्य	डॉ. ऋतम्भरा	400/-
कबीर एवं निराला के विद्रोही स्वरों का विवेचन	डॉ. गरिमा जैन	700/-
पं. राहुल सांकृत्यायन एवं बौद्ध दर्शन	डॉ. आशाराम जाटव	750/-
सद्गुरु कृपा अमित वाणी 'निर्वेद'	'अमित'	2100/-
स्वयंसिद्धा	डॉ. तनूजा चौधरी	250/-
परसाई समय और सापेक्षता	डॉ. तनूजा चौधरी	250/-
मॉरिशस की कहानियों में भारतीय संस्कार–जीवन मूल्य	डॉ. तनूजा चौधरी	300/-
साठोत्तरी लेखिकाओं का स्त्री–विमर्श	डॉ. तनूजा चौधरी	500/-
हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श के विविध सरोकार	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में नारी समस्यायें आधुनिकताबोध	डॉ. सविता मसीह	500/-
मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में नारी	डॉ. भारती	400/-
मैत्रेयी पुष्पा का कथा साहित्य	डॉ. प्रियंका रानी	400/-
डॉ. रामकमल राय सृजन सरोकार	डॉ. निशीथ राय	300/-
प्रसाद की काव्य भाषा	डॉ. मीना सिंह गौर	500/-
पंत एवं निराला का काव्य एवं अध्ययन	डॉ. मीना सिंह गौर	300/-
हिन्दी उपन्यासों में नारी चित्रण के विविध आयाम	डॉ. मीना सिंह गौर	225/-
वर्तमान हिन्दी कविता में लोकतत्त्व	डॉ. मीना सिंह गौर	200/-
मृच्छकटिकम् में मानवाधिकार	डॉ. शुभांगी गायकवाड़	500/-
सूरदास एवं अक्षर अनन्य का काव्य	डॉ. पी.एस. गोयल	500/-
संत परम्परा की खोज	डॉ. कमलेश सिंह नेगी	400/-
आधुनिक संस्कृत साहित्य में समकालीन समस्यायें	डॉ. रेखा शुक्ला	300/-

संस्कृत वांङ्मय में वर्णित भारतीय संस्कृति एवं कला	डॉ. रेखा शुक्ला	1200/-
आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी और उनकी समीक्षा दृष्टि	डॉ. अजिता दीक्षित	250/-
कथाकार भगवती चरण वर्मा के कथा साहित्य का शास्त्रीय अध्ययन	डॉ. अजिता दीक्षित	600/-
मुकुट बिहारी 'सरोज' और डॉ. सीता किशोर खरे के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. प्रगति	600/-
हिन्दी व्यंग्य लेखन में शरद जोशी का योगदान	डॉ. शिवशंकर यादव	400/-
रांगेय राघव की कहानियों का समाजशास्त्रीय अध्ययन	डॉ. पद्मा शर्मा	600/-
सौन्दर्यबोध और भारतीय चिन्तन परम्परा	डॉ. पद्मा शर्मा	400/-
हिन्दी महिला उपन्यास लेखन में स्त्री आन्दोलन	डॉ. मुनेश यादव	500/-
शशिप्रभा शास्त्री के कथा साहित्य में नारी	डॉ. अनिता शर्मा	500/-
वैश्विक परिदृश्य में वैदिक ज्ञान–विज्ञान	डॉ. पुष्पा यादव	900/-
मुक्तिबोध सृजन के विविध	डॉ. वन्दना श्रीवास्तव	700/-
विभीषण (खण्ड काव्य)	डॉ. गजेन्द्र सिंह परमार	200/-
सुहागरात	कामता प्रसाद विश्वकर्मा	300/-
प्यार किया तो डरना क्या	कामता प्रसाद विश्वकर्मा	250/-
ज्योत्सना	कामता प्रसाद विश्वकर्मा	250/-
जगत् सत्यं ब्रह्म नास्ति	कामता प्रसाद विश्वकर्मा	250/-
प्रेम विवाह	कामता प्रसाद विश्वकर्मा	250/-
बिखरे बादल	डॉ. नरेन्द्र प्रताप सिंह	250/-
सूरज आज चाँद से हारा	डॉ. नरेन्द्र प्रताप सिंह	250/-
साधना सफल है! (कहानी संग्रह)	सीताराम यादव	250/-
प्यासे केन के फूल	कुँवर वैरागी	500/-
यात्रा (परिधि से केन्द्र तक)	हरीराम गुप्ता 'निर्पेक्ष'	250/-
हिन्दी भाषा एक अबाध प्रवाह	डॉ. मीता, डॉ. सुमन	350/-
आधुनिक हिन्दी कविता में लोक चेतना	डॉ. मीता, डॉ. सुमन	350/-
रेणु का कथा साहित्य	डॉ. सुरेश चन्द्र मेहरोत्रा	500/-
रामचंद्रिका में वक्रोक्ति सिद्धांत का अनुशीलन	डॉ. ममता गंगवार	500/-
बुन्देलखण्ड का साहित्य, कला और संस्कृति	डॉ. परशुराम शुक्ल	350/-
बुंदेलखण्ड के साहित्यकारों का साहित्यिक अवदान	डॉ. छाया राहुल	700/-
बुन्देलखण्ड की साहित्य सर्जना	डॉ. किरण शर्मा	350/-
आधुनिक बुन्देली काव्य	डॉ. कालीचरण स्नेही	300/-
जायसी और कबीर : सामासिक संस्कृति के संदर्भ में	डॉ. डी.आर. राहुल	600/-

समीक्षा रेखायें	डॉ. कामिनी	400/-
उरैन	डॉ. कामिनी	350/-
आलेख	डॉ. कामिनी	350/-
हाशिये पर (कहानी संग्रह)	डॉ. कामिनी	150/-
संस्कार गीत और लोक जीवन	डॉ कामिनी	200/-
सिर्फ रेत ही रेत	डॉ. कामिनी	100/-
स्थान नाम बोलते हैं	डॉ. कामिनी	75/-
दतिया जिले में पत्र–पाण्डुलिपियों का सर्वेक्षण	डॉ. कामिनी	120/-
वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों में नारी	डॉ. रामप्रकाश जाटव	350/-
चिड़ियाँ चुग गईं खेत (लघुकथा संग्रह)	डॉ. राज गोस्वागी	300/-
सुनहरी धूप (काव्य–धारा)	मंजू एस. सिंह	200/-
सबके अपने अमित...	सं. डॉ. निरंजन कुमार	300/-
गुलदस्ता	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	350/-
बंशी उठी पुकार	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	250/-
प्रदोष नृत्य	डॉ. हरीशचन्द्र शर्मा	250/-
मृत्यु पर विजय	डॉ. हरीशचन्द्र शर्मा	300/-
रामाश्रय (खण्डकाव्य)	डॉ. हरीश चन्द्र शर्मा	500/-
प्रेमचन्द्र युगीन उपन्यास लेखिकाएँ और उनका रचना संसार	डॉ. संध्या शर्मा	150/-
हिन्दी यात्रा साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि	डॉ. संध्या शर्मा	500/-
स्वच्छन्द काव्यधारा	डॉ. मीता अरोरा	600/-
'अंधेरे में' आख्यान का स्वरूप	डॉ. मीता अरोरा	200/-
पं. श्रीवर चतुर्वेदी : व्यक्ति एवं अभिव्यक्ति	डॉ. रामकिशोर यादव	500/-
जैनेंद्र का कथालोचन	डॉ. वन्दना श्रीवास्तव	350/-
'रामायण' और 'महाभारत' में राजनीतिक विचार	डॉ. कान्ती शर्मा	500/-
स्थानवाची नामों का समाज भाषा शास्त्रीय विश्लेषण	डॉ. कमलेश प्रजापति	350/-
प्रसाद नाट्य साहित्य में हास्य–व्यंग्य	डॉ. संगीता अग्रवाल	200/-
नयी कहानी : अस्तित्व एवं स्वरूप	डॉ. संगीता अग्रवाल	250/-
शिवानी के उपन्यासों में कूर्मांचलीय लोक संस्कृति	डॉ. अलका मिश्र	300/-
महाप्राण निराला : पुनर्मूल्यांकन	डॉ. प्रदीप मिश्र	400/-
श्रृंगार शिरोमणि का रस–भाव विवेचन	डॉ. प्रदीप मिश्र	500/-
शिवानी के उपन्यासों के पात्र	डॉ. सुषमा पुरवार	400/-

कालजयी नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र	डॉ. मंजुला श्रीवास्तव	400/-
भारतीय नारी का धर्मशास्त्रीय अध्ययन	डॉ. पूजा श्रीवास्तव	300/-
महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	200/-
महान वैज्ञानिक गैलीलियो गैलिली	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	200/-
महान वैज्ञानिक बैंजामिन फ्रैंकलिन	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	200/-
महान वैज्ञानिक आइजक न्यूटन	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	200/-
महान वैज्ञानिक सी.वी. रामन	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	200/-
विज्ञान पहेलियाँ	चन्द्र प्रकाश शर्मा	200/-
मानव जीवन और पेड़ पौधे	डॉ. शिवानी शुक्ला	250/-
संतोष का फल	रघुपति सिंह	175/-
आसमान छूते विकलांग	सुखदेव सिंह सेंगर	200/-
भारत के अमर वीर	सुखदेव सिंह सेंगर	350/-
साहित्य के समुद्र गुरुदेव	सुखदेव सिंह सेंगर	250/-
तुम न आये सितारों को नींद आ गई	मंजुल मयंक	300/-
मेरी हम जिन्दगी मेरी हमशाइरी	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	200/-
सहमे सहमे अक्षर	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	300/-
अनाम सखे	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	150/-
गीत से नवगीत	डॉ. शुभा श्रीवास्तव	250/-
उर्वशी काव्य में नारी चेतना	डॉ. मीता अरोरा	200/-
उठी हाट के हम व्यापारी	रामस्वरूप	80/-
भुरभुरी माटी में अनुराग के अंकुर	डॉ. सीता किशोर	250/-
कहत ईसुरी और दास मलूका	डॉ. सीता किशोर	200/-
रहीम के आमूं सामूं	डॉ. सीता किशोर	200/-
सबका अंतरिक्ष	डॉ. सीता किशोर	150/-
इस दौर से गुज़रे हैं हम	डॉ. सीता किशोर	200/-
बुंदेलखंड की पूर्व रियासतों में पत्रपांडुलिपियों का सर्वेक्षण	डॉ. सीता किशोर	250/-
ग्वालियर संभाग में व्यवहृत बोली रूपों का भाषा अध्ययन	डॉ. सीता किशोर	200/-
नारी स्वर	ज्ञानचन्द्र गुप्त	200/-
पुरवा	मंजु सिंह	200/-
मनन और मूल्यांकन	डॉ. विश्वम्भरनाथ	250/-
साहित्यिक एवं सांस्कृतिक निबन्ध	डॉ. कैलाश नाथ द्विवेदी	150/-

जन्म जन्मान्तर	मंजु सिंह	200/-
महाकवि भवभूति के नाटकों में ध्वनि तत्व	डॉ. शिवबालक द्विवेदी	225/-
पं. बनारसी दास चतुर्वेदी व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. कालीचरण 'स्नेही'	400/-
वासुदेव गोस्वामी और उनका साहित्य	डॉ. श्रीमती गीता पाण्डेय	150/-
विचार–वीथी (निबन्ध–संग्रह)	डॉ. पुरुषोत्तम बाजपेयी	75/-
अपराधी कल्याण के विविध आयाम	डॉ. ए. एन. अग्निहोत्री	300/-
भदावरी बोली का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन	डॉ. श्यामसुन्दर सौनकिया	150/-
हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में नारी	डॉ. हरिशंकर शर्मा	140/-
संस्मरण और संस्मरणकार	डॉ. मनोरमा शर्मा	60/-
ब्रजनंदन व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. ओमप्रकाश सिंह	60/-

अन्य विषय

भारत में सामाजिक न्याय एवं नारीवादी चिन्तन	डॉ. बिपिन चन्द्र कौशिक	400/-
शारीरिक शिक्षा के आधार	डॉ. नसीम अहमद खान	300/-
आधुनिक काल में भारत विविध आयाम	डॉ. रवीन्द्र, डॉ. दिनेश, डॉ. बलराम	900/-
भारत की कार्य संस्कृति बदलाव की पहल और विकास	डॉ. प्रतिमा गंगवार, डॉ. गीता अस्थाना	900/-
भारतीय लोकतंत्र – चुनौतियाँ और समाधान	डॉ. आर. के. त्रिपाठी	500/-
शारीरिक शिक्षा के आधार	डॉ. नसीम अहमद खान	300/-
मृदा जल संरक्षण एवं सिंचाई	डॉ. चन्द्र प्रकाश शुक्ल	350/-
भारतीय संस्कृति में कर्मयोग	डॉ. प्रीति राठौर	700/-
राष्ट्रवाद – साहित्य और समाज	प्रो. एस.डी. शर्मा, डॉ. वन्दना, डॉ. सिंह, डॉ. क्षमा, डॉ. देविका	995/-
भारतीय प्रतिरोधी चेतना के प्रतीक प्रोफेसर तुलसीराम	डॉ. धर्मेन्द्र वीरोदय	250/-
विचार प्रवाह	डॉ. सुरंगमा यादव	300/-
दिव्यांग विभूतियाँ सामाजिक सरोकार	डॉ. विजय कुमार वर्मा	300/-
दिव्यांगता एक सामाजिक यथार्थ	डॉ. विजय कुमार वर्मा	300/-
भारत की विदेश नीति	मनोज कुमार यादव	600/-
पं. दीनदयाल उपाध्याय व्यक्ति विचार	डॉ. लक्ष्मीकान्त पाण्डेय	500/-
पर्यावरणीय संकट एवं गाँधीवादी मूल्य	डॉ. शकुन्तला	700/-
ग्रामीण बैंकों की रोजगार सृजन में भूमिका	डॉ. नीरज यादव	600/-
टैगोर और रूसो की शिक्षा का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. अनीता यादव	350/-
स्वच्छ भारत अभियान (मुद्दे–समस्याएँ–संभावनाएँ)	डॉ. अरविन्द शुक्ला	595/-
स्वच्छ भारत अभियान : चुनौतियाँ एवं अवसर	डॉ. अरविन्द शुक्ला	650/-

उभरती पर्यावरणीय चिंताएँ एवं सतत् विकास	डॉ. अरविन्द शुक्ला	600/-
पर्यावरण एवं अक्षय विकास	डॉ. अरविन्द शुक्ला	650/-
वैश्विक पर्यावरण एवं सतत् विकास	डॉ. अरविन्द शुक्ला	595/-
नई सदी में पर्यावरण : चिंतन के विविध परिदृश्य	मनोज कुमार यादव	995/-
भारत में समावेशी एवं सतत् विकास	डॉ. सपना, डॉ. शुक्ला	850/-
भारत में उच्च शिक्षा दशा एवं चुनौतियाँ	डॉ. उमेश शाक्य	600/-
राष्ट्रवादी–मार्क्सवादी इतिहास लेखन महात्मा गांधी	डॉ. सुप्रिया वर्मा	500/-
भारत का समाजवाद : दशा एवं दिशा	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	500/-
डॉ. लोहिया का समाजवाद एवं वैचारिक विमर्श	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. लोहिया का समाजवादी विमर्श	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. लोहिया का समाजवाद एवं सामाजिक समरसता	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. लोहिया का समाजवाद एवं अर्थ दर्शन	डॉ. यतीन्द्र नाथ शर्मा	500/-
भारतीय राजनीतिक–सामाजिक समस्यायें	डॉ.(श्रीमती) राजेश जैन	600/-
भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में उ.प्र. की महिलाओं का योगदान	डॉ. संजू	400/-
राजपूत कालीन सामाजिक विषमताएँ	डॉ. प्रशांत सिंह	500/-
पंचायती राजव्यवस्था में महिलाओं की सहभागिता	डॉ. अनीता	400/-
चाणक्य नीति : वर्तमान में प्रासंगिकता	डॉ. ममता गंगवार	600/-
विश्व पर्यावरण एवं राजनीतिक संघर्ष	डॉ. आर.के. त्रिपाठी	400/-
Environment & Health Sustainability	Dr. Shivani Srivastava	500/-
Socio-Economic & Cultural Sustainbility	Dr. Shivani Srivastava	800/-
Sustainable Development Strategies & Emerging Trends	Dr. Shivani Srivastava	450/-
Contemporary Environmental Issues & Impact on Human Life	Dr. Ranjana Srivastava	1100/-
Communication Skills & Higher Education	Dr. Sapana Pandey	750/-
Environmental Issues & Sustainable Development	Dr. Arvind Shukla	600/-
Environmental Concerns & Clean India Campaign	Dr. Arvind Shukla	595/-
Swachh Bharat Campaign (Administrative Perspectives Issues & Challenges)	Dr. Arvind Shukla	595/-
Global Environment & Sustainable Development	Dr. Arvind Shukla	595/-
A Journey Into Religious Freedom	Fr. Jerom Paul	400/-

The Permanent Synod of the East	Fr. Jerom Paul	400/-
Dalit Politics in Uttar Pradesh : A Study of Bahujan Samaj Party (B.S.P.)	Dr. Ravi Ramesh Shukla	650/-
Khilafat Movement	Dr. Razia Nayab	500/-
Arun Joshi : An Exploration of the Self	Dr. Anjita Singh	500/-
Tourism Industry in Himanchal Pradesh	Dr. Tiwari	400/-
Modern English Poetry	Dr. Satish Kumar	400/-
Environmental Issues & Gandhian Value	Dr. Shakuntala	400/-
Evolution of National Consciousness in U.P.	Dr. Vijay Khare	500/-
History of Hindu Socio Religious Reform Movements in 19th Century	Dr. Vijay Khare	500/-
Cultural Aspect of Food & Nutrition	Dr. Geeta Mathur	500/-
Issues & Challenges Related to Family Dynamics in Modern Society	Dr. Geeta Mathur	1100/-
Trends Issues & Challenges in Physical Education	Dr. Madhu Gaur	995/-
Anne Sextion and Her Universe	Dr. Sapna Pandey	600/-
Speech Act analysis of Political Discourse	Dr. Kamalakar Jadhav	350/-
Critical Essays of Indian English Drama	Dr. R.T. Bedre	450/-
Socio Realism in Indian English Drama	Dr. R.T. Bedre	800/-

नोट : (1) समस्त विषयों में पुस्तक/शोधग्रंथ प्रकाशन हेतु पाण्डुलिपियाँ आमंत्रित हैं।

(2) हमारी संस्था महाविद्यालय/विश्वविद्यालय एवं सार्वजनिक पुस्तकालय हेतु समस्त विषयों में समस्त प्रकार की पुस्तकों की आपूर्ति आपकी माँग के अनुसार करती है।

(3) पुस्तकों का आदेश भेजते समय अपना नाम, पता, पिनकोड व फोन नं. लिखें या मेल करें।

आराधना ब्रदर्स

124/152-सी ब्लॉक, गोविन्द नगर, कानपुर - 208 006 (उ.प्र.)

aradhanabooks@rediffmail.com

कृतिका अन्तर्राष्ट्रीय रेफ्रीड रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0974-0002 वर्ष : 12, वाल्यूम : 23, जनवरी–जून 2019

कृतिका परिवार

प्रमुख प्रवासी सम्पादकीय सलाहकार समिति

- डॉ. सुरेश चन्द्र शुक्ल 'शरद आलोक' (लेखक, आलोचक एवं साहित्यकार), ग्रिवलिंगविएन 2 जी 0595–ओस्लो, नार्वे
- डॉ. सरिता बुधू, अध्यक्ष भोजपुरी स्पीकिंग यूनियन, मॉरीशस
- डॉ. अजीत सिंह राही, पो.बॉ. 119, हानउड 2680, एन.एस.डब्ल्यु., आस्ट्रेलिया
- डॉ. तिलकराज चोपड़ा, हाज़ल वेग 15ए 53340 मेकन्हाईम, जर्मनी
- डॉ. दिव्या माथुर – नेहरू सेन्टर, 8 साउथ आउडली स्ट्रीट, लंदन– डब्ल्यु 1 के 1 एच.एफ.

मुख्य परामर्शदाता एवं मानद संरक्षक

- प्रो. विष्णु कुमार अग्रवाल – अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, शासकीय पी.जी. कालेज, मुरैना, ग्वालियर (म.प्र.)
- डॉ. गायत्री सिंह – एसो. प्रोफे. हिन्दी विभाग, प्राचार्या, आर्मापुर पी.जी. कालेज, कानपुर, उ.प्र.
- डॉ. उमारतन यादव, एसो0 प्रोफेसर–अर्थशास्त्र विभाग, बुन्देलखंड महाविद्यालय, झाँसी, उ.प्र.
- डॉ. अनीता यादव – प्रवक्ता – शिक्षाशास्त्र, महाराज सिंह स्मृति महाविद्यालय, इटैली, औरैया, उ.प्र.

विशेष परामर्शदात्री समिति

- डॉ. रिपु सूदन सिंह – प्रोफे. एवं अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, डीन, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ.प्र.
- डॉ. ज्योति सिन्हा– भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान राष्ट्रपति निवास, शिमला – प्रवक्ता, संगीत विभाग, महिला पी.जी. कॉलेज, जौनपुर, उ.प्र.
- डॉ. मधुरबाला यादव – एसो. प्रोफे. हिन्दी विभाग, पी.पी.एन. कालेज, कानपुर, उ.प्र.

संपादकीय परामर्शदात्री समिति

- डॉ. आशा वर्मा, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डी. बी. एस. कालेज, कानपुर, उ.प्र.
- डॉ. अलका द्विवेदी, वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, जुहारी देवी गर्ल्स कालेज, कानपुर, उ.प्र.
- डॉ. नम्रता चौकोटिया, पी–एच.डी. अनुभाग, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
- डॉ. प्रतिमा यादव, हिन्दी विभाग, महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
- डॉ. शिवशंकर यादव – असिस्टेण्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ.प्र.

मुख्य सम्पादक मण्डल

- डॉ. सुरेश एफ. कानडे, प्लाट नं. 48, साई बंगला, प्रोफेसर कॉलोनी, रामेश्वर नगर, गंगापुर रोड, नासिक–422013 (महाराष्ट्र)
- मनोज कुमार यादव – पूर्व सदस्य, उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड, प्रयागराज, उ.प्र.

विशेष सम्पादन सहयोग

- डॉ. दत्तात्रय मुरुमकर, प्रोफेसर हिन्दी विभाग, मुंबई विश्वविद्यालय, विद्यानगरी, कलीना सांताकुंज (पूर्व), मुंबई – 400098 (महाराष्ट्र)
- डॉ. राम अवध सिंह, प्राचार्य, श्री गाँधी पी0जी0 कालेज, मालटारी, आजमगढ़, उ.प्र.
- डॉ. सियाराम, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, तिलक महाविद्यालय, औरैया, उ.प्र.

प्रधान सम्पादक

- डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

अध्यक्ष – हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ–226 017 (उ.प्र.)
सम्पर्क : 08052755512, 09415924888 * Wavesite - htt://kritikareseacchjournal.godaddyesites.com
Email : dr.virendrayadav@gmail.com * Email : virendra_kritika@rediffmail.com

प्रबन्धन एवं पत्राचार

- आराधना ब्रदर्स (प्रकाशक एवं वितरक)

124 / 152– सी ब्लाक, गोविन्दनगर, कानपुर–208006, उ.प्र.
दूरभाष –09935007102 Email : aradhanabooks@rediffmail.com * kritika_orai@rediffmail.com